

# अभियान का पथ

अनूप लाल मंडल

ISBN-

**सर्वाधिकार** : लेखक

**प्रकाशक** : साहित्य संसद  
आर जेड 35 बी, गली नं. 1 ए  
कैलाशपुरी एक्सटेंशन,  
नई दिल्ली-110045

**प्रथम संस्करण** : 2021

**मूल्य** : 000.00

**अक्षर संयोजक** : जी. के. लेजर टाइप सेटिंग  
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

**मुद्रक** : आर. के. ऑफसेट  
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

---

**ABHIYAN KE PATH by Anuplal Mandal**

## भूमिका

## निवेदन

प्रस्तुत उपन्यास की रचना भारतीय स्वाधीनता के बहुत पहले हो गई थी; किंतु दुर्भाग्यवश दो साल में तैयार की गई इसकी सम्पूर्ण पाण्डुलिपि खो जाने के कारण इसके प्रकाशन की कल्पना भी मैं कैसे कर सकता था! पर, अघटन घटना पटीयसी मंगलमय प्रभु का मंगल विधान कौन जान सकता है भला ! सौभाग्य से एक युग के बाद वह पाण्डुलिपि मुझे पुनः प्राप्त हो गई। उस दिन इसके खो जाने की मुझे जितनी वेदना हुई थी, आज इसे प्रकाशित देखकर उतना ही मुझे हर्ष हो रहा है। हर्ष का एक और भी कारण है, और वह यह कि इसकी कथा के ताने-बाने में ग्रामीण-उत्थान का जो स्वप्न मैंने एक दिन देखा आज वह स्वप्न स्वतंत्र भारत के नायकों की ओर से चरितार्थ करने का संकल्प निश्चित किया जा चुका है और उसका कार्यान्वयन भी हो रहा है। पुस्तक का नामकरण ---उसी दृष्टिकोण से किया गया है। इसके गुण-दोषों का विवेचन करना मेरा काम नहीं, वह सुधी समालोचक करेंगे। मैं तो अपनी ओर से इतना ही कहूँगा कि की कथा-वस्तु के निर्माण और इसके चरित्रों के विकास में मैंने अपनी ओर से यथाशक्य त्रुटि न आने दी है। विश्वास है, इससे पाठकों का स्वस्थ मनोरंजन होगा।

अंत में, मैं इसके प्रकाशक श्री देवकुमार मिश्र का आभार स्वीकार करता हूँ, जिन्होंने इसे प्रकाश में लाने का मुझे सुअवसर दिया और मित्र के प्रति भी मैं आंतरिक कृतज्ञता ज्ञापन करता हूँ, जिसने खोई वह पाण्डुलिपि अचानक मेरे पास पहुँचाकर मुझे आप्यायित किया।

भारतीय गणतंत्र दिवस सं. 2012 वि.

-अनूप



(एक)

- अम्मा! अम्मा !! -जो, मैं अब तुमसे नहीं बोलता ! जब देखो, तुम रोती रहते हो ! अरी, रोती क्यों हो अम्मा ? रामू की माँ को तो कभी रोते हुए नहीं देखा । एक तुम हो कि रोती रहती हो! आखिर, रोती क्यों हो अम्मा ?

पूछने वाला लड़का रंगा था । वह अपनी माँ के गले में दोनों बाँहें डालकर उसके मुंह की ओर ताकने लगा ! माँ के लिए यह प्रश्न नया नहीं था । फिर भी उसका उत्तर उसने कभी उसे नहीं दिया ! माँ ने हंसते हुए अपने आँसुओं को आँखों में ही रोका और भाटपट बोल उठी--नहीं-नहीं, रोती कहाँ हूँ बेटा !

अम्मा ने रंगा को अपनी ओर खींचकर गोद में बैठाते हुए उसका मुंह चूम लिया । उसके आँसू जैसे आँखों में ही विलीन हो गये, उसकी आकृति वात्सल्य स्नेहमात्र ले खिल उठी, ओठों पर मुस्कुराहट भर आई और वह कुछ कहना ही चाहती थी कि तभी रंगा ने कहा-झूठ, सफेद झूठ ! अरी, तुम झूठ भी बोलती हो अम्मा ? मुझे तो कहा करती हो कि अच्छे आदमी झूठ नहीं बोलते ?

और रंगा मचलते हुए खिलखिलाकर हँस पड़ा और अपनी तर्जनी को माँ की आँख के कोने में छिपे आँसू से भीगोकर उसे दिखलाते हुए बोल उठा देखो, जरा देखो तो अम्मा, यह क्या है ?

अम्मा की झूठ यद्यपि रंगा से पकड़ी गई थी; फिर भी वह इसबार दूने जोर से खिलखिला उठी, मानो उसने हसी के प्रबल वेग में अपनी झूठ को बहा ले जाना चाहा और बलपूर्वक अपने-आपको भी उस प्रवाह में डालकर कहा-तुम बड़े नटखट हो रंगा, भारी पाजी हो ।

माँ बोलकर कुछ क्षण चुप हो रही; फिर रंगा को बहलाने के विचारसे बोल उठी हाँ, यह तो कहो बेटा, तुम्हें केला अच्छा लगता है या गुड़ ?

चतुर माँ की बुद्धी काम कर गई । केला और गुड़ के प्रलोभन में रंगा का मन उलझ पड़ा और इन चीजों के पाने की उल्कंठा में वह बोल उठा-अच्छा क्या नहीं लगता, अम्मा ! जैसा केला वैसा गुड़ । मगर तुम पूछकर

क्या करेगी? न तो तुम केला ही देती हो और न गुड़ । एक वह रामू को माँ है, जो रामू को केला देती है, संतरा देती है, मिठाई भी देती है और तरह-तरह के खिलौने, वाँसुरी, सीटी, ओह, बहुत-बहुत सारी चीजें !

रामू की माँ की बातें सुनकर रंगा की माँ कल्याणी के हृदय में चोट-सी लगी । क्षणभर के लिए उसकी आकृति विषाद से भर उठी; पर उसने तुरंत अपने-आपको सँभाला और अपने ओठों पर बलपूर्वक मीठी हँसी लाकर वह बोल उठी-दूंगी बेटे, मैं भी दूंगी-जो चाहोगे, दूंगी । मगर यह तो बताओ भला, केला तुम्हें पसंद है या गुड़?

-देती तो हो नहीं-रंगा ने भौंहें सिकोड़ते हुए कहा-मैं कैसे बतलाऊँ! चीज तो चखी नहीं और लगी तुम स्वाद पूछने । भला ऐसे भी बतलाये जाते हैं । वाह, खूब! पहले खिलाओ, तब पूछो कि कौन कैसा लगता है ।

-नहीं, सो नहीं होने का कल्याणी हँसी-पहले बतला दो, फिर मैं दे दूंगी ।

-नहीं, सो कैसे होगा? पहले लाओ, मैं केला और गुड़ अलग-अलग चख और तब बतलाऊँ । यों नहीं बताने का ? तुम तो केला कह-कहकर फुसला लेती हो और देने के नाम पर कहती हो-दूंगी, आज नहीं-कल ! और जब कल आ जाता है तो कहती हो-आज नहीं, कल हाट है-मंगवा दूंगी । मगर देती कब हो, अम्मा !

इसबार कल्याणी चिन्ता में पड़ गई! रंगा ने जो कुछ कहा था, सच कहा था । इसके पहले न जाने कितनी बार वह रंगा से वादा खिलाफी कर चुकी है, वह देना भी चाहती है उसे; मगर कल्याणी ने एक गहरी आह ली; परन्तु उसने अपने को संयत कर लिया और कहीं रंगा उसे ताड़ न ले, वह बलपूर्वक अपने को हँसमुख बनाते हुए बोल उठी-जरूर मँगबा दूंगी बेटा, इस बार जो तुम चाहोगे । यह भी कभी होने का! तुम चाहो और और तुम्हें न तो और कौन है बेटा! मगर मुझे यह तो मालूम रहे-तुम्ह केला चाहिए या गुड़?

इसबार रंगा की आँखें आशा से खिली हुई दीख पड़ी और वह मचलकर बोल पड़ा-केला भी चाहिए और गुड़ भी । मगर केला एक नहीं,

दस-बारह चाहिए और गुड़ बहुत ढेर-सा। गुड़ और केले के विना चूड़ा कहीं अच्छा लगता है? सूखा चूड़ा मैं नहीं खाता! और जब तुम दोगी भी तो सूखा चूड़ा, सूखी मुढ़ी या सूखा चना! जाने इनके सिवा और कुछ खाने को है ही नहीं।

माँ अपने बेटे की बातों पर मन-ही-मन क्षुब्ध हो रही। उसने एक बार शून्य आकाश की ओर ताका, उसके आँखें डबडबा आई थीं; पर वह अपने आँसओं को वहीं रोककर बोल उठी-अच्छा, कल जरूर मँगवा दूंगी, बेटा ! गाँव की हाट है न कल ! देख लेना, इसबार जरूर ला दूंगी। जरूर?

-हाँ, जरूर, बेटा! -खाओ शपथ!

शपथ का नाम सुनकर कल्याणी हंस पड़ी और उसके गाल थपथपाती हुई वह बोल उठी-शपथ क्या अच्छे आदमी खाया करते, बेटा? मगर मैं कहे रखती हूँ, कल जरूर मँगवा दूंगी, देख लेना।

रंगा इसबार केला और गुड़ पाने की खुशी में मस्त हो गया। उसको इसबार पूरी आशा बँध गई। उसने मचलना बंद किया ! धीरे-धीरे उसकी पलकें भारी होने लगी और कुछ ही क्षणों के बाद उसे नींद हो पाई। कल्याणी ने उसे अपनी गोद में उठाकर धीरे से बिछावन पर लिटा दिया और धीरे-धीरे वहघर से बाहर आकर शून्य दृष्टि से आकाश की ओर ताकने लगी।

उसने न जाने कितनी बार बातें बनाकर, झूठ बोलकर, रंगा को भुलावे में डाला है-रंगा को ही क्यों, वह खुद अपने लिए भी तो अबतक ऐसा ही करती आ रही है। भला ग्यारह-बारह साल के दिहात में पले लड़के को क्या पता कि उसकी अम्मा क्यों उसे भुलावे में डाले रखती आ रही है और वह खुद क्यों अपने आपको भी।

मगर कल्याणी बाहर आकर, शून्य दृष्टि से आकाश की ओर टकटकी लगाए पड़ी रहने पर भी, अपने को भुलावे में रख छोड़ने में सफल न हो सकी। उसे याद हो आया-अभी-अभी वह अपने रंगा से वादा कर चुकी है कि, कल वह उसे, गाँव की हाट से केले और गुड़ मँगवा देगी। मगर कल?-कल्याणी सोचने लगी-कितने कल हो चुके; रंगा यों समझदार लड़का है, आखिर बच्चा ही तो ठहरा। फिर भी वह क्या समझता होगा? अपने को

छिपाने के लिए कितना महंगा सौदा मुझे आज करना पड़ा है । आह, यही तो उसके खाने-खेलने के दिन थे । उसे क्या पता क्यों उसकी माँ वादा खिलाफी करती आ रही है ? वह बच्चा क्या जानता है—कैसे जान सकता है-रामू की माँ रामू को केले, संतरे और मिठाइयाँ क्यों दिया करती है और उसकी माँ उसे गुड़ तक भी क्यों नहीं दे पाती?...मगर इसबार कल की हाट से ये तो पाने ही चाहिए । ....केले, गुड़ !! इतनी मामूली-सी चीजें ! मगर, कैसे? -इसका समाधान वह कर न सकी ।

उसने आकाश की ओर देखा, एक गहरी सॉस ली! उसके पाँव दृढ़ न रह सके, खड़ी रहने की शक्ति जैसे लुप्त हो गई हो । वह धम् से जमीन पर बैठ गई, आँखों का बाँध टूट पड़ा और न जाने कब तक वह उस प्रवाह में बहती रही ।

भादों की रात, तारे छिपने लगे एक-एककर, बादलों की टोलियाँ हवा पाकर इकट्ठी होने लगी । धीरे-धीरे वे सघन हो उठे, अंधकार से रजनी समसाव त हो उठी, हवा का वेग प्रबल हुआ और कुछ ही क्षणों में बिजली की कौंध के साथ बादलों की गड़गड़ाहट भयावह हो उठी । कल्याणी का जैसे स्वप्न भंग हुआ-यह क्या? वह तो बाहर आँगन में अकेले पड़ी है और उसका बच्चा? ओह ! इतनी बड़े आँगन में एक ओर वह अकेली और दूसरी ओर घर में अकेला उसका इकलौता बेटा ! कल्याणी भाग चली । उसने दरवाजा बंद किया, भीतर आई, दीप की बत्ती को जरा आगे को उसकाया, बिछावन के पास पहुंची और कुछ क्षण तक अपने रंगा की ओर निहारती रही: फिर उसने बहुत आहिस्ते से, ऐसा न हो कि वह जग जाय, उझककर उसका मँह चूमा और उसके पास धीरे से वह लेट गई । अच्छी तरह तबतक लेटने भी न पाई थी कि बड़े भयानक शब्दों में बिजली की कड़क सुन पड़ी । वह डर गई और इतनी डर गई कि उसने अपने को अपनी ओर खींचकर दोनों हाथों से जकड़ लिया । कल्याणी के हृदय में मातृ-स्नेह की सरिता उमड़ रही थी ।

(दो)

कल्याणी का हरा-भरा संसार, आज चार साल गुजरे, वीरान हो पड़ा है। उसका दांपत्य-जीवन अवश्य एक दिन आनंदमय था। पर उस जीवन का रस सूख गया, जब उसका पति उससे बहुत दूर, एक जेलखाने में, अपने यंत्रणामय जीवन की चक्की में पीसकर, वहीं ठंडा पड़ गया। वह कर्मठ और भला आदमी था। दूसरों की भलाई करने में और अधिक भावुकता में पड़कर ही तो उसे जेल की यत्रणा भोगनी पड़ी थी। अपने पीछे उसने अपनी तरुण विधवा पत्नी और सात साल के रंगा के लिए थोड़ी-सी जमीन और रहने का मकान छोड़ कर, अपनी जीवन-लीला समाप्त कर दी। उसकी मृत्यु के बाद, कल्याणी ने अपने इठलाते यौवन और यौवन की मादकता को अपने-आपमें समेटकर, अपने जीवन के सारे रस को एकलौते पुत्र रंगलाल पर वार दिया। रंगा उस रस में सराबोर होकर बढ़ने लगा; पर ज्यों-ज्यों उसका पग अपने जीवन-पथ पर आगे बढ़ता चला, त्यों-त्यों उसकी संपत्ति का क्षय होता गया। कल्याणी का पति जितनी कुछ संपत्ति छोड़ गया था उससे वह अपने पुत्र के साथ अपना जीवन निर्वाह, साधारण तरीके से मजे में कर सकती थी; पर इस छलनामय संसार ने पति की मृत्यु के बाद ही, संसार से अनभिज्ञ, उस भोली विधवा को लुटने की ठानी। कल्याणी उस घडयंत्र का सामना न कर सकी, चक्रव्यूह में वह घिरकर परास्त हो गई और उसकी आँखों के सामने, उसकी संपत्ति लुट गई। अभागिनी विधवा ने संतोष की साँस ली और अपने देवता के मंदिर में अपनेको पुजारिणी के रूप में परिणत कर वह इकलौते रंगलाल के बाल-चापत्य में अपने सारे दुखों को डुबोकर तल्लीन हो गई।

पर, कल्याणी अपनेको सब समय तल्लीन नहीं कर पाती। उसकी आँखों के सामने चिन्ता का बादल घना हो जाता और जब वह इतना घना हो जाता कि वह उसे संभाल नहीं सकती, तब वह बादल बरस पड़ता और उस वर्षा में अपनेको सराबोर कर वह अलग हट पड़ती। रंगा इस बात को समझता-समझने की कोशिश करता; पर उसमें वह सफल नहीं होता। फिर भी उसके प्रश्न जारी रहते। माँ उन प्रश्नों को सुन लेती, उसका हृदय विचलित हो उठता और अपनेको संयंत कर-अपनेको दूसरे रूप में बदलकर-वह

ऐसे-ऐसे उत्तर दे डालती कि रंगा भुलावे में आ जाता। माँ समझती कि उसकी जीत हुई, वह बाल-बाल बच गई, पर रंगा, न जाने क्यों उन उत्तरों को पाकर खुश होकर भी खुश नहीं हो पाता। कहीं कुछ उसके दिल में खटक रह ही जाती और उस खटक को लेकर वह कभी तो पढ़ने निकल जाता और कभी अपनी टोली में खेलने को चल पड़ता।

सुबह हुई। कल्याणी उठकर अपने नित्य-कृत्य में लगी। उसके बाद रंगा को जगाया और उसे जगाते ही उसको आतेवाली चिन्ता भी सजग हो उठी। आज गाँव की हाट है न! उसके लिए केले और गुड़ आने ही चाहिए। वह अपने बेटे से वादा कर चुकी है। आज ये चीजें अगर न आई तो खैर नहीं! रंगा ऊधम मचा देगा, वह बरसकर रो पड़ेगा और इसगति में रो पड़ेगा कि वह अपनेको सँभाल तक न सकेगी। तब उपाय?-कल्याणी सोचने लगी पर उसकी चिन्ता अनायास ही रुक गई! भगवान् को धन्यवाद! उसी समय लड़कों की एक टोली वहाँ पहुँच गई, रंगा को उठाकर पाठशाला ले चलने! और रंगा भूल गया रात की बात। वह बिछावन से उठा, मुँह-हाथ धोया और थोड़ा-सा चना-चबैना, अपने फटे कुरते की जेब में डाले, बगल में सिलेट और किताब दबाए, पाठशाला को चल पड़ा। माँ को कुछ क्षण के लिए शाति मिली, वह अपने काम में लग गई।

बिसनपुर एक छोटा-सा गाँव है-करीब दो-सौ घर की आबादी होगी। वह छोटा-सा होने पर भी अच्छा रमणीक है। गाँव के पास ही नदी है और वह नदी एक पहाड़ी टिला के पास ब्रह्म होकर धुम गई है। गाँव में दो चार घर ब्राह्मणों के हैं, आठ-दस राजपूत और वैश्यों के और कुछ कुम्हार, धोबी, नाई, बढ़ई, तंबोली के हैं और अधिकांश में किसानों के हैं! गाँव में चार-पाँच छोटी-छोटी दूकानें हैं-एक हलवाई की, दो बजाजों की और शेष खिचड़ी फरोसों की। जो दूकानदार है, उनकी माली हालत, मजदूरों और किसानों से, अच्छी है!

उसी गाँव में एक प्राइमरी पाठशाला है, जहाँ कुछ तो छोटी-छोटी लड़कियाँ पढ़ती हैं और अधिकांश लड़के पढ़ते हैं। उसी पाठशाला में रंगा भी पढ़ता; पर रंगा में एक विशेषता है और जिसके लिए, पाठशाला के गुरुजी और

पढ़नेवालों में शायद ही कोई ऐसा हो, जो उसे नहीं जानता! रंगा से सभी लड़के भय खाते हैं। पर वह निर्भीक है; वह दूसरों को मार बैठता है; पर उसे कोई मार नहीं पाता! मारने की हिम्मत भी नहीं कर सकता।

पर उस दिन पाठशाला में गुरुजी से रंगा खुब पिटा गया। अपने साथ के बैठनेवाले एक लड़के से उसकी अनबन हो गई थी। रंगा ने चुपके से उले जोर की चूटी काटी। वह चिल्ला उठा। आवाज गुरुजी के कानों गई। रंगा पकड़ा गया। फलस्वरूप, गुरुजी ने रोष में आकर बेंत से उसकी पीठ की मरम्मत कर डाली; मगर रंगा ने सह ली। न तो उसकी आँखों से एक कतरा आँसू निकला और न उसके मुंह से आह निकली! वह मार खाकर अपनी जगह पर आ बैठा, पर उस समय से उसे पढ़ने में जी न लगा! वह चुपचाप बैठे सिलेट को जरा ऊँचा उठाकर, उसपर घोड़ा-हाथी, शेर-चूहे आदि चित्र ऑकने लगा।

दस बजे घंटी बजी। लड़के बस्ता दबाये घरको दौड़ पड़े। रंगा भी उठा, सलेट थामी और मन मारे हुए, धीरे-धीरे घर की ओर रवाना हुआ-अकेले, कसीका साथ उसने उस दिन न किया।

रास्ते में एक जगह मदारी बंदर नचा रहा था। रंगा भी वहाँ जा पहुंचा। गाँव के बच्चे-बूढ़े-जवान खड़े-खड़े तमाशा देख रहे थे। बन्दर घरा और कुर्ती पहने, कमर मटकाकर, एक हाथ से सिर पर एक छोटा-सा प्याला थामे नाच रहा था, और मदारी एक छड़ी लिये, डमरू बजाते हुए, गा-गाकर उसे नचा रहा था। सभी खुशी-खुशी तमाशा देखने में मस्त थे; पर उस हँसी-खुशी में अचानक व्याधात पड़ा। किसीने तानकर पीछे से एक रोड़ा उस बंदर पर दे मारा कि वह बल खाकर जमीन पर वहीं लोट गया। लोग एक दूसरे की ओर देखने लगे। इतने में एक आदमी गरजकर बोल उठा-उसने मारा है! और जिसने मारा था, उसका हाथ उसने जोर से पकड़ लिया! सभी की दृष्टि उसकी ओर फिरी। एक ने तमकर कहा-क्यों बे, बंदर ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा? और दूसरे ने कहा-कौन है वह, हरिया का बेटा-डकैत का? बड़ा पाजी है! जैसा बाप वैसा बेटा! बाप तो जेल में मरा और वह तैयारी में है!

-चुप रह, हरिया का बेटा कहनेवाला!-डपट कर रंगा ने आँखें तरेरी कहनेवाले की ओर। जैसे उसका बल चलता तो वह कहनेवाले का मुँह नोच लेता! पर उसने पकड़नेवाले से रोष में कहा-छोड़ दो मुझे?

उधर मदारी जोर से चिल्ला उठा-लुट गया बाबू, लुट गया भैया !  
मेरी रोटी का हिला जाता रहा!

बंदर चारो खाने चित्त पड़ा था। उसके कान की जड़ से लेहू का फौव्वारा जैसे फूट पड़ा ! जमीन तर हो गई और कुछ ही क्षणों में उसने वहीं दम तोड़ दिया।

लोगों की भीड़ छट पड़ी; पर कुछ लोग रंगा को धरे उसपर फवतियाँ कस रहे थे-कोई कुछ कह रहा था, कोई कुछ !

आखिर मदारी का भी गुस्सा भड़क उठा। वह बन्दर को वहीं छोड़ रंगा की ओर झपटा और उसका एक हाथ जोर से पकड़कर खींचते हुए बोल उठा-मैं नहीं छोड़ने का; चलो राजाबाबू के यहाँ! और दो आदमियों ने कसकर उसे पकड़ा और घसीटता हुआ उसे ले चले राजाबाबू के दालान पर। रंगा बेबस था जरूर; मगर उसकी आँखों से खून बरस रहा था और बीच-बीच में वह कह रहा था-छोड़ दो मुझे। मगर वह छोड़ा नहीं गया।

राजाबाबू उसे गाँव के मुखिया एक धनी और बड़े रूपैल आदमी थे। गाँव ही में क्यों, पास-पड़ोस के कुछ गाँवों तक उनकी धाक थी। हिम्मत, जो उनके सामने सर उठा सके! बेचारा रंगा उसके मुजरिम के रूप में खड़ा किया गया! राजाबाबू, अपने मुसाहिबों, पिट्ठुओं और कुछ खुशामदियों के बीच गद्दी पर बैठे सटक पी रहे थे!

मदारी ने इजहार प्रेश किया। वह छाती पीट-पीटकर कह रहा था--दुहाई सरकार की, मैं लुट गया! मेरी रोजी का हिला आज मुझसे छिन गया! बालबच्चों की परवरिश का यही एक आसरा था सरकार !

राजाबाबू, उसकी ओर मुखातिब हुये! उन्होंने पुछा--माजरा क्या है, बोलता क्यों नहीं? और यह हुजम कैसा है ?

-यही छोकरा है बाबू, हमारे बंदर पर रोड़े चलाकर इसने उसका दम तोड़ डाला! उसो बंदर से हमारी रोजी चलती थी, सरकार।

राजाबाबू ने रंगा की ओर ताका; पर रंगा उनके सामने निर्भीक-निडर खड़ा था।

-कौन है ! किसका बेटा है यह?-राजाबाबू ने पूछा।

-हरिया का बेटा है सरकार! --एक ने कहा।

-बड़ा नटखट है, बाप से एक रक्ती भी कम नहीं ! -दूसरा बोल उठा ।

रंगा की तीखी नजरें कहनेवालों की ओर फिर गई, पर मुंह से वह कुछ बोल न सका।

-तुमने मारा है बंदर को ? ठीक-ठीक बोलो-राजाबाबू की पैनी नजर रंगा की और फिरी।

-हाँ, मारा है! -बेखौफ रंगा बोल गया।

-मारा है, शैतान! -कड़ककर राजाबाबू बोले- क्यों मारा बे? क्या बिगड़ा था उसने?

-यों ही मैंने कंकड़ी फेंकी, वह उसे जा लगी। मर गया तो मैं क्या करता! राजाबाबू रंगा के उत्तरों से तिलमिला उठे। तुर्की-ब-तुर्की जवाब! छोटा-सा छोकरा! इतना बेखौफ!

राजाबाबू ने ऐसा बे-खौफ लड़का न देखा था कभी। उनका रोष उबल पढ़ा। वे उठे, और रंगा के गाल पर तड़ातड़ पाँच-सात थप्पड़ रसीद कर दिये। रंगा मार खाकर उसी तरह अपने-आपमें उबलकर खड़ा हो रहा! जैसे कुछ हुआ ही न हो! मगर इतने ही से राजाबाबू का रोष ठंडा न हुआ। उन्होंने एक आदमी को पठाया उसके घर, उसकी माँ को बुलाने! आखिर हरजाना तो उसे चुकाना ही पड़ेगा उस मदारी को! आखिर रोजी का कुछ हिला तो चाहिए ही!

कल्याणी ने सुना, उसने सिर पीटा; पर उसका रंगा मुजरिम के रूप में खड़ा आसरा देखता होगा अपनी माँ का। गाँव में दूसरा कौन है, जो इस समय उसकी मदद करेगा! कल्याणी घूंघट काढ़े, उस आदमी के पोछे-पीछे, चल पड़ी। उसका दिल जोर-जोर से धड़क रहा था। वह मन-ही-मन देवता का गुहार करती चली।

कल्याणी ने आकर देखा कि राजाबाबू के चौपाल में लोगों की भीड़ जमी है और रंगा मन-मारे उस भीड़ में एक जगह खड़ा है।

उस बुलानेवाले आदमी ने सामने आकर कहा-हरिया की औरत आ गई सरकार!

राजाबाबू ने दृष्टि दौड़ाई। कल्याणी एक ओर खड़ी थी, जैसे वह पाषाण की प्रतिमा हो, बिलकुल निर्जीव-निष्प्राण ।

राजाबाबू उसकी ओर मुखातिब हुए और गंभीर स्वर में बोले-देखो, तुम्हरे लड़के ने मदारी के बंदर को मार डाला है! मार डालना कोई मामूली बात नहीं! सरकार में रपट दी जाने पर तुम्हरे लड़के को सजा हो जायगी। उसे जेल भुगतना पड़ेगा! मगर मैं इसे जेल भुगतने देना नहीं चाहता। गाँव की बात है! मैं नहीं चाहता कि गाँव बदनाम हो। यों तो तुम्हरे हरिया के चलते गाँव पहले से सरकार की आँखों में बदनाम है ही; मगर मदारी का बंदर उसकी रोजी था। इसलिए तुम्हें इसका हरजाना चुकाना पड़ेगा। तैयार हो चुकाने? बोलो?

कल्याणी हरजाने और रंगा की बदमशी और जुर्म में जेल तक जाने वातें सुनकर कॉप गई। उसकी आँखें भर आईं। हाय, भगवान ! जेल ! जेल उसके लिए कितना बुरा है? जेल ने ही तो उसे विधवा बनाया, उसे निस्सहाय बनाया! और आज उसका रंगा जेल के रास्ते पर आ लगा?

-कल्याणी के दिमाग में तूफान चल पड़ा ! वह चिन्ता में ढूब चली; वह मूक थी-निर्जीव थी! क्या कहे वह बेचारी।

कुछ क्षणों तक वहाँ सन्नाटा छाया रहा। किसीकी जबान तक न हिली! कल्याणी सिर झुकाये ज्यों-की-त्यों खड़ी-की-खड़ी रह गई।

पर राजाबाबू ने सन्नाटे को भांग किया, बोले-तो क्या कहती हो? हो तैयार हरजाना भरने? दस रुपए देने पड़ेंगे! आखिर मदारी के निर्वाह में कुछ तो करना ही पड़ेगा।

-दस रुपये कहाँ से लाऊं बाबूजी-कल्याणी बोली-खाने को तो जुड़ता नहीं! मेरे पास है ही क्या? कहाँ से सकूंगी ?

-तो मैं कुछ नहीं जानता-इस बार राजाबाबू ने बिगड़कर कहा-कहाँ है ननका चौकीदार। ले जाओ इसे थाने। मदारी, देखो अपना रास्ता! मैं नहीं जानता-जो जैसा करेगा वह वैसा भरेगा! दिन-काल बहुत बुरा है। क्या करते क्या हो जाता है! फिर मैं यह बला अपने सिर क्यों खरीदूँ?

कल्याणी थाने के नाम से डर गई। यह गिड़गिड़ाकर बोली आपका ही लड़का है मालिक। मैं मजदूरी कर दूंगी आपकी; मगर इस दफा मेरे लड़के को बचा दीजिए। रुपया होता मेरे पास तो मैं तुरंत हाजिर कर देती।

कल्याणी कहकर रो पड़ी, और ऑसू छिपाने को उसने मँह फेर लिया।

राजाबाबू कुछ देर तक सोचते रहे। उसके बाद बोल उठे-खैर, मैं बचा ले सकता हूँ। रुपये तुम्हारे पास नहीं हैं तो मैं चला दूंगा अपनी ओर से; मगर तुम्हें एक रुक्का तामिल कर देना पड़ेगा और तुम जैसा चाहो, उसे चुका देना। चाहे मेरे यहाँ मजदूरी करके चाहे दूसरी जगह। इसके कोई जबर्दस्ती नहीं। इससे ज्यादा मैं तुम्हारे लिए और कुछ नहीं कर सकता।

कल्याणी कुछ क्षण सोचती रही; पर उसने बचने का और कोई दूसरा उपाय न देखा। अन्त में रुक्का तामिल कर देने को तैयार होकर बोली -जैसा हुक्म! रुका लिखवा लीजिए।

राजाबाबू ने रुका लिखाकर रुपये उसके हाथ पर.गिन दिये। कल्याणी ने मदारी को रुपये हवाले कर अपनी खैर मनाई और रंगा का हाथ पकड़ वह घर की ओर चल पड़ी।

कल्याणी रास्ते-भर चिन्ता में उबाती-उतआती चल रही थी पर रंगा अपनी चाल में, जिस तरह वह मस्त होकर चला करता था उसी चाल में, अपनी माँ का साथ देता चला।

(तीन)

कल्याणी रोष और क्षोभ के मारे रास्ते-भर रंगा से कुछ भी न बोली। आज सुबह से वह अपने लड़के केलिए केले और गुड़ जुटाने की चिन्ता में पड़ी तो थी ही। उसे यह गुमान तक न था कि, आज उसका सपूत ऐसा कुछ अधम मचा बठेगा कि उसे दस रुपये का रुक्का तक तामिल करना पड़ेगा!

मगर जिस बात से अबतक कल्याणी खौफ खाती आ रही थी, वही होकर गुजरी। बात यह थी कि, वह सारी मुसीबतों को बद्रशत कर ले सकती थी, भूखो दम साधकर सो ले सकती थी। वह कई बार ऐसा कर भी गुजरी थी। दो-दो दिन तक विना कुछ अन्न-जल ग्रहण किये पड़ी रह ....चुकी थी; मगर अपने ऊपर कर्ज का बोझ उठाना उससे संभव न हो सका था। उसे वह दिन हर घड़ी याद रहता, जब उसके मना करते रहने पर भी, उसके पति ने अपने दोस्त को शादी कराने को, जमानत के रूप में से कर्ज काढ़कर, रूपये दिलवाये थे और जिसका नतीजा यह निकला कि उसकी सारी जमीन उन्हीं रूपयों के चलते कूर्क हो गई। और, यही कारण था कि कर्ज को वह इतना बुरा समझती आ रही थी। मगर आज का कर्ज, जिसके लिए वह किसी हालत में तैयार न होती, मजबूर होकर-सिर्फ इसलिए कि उसका बेटा जेल में न डाल दिया जाय इतनी जल्दी अपने सिर पर लादने को उसे तैयार होना पड़ा। क्या करती वह ! कोई चारा न था इसके सिवा! वह तो राजाबाबू का मन-ही-मन उपकार मान रही थी और लाए वह उपकार के बोझ से अपने-आप ऐसी दबी जा रही थी कि, ने उसपर बड़ी मिहरबानी करके, उसके बेटे को जेलघर रखने से बचा लिया। उसने मन-ही-मन भगवान को याद किया और आज का बेटा जेल जाने से बच गया-इसलिए भगवान को लाख-लाख धन्यवाद दिया।

कल्याणी रंगा के साथ घर आकर बरामदे पर मन-मारकर बैठ गई। न वह कुछ बोल सकी और न रंगा ही कुछ बोल सका। रंगा यद्यपि बालक था, उसने इतना अनुभव जरूर किया कि उसके चलते उसकी माँ को अजहद तकलीफ हुई है। माँ को कचहरी में, दस आदमियों के बीच, खुदसे हाजिर होना पड़ा। इसलिए वह कभी तो बंदरवाले पर जल रहा था, कभी उसपर जिसने बतलाया था कि रंगा ने ही बंदर को रोड़े दे मारा है, बिगड़ कहा था और कभी राजाबाबू के चांटे मारने पर और उसकी माँ को घर से बुलवा रुकका लिखवा मदारी को रूपये दिलवाने पर, उबल रहा था। वह सोच रहा के किस तरह उन सबसे यह बदला चुकाये। इधर उसकी माँ इतनी गंभीर बैठी थी कि जैसे तूफान उठने के पहले वातावरण शांत-गंभीर हो उठता कुछ

क्षण तक ऐसा ही सन्नाटा छाया रहा । उसके बाद कल्याणी ने सन्नाटा भंग किया और वह बोल उठी-तुम्हें लाख समझाती हूँ मगर तुम मानते नहीं ! आज अगर तुमने यह उधम नहीं मचाया होता, तो क्यों मुझे दस आदमियों के बीच इतना शर्मिन्दा होना पड़ता ? क्यों यह कर्ज सिर पर लादने उठानी पड़ती ! जब देखो-बदमाशी ! क्यों इस तरह सिर फोर रहे हो मेरा ! मैं पूछती हूँ कि तुमने बन्दर को रोड़े क्यों दे मारा । कल्याणी ने गंभीर होकर उसकी ओर आँखें फेरी । रंगा ने कभी अपने पर अपनी माँ का ऐसा रंज न देख पाया था । आज पहली बार तो माँ को रोष में उबलते देखकर वह कुछ सोचता रहा । मगर रंगा उदंड था, उसी रूप में वह माँ से भी बोल गया-कंकड़ फेंका था जरूर; मगर मैं क्या जानता था कि उसले बंदर मर जायगा ? वह आप ही मर गया, तो मैं क्या करता ?

-आखिर फेंका ही क्यों ? फेंके बगैर क्या पेट का अन्न हजम नहीं हो रहा था, पाजी ?-कल्याणी सचमुच रोष में आ गई थी ।

-फेंका ही, तो कौन-सा बड़ा कसूर कर डाला ? -आँखें नचाकर रंगा ने जवाब दिया ।

-तो क्या यह कसूर न था ?

नहीं !--फिर जरा रुककर बोला-कैसे कुसूर हुआ ?

-कैसे कुसूर हुआ-कल्याणी की भवों पर बल पड़े । चेहरा रंग गया । आँखों से जैसे चिनगारियाँ छिटकने लगी ।

-कुसूर नहीं था तो फिर दस रूपये मुझे भरने पड़े क्यों ?-कल्याणी ने रंगा की ओर देखा ।

-तुम्हें जाने ही किसने कहा ? न वहाँ जाती और न भरना पड़ता !

कल्याणी रंगा की बातें सुनकर रोष में और भी उबल पड़ी; वह इतनी उबल पड़ी कि उससे रहा नहीं गया । पास ही एक बाँस की बत्ती पड़ी थी, उसने उठायी और उसीसे पाच-सात सॉटें सड़ासड़ उसकी देह पर दे मारी रंगा जोर से चिल्ला उठा ! आज किसका मँह देखकर उठा था वह कि लगातार उसकी पीठ मरम्मत होती रही । पाठशाला में गुरुजी ने बेंत मारी, उसे बर्दास्त किया; मगर उसकी आँखों से एक कतरा आंसू न निकला ! राजाबाबू ने उसके

गालों पर जोर के थप्पड़ लगाए, उसने सह लिया; मगर आँसू न बहाये। पर अपनी माँ की चोटों ने उसका दम तोड़ दिया। वह बिलख-बिलख रो पड़ा। माँ काफी बक-झककर वहाँसे अलग जा पड़ी और खुद फूट-फूटकर रोने लगी।

रंगा अपनी जगह पर खड़ा-खड़ा बड़ी देर तक रोता रहा। उसकी आँख के आँसू जैसे रुक नहीं रहे थे। जाने कबतक वह रोता-सिसकता रहा मगर जैसेही उसका रोना रुका, वैसे ही उसका अभिमान प्रबल हो उठा और उसी अभिमान के झोंक में, न जाने क्या समझकर, वह घर से धीरे-धीरे निकला और जिधर पैर उठे, वह चलता बना।

रंगा कुछ क्षण में सड़क पर आ गया और ऐसी जगह आ गया, जहाँ से तीन रास्ते फूटते थे। उसने धूमकर पीछे की ओर देखा-कहीं उसकी माँ उसे प्रबोधने को तो नहीं आ रही है! मगर किसीको न देखकर कुछ क्षण तक वहीं ठिठका रहा; फिर भी उसकी माँ उसे दीख न पड़ी। उसे लगा कि, उसकी माँ उसे घर पर न पाकर उसकी खोज में जरूर निकलेगी और पुचकार-दुलारकर, उसकी मिन्तें मानकर, उसे लिवा ले जायगी; पर वह मानकर बैठेगा, माँ लाख मनायगी, मगर वह एक न मानेगा। फिर जब माँ अपना कसूर मान लेगी, तब वह उससे बोलेगा, उसे प्यार करेगा। मगर ऐसा हुआ कहाँ? उसको माँ मनाने को तो आई नहीं! इससे उस का अभिमान इतना बढ़ा कि आखिर उपने निश्चय कर लिया कि वह ऐसी जगह में जा छिपेगा, जहाँ उसकी माँ आने को सोच भी नहीं सकती; वह पाँच-सात दिन तक इसी तरह छिपा रहेगा! माँ को खब रुलायगा, परेशान करेगा। आखिर मारा क्यों उसने? माँ ही जब अपने बच्चे को मारेगी, तब आखिर उसे बचायगा कोन? दुनिया मारे, परवा नहीं; मगर माँ ?-मां भी कहीं बच्चे को मारती है? और मारनेवाली माँ कितनी कठोर होती है? कैसा पत्थर का कलेजा होता है उसका? ऐसी कठोर माँ !

रंगा कुछ ही क्षणों में रास्ते पर खड़ा-खड़ा इतना सोच गया। उसके बाद, मैदान को पार कर एक दूसरे टोले में जा पहुंचा।

उस टोले में रंगा कई बार जा चुका था ! वहाँ उसके साथ पढ़नेवाली एक लड़की थी, कोई नौ-दस साल की-भोली-सी लड़की! रंगा उसीकी खोज में जा निकला और उसके घर पहुँचकर पुकारा-नंदा! नंदा !!

नंदा की माँ अपने गोद के बच्चे को दूध पिला रही थी। उसने रंगा को देखा। रंगा कई बार उसके घर जा चुका था। वह उसे जानती थी और नन्दा भी बराबर उसके बारे में अपनी माँ से कहा करती थी। इसलिए वह उसे अपने सामने पाकर बोल उठी-क्यों रे रंगा, नंदा को खोज रहा है?

-हाँ, नंदा कहाँ है ? उसे ही खोज रहा हूँ।

-नंदा बाहर खेलती होगी। मैं बुला देती हूँ। खाओगे कुछ ? आओ, कुछ खा लो। बहुत दिन पर इधर आये हो। रंगा को भूख लगी थी जरूर; मगर वह लजा गया। वह बोल उठा-नहीं, खाऊंगा नहीं। मैं तो अभी खाकर ही आ रहा हूँ।

-तौ बैठो न ? खड़े क्यों हो?

-बैठूंगा नहीं; जाता हूँ जहाँ नंदा खेल रही होगी !

नंदा के घर के पास एक बड़ा बगीचा था, जिसमें सभी तरह के फलों के पेड़ थे। वहीं पर ग्राम का एक छतनार पेड़ था, जिसकी शाखाएँ जमीन को चूम रही थीं और जिनपर बच्चे दिन-भर आँख-मिचौनी खेला करते थे। बगीचा काफी निर्जन रहता! रंगा ने सोचा कि शायद वहीं नंदा भी खेल रही होगी, वह मिल जाय तो अच्छा रहेगा। वह भी खेलेगा और उसकी माँ को पता तक न लगेगा! मगर नंदा की माँ कहीं उसे कह न दे, ऐसा सोचकर वह जरा चिन्ता में पड़ गया। पर कुछ ही क्षणों के बाद बोल उठा-अच्छा, मैं चलता हूँ, नंदा के साथ मैं पाठशाला चला जाऊंगा। अगर माँ मेरी खोज में आ जाय, तो कह देना कि दोनों पाठशाला चले गये। अच्छा !

नंदा की माँ हँसकर बोली-तुम्हारी माँ यहाँ कभी आती है, जो आयगी रंगा? खैर, आयगी तो....

-यों ही कह दिया, अगर आ जाय तो कह देना!-रंगा बात काटकर बोल उठा।

-अच्छा, कह दूँगी।

रंगा आँगन से निकलकर बगीचे की ओर दौड़ पड़ा। पर जैसे ही बगीचे में वह घुस रहा था कि नंदा से भेट हो गई। नंदा ने ही पहले उसे देखा और वह बोल उठी-आज इधर कैसे भूल पड़े, रंगा?

वह रुक गई, रंगा भी रुकते हुए बोला-जाने कैसे तुम्हारी याद हो आई नंदा, और मैं भागता चला आया।

-तो चलोघर ! वहीं बैठकर कुछ देर हँसे-बोलेंगे, उसके बाद पाठशाला चले चलना। अच्छा ?

पाठशाला के नाम से गुरुजी की मार उसे याद हो आई, उसके बाद उसे याद आई-बंदर के चलते राजाबाबू की चोटें, फिर माँ का बेरहमी के साथ पीटना! रंगा का चेहरा कुछ क्षणों के लिए उदास हो गया; पर उसने तुरंत अपने को संभाला और बोल उठा-नहीं, नंदा, तुम्हारेघर नहीं जाऊंगा, अभी-अभी तो तुम्हारे यहाँ से आ रहा हूँ। वहाँ तुम्हारी अम्मा है घर है, और कितने आदमी आ जायेंगे-हँसने-बोलने में वहाँ ठीक न होगा ! सो यहीं चलो न, आम के पेड़ के पास। वहीं डाल-डाल पर कूदेंगे, बातें होंगी, किस्सा -कहानी.....

-तो आओ, वहीं चलें!

और दोनों आम के पेड़ के पास आ पहुँचे ! नंदा ने एक बार रंगा की ओर देखा-देखा कि उसका चेहरा काफी उतरा हुआ है और आँसुओं के दाग उसके गालों पर उभरे पड़े हुए हैं ! नंदा कुछ क्षणतक सोचती रही; मगर रंगा की दृष्टि अमरुद के पेड़ की ओर लगी थी! भादो का महीना; पेड़ में अमरुद काफी फले थे, जिनमें अधिकांश कच्चे थे, कुछ अधपके और कुछ पके हुए। रंगा को भूख लगी थी। वह अपने को जब्त न रख सका; पर अपने मन का भाव छिपाकर हंसते हुए बोल उठा-अमरुद तो खूब पक रहे हैं, नंदा; खाती नहीं ?

-खाती क्यों नहीं? क्या खाओगे रंगा?

-खाऊंगा क्यों नहीं ! तुम खिलाओ और मैं नहीं खाऊँ?

-मगर खाओगे कैसे ! पेड़ तो काफी ऊंचा है! डडे चलाने पर बाबूजी नाराज होते हैं। कहते हैं- कच्चे अमरुद गिरकर बरबाद हो जाते और पेड़ को नुकसान पहुँचता है।

-नुकसान न पहुँचेगा, नंदा और न डडे चलाने पड़ेंगे! तुम्हें मालूम नहीं, मुझे पेड़ पर चढ़ने आता है ? चलो न वहीं, मैं तो ढूँगा और तुम नीचे चुनना; फिर दोनों जने, यहीं बैठकर खायेंगे।

नंदा रंगा के पेड़ पर चढ़ने को बात जानती थी; मगर उसे याद हो आया कि परसों जामुन के पेड़ से बासुदेव कुम्हार का लड़का संगला गिर पड़ा था, उसके पैर की हड्डियाँ टूट गई थीं और सारे बदन में घाव लग गये थे। इसलिए पेड़ पर चढ़ने की बात याद रात ही उसे बड़ा डर लगा और डरते-डरते वह बोल उठी-नहीं रंगा, गिर पड़ोगे, हड्डियाँ टूट जायँगी, बदन में घाव लग जायेंगे ! मैं नहीं चाहती कि तुम गिरकर अपनी हड्डियाँ तोड़ बैठो!

रंगा गिरने की बात सुनकर खिलखिलाकर हँस पड़ा और हँसते हुए ही बोल उठा-नंदा, तुम बड़ी सूधी हो ! मैं गिर पड़ूँगा ? वाह, क्या कहना ! मैं गिर पड़ूँगा ! नहीं खिलाना चाहती हो, तो न खिलायो; मगर तुम मुझे डराती क्या हों, नंदा ?

नंदा क्या बोले ! वह जरूर उसे खिलाना चाहती थी, उसे रंगा को खिलाने में सुख ही मिलेगा और उस रंगा को, जो उसे मानता है, पढ़ने में मदद करता है। वह कुछ क्षण तक सोचती रही, फिर बोल उठी नहीं, रंगा, मैं ऐसा ख्याल नहीं करती ! तुम बुरा मान गये बुरा मान गये रंगा ? मैं तो सिर्फ इसलिए डरती हूँ कि कहीं.....

-बुरा मानूँगा ? और मैं ? तुम्हें विश्वास होता है नंदा ? मगर मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि हर्मिज-हर्मिज मैं पेड़ से नहीं गिरूँगा ! मैं किसीसे डरता नहीं नंदा; यह पेड़ क्या, मैं पहाड़ पर चढ़ सकता हूँ।

नंदा को और कुछ कहने को नहीं सूझा, उसने कहा-तब, चलो। दोनों अमरुद के पेड़ के पास आये। रंगा ने धोती की खूंट कसकर कमर में बाँधी और पेड़ पर चढ़ गया। उसने एक डाल से दूसरे पर, दूसरे से तीसरे पर दौड़ लगाई और पके हुए अमरुद को हाथों से टो-टोकर नीचे गिराया, नंदा एक-एक कर अपने हाथों से लोकती रही। जब उसका छोटा-सा आँचल अमरुदों से भर गया, तब वह बोली-आओ रंगा, बहुत हो चुके। इत्ते सारे क्या हमदोनों मिलकर खा सकेंगे? ओह, इत्ते सारे -अच्छा, कितने हुए ? गिनो तो, नंदा ।

हुए नंदा ने गिनना शुरू किया-एक-दो-तीन-चार-पाँच, छः, पाठ, नौ, ग्यारह,  
तेरह, पंद्रह, अठाह, बीस, तेईस, पच्चीस । अच्छा, पच्चीस हुए....

--पच्चीस हुए-रंगा पेड़ से ही बोला-तब और पाँच चाहिए । तीस  
होने पर बराबर रहेगा-पंद्रह-पंद्रह! क्यों ?

-अच्छा, तो उतना और तोड़ो ।

रंगा ने और पाँच गिराये और उसके बाद पेड़ से नीचे उतरकर नंदा  
से कहा-चलो, आम के पेड़ के पास, वहीं बैठकर मौज से खायँ! कहकर रंगा  
ने एक अमरुद हाथ में लेकर दाँतों से काटा और नंदा से कहा बड़ा मीठा  
है, तुम भी खाती चलो नंदा ।

नंदा ने रंगा को खाते हुए देखकर आँचल से अच्छा-सा एक अमरुद  
चुना और उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा-लो, यह और भी मीठा होगा । और,  
एक अमरुद अपने हाथ में अपने लिए रखकर चल पड़ी ।

दोनों फिर आम के पेड़ के पास पहुँचे । नंदा ने अपने आँचल से  
अमरुद निकालकर जमीन पर रखे । रंगा गिन-गिनकर दो हिस्सों में बाँटने  
लगा, मगर, यह क्या? दस-दस के ही तो हिस्से लगे! उसने फिर से गिनना  
शुरू किया । उसका हिसाब ठीक था-कुल बीस ही अमरुद तोड़े गये थे, जिन्हें  
गिनने में नंदा भूल कर गई थी! रंगा को याद हो आया कि नंदा को गिनना  
नहीं आता । वह मन-ही-मन हँस पड़ा और नंदा से कहा-गिनो तो नंदा इन्हें  
फिर से!

-अजी, गिनकर क्या करोगे? जितना खाना हो, खाओ, मुझे  
हिस्सा-विस्सा नहीं चाहिए! फिर गिना जाय क्यों?

-नहीं, गिन ही डालो क्यों न? -हँसते हुए रंगा ने कहा । नंदा फिर से  
गिनने लगी-एक-दो-तीन-चार, पाँच-छः, आठ-नौ, ग्यारह-तेरह...

रंगा को उसकी गिनती सुनकर हँसी आ गई और वह इतने जोर से  
हँस पड़ा कि उसके पेट में बल पड़ गये! बड़ी मुश्किल से उसने हँसी  
रोकी । उसके बाद वह नंदा के गाल पर मीठी चपत लगाते हुए बोला-अबतक  
तुम्हें गिनना न आया, नंदा ! बड़ी लछमी हो तुम! अरे, छः के बाद आठ  
होता है कहीं और नौ के बाद ग्यारह?

नंदा अपनी गलती पर लजा गई। लज्जा के मारे उसके गाल और भी हो उठे!

रंगा ने जोर से बोल-बोलकर एक-एक करके अमरुद गिन डाले और बता दिया-देखो, इस तरह बीस होते हैं ! फिर दोनों को दो हिस्तों में बाँटा। एक हिस्सा नंदा के सामने रखा और दूसरा अपने सामने। दोनों खाने को बैठ गये।

रंगा ने जब आठ खाया, उसने देखा कि तबतक नंदा सिर्फ तीन ही खा सकी है! और नंदा ने देखा कि रंगा को खाने के लिए सिर्फ दो और रह गये हैं। मगर अभी उसके पास सात धेर रखे हैं। नंदा ने चौथा अमरुद हाथ में लिया और बाकी उसकी ओर बढ़ाते हुए बोली-अरे, मुझसे खाया न जायगा, रंगा! लो ये सारे खा जाओ।

नंदा तो घर से खाकर ही वहां आई थी। इसलिए उसे तो सिर्फ शौक करना था; मगर रंगा को तो उनसे पेट भरना ठहरा! वह कुछ नहीं बोला। जिस तरह खा रहा था, उसी तरह खाता रहा; मगर जब उसने देखा कि नंदा का चौथा अमरुद शेष हो रहा है, तब उसने अपनी ओर से एक उमदा बड़ा-सा अमरुद निकालकर उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा-लो नंदा, इसे भी खा लो!

-अब नहीं खाने का, तुम्ही खाओ !

-मैं खाऊँ और तुम मेरा मुंह देखती रहो, यह कैसे होगा? जबतक मैं खाता रहूँगा, तबतक तुम्हें भी खाना पड़ेगा!

लाचार, नंदा ने अमरुद हाथ में ले तो लिया; पर उसने उसके खाने में इतनी देर लगाई कि रंगा को दुहराकर फिर देने का मौका ही न लगा! अमरुद भोग लग चुकने पर रंगा ने एक बार डकार भरी, पेट पूरा भर गया था। अब उसका चेहरा खिल उठा। मगर, आज उसने बड़ी मार खाई थी, उसके बदन में धाव उठाये थे, इसलिए उसका शरीर अकड़ रहा था। उसने महसूस किया कि उसे आज खूब आराम करना चाहिए। इसलिए वह नंदा से बोल उठा मैं यहीं, हरी-हरी दूब पर लेटूँगा, नंदा! अभी धूप भी बड़ी तीखी है,

खेलना ठीक न होगा । दोपहर में सोकर उठने के बाद यही आँख-मिचौनी खेलँगा ! क्यों नंदा, खेलोगी ?

-हूँ खेलूँगी, खूब कहते हो ! -नंदा रुखाई से बोल उठी-मैं कहाँ से खेलूँगी रंगा, बाबूजी पीटेंगे जो । तुम्हें उनका गुस्सा मालूम नहीं है, इसीलिए कहते हो ! वह मुझे बहुत पीटा करते हैं । क्या तुम्हारी माँ भी तुम्हें पीटती है रंगा ?

रंगा क्या बोले । पीटे जाने के कारण ही तो वह अभिमान कर, माँ से छिपने को यहाँ आ पहुँचा है ! मगर माँ से पीटे जाने की बात नंदा से वह कहे कैसे ? गुरुजी ने भी पीटा है उसे आज और लड़कों के सामने, नंदा भी तो देख चुकी है । उसे बड़ी लज्जा लगती है, जब वह कभी मार खाता है गुरुजी से ! मगर, उसने अपनी सारी बातें छिपा ली और नंदा से कहा-मेरी माँ मुझे नहीं पीटती, नंदा !

-मगर गुरुजी से तो पीटे जाते हो ? --नंदा मुस्करा उठी ।

-वहाँ तो बदमाशी मेरी थी ! नंदुआ को जोर की चूटी काटी थी न ?

-मगर, गुरुजी ने सड़ासड़ कितने बेंत लगाये तुम्हें । मुझे तो उस समय बड़ा डर लग गया था ! इतना भी कहीं मारा जाता है । हाँ, रंगा, तुम्हर जब मार पड़ती है तो मुझे क्यों दर्द होता है ? तुम्हें मालूम नहीं, उस समय मेरा जी न जाने कैसा कैसा करने लगता है । मन में आता है कि फूट-फूटकर रो पहुँ ।

-रंगा ने हँसकर कहा-तो फूट-फूटकर रो क्यों नहीं पड़ती, नंदा ?

-क्या तुम्हें मेरा रोना अच्छा लगेगा ?-नंदा का चेहरा गंभीर हो उठा ।

-अच्छा क्यों नहीं लगेगा ?

-झूठ बोलते हो । मेरा रोना तुम सह नहीं सकते । क्या मैं झूठ बोल रही हूँ ? तुम झूठ बोल सकते हो; मगर मैं नहीं बोल सकती । तुम सच-सच कहो तो, मेरा रोना पसंद करोगे रंगा ?

-नहीं, जी, नहीं ।

-सच कहते हो ?

-हाँ, सच कहता हूँ नंदा! तुम से जीवनभर झूठ नहीं बोल सकता।  
तुम्हीं कहो-कभी मैंने तुमसे झूठ कहा है?

-नहीं! हाँ, रंगा चलो न पाठशाला?

-मैं आज न जाऊँगा नंदा, तुम जाना चाहती हो तो जाओ, मैं नहीं  
रोकूँगा। तबतक मैं यहीं रहूँगा! आज हाट का दिन है, पाठशाला दो घंटा  
पहले बंद हो जायगी! तुम चली आना, तबतक मैं रही रहूँगा। अच्छा?

नंदा कुछ क्षण तक चुप-चाप सोचती रही। उसके बाद वह बोल  
उठी- तब मैं भी रहूँगी रंगा! नहीं, अब मैं भी नहीं जाऊँगी।

-तुम कैसे रहोगी नंदा? तुम्हें बाबूजी पीटेंगे जो!

नंदा पीटने का नाम सुनकर सहम गई। कुछ क्षण रुककर वह बोल  
उठी-अच्छा, तो मैं चलती हूँ रंगा! तुम भाग न जाना! जबतक मैं न आऊँ,  
भागना मत! बोलो, रहोगे न?

-हाँ, रहूँगा क्यों नहीं, रहूँगा तुम्हारे आसरे में।

नंदा उठकर चल पड़ी। रंगा आम की डाली पकड़कर उसकी ओर  
देखता रहा। जब नंदा बाहर की ओर चली गई, तब वह वहीं दूब पर लेट  
गया।

#### (चार)

उस दिन नंदा भी पढ़ने को पाठशाला न जा सकी। घर आकर माँ  
से बहाना बना लिया कि आज उसके पेट में बड़ा दर्द है और माँ ने भी  
अनुमति देते हुए कहा-न जाना चाहती हो तो मत जाओ नंदा; मगर खाट पर  
लेट रहो। खेलोगी तो और दर्द होगा। नंदा कुछ देर तक बिछावन पर लेटी  
रही; मगर मन-मारकर लेटी रहना उसे बड़ा बुरा लगा। उसके बाद वह उठ  
पड़ी और माँ से आँखें बचा धीरे-धीरेघर से बाहर हो गई।

नंदा बाहर आकर कहीं रुकी नहीं, सीधे बगीचे में आ दाखिल हुई।  
उसने आकर देखा कि रंगा बेखबर होकर दूब पर लेटा पड़ा है। वह चुपचाप  
बड़ी देर तक खड़ी-खड़ी उसकी ओर ताकती रही; मगर रंगा को कुछ भी पता  
न चला। नंदा ने सोचा कि वह उसे जगा दे और वहीं उसके साथ कुछ देर  
तक वह खेलती रहे। पर उसने उसे जगाया नहीं। वह वहीं बैठ गई और  
उसके उठने की प्रतीक्षा करती रही।

नंदा को बड़ी देर तक प्रतीक्षा करनी पड़ी। वह मन-ही-मन झुँझला रही थी कि रंगा कितना कुम्भकरण-सा सोता है दिन को? दिन को कहीं आदमी सोया करता है! मगर नंदा को याद हो आई कि रंगा को आज गुरुजी ने कितना पीटा है; बेचारा नाहक पीटा गया। नाहक क्यों, नंदुआ को चूंटी जो काटी थी! और बदमाश भी तो कम नहीं! बदमाश ?--नंदा सोचने लगी रंगा बदमाश है?--नहीं, देखो इसे, कितना सूधा, कैसा भोलाभाला, कितना हँसमुख ! अब भी तो इसके ओठों पर जैसे हँसी खेल रही है ! नहीं, रंगा ऐसा नहीं है--रंगा ऐसा हो नहीं सकता! वह नेक है, मुझे बेहद मानता है। उस दिन गुरुजी की मार मुझपर जरूर पड़ती, अगर इसने मुझे सिलेट पर लिखकर इशारा न कर दिया होता!

नंदा इसीतरह सोचती रही। हठात् रंगा ने अंगड़ाइयाँ लीं, आँखें खोली। वह उठ बैठा और उसने अपने सामने नंदा को बैठी पाकर कहा-वाह री नंदा, आ गई पाठशाला से? मेरी भी क्या खोज हो रही थी वहाँ ?

-खोज ? हाँ, खोज हो रही थी-नंदा हँस पड़ी।

-गुरुजी क्या बक रहा था ?

-हाँ, बक रहा था। नंदा खूब गंभीर होकर बोली-कह रहा था कि रंगा आज गैर हाजिर हो गया है। कल अगर सबेरे न गये, तो चार लड़के तुम्हें मुश्क बाँधकर ले जायेंगे, खूब मार पड़ेगी! समझे?

मार का नाम सुनकर रंगा की भवें खिच आई। उसके कानों को जड़ें गरम हो उठी और रोष में आकर बोल उठा-कौन साला मुझे मुश्क बाँधने को आयगा? जरा नाम तो बता, नंदा ? मैं उसे ऐसी मार दूँगा कि, मेरे आँगन में ही, बचा चित्त पड़ जायेंगे ! खेल है मेरा पकड़ना! और उस गुरुजी को, नालायक को मार का ऐसा बदला दूँगा कि सारी गुरुआई निकल जायगी। वह भी क्या याद करेगा कि किसी लड़के से सावका पड़ा था।

नंदा गुरुजी से बदला लेने की बात सुनकर काँप उठी। उसका चेहरा, उतने ही क्षणों में, सूख-सा गया। वह सोचने लगी कि क्यों उसने झूठ-मूठ की बातें बनाकर इसका गुस्सा भड़काया! इससे जो न हो जाय, थोड़ा है। यह किसीसे भय नहीं खाता और न भय खाना जानता है। उसे

अपने-आप पर ऐसा कहने के लिए बड़ा रंज हुआ। वह लजा-सी उठी और लजाते हुए और जरा मुस्कराकर बोली-माफ करो रंगा! मैं तो खुद ही पाठशाला न जा सकी और जो बात मैंने तुमसे कही, वह महज मजाक के लिए कही! क्या तुम बुरा मान गये?

रंगा मजाक की बात सुनकर खिलखिलाकर हँस पड़ा। उसने नंदा की पीठ पर एक धौल लगाकर कहा-इतनी बात बनाना अभी से जान गई नंदा, बड़ी शरीर हो तुम! खैर, चाहे मजाक से ही तुमने कही हो, अगर वह सच भी होता, तो मैं वही करता, जो मैं ठाने बैठा हूँ। मैं दुनिया में किसी की परवा नहीं करता, यहाँ तक कि अपनी जान की भी नहीं! सच जानना। मैं बुरे के लिए बहुत बुरा हूँ और अच्छों के लिए शायद अच्छा भी; मगर, तुम गई क्यों नहीं पढ़ने नंदा? यह तो बताओ?

-अजी, जाती कैसे! -नंदा कहती चली-मेरा जी चाहता ही नहीं था कि तुम्हें अकेला छोड़कर मैं चली जाऊँ! मैं घर गई और माँ से बहाना कर लिया कि मेरे पेट में बड़ा दर्द है। माँ ने कहा-मत जाओ पढ़ने और जाकर सो रहो। मैं कुछ क्षण लेटी भी रही मगर बिछावन पर लेटे रहना मुझे कुछ अच्छा न लगा। मैं माँ से आँखें बचाकर भाग आई यहाँ! तुम तो बेखबर लेटे पड़े थे। अजी, इतना भी आदमी सोता है दिन को? परे कुम्भकरण हो तुम! मनमें हुआ कि तुम्हारी चोटी में डोरी बाँधकर डाल से लगा दूँ। और जब तुम उठो तो खींचने में तुम्हारी चोटी का सफाया हो जाय, तब मैं खूब जी खोलकर हँसूँ।....वह

नंदा को आप-ही-आप, चोटी उखड़ने की बात पर, हँसी आ गई। इतनी हँसी कि उसके पेट में बल पड़ गये। रंगा भी उसकी सुधाई और चपलता पर हँस पड़ा। और, जब दोनों की हँसी रुकी, तब रंगा बोल उठा।

-फिर तुमने ऐसा किया क्यों नहीं नंदा!

-नहीं किया।

-क्यों नहीं किया?

-क्या बतलाऊँ, क्यों नहीं किया। सुनते हो रंगा, मैं तुम्हें दुख में पड़े देखना नहीं चाहती और जब ऐसा हो जाता है, तब न जाने क्यों, मेरी आँखों

में आँसू भर आते हैं। आज, सच कहती हूँ, जब गुरुजी तुम्हें मार रहे थे, मैं उधर रो रही थी। क्यों मुझे ऐसा हो जाता है, मुझे नहीं मालूम। तुम कह सकते हो रंगा, आखिर ऐसा होता क्यों है?

और नंदा उत्तर पाने की आशा में रंगा को ओर देखने लगी। रंगा कुछ देर तक जैसे सोचता रहा, उसने सिर उठाकर देखा—चार आँखें हुईं। रंगा हंस पड़ा और हँसते-हँसते ही बोल उठा-नंदा, तुम मुझे बड़ी भली लगती हो। जी चाहता है कि तुम्हें मैं देखता ही रहूँ। कह नहीं सकता कि क्यों ऐसा होता है? मैंने तो अपने जी की कही। और यह बिलकुल ठीक बात है।

नंदा रंगा की बातें सुनकर लजा गई। उसके गालों पर लाली दौड़ गई! नंदा ने सिर झुका लिया। वह न जाने क्या कहने जा रही थी रंगा को; पर वह बोल न सकी। उन दोनों के बीच इस तरह की बातें जाने कब तक चलती रहीं; पर इतनी ही देर में जोर का बादल छा गया और जोर की हवा बह निकली। अब उन दोनों से बैठे रहना कठिन हो उठा! नंदा तो एक तरह से घबरा ही उठी और उसी घबराहट में वह बोल उठी-देखो, रंगा, मेघ जोर का लगा है, पानी जरूर पड़ेगा। अब चलोघर; माँ मुझे खोज रही होगी।

नंदा बोलकर खड़ी हो गई, रंगा भी खड़ा हुआ। उसने आकाश की ओर देखा, उसे काले-काले बादल बड़े भले दीख पड़े। उसके जी ने नहीं चाहा कि, वह नंदा के घर चले! उसने एक बार बगीचे की ओर दृष्टि दौड़ाई और उसने पाया कि, जामुन के पेड़ से लदालद पके काले-काले जामुन गिर रहे हैं। रंगा के मँह में, उन काल काले जामुनों को देखकर, पानी भर आया। उसका जी मचल पड़ा। उससे रुके रहना कठिन हो चला। उसने नंदा का हाथ पकड़ा और जोर से खींचते हुए बोल उठा- चलो, नंदा, जामुन के पेड़ के पास; खूब गिर रहे हैं काले-काले जामुन अभी! बड़ा मजा आयगा खाने में-और यह मजा तब और आ जायगा, जब पानी पड़ता रहेगा-और देखो, पानी भी तो बरसना ही चाहता है।

नंदा की इच्छा न थी कि, वह बगीचे में एक क्षण के लिए भी रुकी रहे; मगर जब रंगा उसे पकड़कर ले चला, तब वह अपना हाथ भी न छुड़ा सकी उससे और दोनों जने जामुन के पेड़ की ओर दौड़ चले।

पके-पके काले-काले जामुन ढेरों छितराये पड़े थे पेड़ के नीचे! किसको उठाये, किसको छोड़े! दोनों कूद-कूदकर जामुन चुन-चुन मुंह में डालने लगे! इसी समय जोर का पानी बरसना शुरू हुआ। और उसी झोंके में दोनों चुन-चुनकर जामुन खाते रहे! पानी और जोर का बरसने लगा। दोनों के कपड़े-लत्ते और सारे शरीर भींग गये। फिर भी रंगा मस्त होकर जामुन खाता रहा; मगर कुछ क्षण भीजने के बाद नंदा काँपने लगी। अब क्षण भर के लिए भी उसका रुकना कठिन हो चला; पर रंगा को जैसे इसका पता ही न हो! वह ज्यों-का-त्यों उछल-उछलकर जामुन चुनने में तल्लीन हो पड़ा था! उसने धोती की छोर बाहर निकालकर जामुन से भर ली। उसके बाद नंदा के अंचल को भी जामुनों से भर दिया! अब नंदा थर-थर काँप उठी। उसे काँपते हुए देखकर रंगा भी सिहर उठा। इतने में नंदा बोल उठी-अब चले चलो, रंगा। माँ मुझे देखेगी इस तरह, तो बड़ी बकेगी।

शाम हो चुकी थी। घने बादलों के कारण चारों ओर घोर अंधेरा हो उठा था, पानी भी जोर का बरस रहा था। वे दोनों उसी अंधियाले को जैसे चीरते हुए घर पहुंचे। नंदा की माँ उन दोनों को सिर से पैर तक पानी से लथपथ देखकर सन्नाटे में आ गई और उसके मुंह से निकल गया-अरे, यह क्या? कहाँ थे तुम दोनों?

नंदा थरथर काँप रही थी। रंगा सिर से पानी पोंछ रहा था। दोनों माँ के पास मुजरिम के रूप में खड़े थे! नंदा ने माँ की बातें सुनी तो वह डर के मारे कुछ न बोल सकी; पर रंगा बोल उठा-जामुन चुन रहे थे हम दोनों, चाची! देखो यह, कितने जामुन लोगी! खाकर देखो, ये कितने मोटे हैं!

नंदा की माँ रंगा की बातों पर हंस पड़ी और हंसते-हँसते बोली जामुन से तुम दोनों का मन भर गया क्या, जो मुझे खिलाने को गठरी बँध लाये हो? लेते जाना घर और माँ को देना खाने !.....मगर, कपड़े जो भींज गये! जाओगे कैसे?

रंगाघर जाने की बात सुनकर अस्त-व्यस्त हो पड़ा। उसे याद हो आई कि वह तो घर से अभिमान करके ही चला आया है। मगर अपने-आप वह जायगा कैसे? उसके अभिमान में आधात जो लगेगा अपने से जाने पर!

वह खड़ा-खड़ा सोचता रहा; पर उसे सोचने का ज्यादा मौका न मिला। इसी समय नंदा की माँ बोल उठी-मगर ऐसी अधेरी रात में और मूसलधार पानी में जाओगे कैसे रंगा? यह नहीं होने का! लो, मैं कपड़े निकाले देती हूँ और नंदा, जा भीतर, तू भी कपड़े बदल ले ! रंगा आज यहीं रहेगा ! .....और हाँ, रे रंगा, तुम मेरे यहाँ का भात खाओगे न?

-भात खाऊँगा क्यों नहीं चाची ?-रंगा बोलकर सोचने लगा कि नंदा की माँ कितनी ममता करनेवाली है! अच्छा हुआ जो इसने कह दिया कि मुझे ऐसी रात में घर नहीं जाना पड़ेगा। रंगा अपने-आप भीतर से खुश हो उठा। उसे लगा कि उसका अभिमान अक्षुण्ण बना रहेगा। अपनी माँ के सामने उसे झुकना नहीं पड़ेगा! वह इसबार बड़े आदर-भाव से नंदा की माँ की ओर देखने लगा। कुछ देर के बाद बोल उठा--मगर मैं तो यहाँ रह नहीं सकूँगा, चाची। माँ मुझे ढूँढ़ रही होगी। यों मुझे भात खाने में कोई इतराज नहीं।

-हाँ, खाने में क्या है ? तुम तो अभी बच्चे हो-कहकर नंदा की माँ भीतर गई और वहाँ से एक धोती और ओढ़ने के लिए एक चादर लाकर रंगा के सामने रखते हुए बोल उठी-लो रंगा यह धोती। कपड़े बदल लो और ऊपर से यह चादर ओढ़कर बैठ जाओ अंगीठी के पास! क्यों?

रंगा ने अपनी धोती की खट से जामून निकालकर एक दौरे में रख दिया। फिर धोती के छोर से पानी निचोड़ा, गंजी देह से अलग हटाई। फिर उस धोती की खट से सारा शरीर पोंछा। नंदा की माँ वहीं बैठी हुई उनकी ओर देख रही थी। उसने देखा कि रंगा की पीठ पर धाव उभर आये हैं और वे नीले पड़ गये हैं ! मालूम पड़ता है, जैसे वह बुरी तरह पीटा गया हो ! नंदा की माँ को बड़ी दया हो आई। वह उठकर रंगा के पास आई और उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए बोल उठी-ऐसी बुरी गत कैसे हुई है रंगा! ये तो मार के निशान पड़े हुए हैं। देखो तो भला, लहू जैसे जम-सा गया है। अरे, किसने मारा है रंगा?

इतने में नंदा भी कपड़े बदलकर वहाँ आ पहुंची और उसने रात हुए माँ की बातें सुन ली! नंदा अपनेको इस समय रोक न सकी, बोल उठी गुरुजी ने आज इसे खूब पीटा था माँ, उसी

के दाग इसकी पीठ पर पड़े हो सकते हैं!

नंदा की माँ चिहुँक उठी, बोली-ओह! गुरुजी ने मारा है! गुरुजी आदमी है या कसाई ! ऐसे भी आदमी को कहीं पीटा जाता है ! दूसरे का बच्चा ठहरा, पीट दी; अपना बच्चा होता, तो वह जानता कि बच्चे को पीटने का दरद कैसा होता है! अम्मा बोलकर रुक गई, फिर कुछ नया के बाद बोल उठी-हाँ रे रंगा, तुमने माँ को अपनी पीठ नहीं दिखलाई? आह, वह बेचारी अगर देख लेती कहीं? इकलौता बेटा ! भरी जवानी में विधवा हो गई बेचारी!

नंदा की माँ की ममता रंगा के प्रति बढ़ चली ! रंगा सिर झुकाये सूखी धोती पहनता रहा! वह मन-ही-मन सोच रहा था कि वह साफ-साफ कह दे कि गुरुजी ने जितना नहीं पीटा उसे, उससे कहीं अधिक तो उसकी माँ ने ही पीटा है और ये जो दाग फूट पड़े हैं उसकी देह पर, वे तो बेंत के नहीं, उस बत्ती के हैं, जो उसकी माँ ने उठाई थी! पर, उससे कुछ कहते बना नहीं! कैसे वह कह दे कि उसकी माँ ने उसे इतनी बेरहमी के साथ पीटा है! उसकी माँ कितनी हेच-नजर से देखी जायगी ! ...इसी तरह सोचते-सोचते उसके अभिमान ने जोर पकड़ा और उसके मन में हुआ कि जिसने उसे मारा है, वह उसका जानी दुश्मन है-चाहे वह माँ हो, चाहे और कोई। उसकी जहाँ तक हो सके, शिकायत करनी ही चाहिए! तभी उसे याद हो आई कि नंदा की माँ तो रंगा की अपनी माँ नहीं है; फिर भी उसकी कितनी ममता है उस रंगा पर! किस तरह उसकी पीठ पर अपने हाथ फेर रही है वह? एक यह माँ है और एक वह।

सोचते-सोचते रंगा की आँखें भर आई; पर तुरंत अपनेको उसने संयत करने के लिए मुंह दूसरी ओर घुमा लिया। तभी नंदा की माँ ने उसे अपनी ओर खींच लिया और अंगीठी के पास ले जाकर कहा-चादर अच्छी तरह ढंक लो रंगा, आग सेंको तबतक; मैं थोड़ा हलदी लिये आती हूँ। नंदा और रंगा अंगीठी तापने लगे। माँ हलदी लेकर आई और जहाँ-जहाँ रंगा के घाव उभर आये थे, हलदी लगाती हुई वहीं कुछ क्षण तक बैठी रही।

पानी का बरसना अबतक उसी तरह जारी था। मालूम होता था कि जैसे आज छोड़कर कल बरसेगा ही नहीं!

दिहात में और खासकर बरसात के दिनों में, रसोई शाम को ही बनकर तैयार हो जाती है। नंदा की माँ भी रसोई के काम से छुट्टी पा चुकी थी। जब उसने देखा कि उन दोनों ने अच्छी तरह आग सेंक ली है, तब वह उठी और रसोई-घर से दो थालियाँ परोसकर लाई और कहा-आ जाओ तुम दोनों बेटा; खा-पीकर छुट्टी पा लो।

दोनों थालियों पर आ बैठे। माँ भी वहीं बैठकर हँस-हँसकर बातें करती रही। उसे बड़ी खुशी हुई यह देखकर कि नंदा और रंगा में कितना गहरा स्नेह है!

जब दोनों का खाना-पीना शेष हुआ, तब नंदा की माँ ने नंदा से कहा जा, सो रह नंदा और रंगा को भी अपने साथ लिये जा। दोनों जने खाट पर सो रहना।

नंदा उठी, रंगा भी उठ खड़ा हुआ। दोनों एक साथ आकर विछावन पर लेट गये। नंदा ने आप भी रजाई ओढ़ ली और रंगा को भी ओढ़ा दी। कुछ ही क्षणों के बाद दोनों को नींद हो आई।

रात बीते जब नंदा का बाप सोने को आया, तब उसकी नजर नंदा की खाट की ओर गई। उसने उसपर के सोनेवाले दो जने के खुले हुए मुँह को देखा। नंदा की माँ दीप की बत्ती उसका रही थी। उसने देखा कि उसका पति बड़े गौर से बिछावन की ओर देख रहा है, तब वह हँसकर बोल उठी आँखें फाइकर क्या देख रहे हो? कहीं नजर तो नहीं लगा रहे हो?

-नंदा के पास कौन सोया है?

-रंगा है वह। हरि का लड़का। शाम-शाम तक यहीं बगीचे में खेलता रहा था, कपड़े भींज गये थे और पानी भी जोर से बरसता रहा। ऐसी बरसा में कैसे वह घर जा सकता था। यहीं खा-पीकर सो रहा है।

-मगर इसकी माँ ढूँढ़ती नहीं होगी इसे? वह बेचारी कितनी परेशान होगी इसे न पाकर। सोचो तो जरा।

-हाँ, सोचती क्यों न होगी? -नंदा की माँ को एक युक्ति याद आई और वह बोल उठी-तब तुम जाकर कह आओ न। कंबल की घोघी ओढ़ लो और लालटेन हाथ में लेकर जरा हो आओ न। कह देना कि रंगा हमारे घर सो रहा है, कोई फिकर न करे, यह भी तो उसी का घर है। मेघ न बरसता होता, तो उसे भेज देता। कल चला जायेगा।

-हाँ, ठोक कहती हो, मैं कह आता हूँ-बोलकर नंदा का बाप कुछ देर तक खड़ा रहा। उसके बाद नंदा की माँ बोल उठी-एक बात कहूँ? कहे देती हूँ-देखो, इनदोनों की जोड़ी कैसी भली लगती है। लगती है नहीं?

-हाँ, जैसी मेरी और तुम्हारी!

-तुम तो मजाक करते हो! -नंदा की माँ तुनुक कर बोली।

-मजाक नहीं, रानी, मजाक नहीं। तुम्हें याद हो या न हो, इसी उमर में हम लोग भी एक दिन साथ-साथ सोये थे और उस दिन मेरी चाची ने भी कहा था कि देखो, यह कैसी अच्छी जोड़ी है।

-तुम तो कुछ भूलते भी नहीं; पर हम दोनों तो एक जात के थे, हम दोनों के माँ-बाप ने शादी रखा दी थी।

इतना बोलकर नंदा की माँ का मँह उतर आया। वह कुछ सोचने लगी। उसके बाद बोल उठी-अगर रंगा अपने जात का होता, तो नंदा को इसके साथ शादी जरूर मैं कर देती....

मगर-बीच ही मैं रोककर उसका पति बोल उठा-यही तो मुश्किल है। कहकर वह घर से बाहर निकला और कहता गया-दरवाजा बंद मत करना। मैं अभी तुरत इसको माँ को कहे जा रहा हूँ।

(पाँच)

कल्याणी का मन जब रोते-रोते भर गया, तब उसे रंगा की याद हो आई। वह वहाँ से उठी, बाहर आई, आँगन में देखा; फिर दरवाजे पर आई, पर वहाँ भी उसे न पाया। उसके बाद पीपल के पेड़ के पास आई, वहाँ बहुत-से लड़के खेल रहे थे; कुछ बड़े-बूढ़े, औरत-मर्द बैठे गप्पें कर रहे थे, कुछ

सुतली काट रहे थे और कुछ चटाई बिन रहे थे। पर रंगा वहाँ भी दीख न पड़ा। वह लड़कों के झुण्ड की ओर बढ़ी, और पूछा-रंगा को देखा है? और जवाब में 'नहीं' पाकर वह कुछ क्षण तक मन-मारे खड़ी रही। उसके बाद चारों ओर दृष्टि दौड़ाई और कहीं भी रंगा को न पा, वह अपनेघर की ओर मुड़ी। फिर दरवाजे पर आई, वहाँ भी उसने चारों ओर नजर दौड़ाई पर कहीं वह दीख न पड़ा। वह अंदर आई और उसने सोचा कि, कहीं वह अनाज की कोठी में घुसकर छिपा हुआ तो नहीं है ! इसलिए वहघर में घुसी, कोठी के पास आई और खाट पर पैर जमाकर उसककर कोठी के मुंह में से अंदर झाँका-देखा कि कोठी शून्य पड़ी हुई है। हाँ, कोठी के बगल में बिल्ली चुपचाप बैठी हुई अपने नवजात छोने को दूध पिला रही है। कल्याणी अपलक उस ओर देखती रही; पर देख न सकी। रंगा के लिए वह और भी विकल हो उठी। वह वहाँ से उतरी और उसनेघर का कोना-कोना झाँक डाला। एक जगह चटाई मोड़ी हुई खड़ी थी। उसने चटाई उठाई पर रंगा वहाँ भी दीख न पड़ा। वह चारों ओर से हारकर एक जगह बैठ गई और सोचने लगी कि आखिर वह गया कहाँ ? उसका ध्यान चारों ओर बिखर पड़ा। वह फिर से सोचने लगी कि रंगा कहाँ-कहाँ जाता है, कौन-कौन उसके दोस्त हैं उसे याद आई कि वह रामू, टहला, वंशी, महेश और बिरजा के साथ खेला करता है। हो-न-हो, वह इन्हीं में से किसी के घर चला गया हो। तब वह सोचने लगी कि इन सबमें वह किसके घर अधिक जाता है! आखिर उसने सोचकर देखा कि रामू के घर ही गया होगा वह। वही उसका दिली दोस्त है। वह उसे जब-कभी अपने घर खिलाया भी करता है। ऐसा सोचकर वह उठी और रामू के घर दाखिल हुई। रामू उस समय खा रहा था। उससे पूछा-रंगा को देखा है, रामू?

-नहीं तो। क्यों, वह घर पर नहीं है ? मैं तो अभी उसकी खोज में तुम्हारे घर ही आनेवाला था।

कल्याणी सोच में पड़ गई। इतने में रामू की माँ वहाँ आ पहुँची और और उसे अपने सामने आकर बोली-किसे खोजती हो, छोटी, रंगा को? रंगा तो आज यहाँ आया नहीं है। कहीं खेलता होगा। आयगा तो कह दूँगी

उससे । कई दिनों के बाद आई हो, खैर, रंगा के बहाने ही सही, तुम आई तो मेरे घर । आओ, बैठो ।

-नहीं, दीदी, बैठूँगी नहीं ! अभी तो उसने खाया तक नहीं । आज मुझ पर शामत सवार हो गई कि बच्चे को दे मारा । इसीलिए वह तुनककर से कहीं भाग खड़ा हुआ है । देखो तो भला, कितना परेशान करता है वह !

-मारी क्यों छोटी । एक ही तो बच्चा ठहरा, दूसरा है कौन ? फिर भी तुम उसे मारा करती हो ?

इतने में रामू बोल उठा-तुमने भी मारा है उसे चाची ? वह तो आज खुद ही गुरुजी से पीटा गया था । मार-पर-मार लगी । इसीलिए तो वह भाग निकला है । मगर, वह भागकर गया कहाँ-जाता कहाँ ? मेरे साथ ही तो खेला करता है वह ।

कल्याणी ने रामू से उसके पीटे जाने की बात सुनी, तो उसका दिल भर आया, आँखें भींज गईं । वह सोचने लगी कि वह कितनी कसाई निकली ! बच्चा आज दिन भर मार ही खाता रहा ! उसने आँचल से आँसू पोंछे, और बोली-भगवान जानता है, दीदी, आज के सिवा और कभी उस पर हाथ उठाया हो ! दुनिया में और कौन है दीदी, जिसपर मैं सबर करूँ ! वही तो एक सहारा ठहरा । उसीपर तो अपनी भरी जवानी काट रही हूँ ! नहीं तो इतनी दुख-तकलीफ क्यों सहती !

दीदी को भी उसकी बातों से बड़ा दुख हुआ । वह सांत्वना और सहानुभूति के स्वर में बोल उठी-आज हरि जीते रहते, तो तुमको दुख काहे का होता, छोटी ! मगर अब उसके लिए चिन्ता करना फिजुल है । रंगा अभी बच्चा है, भगवान करे, जीता रहे वह ! एक दिन इसी से तुम्हारा दुख दूर होगा । भगवान सभी पर दया करता है । वह भूखे उठता है मगर भूखे सुलाता नहीं । अच्छा, जाओ अभी ढूँढो उसे । जरूर कहीं मिल जायगा वह ।

कल्याणी वहाँ से चल पड़ी । उसके बाद उसने एक-एक करके और साथियों के घरों में ढूँढ डाला; पर कहीं उसका पता न चला । वह बड़े गंभीर होकर सोचने लगी कि आखिर वह गया कहाँ ? इतने साथियों के यहाँ भी न

मिला और न इनलोगों ने उसे देखा ही, तो वह आखिर गया कहाँ? कहीं नदी में कूदकर....

नदी में कूदकर जान देने के विचार से कल्याणी घबरा उठी। उसका सारा शरीर काँप उठा, उसकी छाती धड़क उठी और आँखों के आगे अधेरा छा गया। उसने कुछ देर में अपने को संभाला; पर वह अपने को संभाल न सकी। वह पागल की तरह नदी के किनारे की ओर दौड़ भागी! उस समय घाट पर कितने आदमी नहा रहे थे और कितने नाव पर बैठे हंस बोल रहे थे। उसने आज लाज छोड़ दी और एक-एक से पूछ बैठी कि क्या रंगा को घाट पर किसीने देखा भी है? पर, भगवान को धन्यवाद, किसीने उससे यह नहीं कहा कि, रंगा को घाट पर देखा है। उसके दम-में-दम आया। उसकी घबराहट कुछ दूर हुई। उसने सोचा कि गंगा में नहीं कूदा, तब जरूर कहीं-न-कहीं गाँव में ही होगा और अपने में कुछ आश्वस्त होकर वह घर की ओर मुड़ चली। रास्ते भर, जो भी मिला, सबसे उसने पूछा; पर किसीने यह नहीं कहा कि उसे देखा है। वह इस दौड़-धूप से काफी परेशान हो गई थी। लौटकर वह घर आई और जमीन पर बैठकर अपने को लाख-लाख कोसने लगी।

दिन चढ़ा, दुपहरी आई, अन्न का एक दाना उसने मुँह में न डाला, न एक कतरा पानी ही ओंठ से लगाया! वह अकेले फूट-फूट कर रोती रही। देवी-देवताओं को गुहारा, उनकी मिन्नतें मानी कि किसी तरह उसका लड़का उसकी गोद में आ जाय। वह भगवती को बली चढ़ायगी, चाँदी का कंगना गढ़वाकर पहनायगी, सत्यनारायण बाबा की कथा सुनेगी, पाँच ब्राह्मणों को भोजन करायगी। वह एक ही साँस में जाने अपने ऊपर कितना बोझ ले बैठी। उसे इस बात का भी ध्यान न रहा कि आखिर वह इतना खर्च जुटा सकेगी कहाँ से, जब वह अपने बच्चे को केला और गुड़ तक नहीं दे सकती!

दिनभर की परेशानी से और रोते-रोते कल्याणी को कुछ क्षण के लिए नींद हो आई। उसी नींद में पड़ी रहकर उसे कुछ क्षण के लिए आराम मिला! वह नींद से चिह्नकर उठ बैठी। उसे नींद में ही याद हो आई कि,

आज तो वह अपने बेटे से वादा कर चुकी है कि, हाट से उसके लिए केले और गुड़ ला रखेगी! और यहीं तो हाट का वक्त है ! इधर बादल भी लग रहे हैं। तुरत नहीं जाने पर हाट भी उखड़ जा सकती है, फिर केले और गुड़ मिलेंगे कहाँ?

कल्याणी धड़फड़ाकर उठ खड़ी हुई। पर पैसे हैं कहाँ?-इसका खयाल रात ही वह मर्माहत हो उठी। उसके पैर आगे बढ़ने से रुक रहे; पर कुछ ही क्षणों के बाद वह झपट कर भीतर चली गई और कोठी से बीज का थोड़ा-सा मटर निकालकर अपने आँचल में अच्छी तरह बाँधा, फिर दरवाजा बंद कर बाहर आई और हाट की ओर तेजी से चल पड़ी।

हाट में जाकर उसने देखा कि फल तो बहुत-से बिकने को आये हैं; पर जब तीन सेर मटर के बदले उसके हाथ में सिर्फ पाँच आने पैसे आये, तब उसने एक गहरी आह छोड़ी! आज यदि उसके पास पाँच रुपए भी होते, तो अपने रंगलाल के लिए सारा खर्च कर एक-से-एक फल, अच्छी-से-अच्छी मिठाई और उमदा-से-उमदा खिलौने खरीद लेती! मगर ये तो सिर्फ पाँच आने पैसे हैं! उसने हाथ के पैसों को देखा, फिर मन-ही-मन हिसाब लगाया। उसके बाद केले की दूकान की ओर बढ़ी। बड़ी मोल-तोल के बाद, आखिर उसने एक दर्जन केले, एक कटहल और सेर भर गुड़ खरीदा। इतने पर भी पाँच पैसे हाथ में रह गये! वह क्या पाँच पैसे हाट से बचाकर ले जायगी? वह मिठाइयों की दूकान पर गई और उन बचे-खुचे पैसों की जलेबियाँ खरीदकर घर की ओर चल पड़ी। उसी समय जोर की आँधी के साथ पानी का बरसना शुरू हुआ! बड़ी मुश्किल से अपने को बचाती हुई घर को वह भाग चली; पर वह अपने को न बचा सकी। उसके कपड़े भींज गये, फिर भी उसने संगा के लिए ली गई चीजों को भीजने न दिया ।

शाम से जो पानी बरसना शुरू हुआ था, वह रुका नहीं। फिर भी कल्याणी अपने को भीगोंकर रंगा को ढूँढने निकली और दोपहर को जिन-जिन साथियों के यहाँ से वह धूम आई थी, उनसब के यहाँ ऐसी घटाटोप व्रष्टि और धुप्प अंधकार में अपनेको भिगोये खोजती रही उसे; पर सभीके यहाँ से एक

ही जवाब मिला कि रंगा को आज किसीने देखा ही नहीं और न वह पाठशाला ही गया था।

-आखिर रंगा है कहाँ ?-कल्याणी लौट आई। वह पानी से भीजकर कॉप रही थी। आज दिन-भर भूख से सताई हुई, पश्चात्ताप और दुश्चितांओं के भार से वह बेदम हो उठी! अब वह कहाँ जाय ! दिन-भर ढूँढ़ती मरी, पर नहीं मिला वह ! रात को भी ढूँढ़कर वापस आई। कहीं उसका पता न चला! ऐसी हालत में कल्याणी की विन्ताओं का अनुमान भगवान चाहे तो लगा सकता है, मनुष्य नहीं!

बेचारी अभागिनी कल्याणी मुर्दा-जैसी बिना कुछ अन्न-जल ग्रहण किये लेट रही। उसके सामने सारा संसार घोर अंधकार मय दीख पड़ा। वह जमीन पर लेटे-लेटे दीन-बंधु भगवान की याद करने लगी!

और भगवान् को धन्यवाद! डेढ़ पहर रात बीते दरवाजे पर कौन पुकार रहा है-रंगा की माँ! रंगा को माँ! दरवाजा खोलो !

कल्याणी- हुलास और दुश्चिता में उठकर घर से बाहर निकली और भींजते हुए आकर उसने दरवाजा खोला--देखा कि बाहर लालटेन हाथ में लिये कंबल की घोघी लगाये गणेश खड़ा है! कल्याणी ने अधमरी होकर कहा- ओ, गणेश! पानी में भींजते हुए!

-हाँ, भींजते हुए भाभी?—गणेश ने हँसकर कहा, फिर वह सरल भाव बोल उठा--पानी जोर का पड़ रहा है, भाभी! भीतर चलो, यहाँ बातचीत करने में तुम भींज जाओगी।

कल्याणी घर की ओर मुड़ी। गणेश आगे को बढ़ चला। दोनों बरामदे पर आये। कल्याणी उसके बैठने का आसन ढूँढ ही रही थी कि गणेश बोल उठा-बैठूँगा नहीं भाभी और न अभी बैठने का ही वक्त है। मैं आज घर के काम से शिवपुर चला गया था, अगली रात को वहाँसे वापस आया। अभी खा पीकर सोने को ज्योंही घर में गया, देखा कि नंदा के साथ रंगा सोया हुआ है ! नंदा की माँ से मालूम हुआ कि वह दिनभर वहीं खेलता रहा।

शाम तक खेला किया। फिर पानी से दोनों जने भीज गये। तबसे बराबर पानी ही बरस रहा है। रंगा को वहीं उसको माँ ने रोक लिया। वह

खा-पीकर सो गया है। अभी नंदा की माँ बोली कि रंगा की माँ रंगा को ढूँढ़ रही होगी। उसे खबर दे आओ, ताकि तसल्ली तो हो जाय और मैं दौड़ता-दौड़ता तुम्हें खबर देने आ गया भाभी। चिन्ता की कोई बात नहीं। कल चला जायगा।

ग़ज़ेश ने देखा कि जैसे-जैसे वह उसे खबर सुना रहा था वैसे-वैसे उसकी आकृति खिलती गई। उसने अपने मन में आनंद और परितोष का अनुभव करते हुए यह भी लक्ष्य किया कि जिस तरह घबराकर दरवाजा खोलते समय रंगा को माँ उदास थी, वैसी अब नहीं है। सचमुच कल्याणी के आनंद का क्या पूछना! उसे लगा कि जैसे उसमें आण भर आये हों। कल्याणी को ग़ज़ेश से कभी बोलने का अवसर न मिला था, यद्यपि अपने पति के जीते-जी कई बार वह उसके घर आ चुका था। पर इस समय, जब कि उसके रंगा का समाचार देने को वह ऐसी झङ्ग-झपसी में भी आ पहुँचा है, कल्याणी के हृदय में उसके प्रति अगाध स्नेह का उमड़ पड़ना कुछ अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता। वह आनंद की लहरों में इतनी दूर तक वह चली कि उसके ओठों से वह आनंद व्यक्त हो न हो पाया। फिरभी वह उस बहाव में आकर बोल पड़ी-दिनभर ढूँढ़ मरी इधर-उधर; मगर तुम्हारे घर का ख्याल ही न आया, गनेसी! कैसी मुरख ठहरी। वह तो मजे में सो रहा है--अच्छा है। नंदा की माँ-मेरी छोटी-भला मेरे बच्चे को कहीं पराया समझ सकती है! वह लछमी है, लछमी, गनेसी! देखो तो पाजी को, कितना परेशान किया है उसने? ओह, कितना परेशान !

कल्याणी को खुशी के उन्माद में आँसू निकल आये; पर उसने आँसुओं को बलपूर्वक अपनी आँखों में ही रोके रखा। गनेसी ने देखा कि भाभी कितनी शांत, कितनी मधुर है। वह एक अव्यक्त खुशी में अवाक् और निश्चल ज्यों-का-त्यों खड़ा रहा। फिर वह चलने को तैयार हुआ और बोल उठा-चिन्ता न करना भाभी, उसे किसी तरह का वहाँ दुख नहीं हो सकता। जोर से पानी न पड़ता होता, तो मैं उसे अपनी गोद में लेकर ही पहुँचा देता। मगर सर्दी लग जाने के डर से ऐसा न कर सका। -चिन्ता थी गनेसी; मगर

अब जाती रही ! वह क्या परायाघर है, जो अब चिन्ता करूँ ! उसके तो अब तुम्हीं लोग माँ-बाप हो । बाप कौन और काका कौन !

-ठीक है भाभी ! जब हरि भैया रहे नहीं, तब हमी लोग तो उसके बाप हैं । खैर, चलता हूँ तुम भी थकी-माँदी हो, सुख से आराम करो ।

कल्याणी चाहती थी कि उससे रंगा के बारे में और भी बात करे; पर उसकी आकांक्षा मिटी नहीं । गणेश रुका नहीं । वह जाते-जाते बोल उठा—आओ न भाभी दरवाजे तक । अभी तो मेरे हाथ रोशनी है, भीतर से दरवाजा लगा लो !

और कल्याणी उसीके साथ उसी प्रकाश में बढ़ आई । गणेश दरवाजे से बाहर निकला । कल्याणी दरवाजा बंद करते-करते बोली-अच्छा, गनेसी, रंगा से कह देना कि मैं उसे अब कुछ भी न कहूँगी । वह सुबह को चला आवे ।

-अच्छा-गनेश ने जाते-जाते कहा ।

पर कुछ ही क्षणों के बाद फिर से पुकारकर वह जोर से बोल उठी गनेसी, उसे कहने की जरूरत नहीं । मैं खुद तुम्हारे यहाँ जाकर उसे लिवा लाऊँगी । अच्छा ?

-हाँ, भाभी, आ जाना ! नंदा की माँ से भी भेंट हो जायगी । कल्याणी दरवाजा बंद कर घर आई । उसने मन-ही-मन भगवान को धन्यवाद दिया ।

कल्याणी ने रात पलकों में काट डाली । सुबह को थोड़ा पानी का बरसना रुक गया था; पर झपसी लगी हुई थी । वह घर से निकली और उसी झपसी में वह नंदा केघर की ओर चल पड़ी ।

कल्याणी जिस समय नंदा के घर पहुंची, उस समय नंदा की माँ झाड़ू-बहाड़ू लगाकर गोद के बच्चे को दूध पिला रही थी । उसने कल्याणी को अपने सामने पाकर हँसते हुए कहा-बड़े भाग, दीदी के सुबह-सुबह दरसन हुए । आओ दीदी !

और वह कल्याणी के लिए पीढ़ा उठा लाई और कहा-बैठो दीदी ।

कल्याणी बैठते हुए बोली-तुम सदा सुहागिन रहो, बहन! रात को तुमने गनेसी को न भेजा होता, तो मैं अधमरी हो गई होती! कल से चूल्हा चक्का जला नहीं ! मैंने कहाँ-कहाँ को जोख नहीं लगाई; मगर अपनी बुद्धि की क्या कहूँ! तुम्हरेघर की याद हो न पड़ी। ओह, कितनी परेशान थी मैं ! मैं अपनी समझ की क्या कहूँ फटे भाग! मैंने बच्चे को कल पीट दिया और नतीजा यह निकला कि वह भागकर खड़ा हुआ और मैं दिन-भर बे-मौत मरती रही!

नंदा को माँ ने जब पीटने की बात सुनी, तब वह समझ गई कि क्यों दिनभर रंगा यहाँ पड़ा रहा और क्यों उसने घर लौट चलने की कोई उतावली नहीं दिखाई। पर उसे इस बात से बड़ा कष्ट हुआ कि माँ होकर भी उसने रंगा पर वैसा हाथ चलाया। कुछ क्षण तक वह इसी बात को सोचती रही, फिर बोल उठी-दीदी, तुम बड़ी हो और मैं छोटी ! तुमको समझाने का मुझ में जोर नहीं ! मगर जो सच है, उसे तो कहूँगी ही। तुम, दीदी, इतनी सुधी सादी होकर भी रंगा पर जो बरस पड़ी-यह तो मैं कुछ समझ नहीं सकी! मैं तुम्हें कहूँ भी, तो कह भी क्या सकती हूँ। बच्चा चाहे लाख गुनाह करे, माँ ही तो माफ करती है! मगर तुमने बच्चे को इतना मारा है कि उसकी पीठ का चमड़ा फट गया। कल शाम को मैंने उसकी पीठ देखी, तो मैं सच कहती हूँ, मुझसे देखा न गया! मुझे रुलाई आ गई। नंदा कहती है कि कल गुरुजी ने भी उसे पीटा था! मैं तो हजार गंडा उसे गाली बक गई। मगर मैं क्या जानती थी कि तुमने भी उसे पीटा है, दीदी ! वह दर्द के मारे आते भर कराहता रहा है ! चलो न दीदी भीतर, अभी तो वह सो रहा है ! मैं उसकी पीठ दिखला दूँ तुम्हें ; देखोगी-कितने घाव उसके लगे हुए हैं।

और नंदा की माँ ने उसका हाथ जोर से पकड़ा और उसे भीतर ले गई ! कल्याणी ने देखा कि नंदा और रंगा दोनों एक साथ सोये हैं, उन दोनों के सारे शरीर ढंके हुए हैं। मगर दोनों के मँह बाहर खुले हुए दीख रहे हैं। कल्याणी इस रूप में रंगा को सोये देखकर, उस दुःख के समय में भी, आनन्द से खिल उठी।

नंदा की माँ ने धीरे से रजाई उठाई और रंगा की पीठ की ओर इशारा करते ओठों-ओठों में कहा-देखो तो भला दीदी!

कल्याणी ने आँख फाँड़कर देखा और घबराकर बोल उठी-ओह! इतने धाव! हाय, मैंने अपने ही बच्चे को कौन-सा गत कर डाला है! यह देखने के पहले मैं मर क्यों न गई ! हाय ! मैं कैसी हत्यारिन हूँ!

नंदा की माँ उसे साथ लेकर बाहर आई। दोनों में बड़ी देर तक इधर-उधर की बातें होती रहीं। नंदा की माँ को पता लगा कि रंगा भूखे-प्यासे ही कल भाग निकला था और तबसे वह घर लोटा नहीं दुहराकर! यह सुनकर उसे कल की सारी घटना याद हो आई। उसे लगा कि रंगा कितना लजालू है! जब उसने रंगा से पूछा था कि खा लो, तब उसने हँसकर जवाब दिया था कि मैं अभी-अभी खाकर ही आ रहा हूँ। नंदा को माँ आप-ही-आप हँस पड़ी और बोल उठी-भला, इतना भी लजालू लड़का होता है!

नंदा उठी और रंगा भी उठा; पर ज्योंही रंगा बाहर निकला था कि उसने अपनी माँ को बैठे हुए देखा। वह भीतर की ओर लौटना ही चाहता था कि उसी समय कल्याणी झपट पड़ी और उसका हाथ पकड़कर बोली जैसा किया, वैसा दंड पाया बेटा। चलो, अब कभी न मारूँगी तुम्हें। मैं अब कभी हाथ न उठाऊँगी बेटा, चाहे तुम मुझसे शपथ खिला लो।

रंगा पकड़े जाकर अपने-आपमें सिकुड़ उठा। उसका अभिमान जाने कहाँ पिघलकर बह गया। वह सिर झुकाकर जड़वत् पड़ा रहा। नंदा की माँ भी वहीं दौड़ पड़ी। रंगा ने उसी ओर नजर दौड़ाई। वह समझ गई कि रंगा अभी जाना नहीं चाहता। इसलिए वह हँसते हुए बोल उठी-हाँ रे रंगा, कल तुमने मुझे खूब ठगा! खाने को पूछा तो तुमने क्या कहा था ? अरे झूठे ! दिन-भर भूखे रहे; मगर खाने को कहा तो खाया नहीं। मगर अभी तुम्हें मँह जुठाये विना जाना न पड़ेगा। दीदी, इतनी देर लगी, तो थोड़ी और भी सही, क्यों?

कल्याणी नंदा की माँ के सौजन्य पर रुक गई। वह हँसकर बोल उठी मुझे देर की परवा नहीं, बहन; रहे न रंगा यहीं! यह पराये का घर थोड़े

ही समझती हैं; मैं तो सिर्फ इसे राजी-खुशी देखना चाहती हूँ। यह तुम्हारा ही लड़का है, रख लो न! मैं चली। अब मुझे कोई फिकर नहीं!

कल्याणी की बातों से नंदा की माँ खिलखिलाकर हँस पड़ी और हँसी में ही बोल उठी-यह तो मँह पर की बात कहती हो, दीदी! जब मैं रंगा को लेना चाहूँगी तब तुम दोगी नहीं। कहोगी कि यह तो.....

नहीं बहन, नहीं रख लो शौक से!

नंदा की माँ तुरत कुछ कह न सकी, जाने वह क्या सोचने लगी! कल्याणी ने देखा कि उसका मँह उदास हो गया है! इसलिए बह बोल उठी-क्या सोच रही हो बहन!

-सोचती हूँ, मगर सोचकर क्या होगा, दीदी !

-सुनू भी, आखिर क्या सोच रही हो?

-सुनोगी दीदी ? तुम्हें बड़ी हँसी आयगी! -नंदा की माँ कहने लगी-इनदोनों की जैसी जोड़ी फवती है, लगता है कि देखती रहूँ! सच कहती हूँ दीदी! अगर मैं तुम्हारे जात की होती, तो रंगा को तुमसे छीन लेती और नंदा के साथ गठजोड़ा कर देती!

कल्याणी हँस पड़ी और हँसी इसलिए कि जो बात वह स्वयं कहा चाहती थी, वही मानो उसने उसके मँह से छिन कर सुना दी । अभी-अभी तो, जब वह नंदा और रंगा को एक साथ सोये देख रही थी, उसने भी यही बात सोची थी। मगर जब उसे ध्यान में आया कि नंदा अपने जात की नहीं है, तब उसने भो एक गहरी आह भरी थी। फिर भी कल्याणी ने हँसते हुए अपने दिल का हाल सुना दिया। दोनों खब हँसी; पर दोनों की हँसी में जो प्रच्छन्न विषाद था, कभी भरनेवाला न था!

रंगा ने उस दिन वहीं मँह-हाथ धोया और नंदा ने भी! नंदा की माँ ने दो कटेरे में मिठाइयाँ लाकर उनदोनों के सामने रख दी! दोनों ने मँह मीठा किया!

उसके बाद कल्याणी ने नंदा की माँ के सामने वादा किया कि अब वह रंगा पर कभी हाथ न छोड़ेगी, तब रंगा चलने को तैयार हुआ। कल्याणी

ने नंदा से कहा-तुम भी चलो बेटी मेरे साथ, रंगा कोघर पहुँचा दो न! और नंदा को माँ ने भी कहा-हाँ-हाँ, जारी नंदा, रंगा को पहुँचा आ।

कल्याणी नंदा और रंगा को साथ लेकर अपनेघर की ओर चल पड़ी।

(छः)

रंगा कई दिनों तक पाठशाला न जा सका; पर अपनी मर्जी से नहीं। वह तो चाहता था कि पाठशाला जाय, अपने साथियों के साथ पढ़े-लिखे, ऊधम मचाय। उसे इन कामों में जितना मन लगता था, उतना घर पर बैठे रहने में नहीं; पर जब उसकी माँ ने उसे पाठशाला जाने से मना करते हुए कहा कि, जबतक गुरुजी उसके घर आकर, अपने लड़के को मारने का अपराध स्वीकार न करें और न उससे माफी माँगे, तबतक वह अपने रंगा को पाठशाला न भेजेगी! कल्याणी अपने बेटे को मूर्ख रख लेना तो न चाहती थी; पर वह यह भी हर्गिज नहीं चाहती थी कि, उसके बेटे पर कोई यों बेगुनाह हाथ उठाय! और यही कारण था कि, उसने रंगा को पाठशाला भेजने से रोक लिया था।

गुरुजी ने कई दिनों तक रंगा की राह देखी और लगातार उसने उसे बुलाने को लड़के छोड़े पर हर बार उन लड़कों ने गुरुजी को यही इत्तिला दी कि उसकी माँ बहुत नाराज है और वह उसे पाठशाला भेजना ही नहीं चाहती है। सुनकर गुरुजी ने एकदिन निश्चय किया कि, वह खुद ही उसकेघर जायगा और उसकी माँ को समझा-बुझाकर उसे साथ ले आयगा। कारण था-वह सोचता था कि, इस तरह उसे चार आने महीने की नुकसानी बर्दाशत करनी पड़ेगी और जिसके लिए वह कभी तैयार न था। अंत में लाचार होकर एक दिन सबेरे सबेरे खुद गुरुजी रंगा के घर पर आकर हाजिर हुआ। उसने रंगा को बुलाया। रंगा उसके सामने अपराधी की तरह सिर झुकाये आकर, अभिवादन करते हुए खड़ा हो गया।

-क्यों रंगा, तुम पढ़ने क्यों नहीं रात? क्या हुआ है तुम्हें? -गुरुजी ने उससे पूछा।

-मैं तो आना चाहता था, गुरुजी ; मगर माँ की बात टालकर मैं आ न सका! माँ ने मना जो कर दिया है।

-क्यों ? आखिर मना करने का कुछ तो कारण भी होना चाहिए !

-सो तो मुझे नहीं मालूम ।

-अच्छा, माँ कहाँ है।

-अच्छा, उन्हें बुलाओ तो ।

रंगा घर की ओर मुड़ा; पर उसे ज्यादा भीतर बढ़ना नहीं पड़ा । कल्याणी दरवाजे की आड़ में खड़ी, गुरु-शिष्य का संवाद सुन रही थी! वह बोल उठी-क्या है रंगा?

-गुरुजी बुला रहे हैं।

-जाओ कह दो, मैं आई, जो कुछ पूछना चाहते हैं, मुझसे पूछे ।

रंगा लौट पड़ा । रंगा और उसकी माँ के बीच जो बातें हुई, गुरुजी ने सुन ली थीं । इसलिए रंगा के कहने के पहले ही गुरुजी बोल उठा-रंगा कई दिनों से पाठशाला नहीं जाता, क्या आपने मना कर दिया है?

-हाँ, मना नहीं करूँगी, तो क्या अपने बेटे की पीठ फुड़वाऊँगी ! आपको फीस देती हूँ पढ़ाने के लिए, कुछ मारने के लिए नहीं ।

गुरुजी ने कल्याणी को दरवाजे की आड़ से कहते हुए ये बातें सुनी । उसे आज स्पष्ट मालूम हुआ कि रंगा क्यों रोक रखा गया है । वह मुस्कराया और कुछ क्षण तक सोचते रहने के बाद बोल उठा-जरूर आप फीस देती हैं पढ़ाने के लिए-मारने के लिए नहीं ! सो तो मैं भी जानता हूँ मगर कभी-कभी बच्चों को अदब के लिए मुझे मारना भी पड़ता है । पढ़ाना सिफ लड़कों को अक्षरों का सिखाना ही नहीं है; बल्कि उसके सुधार के लिए, उसकी चाल-चलन के लिए भी गुरुजी जवाबदेह होते हैं । लड़कों के बनने-बिगड़ने की जवाबदेही आखिर मुझपर है और इसकेलिए मुझे कभी-कभी बेंत भी चलानी पड़ती है । मगर उस बेंत में भी मेरा स्नेह ही छिपा रहता है, यह आपको समझना चाहिए ।

कल्याणी ने सारी बातें सुनी; मगर गुरुजी ने जो कुछ कहा था, उससे उसके मन को संतोष न हुआ । वह बोल उठी-मैं सारी बातें मानती हूँ । मैं पढ़ी-लिखी तो हूँ नहीं; मगर इतना जरूर कहना चाहती हूँ कि, लड़के मार

खाकर बनते नहीं, और ज्यादा बिगड़ जाते हैं। आप इनका सुधार बेंत के भरोसे नहीं कर सकते। मानती हूँ बेंत से भी वे डराये-धमकाये जा सकते हैं; मगर पीठ की चमड़ी उड़ेल कर नहीं।

गुरुजी को इन बातों का उत्तर देते न बना। वह अपने-आपको बहुत ही अधिक लज्जित अनुभव करने लगा। उसे लगा कि जैसे आज वह अपराध में पकड़ा गया हो! गाँव के लड़कों में ऐसा कोई नहीं था, जिसके घर से इस तरह की बातें उसे सुननी पड़ी हां, मगर जब उसने पाया कि वह आज एक स्त्री के सामने पराजित हो रहा है, तब उसे अपनी करनी पर बड़ा पछतावा हुआ; मगर उसे चुपचाप पड़े रह जाना अच्छा न जंचा। इसलिए वह विनम्र होकर बोल उठा-खैर, मुझसे ऐसा हो गया जरूर; मगर मेरी नीयत यह नहीं थी कि इसकी पीठ का चमड़ा उड़ेल दूँ। अब से आपको इस बात की शिकायत करने का मौका मैं नहीं देना चाहता! इस बार जो-कुछ हो सका, उसके लिए मुझे खेद है। क्या आप मुझे क्षमा न करेंगी?

कल्याणी का रोज ठंडा पड़ गया! वह अपनेघर से गुरु जी का नाम सुनकर बड़ी बिगड़कर आ खड़ी हुई थी; पर गुरुजी के शांत, शिष्ट और विनम्र वचनों से उसे शांति मिली और उसे अब विश्वास हो गया कि गुरुजी उसके रंग पर सदेव सदय दृष्टि रखेगा, पुचकारकर पढ़ायगा, मारेगा नहीं। उसके मँह से गुरुजी के प्रति कुछ तीखे वचन निकल गये थे। इसके लिए वह आप-ही-आप लज्जित हो उठी और उसी लज्जा-मिथित स्वर में बोली इसमें क्षमा की कौन-सी बात है गुरुजी! और खेद काहे का। मैं तो रंगा को आपके हाथ सौंप चुकी हूँ। आप इसे आदमी न बनायेंगे, तो कौन बनायगा इसे! आज 'वह' होते, तो आपकी खातिर करते, आपको खुशकर विदा करते; मगर मेरे पास है ही क्या और मैं आपको खातिर ही क्या कर सकती हूँ। गरीब मानुस ठहरे हम ! आपसे इतना ही निहोरा है कि रंगा को आप आदमी बना दीजिए।

गुरुजी के कोमल हृदय पर कल्याणी की बातें जा लगी। वह मन-ही-मन सोचने लगा कि रंगा की माँ-जैसी स्त्रियाँ कितनी विरल हैं! ऐसी स्त्रियों के दुलारे लड़कों को आदमी बनाने का भार उन-जैसे गुरुओं पर ही

तो है ! वह जरूर रंगा को आदमी बनायगा । पढ़ने में रंगा कुछ बुरा भी तो नहीं है; मगर थोड़ा शरीर है-पाजी है और यह तो होना ही चाहिए । लड़के शरारत न करेंगे, तो और कौन करेगा? और यही तो उसकी उम्र है शरारत करने को । वह अधिक सोच न सका । उसका हृदय तरंगायित हो चुका था, इसलिए वह बोल उठा-आप बेफिकर रहिए; रंगा का भार मुझपर जरूर है और मैं इस भार को अपने ऊपर ले चुका हूँ । मैं इसे मारूँगा नहीं और जिस तरीके से यह चल सकेगा, उसी तरीके से इसे चलने दूगा । अच्छा, अब इजाजत दीजिए, लड़के मेरी गैर हाजिरी में ऊधम मचा रहे होंगे ।

गुरुजी ने फिर रंगा से कहा- अच्छा रे रंगा, चलो चलें, कहाँ है तुम्हारा बस्ता और सिलेट !

रंगा ने अपनी माँ की ओर देखा और कल्याणी ने गुरुजी की ओर । फिर वह बोल उठी-लिवाते जाइये गुरुजी !.....और हाँ, रंगा, ले आ घर से सिलेट-वस्ता और चले जाओ इनके साथ !

रंगा घर के भीतर आया और अपना बस्ता और सिलेट लेकर निकल पड़ा । निकलने के समय उसकी माँ ने कहा-अरे, अभी तो, तुमने मँह भी नहीं जुठाया, जरा ठहरकर चना-चबेना खा लो । रंगा जरा ठिठक गया, पर तुरत वह बोल उठा-काफी देर हो चुकी है अम्मा, और दरवाजे पर गुरुजी खड़े हैं । अभी मैं कुछ भी नहीं खाऊंगा । और, वह विना कुछ खाये पिये, गुरुजी के पास आ पहुँचा और गुरुजी उसे साथ लेकर पाठशाला की ओर चल पड़ा ।

रंगा की माँ और गुरुजी से जितनी बातें हुई थीं, रंगा ने सारी बातें सुनी थीं । और उन बातों से वह इस नतीजे पर आ पहुँचा कि गुरुजी को उसके लिए उसकी माँ की बड़ी खुशामद करनी पड़ी-यह अच्छा न हुआ । पर, इतना लाभ तो जरूर हुआ कि उसे अब वे न मारेंगे । और अगर अबसे फिर वैसा हुआ, तो यह निश्चय है कि माँ हर्मिज उसे पाठशाला न भेजेगी । इससे रंगा को उदंडता और प्रबल हो उठी और वह गर्व में फूल उठा । वह तो यों बदमाश था ही । ऊपर से माँ के द्वारा प्रभावित हुए गुरुजी से जब उसे अभयदान मिल ही चुका, तब फिर क्या कहना । चलने में मानो उसके पैर जमीन पर पड़ते ही न थे । वह चल रहा था जैसे उसने विजय पाई हो, जैसे

उसे खुला खजाना हाथ लग गया हो-चल रहा था वह सीना ताने, गर्दन उठाये, विहंसती हुई आँखों से, गर्वोन्नत मस्तक लिये! जब वह पाठशाला के पास पहुँच गया, तब लड़कों में शोर मच गया-देखो -यह देखो, रंगा आज किस तरह चहकता-मचलता जा रहा है। मगर कई दिनों से हजरत पाठशाला से गैरहाजिर रहे हैं! उस गैरहाजिरी का मजा तो अभी-अभी मिल जायगा, जब गुरुजी आ जायेंगे।

गुरुजी एक आदमी के साथ बातें करने के कारण पीछे रह गये थे, पर रंगा उमंग में अकेला ही पहले पहुँच रहा था। उसने पहुँचते ही लड़कों की बातें सुन लीं। इसलिए वह छूटते हुए बोल उठा-मजे तो काफी उठाता रहा हूँ भाई; मगर यहाँ का मजा तो तुमलोगों के लिए ही छोड़ बैठा था। तुमलोग बैठे-बैठे दुम हिलाया करो। रंगा तुम-जैसों में नहीं है। लाख खुशामदें करनी पड़ी हैं गुरुजी को। तब तो बंदा हाजिर हुआ है। याद रखना। गुरुजी मेरा एक बाल बाँका नहीं कर सकते, मारना तो उनकी औकात के बाहर की बात है। समझे?

और रंगा अपनी छाती फुलाये अकड़कर अपनी जगह पर आ बैठा। सभी लड़के उसकी ओर टकटकी बाँधे देखने लगे। रंगा ने भी एक बार चारों ओर दृष्टि फेंकी, जैसे वह आँखों-आँखों में कह देना चाहता हो कि वह अजेय है। कोई उसका कुछ भी नहीं कर सकता। लड़के समझ गये कि रंगा जो-कुछ बोल चुका है, वह झूठ नहीं हो सकता। रंगा की माँ ने जरूर गुरुजी को खरी-खोटी सुनाई होगी।

और इसी समय गुरुजी आ पहुँचे। जो लड़के तिरछे बैठे थे, वे सीधे हो गये; जो शांत थे, वे जोर-जोर से पढ़ने-लगे। इसी तरह लड़कों के पढ़ने के कोलाहल से पाठशाला का छोटा-सा मकान गूंज उठा।

पढ़ाई का काम शुरू हुआ। गुरुजी ने किसी को पुराने पहाड़े सुनकर नये पहाड़े का पाठ दिया; किसीके हिसाब की गलती सुधारकर उसे समझा दिया कि कहाँ पर गलती थी; फिर उसी तरह का दूसरा हिसाब दिया गया; किसीके स्लोट पर छ-छ: लाइनों का जोड़ लिख दिया जोड़ने को इसी तरह किसीको कुछ और किसी को कुछ। हिसाब और पहाड़े का पाठ दो घंटे में

शेष हो गया। अब पुस्तकें पढ़ाने की बारी आई। छोटे-छोटे बच्चों को, जो नोचे दर्जे के थे, एक-एककर अपने पास बुलाया और किसीको आकार, किसीको इकार, किसीको उकार और किसीको औकार की मात्राएँ दिखाते हुए पाठ पढ़ा दिया। फिर दूसरी श्रेणी वाले को पढ़ाया। इस तरह कई श्रेणियों के लड़कों को पढ़ाकर आखिर में चौथी श्रेणी के लड़कों को किताबें निकालने की आज्ञा दी गई। रंगा उसी श्रेणी का छात्र था। दर्जे के सभी लड़कों ने पाठ के पृष्ठ निकाले। रंगा ने भी वह पृष्ठ खोलकर देखा और पाया कि उसकी गैरहाजिरी में तीन पाठ आगे पढ़ा डाले गये हैं। वह मन-ही-मन अपने-आप पर खीझ उठा, उसे लगा कि वह अगर गैर हाजिर नहीं रहता, तो ये तीन पाठ यों छूट नहीं गये होते। उसे तो अब उन तीनों पाठों को पढ़कर ही अपने दर्जे के लड़कों के साथ चलना पड़ेगा। वह जरा चिंतित हो उठा; उसकी आकृति कुछ क्षण के लिए कुम्हता उठी। यों तो रंगा ने अपने पढ़ने की कभी चिन्ता न की और न कभी उसने ध्यान ही दिया; पर आज सबसे पहले अपने-आपपर उसे रंज हो आया। वह मन मारकर जाने क्या कुछ सोचने लगा।

गुरुजी ने एक-एककर सभीका पाठ सुना और किसीका पूरा, किसी का अधूरा और किसीके प्रति अनुमानकर गुरुजी ने नये पाठ के पन्ने खोलने को कहा; पर इसी समय रंगा की याद हो आई और गुरुजी बोल उठा-देखो, रंगा, तुम्हें अब इनलोगों के साथ-साथ चलने में कठिनाई होगी। तीन पाठ इधर पढ़ाये जा चुके हैं और अभी मैं चौथा नया पाठ इन्हें पढ़ाऊंगा; मगर तुम्हें तो पिछले पाठ को ही पढ़ना होगा! अनी तुम उसी पाठ को देखो तब तक इन सबको पढ़ा लेता हूँ।

गुरुजी पढ़ाने को तैयार हुआ और सभी लड़के नये पाठ के पन्ने खोलकर पढ़ने को उत्सुक दीख पड़े। रंगा ने सभीको देखा, उसने गुरुजी की बातें भी सुनीं। वह कुछ देर तक सोचता रहा और सोचते-सोचते उसके मँह से अनायास ही निकल गया-मैं भी वही पाठ पढँगा, गुरुजी !

दर्जे के सभी लड़कों ने उसकी ओर देखा और गुरुजी ने भी। कुछ लड़कों के ओठों पर व्यंग की हँसी थी, जैसे वे कहना चाहते हों कि वाह, पीछे का तो पढ़ा नहीं, आगे का पढ़ने को तैयार हो गये! अकल तो देखो भला!

मगर गुरुजी के ओठों पर एक सहज सरल मुस्कान खेल गई और वह बोल उठा-पीछेवाले पाठ तो पढ़ा नहीं रंगा, यह पाठ कैसे पढ़ोगे! -हाँ, मैं यही पाठ पढँगा, गुरुजी ।

-मगर पिछले पाठ?

-उनके लिए आप फिकर न करें! जब आप उन्हें सुनना चाहेंगे, मैं सुना दूँगा ।

-जब की बात नहीं; अगर तुम मुझे यह विश्वास दिलाओ कि कल यदि इस नवे पाठ के साथ उन पाठों को सुना दोगे, तो मैं खुशी के साथ तुम्हें भी यह पाठ पढ़ाये देता हूँ। हो तुम तैयार?

-हाँ, तैयार हूँ; आप कल ही सुन लीजिए ।

गुरुजी को आकृति पर एक मधुरिमा खेल गई, और गर्व से उसकी आँखें चमकने लगीं। वह बोल उठा-अच्छा, तो यही होगा! मगर उन पाठों को तुम समझ सकोगे कैसे?

-जहाँ नहीं समझूँगा, निशान लगा दूँगा, फिर आपसे, आपके डेरे पर आकर, पूछ जाऊँगा ।

-गुरुजी ने खुश होकर कहा-ठीक कहा, आना डेरे पर; मैं बता दूँगा । पढ़ाई शुरू हो गई और सभी लड़कों के साथ रंगा ने भी नया पाठ पढ़ा ।

सभी लड़के बड़े विस्मित हो उठे और उन्हें बड़ा कुतूहल भी हुआ कि रंगा चार-चार पाठ एक ही साथ कैसे याद कर सकेगा? यह तो होने को नहीं! कल यादकर आ नहीं सकेगा वह और फिर गुरुजी से जरूर पीटा जायगा! ठीक है, वह पीटा जाना ही चाहिए ! मगर, गुरुजी को पूरा विश्वास हो गया कि रंगा अपने सभी पाठों को कल जरूर सुना देगा!

पाठ समाप्त होने के बाद छुट्टो की घंटी बजी और रंगा सभी लड़कों के साथ हँसते हुए पाठशाला से बाहर निकल पड़ा ।

(सात)

कुछ महीने बीत गये। रंगा को जाने क्यों इन दिनों पढ़ने की ओर अत्यधिक रुचि बढ़ गई। वह अपने दर्जे में किसीसे कम रहना जैसे जानता

ही न था। सदैव वह सबसे आगे ही रहा। फिर भी उसकी चपलता रुकी नहीं, वह जैसी उच्छृंखलता से चला करता था, वैसा चलता रहा। पर कल्याणी को इन दिनों अपने रंगा से किसी तरह कोशिकायत न रह गई। उसने समझ लिया कि उसका रंगा उसकी तकलीफों को एक दिन जरूर दूर करेगा। और इस विचार से विचार से उसके हृदय में परम तृप्ति का अनुभव हुआ।

पर अचानक एक दिन रंगा एक अवांछित व्यापार कर बैठा। कल्याणी तो समझ रही थी कि रंगा इन दिनों खूब मन लगाकर पड़ रहा है। पर उसे क्या पता था कि जो झंझा बहनेवाली है, वह अभी सुशुप्त अवस्था में पड़ी हुई है, जो किसी दिन अवश्य फूटेगी। कोई उसकी गति में व्यवधान नहीं डाल सकता। और रंगा ठीक उसी झंझा की तरह अपनी प्रबल गति में बह चला।

बरसात खत्म हो गई थी। अगहन का महीना था। उन दिनों कोसी अपनी साधारण गति में आ गई थी। उससे निकले हुए एक खाल में मछुओं ने जाल डालना शुरू कर दिया था और नित्य वे मनों मछलियाँ मार लाते थे।

गाँव की हाट में उनको ऊचे दाम पर बिक्री होती और फेरी लगानेवाले मछुए गाँव-गाँव में फेरी करके भी काफी मछलियाँ बेच लिया करते। एक दिन एक मछुए से मछली के मोल-तोल में रंगा से झगड़ा हो गया। रंगा ने एक बड़ा-सा रोहू टोकरी से हाथ में उठा लिया और मछुए से उसकी कीमत पूछी। उसने बतलाया कि दस आने सेर के भाव से वह रोहू दिया जायगा। रंगा ने कहा कि दस आने अधिक होते हैं, वह सात आने सेर के भाव से दाम दे सकता है। इसपर मछुआ जरा तैश में आ गया और उसके हाथ से मछली छीनकर अपनी टोकरी में रखते हुए बोला-चला है रोहू खाने! पास में पैसा नहीं, नाम धनपत! रंगा को यह बात जा लगी, वह रोष में उबल पड़ा और मछुए की ओर घूसा तानकर बोल उठा-सारी गर्मी निकाल डालूँगा साले! क्या समझता है तू? दुम में रख ले मछली, मैं इसका मजा चखा दूँगा। हाँ, समझ लेना।

मछुआ भी बिगड़ उठा। हाथापाई की नौबत आ पहुँची। लोग जुट गये। सभीने रंगा को ही द्वोषी ठहराया। मछुआ चलता बना; पर रंगा कुछ देर

तक उसकी ओर उसी रोषपूर्ण दृष्टि से ताकता रहा , उसके बाद बोल उठा-ले जा साले, देख लूँगा तेरी अकड़। और वह अपनेघर की ओर चल पड़ा ।

और ठीक दूसरे दिन रात को रंगा अपने तीन साथियों के साथ सलाह पक्की कर, माँ को सोए हुए छोड़,घर से निकल पड़ा । नदी के किनारे छोटो डोंगी पड़ी थी, उसपर समी सवार हुए । एक ने पतवार संभाली और रंगा ने लगा उठाया, डोंगी नदी में बह चली । और जहाँ से वह खाल निकला था, उसके भीतर डोंगी चल पड़ी ।

उस समय मछुए किनारे पर खा-पीकर सो रहे थे । उन्हें भोर को उठकर जाल संभालना था; पर रंगा वहाँ छिपकर दो ही बजे जा पहुंचा और बहुत आहिस्ता आहिस्ता उसने अपने साथियों के साथ जाल उठाया । बड़े-बड़े रोहू-कतला उसमें फंसे हुए थे । उन मछलियों के छपाछप से और लड़के तो डर गये; मगर रंगा जरा भी न डरा । बेखौफ होकर वह कानों-कानों में बोला-तुमलोग जाल को ऊपर ताने रहो, मैं मछलियों को छाने लेता हूँ । लड़कों ने ठीक वैसा ही किया । रंगा से जितना संभव हो सका, बड़े-बड़े रोहू अपनी डोंगी में छानकर रखे और उसके बाद वह बड़बड़ता हुआ बोल उठा-ले साले, मजे चख! और उसने उस जाल को खोल दिया । फिर भी उसका रोष दबा नहीं; उसने हसिये से उस जाल को कई टुकड़े करके पानी में छोड़ दिया और अपने साथियों से कहा-टहला, पतवार थाम, और लगा मैं लेता हूँ । रामू, सौर बिरजा,-तुम दोनों मछलियों को देखते रहो, कहीं वे उछलकर भाग न निकलें । देखो, अगर एक भी भागी, तो याद रखना, तुम दोनों को भी पानी में धकेल दूँगा ।

रामू और बिरजा रंगा की बातें सुनकर डर गये । वे जानते थे कि रंगा कोई झूठ नहीं कह रहा है, वह ऐसा कर सकता है । तभी सोचकर रामू बोल उठा-ऐसा न कहो रंगा, हम जगते रहेंगे; मगर नींद लग रही है, डोंगी जोर से चलाओ ।

रंगा ने उसकी बातें सुनी और समझा कि रामू डर रहा है । वह ठहाका मारकर हँस पड़ा और हँसते-हँसते ही बोल उठा-तुम डर गये रामू!

अरे, कितने बेबकूफ हो तुम ! कैसे तुम्हें विश्वास हो गया कि मैं तुमदोनों को नदी में डाल दूगा ?

रामू और बिरजा डर तो जरूर गये थे, पर रंगा की बातें सुनकर उन्हें तसल्लो हो आई और बिरजा अपने मन का भाव छिपाते हुए बोल उठा-नहीं, रंगा, तुम से डर काहे का ? मगर नींद आ रही है, भाई, जरा तेजी से खेते चलो !

रंगा ने मछुए का बदला चुका लिया था, इसलिए उसकी खुशी जैसे थमती ही नहीं थी । वह आनंद के आवेश में बोल उठा-कैसा मजा आ रहा है रामू ? अरे, गिन तो डाल जरा, कितने रोहू हाथ लगे ?

रामू ने उसे अँधेरी रात में मछलियों को गिनकर बताया-नौ है रंगा !

-नौ ! -रंगा खुशी के आवेश में बोल उठा-वाह, भाई, वाह ! उस दिन एक रोहू के लिए मैं तरसकर रह गया, साले ने मेरे हाथ से छीन लिया उस दिन । क्या बताऊँ-मैं कितना दुखी था उस वक्त; मगर आज एक के बदले नौ रोहू हाथ लगे !

रंगा बोलकर जरा रुका ही था कि टहला बोल उठा-तुम तो सिर्फ नौ मछलियों को ही गिनते हो; पर यह काहे नहीं गिनते कि जाल में फंसे हुए माछों को भगा दिया और जाल भी काट-कूटकर नदी में भंसा दिया । इतनी नुकसानी क्या कम है ?

रंगा टहला के सुझाव पर और भी खिल उठा और बोला-तभी तो-तभी तो-टहला ! साले जब उठकर जायेंगे जाल उठाने और मंसवे बॉधकर जब वहाँ का हाल देखेंगे, तब बच्चे को याद आयगी ! क्यों, बिरजा ?

बिरजा ऊंध रहा था; मगर ज्योही उसका नाम उसे सुन पड़ा, वह चौंक उठा और उसने विना समझे-बुझे कह डाला-मछलियाँ भागी कहाँ हैं रंगा, मैं जो पकड़े हुए हूँ ।

बिरजा की बातें सुनकर सभी ठहाका मारकर हँस पड़े और हँसते हुए ही रंगा बोल उठा-शाबाश पट्टे । खूब कहा !

वे सभी इसी तरह की बातों में इतने तल्लीन हो गये थे कि उनकी डोंगी खाल से कब निकली और कहाँ जा पहुँची, कुछ पता न चला । रंगा

और टहला पतवार थामे खेते जा रहे थे और रामू और बिरजा मछलियों को अगोरे बैठे थे। डोंगी अपनेघाट को पारकर बहुत आगे निकल चुकी थी। पर जल की धारा में डोंगी चलाते-चलाते टहला परेशान हो उठा था और सभी जल की नमी पाकर थरथरा रहे थे। जबतक गप्पों में वे सब उलझे रहे, किसीने सर्दी महसूस न की; पर जब उनलोगों को हुआ कि घंटों हो गये; मगर घाट का अबतक कहीं पता नहीं चलता, तब रामू को घबराहट हुई और वह जरा भयभीत होकर बोल उठा-अब कितनी दूर घाट आने को बाकी है रंगा? रंगा ने पतवार थामकर चारों ओर दृष्टि दौड़ाई और उसे बोध हुआ कि उसकी डोंगी उसके गाँव से दो कोस की दूरी पर पहुँच चुकी है। वह जरा घबरा गया; पर तुरत अपने को सचेतकर बोल उठा-हमलोग अभयपुर के करीब-करीब पहुँच चुके हैं रामू ! यह बड़ा बुरा हुआ ! उधर देखो, भोर भी होने को आया! अगर फिर से डोंगी अपने घाट की तरफ दौड़ाई जाय, तो वहाँ पहुँचते-पहुँचते सुवह हो जायगी। उस वक्त घाट पर गाँव के आदमी नहाते हुए दीख पड़ेंगे और यह बहुत बुरा होगा कि वे सब हम लोगों को चोर समझ लेंगे और ऐसा भी हो सकता है कि मछुए अपने जाल को न पाकर इस उम्मीद में घाट पर पहुँच गए हों कि जिसने यह बदमाशी की है, उसे पकड़ा जाय!

-तब? -रंगा कीओर देखते हुए सभी एक स्वर में बोल उठे ।

-तब? यही तो मैं भी सोचता हूँ भाई! हमलोग बातें करने में नहीं लग जाते, तो ऐसा नहीं होता! अभी गाँव लौट चलना बड़ा खतरनाक होगा, सारा मजा किरकिरा हो उठेगा ! मगर मजा उड़ाने की एक तदवीर मुझे याद हो आई! अगर सभीका विचार हो, तो वैसा किया जाय, कहो तो कहूँ।

-कहो, क्या कहते हो? -टहला ने उत्सुक होकर पूछा और सभी रंगा की ओर देखने लगे।

-मेरा खयाल है, अभयपुर यहाँ से पौन कोस के करीब होगा। वहाँ जाकर रहना भी ठीक नहीं और जाकर ठहरेंगे कहाँ, किसके यहाँ ? मगर आगे थोड़ी दूर पर, वह देखो जोघने-घने पेड़ दीख पड़ते हैं, गोनूबाबा का स्थान है, वहाँ पर अनदिने कोई आता-जाता भी नहीं, सिर्फ सालभर में एक

बार वहाँ पूजा की जाती है और एक दिन केलिए मेला भी लगता है। वहीं हमलोग चल चलें। वहाँ फूस केवर भी बने हैं, एक तालाब भी है, वहीं हमलोग आज चलकर मजा उड़ायँ। मछलियाँ हैं ही और इतनी मछलियों से सब-कुछ हो जायगा। वहीं लकड़ियाँ इकट्ठी कर ली जायगी। एक बड़ा-सा रोहू पकाया जायगा। और खूब मजे उड़ाकर खाया जायगा ! शाम जब होने को आयगी, तब हमलोग वहाँ से चलकर घर पहुँच जायेंगे।

-मगर दिनभर भागे-भागे रहने पर मेरे बाबूजी मेरी जान लेकर छोड़े-रामू बड़ी अधीरता पूर्वक बोल उठा-उनका गुस्सा तुम्हें मालूम नहीं है, रंगा? आज न तुम्हारे साथ मैं आया होता और न इस मुसीबत में पड़ता।

-हाँ, ठीक कहते हो राम-ठहला ने हामी भरी और आकाश की ओर देखते हुए वह बोल उठा-देखो, सुबह होने-होने को है और अभी कुछ नहीं बिगड़ा है। मुझे तो छोड़ ही दो, रंगा, मैं घर की तरफ चल पड़ता हूँ, दिन उठते-उठतेघर पहुँच जाऊगा! मैं बाज आया मछली खाने से। अब से मैं कभी तुम्हारे कहने में न आऊँगा ! कहीं मछुआ गाँव पहुँच गया और कहीं उसे यह पता चल गया कि मैं भी मछलियाँ उड़ाने में शरीक था, तो मेरे बड़े भैया मुझे जीते जी न छोड़ेंगे। क्या कहते हो रामू, चलोगे?

रंगा अपनेको कुछ देर संयत रखकर उन दोनों की बातें सुनता रहा; पर वह अपने को जब्त न रख सका। कुछ क्षणों के बाद उसकी भवों पर बल पड़े और रोष में वह इतना उबल पड़ा, जैसे वह प्रलय मचाकर ही छोड़ेगा। पर उसने ऐसा कुछ किया नहीं। सोचने लगा कि अगर इन दोनों को जाने की इजाजत दे दी जाय, तो विरजा भी रुकेगा नहीं चल देगा उन दोनों के साथ। फिर अकेले मुझे ही रुक जाना पड़ेगा। मछुओं को अंदाज लग गया होगा कि मैंने ही यह बदमाशी की है। क्योंकि उन्हीं मैं से वह भी है, जिसके साथ मुझे झगड़ा हुआ था! और अगर इनलोगों से यह बात पूछी गई और इन्हें मारने-पीटने को धमकाया गया, तो सारी घटनाएं उनके सामने ये लोग उगल देंगे और वैसी हालत में सारा दोष मेरे मत्थे मढ़ा जायगा।

रंगा कुछ क्षण तक दुविधे में पड़ा रहा। कभी उसे होता कि क्यों न वह भी इन्हीं लोगों के साथ अभी घर को चल दे और कभी होता कि जिन मछलियों के लोभ में सारी रात मुसीबतों के साथ जूझता रहा, उनका मजा

लिये बगैर कैसे लौटा जाय! वह चुपचाप कुछ क्षणों तक उन्हीं बातों में उलझा रहा। इधर उसे चुपी साथे देखकर राय और टहला ज्यादा घबरा उठे। उन्हें रंगा का डर दिल में समाये हुए था। वे जानते थे कि रंगा का साथ निवहना कम मुश्किल नहीं। वह जैसा बदमाश है कि जीते-जी अब भी डोंगी से नीचे धकेल दे सकता है। पर भगवान को धन्यवाद ! उनसब की चिन्ता-खासकर पानी में धकेलने की चिन्ता-जाती रही, जब रंगा बोल उठा-तुमदोनों की बातें मैं कुछ क्षण के लिए माने लेता हूँ, रामू ! मगर हमलोगों की कठिनाई इतने से ही दूर नहीं हो जाती। मुझे तो मछुओं से बदला चुकाना था और मैं उसमें कामयाब भी हुआ। मगर तुमलोगों ने जिस मतलब से मेरा साथ दिया, वह, अगर अभी हमलोग घर को लौट चलें तो, पूरा हुआ नहीं! और साथी का मतलब यह नहीं होना चाहिए। जो बीतेगा, वह सबपर बीतेगा! तुम्हें क्या यह नहीं मालूम कि मेरी माँ पर कैसी बीतती होगी, जब वह सोकर उठी होगी! और मुझपर कितनी मार पड़ेगी, जब मछुओं से यह मालूम होगा कि मैंने और लड़कों को साथ लेकर जाल उखाड़ा है, मछलियाँ भगाई हैं और मछली न देने का, इस तरह, बदला चुकाया है! यों तो अब जो कुछ होना होगा, होकर ही रहेगा! उससे अब डरने से फायदा ही क्या हो सकता है ! सच तो यह है कि जो होने को है, होने दो। हमसब जैसे साथ-साथ आये हैं, वैसे साथ-साथ मजा भी उड़ायें और उसके बाद हमसब साथ-साथघर को भी चलें। मैं जो कुछ सोच सका, तुमलोगों के सामने रख दिया, अब जैसा विचार हो, सुना सकते हो! सोच लो खूब अच्छी तरह !

इस पर सभी गंभीर होकर कुछ क्षण तक सोचते रहे। उसके बाद अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार थोड़ी देर तक तर्क-वितर्क भी चलते रहे। आखिर, सर्वसम्मति से यही निश्चय हुआ कि अभी डोंगी यहाँ किनारे लगाकर छोड़ दी जाय और सभी दिन भर के लिए गोन्नबाबा के निश्चित स्थान पर पहुंचकर आराम करें, फिर मछलियाँ पकाई जाय और शाम होने के पहले गाँव की ओर चला जाय!

विचार काम में लाये गये। टहला पतवार चलाते-चलाते काफी थक गया था; पर रंगा ने अपने बल पर डोंगी को किनारे लगाया। सभी उतर पड़े।

दो-दो मछलियाँ उन तीनों ने उठाई और रंगा ने अकेले तीन ! इस तरह चारों जने रास्ते भर उन नबों मछलियों को बारी-बारी से बदलते हुए गोनूबाबा के थान (स्थान) पर पहुँचे ! रंगा को छोड़कर उन तीनों ने देखा कि जिस स्थान पर वे लोग आ पहुँचे हैं, वह बड़ा भयानक है ! चारों ओर जंगलों से बीच घिरा हुआ, बीच में ईटों का छोटा-सा मंडप और उसकी कुछ दूरी पर एक झुका हुआ फूस का मकान ! रंगा को छोड़कर वे तीनों डर के मारे इतने घबरा उठे कि उन-सब की बोलती बंद हो गई । पर रंगा ने इस बात को ताड़ लिया और हठात् ठहाका मारकर हँसते हुए बोल उठा-तुमलोग इतने डरपोक हो ! अगर मैं जानता होता कि, तुमलोग इतने डर जाओगे, तो मैं अकेले चला आता; मगर तुमलोगों को साथ न करता ! अरे, तुमलोग क्या जानो--- गोनूबाबा कितना जीता-जागता देवता है ! जो आदमी इनकी शरण में आ जाता है, उसकी सारी विपदा हवा हो जाती है । यहाँ तक कि अगर किसी को साँप काट ले और उसे यहाँ लाकर छोड़ दिया जाय, तो वह कभी मर ही नहीं सकता । हमलोग भी आज उनकी शरण में आ गये हैं । हमारा अब कोई एक बाल भी बांका नहीं कर सकता ! घबराने की कौन-सी बात है बाबा के सामने ! आओ, पहले हमलोग मंडप में चलकर बाबा को सिर नवाए !

और चारों जने मिलकर मंडप की ओर बढ़े और सभीने बढ़े भक्ति-भाव से बाबा के सामने सिर नवाये ।

(आठ)

उस दिन गोनूबाबा का वन्यप्रदेश कोलाहल से परिपूर्ण हो उठा । जहाँ मुश्किल से सालभर के भीतर दो-चार दिन ही ऐसे रात थे, जब वह स्थान अपनी गुण-गरिमा से मुखरित हो उठता था । वहाँ आकर रंगा ने देखा कि वह मंडप झाड़ू-बहाड़ू के बिना जंगल हो रहा है ! उसे यह अच्छा न ज़ँचा ! वह अबतक उस स्थान के बारे में लोगों के मुंह से जैसी प्रसिद्धि सुनता आ रहा था, आज जब वह वहाँ पहुँच गया है, तब उसके हृदय में आप-से-आप भक्ति-भावना का श्रोत उमड़ पड़ा । और उसी भक्ति के आवेश में, सभीको

सुस्ताने केलिए अलग छोड़, छप्पर से फूस का एक मूटा लेकर झाडू बनाया और अपने हाथों उससे पहले मंडप में झाडू लगाया और इस तरह उस स्थान को साफ-सुथरा देखकर उसका मन खिल उठा; पर उस स्थान में वह मछलियों का भोग कैसे लगायगा-जब उसे इसका खयाल हो आया, तब उसने फिर से झाडू हाथ में संभाला और वहाँ से चलकर फूस के घर में आ पहुँचा और अपनी धोती को अच्छी तरह सँभालकर सालभर के जमे हुए गर्द-गुवार को दूर हटाने में लग गया। इस तरह अपने लिए ठहरने की जगह को मनुष्य के रहने योग्य बनाकर रंगा ने अपने-आपको देखा और पाया कि धूल-धक्कड़ों से उसका सारा शरीर भर उठा है। तब उसे खयाल हो आया कि मंडप के पिछवाड़े में एक छोटा-सा तालाब है, जहाँ पर दर्शनार्थी आकर स्नान करते हैं और इसके बाद बाबा के मंडप में आकर पूजा-पाठ! उसने भी वही चाहा और वैसा विचारकर वह अपने साथियों के पास आ पहुँचा।

दिन निकल आया था, चारों ओर धूप बिखर पड़ी थी। वे तीनों रात की थकावट से चूर होकर जमीन पर लेटकर खुमारी ले रहे थे। रंगा ने आकर देखा और देखा कि वे तीनों, मछलियाँ एक जगह इकट्ठी छोड़कर, बेखबर सोये पड़े हैं, और उनके मौह पर अब भी भय की रेखाएँ खिंची हुई हैं। उन रेखाओं को देखकर रंगा आप-ही-टाप हँस पड़ा और उसके मौह से अनायास निकल पड़ा-ये लोग कैसे डरपोक हैं! इनलोगों से दुनिया का कोई काम नहीं चल सकता! आह! ये कैसे निरीह प्राणी हैं!

रंगा कुछ देर तक खड़े-खड़े, जाने क्या सोचता रहा और उसी तरह उनलोगों की ओर देखता रहा; पर उसे बोध हुआ कि वे लोग जलदी उठनेवाले नहीं हैं! उससे अकेला मन-मारे हुए खड़ा न रहा गया। मनमें शरारत भर आई और अचानक जोर से वह चिल्ला उठा-शेर! शेर!!

और शेर की आवाज उन सोनेवालों के कानों पड़ी। पड़ना था कि सभी चिह्नकर उठ पड़े और आँख मूँदे ही, जिधर जिसके पैर बढ़े, भाग निकले। पर ज्यादा दूर वे लोग बढ़ भी नहीं पाये कि रंगा का अद्व्युत्त सुन पड़ा। सभीने पीछे की ओर मुड़कर आखें फॉड़-फॉड़कर देखा कि रंगा एक जगह

खड़े-खड़े, पेट पकड़कर हंस रहा है। अब उन सबकी समझ में आ गया कि शेर-बेर कुछ नहीं है, जो कुछ है, वह रंगा की शरारत है! और जब सभी को मालूम हो गया कि रंगा ने यह शरारत की है, तब रामू बिगड़कर बोल उठा-गधे हो गधे, रंगा! इस तरह कहीं डराया भी जाता है! उठाना ही था, तो हमलोगों को झकझोर कर उठा देते! कौन तुम्हारा हाथ पकड़ता था?

रंगा को हँसी अबतक भी न रुक सकी थी। वह उसी तरह हंसते हुए बोल उठा-तुमलोग ऐसे जीव थोड़े ही ठहरे ! देखो जरा, दिन कितना चढ़ आया है ! मैंने मंडप में झाड़ लगाया, फिर इस घर को साफ किया, दुनिया भर की धूल साफ की और तुमलोग खराटि भरते रहे ! अगर मैं इस तरह न उठाता, तो तुमलोग हर्गिज उठने वाले न थे-चाहे कान के पास नगाड़ा ही क्यों न बजाया जाता। खैर, चलो, अब टट्टी-चट्टी से फुरसत पाकर तालाब में नहाया-धोया जाय और उसके बाद गोनूबाबा के मंडप में आकर सिर नवायें! फिर खाने-पीने का जुगाड़ करना होगा ! और सुनो-यहाँ आकर गोनूबाबा का पूजा-पाठ न करेंगे, तो हमलोगों के सिर से संकट हर्गिज नहीं टलेगा! और अगर इनको खुश कर लिया, तो समको-पौ बारह है ! कोई पूछेगा तक नहीं कि हमलोग कहाँ थे और क्या कर रहे थे !

-मगर पहनोगे क्या? -पलटा बोल उठा ।

-पहनेंगे क्या?—रंगा बोला-नहाकर धोती की आधी खूट अच्छी तरह निचोड़ देंगे, धूप तो तेज है ही ! जितनी देर में हमलोग बाबा की पूजा करेंगे, उतने में वह आधी खूट सूख भी जायगी। फिर धोती की वह खूट बदलकर पहन लेंगे।

इतने में बिरजा बोल उठा-एक ही साथ सबके जाने से कैसे बनेगा, मछलियाँ जो रखी हुई हैं ! इस जंगल का क्या ठिकाना ! कोई जानवर उठाकर ले भागे तो.....

-कोई नहीं लेकर भाग सकता है उन्हें ! तुमलोग तो गधे हो, कुछ समझते नहीं ! गोनूबाबा के थान से किसकी मजाल है, जो कुछ ले भागेगा ! पहले तो कोई ऐसी नीयत करके यहाँ आ ही नहीं सकता। अगर आ भी जाय और वैसी नीयत ही किसीकी हो जाय तो समझ लो, वह या तो अंधा

हो जायगा या उसके पाँव में कील ठुक जायगी! ठड़ा है बाबा को ठगना!

रंगा ने बाबा के महातम का जिस रूप में बखान किया कि वे सब प्रभावित हुए विना रह न सके ! उनसबके दिलों से डर जाता रहा और सभी श्रद्धा-भक्ति के आवेश में तालाब को ओर चल पड़े ।

सभी ने मँह हाथ धोया, स्नान किया और आधी धोती पहने और आधी ओढ़े हुए मंडप में आकर, पत्थर की मूर्ति में प्रत्यक्ष गोनूबाबा का अनुभव कर, बड़ी श्रद्धा-भक्ति से सिर नवाये और ‘जय हनुमान ज्ञान गुनसागर’ का पाठ कर सभीने परम तृप्ति का अनुभव किया ।

अब सभीको पेट की फिक्र हुई ! पलटा ने कहा-अब मुझे भूख लग आई है और यहाँ पर कच्ची मछलियों के सिवा कुछ है भी नहीं ! खिलाने का कौन-सा जुगाड़ करते हो रंगा ? जो कुछ करना है, कर डालो ! मछलियाँ पकेंगी कैसे ? लड़ियाँ तो सूखी पड़ी हुई हैं, चुनकर इकट्ठी कर ली जायगी । मगर जलेंगी कैसे ?

-हाँ, रे रंगा, ठीक तो कहता है ठहला ! - रामू बोल उठा ।

-क्या कच्ची मछलियाँ नहीं खाई जा सकतीं ? -रंगा ने हँसते हुए कहा ।

-तुम खा सकते हो ; मगर हमसे नहीं हो सकता-बिरजा ने गंभीर होकर कहा ।

-तो क्या तुम मुझे ‘अधोरी’ समझ रहे हो ? -रंगा ने उसकी ओर ताका ।

-बिरजा सकपका उठा । उसे लगा कि कहीं रंगा कुछ अंटसंट न सुना बैठे । इसलिए वह अपनी बात को संभालते हुए बोल उठा-सो तो मैं नहीं समझता ; मगर तुम्हारे गोनूबाबा हमलोगों का खाना जुटा दें, तो मैं जानू कि तुम्हारे बाबा बड़े उजागर हैं ! आखिर उनके करतब का पता भी तो लगे !

-हाँ, गोनूबाबा बड़े उजागर हैं ! इनका परताप तुम क्या जानो ! इनके दरबार में जो कोई भूखा-नंगा पहुँचता है, उसकी मुराद पूरी होती है ।

कोई यहाँ से दिल छोटाकर नहीं लौटता ! तुम देखते रहो, किस तरह खाने का जुगाड़ हो जाता है ! तुमलोगों में से कौन मेरे साथ चलता है ? यहाँ

से आध कोस पूरब आठ-दसघर का एक छोटा-सा गाँव है! वह मेरा देखा हुआ है। चले एक आदमी मेरे साथ और इधर दो आदमी तबतक लकड़ियाँ इकट्ठी कर रखें। मैं दो मछलियाँ साथ लिये चलता हूँ और उन्हींसे खाने का सारा सामान लिये आता हूँ ! कौन चलता है मेरे साथ ?

-मैं चलूँगा-टहला बोल उठा ।

--उठाओ दो मछलियाँ । -रंगा ने कहा-तुम रामू, लकड़ियाँ इकट्ठी करो और तुम भी विरजा ।

रंगा ने टहला को साथ कर लिया । टहला ने दो मछलियाँ सँभाली और वे दोनों चल पड़े ।

एकघंटा भी न बोता होगा कि रंगा टहला के सिर पर एक छोटी-सी पोटली रखाये आता दीख पड़ा । रंगा के एक हाथ में दियासलाई थी और दूसरे में तेल का छोटा-सा चुकड़ और काँख-तले केले के पत्तों का एक बंडल ।

दोनों आ पहुँचे, रंगा ने बंडल से केले का एक बड़ा-सा पत्ता निकालकर बिछा दिया । टहला ने सिर से पोटली उतारी, उसे खोला और एक ओर चूड़ा-मूढ़ी रखी और दूसरी ओर नमक और मिरचाई ।

उधर रामू और बिरजा ने लड़कियों का एक बड़ा-सा पुलंदा जमाकर छोड़ा था । रंगा ने उन लकड़ियों को अच्छी तरह सरियाया । फिर उनमें दियासलाई घिसकर जलाई । जब लकड़ियाँ अच्छी तरह जल चुकीं, तब दो बड़ी-अच्छी मछलियाँ उसपर रख दी और एक सूखी लकड़ी से उनपर आग के सोले बिछा दिये । तेज आग पाकर मछलियाँ अच्छी तरह पकने लगा ! रंगा थोड़ी-थोड़ी देर कई बार उन्हें उलटता-पलटता रहा । जब देखा कि मछलियाँ खूब अच्छी पक गईं, तब उन्हें आग से निकाला । आग को घेरकर चारों आदमी बैठे हुए थे ! उन्हें लग रहा था कि कब मछलियाँ पकें और कब उनका भोग लगाया जाय !

आग से निकालकर कुछ देर के लिए मछलियाँ योंही छोड़ दी गई और जब के कुछ ठंडी पड़ गई, तब सभीने मिलकर उनके काँटे बिन डाले, ऊपर से नमक और तेल डालकर एक लकड़ी से सभीको मिलाया । उन्हें केले के एक बड़े पत्तल पर रखा और दूसरे पत्तल पर चूड़ा-मूढ़ी बगैरह और तीसरे पर नमक और मिरचाई रखे गये । और चारों तरफ से वे चारों घेरकर बैठ गये

खाने ! चारों जने गपशप और हँसी-मजाक करते हुए खाने को पिल पड़े !  
आज के सहभोज में सचमुच उन सभीको बड़ा आनंद आया ।

उस दिन जान छोड़कर सभी खाया ! दोनों मछलियाँ पाँच से कम न होंगी । इतना उन सबके लिए खा जाना संभव न था; पर आश्चर्य है कि दो घंटों में जाकर कहीं खाना खत्म हुआ; फिर भी मछलियाँ सभी मिलाकर सेर भर से ज्यादा न बच पाई । वे लोग चाहते तो जरूर थे कि वे (मछलियाँ) फेंकी न जायें; पर इतना ज्यादा खाया जा चुका था कि पेट में पानी भरने की जगह तक न बाकी बची थी ! एक तो मछलियों का खाना, ऊपर से सूखी चूड़ा-मूढ़ी ! अखिर, पानी तो पीना ही पड़ेगा-ऐसा सोचकर शेष बची हुई जूठी मछलियाँ फेंक डाली गई ! सभी तालाब के किनारे आये और सभी ने चुल्लुओं से पानी पिया और मँह-हाथ धोकर निश्चित हुआ ।

इतने में सूरज सिर पर आ गया था, धूप तीखी लगने लगी थी । पेट भर जाने के बाद सभी को नींद आने लगी और वे सब वहाँ लेट गये । और इस तरह बेखबर होकर सो गये कि जैसे आज वे उठनेवाले ही नहीं हों । खैर, पिछली पहर उनसबकी नींद कहीं पूरी हुई । सभी एक-एककर उठ बैठे ।

अब उन्हें घर की याद हो आई और याद रात ही रंगा बोल उठा-दिन थोड़ा रह गया है और घर यहाँ से डेढ़ कोस पर है । पैदल चलना है, अब चल देना ही चाहिए ! इस पर सभी ने हामी भरी और सभी उठकर खड़े हुए । जो शेष मछलियाँ रखी पड़ी थीं, उनमें से एक-एक सभी ने उठाली ।

सभी घर को ओर चल तो रहे थे; पर रंगा को छोड़ कर किसी के पाँव जैसे आगे को बढ़ नहीं रहे थे ! रंगा कुछ दूर आगे निकलकर जब पीछे की ओर मुड़कर देखता, तब देखना यह कि वे तीनों बहुत धीरे-धीरे आ रहे हैं ।

रंगा रुक जाता; वे लोग साथ आ लगते; पर कुछ दूर जाने के बाद फिर वही हालत ! रंगा झुँझला पड़ता; पर वह सोचने लगता कि पैर क्यों नहीं जल्द-जल्द उठ रहे हैं । और सोचकर पाता कि यह सब कुछ नहीं है, भीतर में जो मार खाने का डर समाया हुआ है, उसीसे पैर आगे बढ़ नहीं रहे हैं ।

पर शाम हो चुकी है और रास्ता आधा और तय करने को पड़ा है, ऐसा जानकर रंगा के लिए यह आवश्यक हो उठा कि उन सभी को दिलासा दे और उन्हें खुशी-खुशी घर पहुँचावे !

ऐसा सोचकर रंगा ठिठककर खड़ा हो रहा और जब वे सब उसके पास जा पहुँचे, तब रंगा बोल उठा-देखो भई, शाम हो चुकी है और तुमलोग इतना सुस्त होकर चलते हो कि रास्ता काटे नहीं कट रहा! यह ठीक नहीं। अगर कोई तकलीफ है, तो बोलो, उसे दूर करने की तजबीज सोची जाय! क्या कहते हो रामू?

रामू तो मार खाने की चिन्ता में इतना ढूब गया था कि उससे कुछ कहते न बना, मगर बिरजा ने जवाब दिया-पर क्यों नहीं उठ रहे, सो क्या तुम्हें मालम नहीं है, रंगा?

-नहीं मालूम है।

-कैसे नहीं मालूम है? क्या तुम नहीं जानते हो कि घर पहुँचने पर हम सबकी क्या गति होगी? तुम्हें तो न भूत का डर है, न मार का! कितनी मार पड़ी होगी तुम पर; मगर किसीने तुम्हारी आँख में पानी तक न देखा! मगर हमलोग-----

-ज्यादा न बको, बिरजा! डर काहे का? मार ही लगेगी कि और कुछ? कोई जान तो नहीं निकाल लेगा!

-जान भी तो मारने से निकल जाती है! -टहला ने कहा।

-ऐसा ही जान जाने का डर था, तो चला था क्यों चोरी करने? -खाली तुम्हारे चलते ! कब नहीं तुम्हारी बात मानी है ! मगर आज तो बचाने का उपाय करो रंगा! - बिरजा बोल गया।

रंगा कुछ देर तक सोचता रहा, उसके बाद बोल उठा-मैं कहे रखता हूँ किसीको कुछ नहीं होगा ! मारना तो दूर रहे, कोई पूछेगा भी नहीं कहाँ थे तुम।

-सो कैसे?-टहला बोला। और तीनों रंगा की ओर दखने लगे।

-सो कैसे! मैं कहता हूँ। क्योंकि मुझे बाबा पर विश्वास है टहला, आज मैंने उनके मंडप में झाड़ू-बहाड़ू लगाया है, स्नान पूजा-पाठ किया है,

‘जय हनुमान ज्ञान गुनसागर’ का पाठ सुनाया है दिन भर हमलोग उनके दरवार से कहीं गये नहीं! फिर यह कैसे हो सकता है कि वे हमलोगों को नहीं बचायें! हमलोगों ने अब तक कोई पाप नहीं किया है, पर फिर कैसे वे हमलोगों को तकलीफ देंगे! पापी को वे सताते हैं, पर पुन्न करनेवालों को नहीं। तुम गिरह बाँधकर रख छोड़ो और मैं कहे रखता हूँ कि किसी को कुछ नहीं होगा! क्या तुमने आज नहीं देखा?

-क्या नहीं देखा? -बिरजा बोलकर अचरज-भरी नजर से रंगा की ओर देखने लगा।

-तुम तो गधे हो, देखते कैसे? देखो, वैसी निरजन जगह जहाँ खाने पीने को कुछ भी न था, कितने मजे उड़ाकर हमलोगों ने खया आखिर किसने दिया? किसने इतनी आसानी से जुगाड़ कराया? बाबा कौन वहाँ दाना पहुँचाता? तुम्हीं कहो?

इसपर सभी रंगा की ओर टकटकी बाँधे देखने लगे! लगा इसे उनलोगों के दिलों में विश्वास का अंकुर फटकर छितरा रहा है। रामू बोल उठा ठीक कहते हो रंगा, मुझे विश्वास है।

-हाँ, विश्वास करना ही चाहिए, रामू! -रंगा अपने शब्दों पर जोर डालते बोला-चल चलो, बाबा का नाम लेकर। देखना, सबके घरवालों की मति-गति भुतला जायगी और कोई कुछ पूछ भी न सकेगा। मैंने बाबा की मिन्नत मानी है।

सभी मन-ही-मन गोनूबाबा का नाम जपते हुए और ‘जय हनुमान ज्ञान गुन सागर’ की जोर-जोर से आवृत्ति करते हुए चल पड़े। अब सभी साथ-साथ चल रहे थे।

गाँवके भीतर प्रवेश करते समय टहला बोल उठा - माँ पूछेगी कि यह कहाँ से लाया, तो क्या कहूँगा रंगा?

हाँ, तो क्या कहेंगे रंगा? -रामू और बिरजा साथ-साथ बोल उठे। रंगा उन सभी की बातों से हँस पड़ा और हँसते हुए कहा-तुमलोग पूरे गधे हो! इतनी भी बात नहीं बनाने आता? रंगा हँसा, फिर बोला-और भी कुछ आये, तो कह देना कि रंगा का दोस्त एक मछुआ है, उसे सौगात लेकर जाना था

और उसीने मुझे दिया है । बस ! जब मुझपर आयगी, तब मैं समझा दूंगा ।  
क्यों ठीक है न ।

-हाँ, ठीक है । और यही राय पक्की रही ।

सभी आगे की ओर बढ़ चले । रंग अब अपनेघर के पास पहुँच चुका था, उसने अपने हाथ की एक मछली निकालकर रामू की ओर बढ़ाते हुए अगर इसे भी ले लो रामू । तुम चलो; मगर मेरेघर होकर ही जाना और मेरी माँ को देते जाना । उसे कह देना कि मैं नंदा के यहाँ से तुरत आ रहा हूँ ।

-और अगर पूछे कि दिनभर कहाँ थे, तो?-रामू ने पूछा ।

-तो? तब कह देना कि मधू मछुआ ने, जो स्कूल में पढ़ता है, हमलोगों को न्योत दिया था, हमलोग वहाँ गये थे, वहाँ खाया-पिया और आने के वक्त सभी को एक-एक मछलीघर के लिए दी । बस !

सभी हँस पड़े । राम ने कहा-वाह रे रंगा ! कितनी तुम्हें बात बनाना आता है ! अब हमलोग बच जायेंगे-जरूर बच जायेंगे । सभी खुशी में आगे बढ़े और रंग अपने हाथ में एक बड़ी-सी मछली थामे नंदा के घर की ओर चल पड़ा ।

(नौ)

उस दिन सब-के-सब बच गये । संयोग कहिए या गोनूबाबा की महिमा अपने-अपने घर पहुँचने के लिए वे सब जैसे डर रहे थे, घर पहुँचने पर उन सबका डर दूर हो गया, जब वहाँ के वातावरण में किसी को कुछ अंतर न दीखा; अवश्य मछलियों के संबंध में पूछताछ हुई और उसके जवाब में रंगा से जो परामर्श मिला था, जैसा-का-तैसा कह सुनाया । इससे पूछनेवालों को न सिर्फ संतोष हुआ, बल्कि आनंद भी और वह इसलिए कि घर बैठे, अनायास ही, भोज्य पदार्थ की प्राप्ति हुई ।

तड़के रंगा उठा और उठते ही उसे स्मरण हो आया कि विगत मछली की घटना की प्रतिक्रिया गाँव में किसी तरह की तो नहीं है! उसे यह जानने की उल्कंठा मन में जगी, साथ ही, यह भी ख्याल आया कि उसके

साथियों पर किसी तरह का संकट तो नहीं आया। ख्याल आना था कि वहघर से बाहर निकला, दरवाजे की ओर बढ़ चला; पर कल्याणी दरवाजे की ओर से झाड़ू-बहाड़ू फेंककर भीतर आ रही थी। दोनों ने एक दूसरे को देखा, रंगा जरा सकपका-सा उठा। तभी कल्याणी बोल उठी-कहाँ चले तड़के-तड़के! न मुंह-हाथ धोया और न कुछ ! कल भी इसी तरह सबेरे-सबेरे उठकर चंपत हुए, तो रात को घर लौट आये मछली लेकर। यह हरकत अच्छी नहीं; दूसरों के यहाँ डेरा डालकर पड़े रहना मझे अच्छा नहीं लगता। बोलो, अभी कहाँ जा रहे थे?

रंगा ने माँ की बातें सुनीं। उसे लगा, जैसे उसकी माँ समझ गई कि वह भागा-भागा फिरता है और जब जहाँ पाता है, पलथी मारकर खाने को माँग लेता है। इससे उसके स्वाभिमान को ठेस लगी और जरा झुनझुनाकर बोल उठा-किसके यहाँ डेरा डाले रहता हूँ?

-सो मैं क्या जानू-कल्याणी ने रंगा को रंगे हुए पाकर अपने को जरा संयत करते हुए कहा-मगर रात को तुम्हीने कहा था न कि मधुआ मछुआ के घर खाना खाया, वहीं दिन भर रहा! क्यो, कहा था न?

-हाँ, कहा था-रंगा सकुचाते हुए बोल उठा। उसकी उठी हुई आँखें नीचे की ओर झुक गई और मन-ही-मन वह कुछ सोचने लगा।

-मगर मैं तो यह नहीं चाहती कि.....बेटा, तुम समझदार हो, दूसरों पर चढ़कर खाना-तुम खाया करो ! अपने घर की शाक दूसरे घर के मालपुआ से अच्छी होती है। .....कल्याणी को अपनी अवस्था का स्मरण हो आया। वह सोचने लगी कि रंगा का क्या दोष ! जिसे अपने घर में मालपुवा नसीब न हो और उसका दोस्त जब उसे अपने घर न्योता कर मालपुये खिलाय, तब क्या उसका जाना बुरा है !.....आह, मैं इस लायक होती.....कल्याणी के मस्तिष्क में विचारों का तूफान उठ खड़ा हुआ। वह उनका अलग-अलग विश्लेषण करने लगी और इस तरह उसने पाया कि यह उपदेश देना उचित न हुआ! वह आप-ही-आप नम्र हो गई और बोली-सुनो, बेटा, इस तरह से भागे-भागे रहना ठीक नहीं! कल गुरुजी आये थे और बोले कि मैंने जिस दिन से उन्हें मनाकर दिया तुम्हें मारने को, तभी से तुम कुछ समझते नहीं, बराबर पाठशाला से नागा रहते हो ! आज यहाँ तो कल वहाँ! यह क्या उचित है ?

कल्याणी की युक्ति काम कर गई। रंगा ने अपनी माँ की विकलता-भरी बातें सुनीं और कुछ क्षण केलिए उसका रोष ठंडा पड़ गया। वह माँ के पास सिटिपिटाता हुआ सिर झुकाये खड़ा रहा। कल्याणी कुछ क्षण तक उसकी ओर देखती रही, फिर उसे बिलकुल निस्तब्ध पाकर वह बोल उठी-क्या सोच रहे हो, जाते हो पढ़ने?

-जाऊँगा क्यों नहीं ?

-तो लौटो-माँ ने कहा-मैंह-हाथ धोलो और थोड़ा पानी-वानी पीकर चले जाओ।

कल्याणी रंगा की पीठ पर हाथ रखे आँगन की ओर चल पड़ी। रंगा ने नित्य-क्रिया से निबटकर जलपान किया। फिर अपनी किताबें संभालकर बाहर की ओर चल पड़ा।

कल्याणी कुछ क्षण तक उसकी ओर देखती रही, जब वह आँखों से ओझल हो गया, तब उसके मुंह से एक सर्द आह निकलकर हवा में बिलीन हो गई।

पर रंगा पाठशाला न जा सका। रास्ते में ही रामू और विरजा से भेंट हो गई। वे लोग भीघर से निकलकर पाठशाला ही जाना चाहते थे; पर रंगा को पाकर उन-सब की विचार-धारा दूसरी ओर को मुड़ गई। रंगा ने उत्सुकता लिये हुए पूछा-कहो, रात को कैसी रही? कहीं पीठ की मरम्मत तो न हुई! और तुम्हें विरजा?

रामू हँस पड़ा और कुछ वह बोलना ही चाहता था कि विरजा बोल उठा-बच गया भैया, बाल-बाल बच गया-तुम्हारे गोनूबाबा के अकबाल से। तुमने ठीक कहा था-उनके दरबार में पहुंचने पर कोई क्लेश नहीं रह जाता। और रामू से ही पूछो न? इसे तो तुम्हारा मंतर काम कर गया। क्यों रामू? और रामू रंगा की पीठ थपथपाते हुए बोल उठा-तुम्हारी बुद्धि कमाल की है, सच कहता हूँ रंगा! मैं ज्योंही तुम्हारे यहाँ मछली देकर अपने आँगन में आया, त्योंही देखा कि माँ रसोई घर में बैठी रसोई बना रही थी और घर के बरामदे पर बाबूजी श्यामा को गोद में लिये, मोढ़े पर बैठाकर, गुड़गुड़ी पी रहे थे! उन्होंने ही पहले मुझे देखा। मैं तो रसोई घर की ओर बढ़ता जा रहा था।

बाबूजी ने मुझे वहीं से पुकारा-रामू ! मैं चौंक पड़ा और उनकी ओर देखा । मुझे लगा, जैसे मैं पकड़ा गया हूँ और अब वे मुझपर बरसने वाले ही हैं । मैं डर तो जरूर गया था और इतना डर गया था कि जो भी गोनू बाबा को गुहरा रहा था, वह भी भूल गया । मैं ज्यों-का-त्यों वहीं खड़ा रह गया, जैसे मुझे काठ मार गया हो ।

-हाथ में क्या है ! मछली ! - बाबूजी ने वहीं से पूछा ।

-हाँ, -मैंने छोटा-सा उत्तर दिया ।

-देख्यूँ कैसी मछली है? मगर लाया कहाँ से !

मुझे जरा-सा हौसला हो आया और मैं उनकी ओर बढ़ गया । तबतक माँ भी रसोई घर से निकली और मुझे हाथ में मछली थामे बाबूजी के पास खड़ा देखकर बोली-क्या है ?

मैंने बाबूजी के पास मछली रख दी और खड़ा हो रहा । माँ को अपने पास देखकर मेरे दिल में जो भी थोड़ा-सा डर रह गया था, जाता रहा-जाता रहा इसलिए कि माँ मुझे बाबूजी से पीटने न देगी । फिर भी मैं अपने को खुला हुआ न पा रहा था, शंका बनी रही और बाबूजी को उनके प्रश्नों का उत्तर भी देना था । वे मेरी ओर देख रहे थे! आखिर मैंने अपने दिल को कड़ा किया और जैसा तुमने कहने को कहा था, उसमें और भी नमक-मिर्च लगाकर उनके सामने रख दिया ।

-तब? -रंगा ने उत्सुक होकर पूछा । -और तब क्या ! बाबूजी तुम्हारा नाम सुनकर हँस पड़े, बोले-वह बड़ा शरीर है । और इसपर माँ जरा रुखाई से बोली-और तुम शरीर नहीं हो? वह क्या शरारत करता है? खरा जरूर है, मगर दिल का साफ है! अपने साथियों से लड़ता-झगड़ता है-मारता-पीटता भी है; मगर तुरंत वह उन्हें फुसला भी लेता है! देखो न, यह मछली रामू को फुसलाने के लिए ही तो उसने दी है! क्यों रे रामू?

नहीं, माँ, मुझे तो वह कभी नहीं मारता! मुझे मारेगा वह! वह तो मुझे सबसे ज्यादा मानता है! -रामू ने हँसते-हँसते रंगा को कह सुनाया, और अंत में कहा-बस, बात यहीं खत्म हो गई, माँ ने मछली ली और रसोईघर की ओर चल पड़ी ।

और रंगा के हृदय में रामू की माँ के प्रति बड़ी श्रद्धा हो आई और रामू पर अत्यधिक स्नेह-और वह स्नेह की सरिता यहाँ तक उमड़ी कि उसने राम के चिकने गाल पर एक तड़ी जमाते हुए कहा-क्या अब भी कहोगे कि मैं नहीं मारता ?

और सभी हँसने लगे ।

वे तीनों बस्ता बगल में दबाये खड़े-खड़े गपशप करते रहे । इसके बाद उन तीनों में यह निश्चय हुआ कि अब ठहलना के घर चलकर उसका पता लगाना चाहिए ! और तीनों उसके यहाँ चल पड़े ।

ठहला के घर पर कोई न था । उसकी माँ गोबर चुनने गई थी । उसका बड़ा भाई खेत में पाल पर मिट्टी चढ़ाने गया था और उसकी भौजी दाल दलने को पड़ोस के घर गई थी । घर ज्यो-का-त्यों खुला पड़ा था । रंगा ने ठहला का नाम लेकर पुकारा; पर कुछ पता न चला । तीनों उसके घर से लौट पड़े; पर ज्योंही वे लोग दस कदम बढ़े होंगे कि पीछे से किसीने पुकारा-कौन ? रंगा ! अरे भाई, जरा ठहरो तो !

सभी ने मुड़कर पूछनेवाले की ओर देखा और सब-के-सब खड़े रह गये । सभीने पहचाना कि वह ठहला की माँ थी, सिर पर गोबर की टोकरी लिये हुए ।

-हाँ, मैं हूँ, बुझो चाची, ठहला कहाँ है ?-रंगा ने पूछा ।

-रात को तुमने मछली दी थी ठहला को? - बूढ़ी माँ उसके पास आकर बोली ।

-हाँ, क्यों?-रंगा ने उसकी ओर मुस्कराते हुए पूछा ।

-क्यों क्या, रंगा ? यों ही पूछ रही थी ! ठहला ने ही तो तुम्हारा नाम कहा था; मगर मुझे उसकी बात पर विश्वास नहीं हुआ । तभी बच्चे को बड़ा डॉटा-फटकारा भी ! इसी गुस्से में उसने खाया भी नहीं कुछ रात को ! मैं मनाकर हार गई । माफी तक माँगी, बहू ने उसे गुदगुदाया, कितनी मिन्नतें की । मगर उसने मुंह तक न जुठाया, फिर हमलोग खाते कैसे !.....और देखो, सुबह-सुबह कहाँ न निकल भागा है !

-अरे, भाग निकला? नहीं चाची, वह भागेगा कहाँ ? मजाल है कि वह भाग जाय ! -रंगा बोल कर हंस पड़ा, राम और बिरजा भी हँस पड़े।

मगर टहला की माँ को उसकी बात पर संतोष न हुआ। वह बोली-  
मुझे तो टहला का मन ही नहीं मिलता ! बात-बात में झुंझला उठता है ! कहो तुम्हीं; मैं उसकी माँ ठहरी। मैं उसे न कुछ कहूँगी, तो और कौन कहेगा? क्या मैं उसका बुरा चेताँगी! .....वह कुछ देर तक रुकी रही, फिर बोल उठी-तुम्हीं उसे मना सकते हो, रंगा ! वह तुम्हारी बातों से मुकरेगा नहीं। कभी नहीं मुकर सकता तुमसे ! कई बार तुमने उसे पीटा भी है; मगर उसने कभी बुरा नहीं माना! सो, बेटा, पैर पड़ती हूँ, मना दो! देखो, अभी रात का भूखा-प्यासा कहाँ जाकर छिपा है!

रंगा को बूढ़ी चाची पर दया हो आई, फिर भी वह उससे मजाक कर ही बैठा। वह हँसते-हँसते बोला-तुम उसका मन वैसे न पायोगी, चाची, जब तक तुम उसकी शादी नहीं कर देती! नई बहुरिया आयगी और वह खुश हो जायगा। तब देखोगी कि वह कभी नहीं बिगड़ेगा तुम पर!

रंगा की बातों से बूढ़ी के ओठों पर हँसी की रेखा खिंच आई और उसकी आँखें विहस उठीं ! रामू और बिरजा भी खिलखिलाकर हंस पड़े। टहला की माँ कुछ क्षण चुप रहने के बाद बोल उठी-सो तो ठीक है, बेटा ! वह अब काफी बड़ा हो गया। अब तो उसके हाथ पीले करना ही चाहिए। मगर समय इतना बुरा है कि रुपया-पैसा कुछ जुड़ते ही नहीं हैं ! मालगुजारी के रुपये का ताकाजा सिर पर है। उधर राजाबाबू का करजा जान खा रहा है, वह चैन से नीद भी नहीं लेने देता! गरीब की जिंदगी ही क्या? मैं तो चाहती हूँ कि अफीम खाकर सो रहूँ; मगर घर-गिरस्ती बिगड़ जायगी, इसी का डर जो समाया हुआ है ! मंगना टहला का बड़ा भाई है। अभी नादान है, कभी घर संभाला नहीं, वह तो बात-बात में घबरा उठता है ! सभी कुछ मुझे ही देखने पड़ते हैं

बूढ़ी को आँखों में आँसू छलछला पाये और वह अपनेको सँभालने में कुछ देर तक चुप साधे रही ! फिर आप-ही-आप बोल उठी हाँ, एक साध

और है, बेटा, तुम ठीक कहते हो । टहला की शादी हो जाय, तो हम निश्चिंत हो जाय! शरीर का क्या ठिकाना? मगर.....

टहला की माँ बोलते-बोलते रुक गई । जाने वह क्या बोलना चाहती थी! मगर वह जो कुछ बोलने जा रही, रंगा ने ताड़ लिया । तभी वह बोल उठा - 'मगर' की कोई बात नहीं, शादी तो उसकी कर ही डालो ! क्यों तुम्हारी साध यों ही रह जाय! अगर रुपये-पैसे की जरूरत हो तो कहो; जहाँ तक बन पड़ेगा, कोशिश करके देखूँगा ।

रुपये की बात सुनकर टहला की माँ की आकृति पर परिवर्तन का चिह्न दीख पड़ा और वह हुलास में आकर बोल उठी-ठीक कहते हो, रंगा, क्या तुम रुपये का बंदोबस्त कर दोगे?

-हाँ, कर दूँगा, झूठ थोड़े ही कहता हूँ और तुमसे झूठ कहूँगा!

टहला की माँ खिल उठी, उसे कुछ उत्तर देते न बना ! वह कुछ क्षण तक रंगा की ओर देखती रही, फिर उसने दूसरी ओर को मुंह फेर लिया । वह मन-ही-मन सोचने लगी कि क्या यह संभव है! रंगा कहाँ से बंदोबस्त करेगा? लायगा वह कहाँ से? कौन देगा उसे रुपये?.....वह न जाने और क्या कुछ सोचे चलती; पर उसी समय रंगा बोल उठा-हाँ, चाची, तुम लड़की की खोज करो-देखना खुब चुनकर नफीस लाना । अच्छा ।

टहला की माँ की आकृति खुशी से खिल उठी । उसे लगा कि रंगा उसकी जरूर मदद करेगा । इसलिए बोली-तुम जब कह रहे हो, रंगा, तब मैं क्यों न खोजूँगी! मगर तुम रुपया लाओगे कहाँ से? - टहला की माँ बोलकर रंगा की ओर देखने लगी ।

- उसके लिए तुम्हें क्या चिन्ता, चाची! तुम्हें रुपया चाहिए और वह मैं तुम्हें दूँगा । अभी से तुम लड़की खोजना शुरू कर दो । हमलोग चलते हैं, टहला को खोजने ।

-हाँ, बेटा, देखो तो जरा! मिल जाय, तो उसे लिवाते आना ।

-मगर खिलाओगी क्या? -रंगा ने गंभीर होकर पूछा -खिलाऊँगी क्या? घर तुम्हारा है, जो कुछ पास है, खा लेना । आज ही तो वासमती धान का चूड़ा कूटा है, बड़ा सौंधा-सौंधा-सा है! कल की तुम्हारी दी हुई मछली

ज्यों-की-त्यों पड़ी हुई है ! रात को बनाई कहाँ ? उसके आने के पहले रसोई बन चुकी थी ! बस, आओ न उसे लिवाकर ! मैं तो अब घर जा रही हूँ, बहू को कह दूगी मछली बनाने ! आओगे न, सच-सच कहो ? -

-हाँ, सच और जितनी देर में टहला मिल जाय, बस, उतनी देर समझो ।

-अच्छा, ठीक रहा-कहकर टहला की माँ घर की ओर चल पड़ी । रंगा रामू और बिरजा को साथ लेकर उसकी खोज में निकल पड़ा ।

रास्ते में रामू ने पूछा-क्यों रंगा तुम रुपया कहाँ से दोगे उसे ? क्या तुम्हारे पास रुपया है ?

रंगा कुछ देर तक चुप रहने के बाद अकचकाकर बोल उठा-हूँ ! -हूँ - माने ? - बिरजा ने पूछा ।

-जो तुम समझो ! .....रंगा ने हँसकर कहा । -मगर मुझे नहीं अंदाज आता कि तुम्हारे घर रुपये हैं, रंगा रामू बोला ।

-न हों, मगर होते कितनी देर लगती है ? - रंगा गंभीर होकर बोल उठा-रुपये ! कौनसी मुश्किल की बात है, जो तुम इतने ताज्जुब खा रहे हो, रामू ?

रंगा ने आँखें गड़ाकर रामू की ओर देखा । रामू चुप हो गया । बिरजा भी मन-ही-मन जाने क्या सोचता रहा । सभी चल पड़े ।

कुछ दूर जाने के बाद मुरारी के घर पर लोगों की भीड़ दीख पड़ी । वे सब उसी ओर को चल पड़े । जाकर देखा कि वही बंदरवाला आज फिर बंदर नचा रहा है । रंगा ने भीड़ के भीतर घुसकर एक बार गुराई आँखों से मदारी की ओर देखा । मदारी की दृष्टि भी रंगा की ओर फिरी ! वह डर गया और डरते-डरते बोल उठा-आज मेरे बंदर को न मार डालना !

रंगा ने सुना; पर उसकी बातों का कोई जवाब न दिया । तब तक उसकी आँखें भीड़ की दूसरी तरफ फिरीं ! देखा कि टहला खड़ा-खड़ा तमाशा देख रहा है । उसे देखते ही रंगा ने पुकारा-टहला !

टहला ने रंगा की ओर देखा, देखा कि रामू और बिरजा भी उसके साथ हैं ! उसने उत्कंठित होकर पूछा-तुमलोग क्या पढ़कर आ रहे हो, रंगा ?

-हाँ, पढ़कर ! -रंगा झूठ बोल गया-मगर तुम क्यों नहीं गये टहला ?

-मैं जाता जरूर। मगर बुधुआ ने कहा कि गुरुजी आज सदर गये हैं, फिर जाकर क्या करता ? क्या सचमुच गुरुजी सदर गये हैं, रंगा ? -वह उत्तर की आशा में उसकी ओर देखने लगा ।

रंगा को खुशी हुई यह समाचार जानकर; मगर उसे विश्वास न हुआ । इसलिए वह फिर से पूछ बैठा-बुधुआ को कैसे मालूम हुआ गुरुजी के जाने को बात ? वह तो पढ़ने नहीं गया था !

-बुधुआ के घोड़े पर ही तो वे गये हैं सदर और वही उन्हें पुल तक पहुँचाने भी गया था ।

इस बार रंगा को विश्वास जमा । वह खुशी में बोल उठा-बलो, भाई, चल चलें हम लोग । क्या और भी तमाशा देखोगे ?

-अरे तमाशा क्या-टहला उनलोगों के पास आया और वे सभी भीड़ से बाहर निकल आये । रंगा आगे-आगे चल रहा था, उसके पीछे वे सब । मगर जब रंगा टहला के घर के सामने आ पहुँचा, तब टहला जरा रुका ? और रुककर बोल उठा-कहीं दूसरी जगह क्यों न चला जाय रंगा ? क्यों ?

और रंगा हँसकर बोल उठा-नहीं, आज तो तुम्हारे यहाँ ही चलूँगा, भाई और कहीं नहीं चलने का ।

टहला कुछ भौंचक-सा हो रहा; पर वह विवश था । रंगा को वह क्या कहे ? वह ठिठका ही रह गया ।

रंगा समझ गया कि क्यों वह ठिठक रहा है । इसलिए वह बोल उठा-अरे टहला, रात को तुम्हारा क्या हाल रहा ? तुम्हारे भैया ने तुम्हें पीटा तो नहीं ? -रंगा, रामू और बिरजा उसकी ओर ताकने लगे ।

-अरे, तुमलोग तो नहीं पीटे गये ? -टहला ने पूछा ।

--कोई नहीं-कोई नहीं-तीनों एक साथ बोल उठे, मगर तुम अपनी तो सुनाओ-रंगा ने पूछा ।

-मैं ? मैं ? मैं ही क्यों पीटा जाता ! हाँ, माँ बहुत झिड़क उठीं । मुझे बड़ा गुस्सा आया और मैं कुछ न बोलकर सो रहा ।

-खैर, अच्छा ही रहा । अब तो गोनूबाबा पर तुम्हें विश्वास हुआ ?

-हाँ, जी, रंगा, कैसे विश्वास नहीं हो, जब कि.....

-खैर, चलो घर पर । तुम्हारी माँ ने न्योता दिया है हमलोगों को!

-तो क्या तुमलोग मेरे यहाँ आये थे ?-टहला चौंक पड़ा ।

-हाँ, आये थे हमसब ।

मालूम हो गया कि उसकी माँ से इनलोगों को सभी समाचार मिल गये हैं! वह जरा सकुचाया । रंगा ने उसका सकुचाना अनुभव किया । वह उसके पास पहुंचा और उसका हाथ पकड़कर बोला-हाँ, रे टहला, दौड़ो मेरे साथ; और रामू, तुम विरजा के साथ ! देखू, कौन जीतता है-मेरी जोड़ी या तुम्हारी ?

और सब-के-सब दौड़कर टहला के आँगन में हाजिर हुए ।

(दस)

उस दिन टहला की माँ और नई आई हुई उसकी भाभी ने रंगा के दल को बड़े चाव से खिलाया, और टहला को प्रबोधने के कारण उसकी माँ रंगा पर जी खोलकर खुश हुई । जबतक वेसब खाते-पोते और हँसते बोलते रहे । बूढ़ी उन्हींके पास बैठकर तरह-तरह की बातें करती रही । और उन्हीं बातों के सिलसिले में वह सुना गई कि उसकी नई आई दुलहिन रसोई बनाने में कितनी चतुर है, किस तरह वह अपनी बूढ़ी सास के पाँव दबाती है, किस तरह उसके फटे कपड़े सीकर, साफ करके, उसे पहनने को देती है और किस तरह घर पर आई टोले महल्ले की बड़ी-बूढ़ी औरतों का आदर सत्कार करती है । बूढ़ी सुना रही थी, मगर वह नई आई दुलहिन, अपनी चरचा सुनकर अपने-आपमें जैसे दबी जा रही थी और जब वह चरचा उसके लिए संकोच का कारण जान पड़ी, वह धीरे से उठकरघर के दरवाजे की भाड़ में चली गई; पर बूढ़ी का सिलसिला जारी रहा, वह कह रही थी घर पर कितने दिन के लिए अनाज शेष बचा है, बाकी दिन के लिए वह खाना कहाँ से जुटायगी, महाजन अपने रूपये के लिए किस तरह उसे परेशान कर रहे हैं और जमीन की मालगुजारी चुकाने के लिए वह कितनी घबरा उठी है । और इन सब बातों

से उसकी जिंदगी कितनी भारी हो उठी है-बूढ़ी एकएक बात को, डबडबाई आँखों से और भरी हुई आवाज में बोल गई। रंगा इन सारी बातों को सुनता रहा; पर वह इन बातों के लिए उसे किस तरह सांत्वना दे, किस तरह उसे समझावे और किस तरह वह उसकी सहायता करे इन बातों में रंगा इतना उलझ पड़ा कि, कब खाना खतम हुआ और कब उसके साथी हाथ-मँह धोकर निश्चित हो गये-उसे मालूम तक न पड़ा।

रंगा न जाने, किस चिन्ता-धारा में डूब गया था और इतना डूब गया था कि लगा बूढ़ी की दरिद्रता जैसे उसके सामने नग्न होकर खड़ी हो! उफ, दरिद्रता इतनी गरीबी-मिहनत करने पर भी साल भर का अन्न नहीं जुट पाता। ऊपर से कर्ज के रुपये, मालगुजारी.....ठहला का विवाह! रंगा निश्चित न रह सका! वह उठा, मुँह-हाथ धोया और विना कुछ बोले, अपने साथियों के साथ चलने को तैयार हुआ।

और बूढ़ी उन सबको पहुँचाने केलिए, उनसबके साथ बाहर के दरवाजे तक आई। रंगा की नजर हठात् उसकी ओर जा पड़ी, उसके पाँव जैसे रुक्से गये और वह बोल उठा-आज तुम्हें बड़ी तकलीफ दी, चाची, और भाभी को भी! मेरे लड़कपन के चलते.....

-नहीं, बेटा-बूढ़ी उसकी बात छीनकर, उल्लसित होकर, बोल उठी--  
यह लड़कपन बना रहे रंगा! घर पर आदमी न खायगा और घरवाला न खिलायगा, तो फिर दुनिया बीरान हो उठेगी। और तुम तकलीफ की बात कहते हो ?.....हरे-हरे ! जीता रखे भगवान तुम्हें-वह औरत कैसी, जिसे खिलाने में तकलीफ हो ! मैं बूढ़ी हुई; मगर अब भी मेरी टेक है। भगवान ने कुछ दिया ही नहीं। आखिरी जिंदगी तक मेरी यह टेक रह जाय, बेटा, कि इसी तरह की तकलीफ उठाती रहूँ ! और, मुझे तो, सच कहती हूँ, बड़ी खुशी होगी, जब तुमलोग इसी तरह मुझसे छीन-झपट कर खा जाया करो। रंगा की आँखें भावावेश में, ऊपर को उठ गई और उसने देखा कि भाभी दरवाजे की आड़ में खड़ी उसकी ओर देख रही है। रंगा की आँखें नीचे की ओर झुक पड़ी और वह बोल उठा-अच्छा, चाची, खा जाया करूँगा।

और वह बोलकर खिलखिलाते हुए हँस पड़ा और घर की ओर चल पड़ा। रंगा नेघर पर आकर देखा कि घर का दरवाजा बाहर से लगा हुआ है और उसकी माँ घर में है नहीं! वह दरवाजा खोलकर भीतर आया, अपने सिलेट और किताबों का बस्ता अलग-अलग रखकर कुछ क्षण तक बाहर की ओर देखता रहा; पर किसी ओर से किसीके आने की आहट सुन न पड़ी।

उसने अपनेको अपनेघर में अकेले पाया। उसे लगा कि जैसे उसका घर धुँआ-सा बनकर उड़ता जा रहा है, जैसे वहाँ कुछ खो-सा गया है। इतना उदास-जैसे चारों ओर निस्तब्ध, श्मशान-सी धाँय-धाँय! रंगा अपने-आपमें खो-सा गया। वह बिछावन के पास आया, लेटने को आगे बढ़ा; पर वह लेटा नहीं, घर में ही टहलने लगा।

आज से पहले रंगा ने कभी ऐसा अनुभव नहीं किया था। उसके लिए यह पहला ही अवसर था कि वह घर को निस्तब्धता में, व्याकुलता का, अस्थिरता का, अनुभव करे। वह टहल रहा था; पर उसका मस्तिष्क उलझा हुया था। आखिर उसे आज ऐसा क्यों लगता है?

आखिर ऐसा उसे आज क्यों लगता है-रंगा अपने-आपमें ढूबकर सोचने लगा। पर उसे कहीं कूल-किनारा दीख न पड़ा। वह अपनी माँ पर झुँझला-सा उठा! देखो तो भला! किस तरह घर को सूना छोड़कर बाहर चली गई है।

रंगा मूँज की बीनी खाट पर लेट गया; पर वह अपने को स्थिर न कर पाया। वह जितना ही सोचे चलता, उतनी उसकी चिन्ता भारी होती जाती! वह अपनी माँ के बारे से सोचते-सोचते वहाँ आ पहुँचा, जहाँ टहला की माँ उसे अपने सामने बैठाकर खिला रही है और कह रही है कि साल भर का अनाज तक नहीं जुटा सकती, कर्ज के रुपये के लिए वह परेशान हो उठी है, मालगुजारी उसे चुकाना ही चाहिए-ओह! दरिद्रता का नग्न रूप! रंगा उस नग्न दरिद्रता को देखकर सिहर उठा, वह सोचने लगा-उसकी माँ भी तो उससे कम गरीब नहीं है। उसकेघर पर भी तो साल भर के लिए कौन कहे, दस दिन के लिए भी तो अनाज नहीं है! और कर्ज ?-उसे याद आया-हाँ, कर्ज के नाम पर उसकी माँ कितनी काँप उठती है। उस दिन भी वह कितनी काँप उठी थी? जब मेरे चलते-हाँ, मेरी नादानी के कारण, राजाबाबू के यहाँ

खुद से जाकर, दस आदमियों के बीच, उसे दस रूपये का रुक्का तामिल करना पड़ा था ! ओह ! दस रूपये ? दस रूपये भी मेरी माँ के पास नहीं है ? इतनी गरीब ! दस रूपये हैं क्या चीज ! मगर महज दस रूपये मेरी माँ दूसरे का कर्जदार बनी ! ओह, दस रूपये !

रंगा जाने कबतक इस चिन्ता-धारा में बहता रहा, और ज्यों-ज्यों बहता रहा, त्यों-त्यों उसकी परोनियाँ भी बढ़ती रहीं ; पर कहीं कुछ कूलकिनारा उसे दीख न पड़ा । उसने आँखों मूँद ली, बल पूर्वक नीद लाने का उपक्रम किया; पर नीद निगोड़ी उसके पास फटकने को भी न आई !

किशोर वय रंगा और अधिक सोच ही क्या सकता था !

मगर भगवान को धन्यवाद । बाहर से किसीके पैर की आहट उसे सुनाई पड़ी । वह चौंक उठा । उसे लगा कि जैसे उसका सिर हलका हो रहा है । वह खाट से कूद पड़ा, बारह की ओर झाँका और वह झपटकर माँ के पास बोल उठा-कहाँ गई थी माँ ! .....कहाँ गई थी ?

और माँ के उदास चेहरे पर जैसे लाली दौड़ पड़ी ! उसने रंगा का हाथ अपने हाथों में लेकर कहा-कहीं तो नहीं ।

-कहीं तो नहीं-रंगा खीझकर बोला-बाह, खूब ! देखता हूँ कि बाहर से आ रही हो और कहती हो-कहीं तो नहीं !

-यों ही चली गई थी - माँ उदासीनता में भर उठी ।

-सो ही तो मैं पूछ रहा हूँ । कल्याणी क्या जवाब दे, वह कहाँ गई थी ! वह कहाँ कहाँ जाती है और क्यों जाती है-कैसे वह सुनाय अपने रंगा को-एक मात्र पुत्र को ? वह कैसे समझेगा, क्या समझेगा कि उसकी माँ कहाँ जाती है और क्यों जाती है ? पर रंगा जो पूछ रहा है कि वह कहाँ गई थी ? -कल्याणी सोचने लगी-क्या कहे वह ? मगर वह बोल उठी-खाया नहीं है रंगा, चलो खा लो ।

पर रंगा अब बच्चा नहीं रह गया था । वह समझता है और समझने की कोशिश करता है कि माँ उसे भुलावा दे रही है, वह कहना नहीं चाहती कि वह कहाँ गई थी ! रंगा को ठीक-ठीक उत्तर मिलना चाहिए-बगैर जवाब मिले वह कैसे छोड़ सकता है ? कैसे उसकी जिज्ञासा तृप्त हो सकती है बिना जाने हुए ?

और वह बोल उठा-भुलावे में डालना चाहती हो माँ, भुलावे में? समझता हूँ सब-कुछ। मगर तुम्हें तो कहना ही पड़ेगा—जब कोई जरूरी काम न था, तब तुम घर को सूना छोड़कर जाती कैसे! -रंगा बोलकर चुप रहा। वह सोचने लगा कुछ देर तक, फिर बोल उठा-मुझसे सभी बात में पर्दा क्यों करती हो, माँ! मुझसे पर्दा? मैं अब बच्चा नहीं हूँ। कुछ-कुछ समझने लगा हूँ घर-गिरस्ती बात। कहो, सच-सच, तब खाऊँगा, समझी।

कल्याणी असमंजस में पड़ गई। वह खुद दुख-कष्ट झेलती आ रही है पर वह उस दुख को कैसे जतलाये अपने रंगा से, जो अब खुद कुछ-कुछ समझने लग गया है। फिर भी तो वह बच्चा ठहरा, माँ को दुख में देखकर समझदार बेटे का जी घबरा न उठेगा? मगर, देखो तो रंगा को? वह तो विना जाने आज अपनी माँ को दम भी न लेने देगा, जिद्दी है न। फिर खाना छोड़ बैठेगा। -कल्याणी कुछ देर तक सोचती रही, उसके बाद बोल उठी-प्यादा आया था, बेटा, बुलाने को।

प्यादे के नाम से रंगा चौक उठा-प्यादा? -उसकी भवें खिंच गई बोला-प्यादा? किसका प्यादा? ....और क्यों बुलाने को आया था वह?

कल्याणी को लगा कि क्यों वह प्यादे के बारे में बोल गई। उसे तो कुछ दूसरी बातें बनाकर रंगा के सामने रखना चाहिए था। मगर अब अब तो कहना ही पड़ेगा। रंगा उसकी ओर ताक जो रहा है। वह घबरा उठी, और उसके मुंह से निकल गया-राजाबाबू का प्यादा था, कई महीने जो गुजर गये। रुक्ता का रुपया तो देना ही पड़ेगा न।

कुछ देर पहले, जिस बात से रंगा भयभीत हो उठा था, आखिर वही सामने पाकर वह चंचल हो उठा। उसके सामने ठहला की माँ की कष्ट-कथा उसके कानों में गूंज उठी। कुछ क्षण तक वह अवाक होकर माँ की ओर देखता रहा, फिर जाने क्या सोचकर बोल उठा-तो तुमने क्या कहा, माँ?

-मैं? मैं क्या कहती? रुपया वाजिब ही ठहरा, देने से कब इन्कार है! कहा-दे दूंगी-सूद-मूँड सब मिलाकर दे दूंगी।

-मगर दोगी कहाँ से? -रंगा जरा रुखाई से बोला-कह देती कि वे रुपये अब नहीं मिलने के।

नहीं मिलने के! कल्याणी कानों पर हाथ रखती हुई बोली-ऐसा भी कहा जाता है, बेटा! जिससे लिया जाय, उसे कैसे कहा जा सकता है कि नहीं मिलने के! लोग क्या कहेगा? दुनिया क्या कहेगी कि फलाँ की बहू, और फलाँ की माँ ऐसी बेईमान ठहरी। आखिर ऐसा कही कैसे सकूंगी जबकि हाथ काटकर रुक्ख तामिल कर दिया है। सरकार का राज है। नालिस ठोंक देंगे, घर नीलाम पर चढ़ जायगा। जग-हसाई होगी.....

कल्याणी बोलकर चुप हो गई। रंगा भी न-कुछ बोल सका। पर वह चोट खाये साँप की तरह, मन-ही-मन फुफकार मार रहा था। कुछ क्षण तक दोनों चुप रहे। उसके बाद रंगा बोल उठा-अच्छा, अब जब-कभी प्यादा आवे, मुझे जाने देना-तुम न चली जाना। अच्छा।

-अच्छा। -कल्याणी के मुँह से अनायास ही निकल पड़ा।

कल्याणी ने 'अच्छा' कहकर उस समय के लिए छुट्टी पाई। रंगा ने भी आगे कुछ न कहा। माँ-बेटे की बातें यहीं रह गईं।

कल्याणी अपने काम में लग गई। रंगा ने धोती उठाई और नहाने के लिए नदी की ओर चल पड़ा।

आज रंगा न तो अगले दिन की तरह तैरा और न उछल-उछल कर घंटों नहाता ही रहा। उसने साधारण तरीके से स्नान किया, कपड़े बदले और भीजी धोती को अच्छी तरह निचोड़ कर, हाथ में लटकाये, घर की ओर लौट पड़ा।

कल्याणी रंगा के इंतजार में बैठी हुई थी, ज्योंही उसे आँगन में आते देखा, वह बोली-धोती अलगनी पर फैला दो बेटा, आओ जल्दी, खिचड़ी ठंडी पड़ रही है। और रंगा ने धोती अलगनी पर डालते हुए कहा-मुझे भूख नहीं है, माँ! आज मैंने चूड़ा और मछली ठहला के यहाँ भरपेट खाई है।

कल्याणी समझ गई कि रंगा खाने का बहाना कर रहा है, शायद तकाजे की बात से इसके नन्हें-से दिल में सदमा घर कर गया। वह उद्धिग्न हो उठी। पर वह कैसे मान सकती थी कि रंगा भूखा ही रह जाय और वह खुद खा ले? वह बोल उठी-नुम तो यों ही कह दिया करते हों, बेटा! मगर वह

कैसे हो सकता है कि तुम न खाओ और मैं खा लूँ ! खैर, मेरे खातिर ही सही, जितना रुचे, खा लो । रात की मछली भी रखी हुई है ।

रंगा को लगा कि अगर वह नहीं खायगा, तो उसको माँ भूखी रह जायगी । इसलिए वह बोल उठा-अच्छा, तो खा ही लेता हूँ ।

रंगा खाने को बैठ गया, कल्याणी उसी के पास बैठकर पंखा झलती रही । रंगा कुछ सोच रहा था । उसे खाने में जैसे कोई स्वाद ही नहीं पा रहा हो । वह कवल उठाता और बड़ी देर तक उसे चबाता ही रहता । वह खाते-खाते ही बोल उठा-आज टहला की माँ कह रही थी कि उसपर भी जोर का तकाजा है, राजाबाबू का । वह भी बड़ी परेशान है, माँ! वह भी बेचारी बड़ी गरीब है!

कल्याणी सोचने लगी; मगर कुछ बोली नहीं ।

मगर, माँ, मेरी समझ में नहीं आता कि कोई गरीब क्यों है और कोई अमीर क्यों और ज्यादा आदमी तो गरीब ही नजर रात हैं । क्यों ऐसा होता है? हाँ, माँ, हमलोग अमीर न होंगे?

कल्याणी के ओठों पर एक हल्की-सी हँसी खेल गई । वह बोल उठी क्यों नहीं, बेटा, गरीब अमीर भी होते हैं और अमीर गरीब भी । ऐसा ही होता आया है ।

-ऐसा होता है, माँ ?-रंगा बोलकर माँ की ओर देखता रहा ।

-होता क्यों नहीं बेटा ? अपना ही देखो न । जब तुम्हरे बाबू जीते थे, अपने पास क्या नहीं था ? गाय, भैंस, गाड़ी छकड़ा, जर जमीन सभी कुछ थे-क्या नहीं था, मगर आज.....

कल्याणी की अतीत स्मृति सजग हो आई थी । उसकी आँखें भर आई । उसने उसे छिपाने के लिए दूसरी ओर मँह फेर लिया । -तो तुम्हें उम्मीद है, माँ, मैं अमीर होऊँगा ?

-अमीर ! भगवान की दया होगी, तो अमीर भी होगे । क्यों नहीं होगे, बेटा ? सदा सबका दिन एक-जैसा नहीं रहता । भगवान अगर ऐसा करे, तो लोग उसे माने ही क्यों? रंगा ने ये-सब बातें सुनीं । उसे लगा कि जरूर

वह एक दिन बड़ा आदमी होगा । जरूर उसके पास सब कुछ होंगे । क्यों नहीं होंगे ?

उसका खाना शेष हो गया था । वह उत्फुल्ल होकर उठ पड़ा, हाथ-मँह धोया और बाहर की ओर चल पड़ा ।

### (ग्यारह)

दिन बीता, महीने बीत चले; पर रंगा की विचार-श्रृंखला टूटी नहीं, उसमें और बल ही पड़ता गया । वह इन दिनों, एकांत में पहाड़ी की चोटी पर, खुले आकाश में बैठकर सोचा करता कि आखिर गरीब और अमोर की सृष्टि क्यों हुई? यह विभेद किसने डाला? और यह विभेद है क्यों? उसने अपने गाँव में अनुभव किया है कि मिहनत-मसक्त करनेवाले, रात-दिन बैल की तरह काम में जुटे रहने पर भी, क्यों गरीब है? क्यों नहीं उन्हें पहनने को अच्छे कपड़े और खाने को अच्छी चीजें और रहने को पक्का मकान ही नसीब होते? क्यों नहीं उनके बच्चों को देह पर खूबसरत कपड़े हैं? आखिर ऐसा क्यों है? और गाँव के ज्यादा लोग क्यों इतने गरीब हैं? सुना है, कितने को दोनों जून खाना नसीब नहीं होता, और उनके कपड़े? पैबंद पर पैबंद! गंदे, तबीयत मिचला देनेवाले । और उनके बच्चे? वैसे ही धम-धूसर! नंग-धड़ंग-किसी-किसी को सिर्फ दो अंगुल के कोपीन! रहने को फूस का घर, फूस की झोपड़ी-और वह भी साबित नहीं, बरसात में छप्परों से दर-दर पानी का चूना! और राजाबाबू का? उँह, उसीका तो सिर्फ पक्का मकान अँगन है, पक्के कुएं हैं, बैठने को गदे, कुर्सियाँ! और कपड़े? खाना? अजी, चलने को तीन-तीन मस्त हाथी, बड़े-बड़े घोड़े!-और इधर मोटर जो मँगवाई है, न उसे खिलाने की जरूरत और न उसके दवा-दारु की परेशानियाँ! और चढ़नेवाले के आदमी ठहरे!-एक वह, उसका छोटा भाई-सुना है, वह डिपटी कलडूर होनेवाला है और उसका लड़का क्या नाम है? -हाँ, याद आया-महेंदर! अंगरेजी पढ़ता है,- शहर में शायद पटना शहर में! मेरी उमर का! मगर पढ़ने में कैसा भोंदू! चला गया अंगरेजी पढ़ने को!

रंगा को विचार-धारा चल रही है-महेंदर और वह! महेंदर क्यों अमीर है और मैं क्यों गरीब हूँ ! न वह कुछ कमाकर अमीर हुआ है, और न मैं कुछ गँवा कर गरीब हुआ हूँ! घरवालों से कोई मतलब नहीं-चाहे वे अमीर हों या गरीब ! क्यों कोई गरीब केघर जनम लेकर गरीब हुआ? और क्यों कोई अमीर केघर अमीर ? आखिर, उनदोनों में भिन्नता क्यों? एक जनमते ही गरीब और दूसरा जनमते ही अमीर! यह क्या बात है ? रंगा इन्हीं विचारों मेंघटों उलझा रहा ; पर वह समाधान को सीमा तक न पहुँच सका । उसने शून्य दृष्टि से आकाश की ओर देखा-देखा उसने संध्या की अरुणिमा प्रश्चिमांचल में छायी हुई है और सूर्य मंडल क्षितिज के उस पार जैसे समाधिस्थ होने-होने को तैयार हो उठा है ! रंगा मन-मारे उन दृश्यों को अपलक दृष्टि से देखता रहा । उसने एक गहरी आह ली । पता नहीं, अस्तप्राय सर्य को देखकर उसके हृदय में कौन-सी भावना सजग हो उठी हो!

धीरे-धीरे सूर्य अपनी आभा को समेटकर अस्त हो गया, वातावरण शांत-बिलकुल शांत । और देखते-ही-देखते ठंडी हवा का झोंका बह निकला । रंगा उसके स्पर्श को पाकर सजग हुआ ! धीरे-धीरे नीलाकाश में फटे बादलों के बीच से चाँद फट उठा और तारे चिनगारियाँ-जैसे चारों ओर स्पष्ट हो उठे । वह घंटों आकाश के बदलते हुए दृश्यों का जैसे अध्ययन कर रहा हो - इसी रूप में वह अपने आपको कहीं अन्यत्र छोड़ चुका था ! क्यों वह आज इतना गंभीर बन बैठा है? क्यों आज उसे प्रकृति के क्षण-क्षण परिवर्तन पर इतना आश्चर्य हो रहा है? पहले भी उसने डूबते हुए सूर्य को देखा होगा और जाने कितनी बार उगते हुए चाँद और तारों पर उसकी नजर गई होगी, फिर भी जैसे उसने इस रहस्य को कभी समझने की कोशिश ही न की ! ऐसा लगा-जैसे वह, आज ही, सारी बातों को जान लेना चाहता हो । पता नहीं, उसने कुछ समझा या नहीं; फिर भी वह तो उसी तरह तल्लीन है, जैसे आकाश से ही उसे कुछ जीवन और उस जीवन में जागृति मिल रही हो । घंटों इस रूप में रहने के बाद जैसे उसकी समाधि भंग हुई । वह चौंक पड़ा । उसने एक बार सजग होकर चारों ओर दृष्टि डाली-ओह, कितनी रात निकल गई और वह पहाड़ी की चोटी पर अकेला-बिलकुल अकेला-बैठा हुआ है ! माँ

जो घर पर खोज रही होगी! वह जरा चिंतित हो उठा । उसने एकबार फिर से आकाश की ओर दृष्टि डाली और एक दीर्घ निश्वास लेकर वहाँ से चल पड़ा ।

वह तेजी के साथ पहाड़ी से उतरा और तेजी से ही समतल पर पहुँचकर अपने घर को ओर चल निकला । वह इतनी तेजी में जा रहा था कि जैसे वह क्षण मात्र में ही अपना घर पहुँच जाना चाहता हो, वह एक पल के लिए भी अपने को कहीं रोक नहीं सकता-माँ जो उसे खोजती होगी! वह अपनी माँ को अबतक कितना कष्ट देता आ रहा है । कितना कष्ट-वह सोचता आ रहा था; पर अचानक रास्ते में ही उसे कौन पुकार उठा-रंगा ?

और रंगा ने उस ओर को दृष्टि फेरी और अंधकार में उसने पुकारनेवाले को देख लेना चाहा; पर पुकारनेवाला खुद उसके पास पहुँचकर बोल उठा-कहाँ से आ रहे हो, रंगा?.....मैं तुम्हारे घर गया था, तुम्हें बुलाने को । मेरी माँ तुम्हें याद कर रही थी । घर आया; मगर तुम्हें न पाया । बड़ी देर तक तुम्हारी माँ के साथ बातें करता रहा । तुम्हारी माँ तुम्हें खोज रही हैं ।

-मेरी माँ खोज रही है, टहला-रंगा ने गंभीर होकर पूछा-मगर तुम्हारी माँ क्यों याद कर रही है? जानते हो?

-सो मैं क्या जानूँ, रंगा! तुमने तो माँ से जाने क्या-क्या कह डाला है! माँ की समझ तो देखो-वह सारी बातों पर विश्वास कर लेती है!

कोई भी कुछ कहता है, वह सभी में 'हाँ' कह देती है ! मैं तो उसकी समझ पर हंस पड़ता हूँ, क्या कहूँ उसे !

रंगा को स्मरण हो आया कि उसने उसकी माँ से कुछ कहा है और जो-कुछ कहा है, वह मजाक में नहीं, वास्तव में कहा है ! -वह कुछ क्षण चुप रहा, उसके बाद बोल उठा-टहला, तुम्हें मालम नहीं कि मुझे तुमसे, तुम्हारे घर वाले से और तुम्हारे घर से, जाने क्यों, अपनापन-सा जान पड़ता है । शायद इसलिए कि, तुम गरीब हो और मैं भी तुमसे कम गरीब नहीं ।...मगर, टहला, मुझे विश्वास है, हमलोगों का एक-जैसा दिन आगे न रहेगा! वह कभी बदलेगा ही; मैं भी अमीर होऊँगा और तुम भी अमीर होगे! क्या तुम्हें विश्वास है ?

टहला अपनी सुधाई से हँस पड़ा और हँसते-हँसते ही बोल उठा-आज तुम्हें ये सब बातें कहाँ से सूझी, रंगा ! हम-सब अमीर होंगे-यह तो मुझे विश्वास नहीं आता; मगर तुम हो सकते हो-इतना मैं कह सकता हूँ।

रंगा खीझ उठा टहला की बातों पर और उसका हाथ पकड़कर बोल उठा- क्यों तुम्हें मेरी बातों का विश्वास नहीं हुआ ? बोलो, टहला, कैसे नहीं तुम अमीर होगे और मैं कैसे हूँगा ? तुम बड़े गधे हो, कभी अकल से काम नहीं लेते। मगर मैं जो-कुछ कहता हूँ सच कहता हूँ; क्योंकि मेरी आत्मा कहती है, क्योंकि वह सनातन नियम है, क्योंकि, चारों ओर, जहाँ कहीं देखोगे, परिवर्तन-ही-परिवर्तन दीख पड़ेगा तुम्हें। सभीकी एक सीमा रहती है। अभी देखो रात है और इस रात को देखकर दिन की भी याद हो पाती है। सूरज उगता है, दिनभर धूप और गर्मी से व्याकुल कर छोड़ता है; मगर उसकी भी शक्ति क्षीण हो जाती है, वह भी हताश होकर ढूब जाता है। उसके बाद चाँद की बारी आती है, तारे खिलखिला उठते हैं, चाँदनी से सारा संसार विहँस उठता है! समझते हो टहला, यही नियम है, ऐसा ही होता आया है और आगे भी ऐसा ही होगा; फिर तुम कैसे कहते हो कि हमलोग सदा इसी हालत में रहेंगे ?

टहला रंगा को उलझनमयी बातों को गौर से सुनता रहा। उसके ख्याल में सारी बातें तो न आ सकीं; पर वह इतना जरूर समझ गया कि सूरज भी ढूबता है और चाँद भी! अपनी बारी में दोनों सामने रात हैं! -टहला क्षण भर चुप रहकर इन बातों पर सोचता रहा। उसके बाद बोल उठा-तो क्या सच ही हमलोगों की हालत बदलेगी, रंगा!

बदलेगी नहीं तो, क्या ऐसी ही रहेगी - रंगा की आवाज में जोर था। -मगर बदलेगी कैसे, रंगा? तुम देख ही रहे हो, अम्मा और भैया किस तरह दिनभर काम में जुते रहते हैं-जैसे कामों का अंत ही न हो! फिर भी खाने को बड़ी मुश्किल से मिलता है; ऊपर से देना-लेना, चारों तरफ का झमेला, एक-न-एक चिन्ता-जैसे चिन्ता ढोने को ही हमलोग बनाये गये हैं ! कैसे विश्वास किया जाय कि भाग पलटेगा, अच्छे दिन आएंगे?

रंगा टहला की बातों पर कुछ क्षण तक गंभीर होकर विचार करता रहा। कुछ क्षण में वह भी जैसे निराश हो चला; पर तुरत वह संभल गया और और उसके मस्तिष्क में जो बातें बड़ी देर से चक्कर लगा रही थीं, उन्हें निकाल बाहर करने को वह उल्कित हो उठा! वह अब तक, इन कुछ दिनों में, अमीर बनने के जो-सब मंसूबे बाँध चुका था, उन्हें वह टहला से जरूर कहेगा और टहला के सिवा और किसी दूसरे को यह भेद वह बतायगा भी नहीं! और उसकेलिए यह अच्छा अवसर भी पा गया कि टहला से रास्ते में हो उसकी भेंट हो गई। अगर यह भेंट अभी न होती, तो रंगा को उसके घर खुद से जाना पड़ता ! वह टहला से सारी बातें कहेगा-कुछ भी छिपायगा नहीं! पर यह क्या उपयुक्त स्थान हो सकता है, वैसी गुप्त बातें करने के लिए? -रंगा ने चारों ओर दृष्टि डाली, और इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि नहीं, यहाँ वैसी बातें नहीं की जा सकतीं! यह रास्ता है, लोगों का आना-जाना जारी है! -रंगा सोचने लगा, उसकी समझ में आया कि क्या ही अच्छा हो कि वे दोनों पाठशाला के हाते में जायँ ! गाँव से बाहर, एकांत जगह ! उस ओर से कोई आता-जाता भी नहीं ! मगर उस जगह पर जाने का निश्चय करने के साथ ही अपनी माँ की उसे याद हो आई। वह चौंक पड़ा और उसी हालत में बोल उठा-तुमसे अभी जो बातें करनी थीं टहला, देखता हूँ, अभी मैं कर न सकूँगा! वे बातें ऐसी हैं, जो ऐसी-वैसी जगह नहीं की जा सकतीं। और अभी मेरी माँ, जैसा कि तुम कह रहे थे और मैं खुद समझ रहा हूँ मुझे न पाकर घबरा उठी होगी। इसलिए चलो मेरे घर पर और मैं वहाँ खा-पी लूँ, तब वे बातें हों। क्या विचार है तुम्हारा ?

-हाँ, ठीक है, रंगा!-टहला बोल उठा-घर ही चलो ! बातें तो होती ही रहेंगी।

दोनोंघर को ओर चल पड़े।

कुछ दूरी पार करते ही रंगा बोल उठा-हाँ रे टहला, क्या तुम मेरा साथ दे सकते हो?

-साथ ? साथ मैं कब नहीं देता, रंगा! उस दिन की बात भूल गये ओह, कितनी बड़ी रात को हमलोग जाल काटने घर से निकले थे !

-मगर यह साथ और भी भयंकर होगा, टहला। ऐसा-वैसा नहीं डरे कि जान से ही हाथ धोना पड़ेगा! सोच-समझ लो! समझे? ऐसा न हो, तुम रास्ते में ही मेरा साथ छोड़कर भाग निकलो।

टहला रंगा की बातों पर डर तो जरूर गया, पर उसने अपने को छिपा लिया। यदि वहाँ अंधियाला न रहता, तो वह रंगा से अवश्य पकड़ा गया होता! पर वह उसे न देख सका और टहला अपने को संभालकर बोल उठा-सो कहाँ जाओगे, रंगा?

-कहाँ जाओगे?-रंगा जरा बिगड़कर बोल उठा-नरक में!

-नरक में-टहला उसकी बात पर हँस पड़ा और हँसते-हँसते ही बोला-नरक में भी कहीं आदमी, इच्छा करके, जाता है, रंगा!

-सो ही तो कहता हूँ! अच्छी जगह पर तो, इच्छा के बिना भी आदमी चला जाता है। पर मैं उन आदमियों में नहीं हूँ, तुम्हें यह खयाल रहना चाहिए। और इच्छा करके ही कोई भी बड़ा आदमी नहीं बनता; मगर इच्छा के साथ मैं बड़ा आदमी बनना चाहता हूँ और तुम्हें भी बनाना चाहता हूँ। तबीयत चाहे तो साथ दो-ऐसा कुछ निहोरा भी नहीं है। हाँ, दिल मजबूत हो, तो साथ दो, नहीं तो कोई बात नहीं।

टहला रंगा की उलझनदार बातों को समझने की कोशिश करता रहा; पर उसकी समझ में खाक नहीं आया। फिर भी उसने अपने जी को कड़ा किया और बोल उठा-नरक में भी साथ दूँगा, रंगा, नरक में भी! लो, आज मैं तुम्हें वचन दे चुका।

-अच्छा हाथ निकालो-रंगा खुशी के आवेश में बोल उठा-तभी तो मैंने और किसीसे कहना नहीं चाहा, टहला! खैर, हाथ निकालो! देखना, जीवन रहने तक तुम्हें मेरा साथ देना होगा, तुम्हें यह याद रखना होगा कि तुमने मेरे हाथ पर हाथ रखकर प्रण किया है! जिस दिन तुम उससे मुकर जाओगे, उसदिन मैं तुम्हें जीता न छोड़ूँगा!

टहला भी ज़ोश में आ गया था, बोला-हाँ, जीता न छोड़ना, रंगा! मैं भी कहे रखता हूँ।

और इतना कहकर उसने अपना हाथ रंगा की ओर बढ़ा दिया, दोनों की ऊँगलियाँ परस्पर कुछ क्षण के लिए आबद्ध रह गईं।

दोनों करीब-करीब रंगा के घर के पास आ पहुंचे थे। दोनों दरवाजे पर आये। रंगा ने देखा कि उसके चौपाल पर निस्तब्धता छाई हुई है। उसने टहला का हाथ पकड़ा और दोनों चौपाल में आ दाखिल हुए। कुछ क्षण तक दोनों मंत्रणा करते रहे, दोनों ने फिर एक समय निश्चित किया और दोनों बाहर आये।

बाहर आकर रंगा बोल उठा-चाहो तो अभी जा सकते हो, टहला! रात ज्यादा हो चुकी है; गाँव देखो सुनसान हो गया है। मैं अब खा-पीकर सो रहना चाहता हूँ।

टहला रास्ते की ओर बढ़ा और रंगा अपने आँगन की ओर।

(बारह)

रंगा और टहला के बीच जो मंत्रणा हुई थी, वह जितनी ही भयानक थी, उतनी ही दुरुह भी! उस मंत्रणा को लेकर उन दोनों के बीच कई दिनों तक, एकांत में बातें होती रहीं। टहला ने पक्ष और विपक्ष में कई सुझाव रंगा के सामने रखे और रंगा ने भी, बड़ी तल्लीनता से, उनपर विचार किया; पर रंगा ऐसी धातु का नहीं बना था कि वह अपनी आकांक्षा को दबाकर चुप मारकर बैठ जाता! अंत में उसने अपने निश्चय पर पहुँचकर टहला से कहा-अब क्या विचार है, टहला!

-विचार? -टहला ने अपने-आपको सँभालते हुए कहा-जो तुम्हारा विचार है, वही मेरा भी! कब चलते हो?

बस, आज रात को ही! -कै बजे?

-बजे ? यही समझो कि-रंगा ने सोचकर कहा-चाँद जब ऊपर उठ आये। यही कोई बारह बजे के करीब !

-मगर उस वक्त मुझे उठा देगा कौन रंगा? इतनी रात मुझसे जगना पार नहीं लगेगा! तुम जानते हो, मैं कितना सोनेवाला हूँ! एक दफा आँख लग जाने पर, चाहे नगाड़ा क्यों न बजता रहे, खुलती ही नहीं !

-सो जातना हूँ, टहला! -रंगा ने उसकी पीठ पर एक धौल लगाते हुए कहा-उसकेलिए कोई चिन्ता की बात नहीं, मैं खुद तुम्हारे घर जाऊँगा! मगर तम सोते किस घर में हो?

-सोऊँगा और कहाँ ? पछिमवाले घर में भैया सोते हैं और पूरब वाले घर में मैं और माँ।

रंगा माँ का नाम सुनकर सोचने लगा; पर कुछ ही क्षण के बाद बोला क्या तुम और कहीं दूसरी जगह नहीं सो सकते? -

माँ मुझे कहीं थोड़े ही सोने को छोड़ सकती है, रंगा ! मगर कोई चिन्ता नहीं। तुम आ जाना; माँ को ही पुकारना। वह तो सारी रात जगी ही रहती है। रात को उसे नींद बहुत ही कम आती है ! वह मुझे जगा देगी; मगर एक बात है, वह पूछेगी कि इतनी रात को मैं क्यों उठाया जा रहा हूँ, तब तुम क्या उसे जवाब दोगे?

रंगा सोचने लगा, फिर बोल उठा-खैर, उसकेलिए तुम कोई चिन्ता न करो, कहूँगा-जो मेरी इच्छा होगी!

ये-सब बातें टहला के घर के पिछवाड़ेवाले एक छोटे-से मकान में बैठकर हो रही थीं, जहाँ से रसोई घर में वह आवाज कुछ स्पष्ट और कुछ अस्पष्ट होकर पहुँच रही थी। वहाँ पर टहला की भाभी-लाली-रसोई के काम में लगी थी। लाली ने उन सब की बातें जरा कान लगाकर सुनीं और उन्हें समझने का प्रयत्न भी किया। उसने जहाँ तक कुछ समझ पाया, उससे वह बड़ी विचलित हो उठी! वह रंगा को कई बार अपने घर में आये हुए देख चुकी है, और खुलकर नहीं, पर लुक-छिपकर, बाड़ का सहारा लेकर, उससे वह दो-एक बातें भी कर चुकी है। उससे उसने जैसा-कुछ उसे समझा है, वह यह था कि रंगा ऐसा-वैसा लड़का नहीं-कुछ दूसरे तरह का है। मगर आज की उन लोगों की बातों से लाली का तरुण हृदय जाने कैसा कुछ करने लगा,

स्त्रियोचित दुर्बलता--दया, ममता और सहानुभूति-से वह अभिभूत हो उठी। उधर उन दोनों की बातें चल रही थीं और इधर लाली चिन्ता में धंसती रही।

टहला और रंगा उसी होकर आँगन की ओर बढ़े। लाली ने दोनों को देखा भी और रंगा ने उससे चुटकी भी ली, हँसकर कहा-भाभी जरा मजेदार रस्सा बनाना कबूतर का। और इस पर भाभी कुछ बोलने-बोलने को भी तैयार हुई; मगर रंगा के सामने वह खुद ही लजा गई, उसके ओठ हँसकर रह गये, मगर उससे एक शब्द भी न बोला गया! वह वहाँ रुका नहीं, बाहर की ओर निकल पड़ा और उसके साथ-साथ टहला भी।

लाली को अपने-आपपर बड़ा रंज हुआ! वह आज रंगा से बोल सकी क्यों नहीं? उससे लाज कैसी? रामटहल का साथी ही तो है लड़का, नटखट, भला मानस! लाली सोचने लगी-कितने खतरनाक रास्ते पर जाना चाहते हैं! रात को ! मायरी, सुनसान जंगल में? दोनों जने मिलकर ! कितनी हिम्मत ? कितना बड़ा हुआ हौसला ! रात को सॉप-ढोर का खटका, बाघ-शेर का डर, भूत-प्रेत को माया, चोर-डाकुओं की लूट-गोनूबाबा का थान--पूरे डेढ़ कोस पर! रास्ता बीहड़, कंकड़ीला, काँटों से भरा! -लाली सोचते-सोचते अपने-आपमें सिहर उठी। चावल उतारने के समय हाड़ी ठीक से पकड़ नहीं पाई, हाथ से छूट गई वह और गरमागरम मांड हाथ और छाती में छलक पड़ा। वह जली और उछलकर दो कदम पीछे को हट पड़ी। तब उसे सुध आया कि क्यों वह जली और कैसे माँड छलक पड़ा! वह कुछ क्षण तक जले हुए स्थान पर दायाँ हाथ फेरने लगी! उसने अनुभव किया कि जली जगह पर बड़ी लहर है, पर फफोले नहीं उठे हैं; वहाँ लाल-जैसा होकर रह गया है। वह कुछ क्षण केलिए बाहर आई और दरवाजे की ओर देखने लगी; मगर उसे कुछ दीख न पड़ा । लगा जैसे किसीने उसे जलते हुए न देखा। इससे उसे कुछ संतोष ही हुआ। उसने एक आह छोड़ी और रसोई घर में दाखिल हुई। फिर उसमें माँड़ पसाया, हाँड़ी उठाकर अलग रख छोड़ी। फिर उसने चूल्हे पर कड़ाही रखी और तरकारी भूजने में लग गई ।

पर, उसका मस्तिष्क उस समय भो उसी पुरानी गुत्थी को सुलझाने में लगा था, वह फिर सोचने लगी-उसने लजाकर अच्छा नहीं किया, उसी

वक्त उसे सावधान कर देना चाहता था ! रात को वह जरूर आयगा, रामटहल को उठाकर ले जायगा वह ! उस समय वह खुद अपने घर में बेखबर सोई हुई रहेगी, उसे खुद कुछ पता भी न चलेगा । मगर नहीं, वह सोयेगी नहीं, वह जागी रहेगी, बारह बजे आने की बात कर गया है ! वह बारह बजे तक अपने-आपको जगाए रखेगी, वह बाहर आ-आकर उसके आने की बाट जोहेगी और अगर उससे भेंट हो सकी, तो वह उसे मनाकर कहेगी-देखो, ऐसा न करो, जान देने को मत तैयार हो ! आखिर, जान इतनी सस्ती नहीं है ।

लाली अपनी चिन्ता में, जाने कब तक बहती रही, और परिणाम यह हुआ कि उसकी तरकारी झुलस गई, नमक छोड़ा ही नहीं गया । खैर, लाली की रसोई तैयार हो गई । उसने सभी चीजों को सहेजा और वह बाहर आई, फिर और दूसरे काम में लग गई ।

घर पर एक-एककर सभी बाहर से आये-सास आई, पति आये और टहला भी आया । लाली उन सबके खिलाने-पिलाने में लगी, उसे लगा कि वह अपने दुलारे देवर-रामटहल-को एकांत में बुलाकर समझा दे कि उन दोनों ने जो विचार पक्षा किया है, वह उसे जानती है; उसकी भाभी उसे जाने देना नहीं चाहती; पर लाली को न तो ऐसा करने का संयोग ही मिला और न वह अपने विचार को कार्य-रूप में ही बदल सकी । सास के पैर दबाने के समय भी उसे लगा कि वह उन दोनों की बात अपनी सास से कह डाले पर तैयार हो-होकर भी उससे कहा न गया ! उसने सोचा कि अब वह अपने पति से ही सोने के वक्त सब-कुछ कहेगी; पर ऐसा ख्याल रात ही वह सहम-सी उठी । उसने कई बार अपने देवर को अपने पति से मार खाते हुए देखा था ! वह अपने पति को जानती है, उसका रोष उसे मालूम है ! तब वह क्या अपने देवर को उनसे मार खिलाने का कारण बनेगी ? नहीं, उससे ऐसा न होगा । वह उसे मार खिलाना नहीं चाहती; बल्कि वह तो उसे बचाना चाहती है-दुनिया की सारी विपत्तियों से बचाना चाहती है । अगर उसका वश चला तो वह उसकी रक्षा करेगी ! वह बड़े बाप की बेटी है.....

लाली अपनेघर में आकर सो रही। माँगन जाने कब भीतर आया। लाली जगी थी, अपने आपमें सिकुड़ पड़ी। वह उसके बगल में सो रहा, लाली हिली-डुली नहीं। जैसे वह कितनी बेखबर होकर सोई पड़ी हो! पर दिनभर का थका माँगन बिछावन पर पड़ते ही सो गया! लाली कुछ देर तक अपने पति के सोने का अनुभव करती रही; पर ज्योंही उसे मालूम हो गया कि वह नींद में बेखबर सोया हुआ है, त्योंही वह उठ पड़ी और पैर दबाते हुए बाहर निकल आई!

वह बारह बजे के पहले तक कई बार बाहर आ-आकर देखती रही। उसे हरबार निराश ही होना पड़ा; पर वह घबराई नहीं। उसे विश्वास था कि रंगा आयगा ही, उसने निश्चय जो किया है, वह चूकेगा नहीं!

और आखिरी बार लाली अपने पैरों की आहट बचाकर घर से निकल कर ज्योंही आँगन में आई, उसने देखा कि रंगा एक लाठी लिये पूरबवाले घर के सामने खड़ा है! लाली काँप उठी; फिर भी उसने अपने मन में ठान ली कि वह रंगा से खुलकर अभी बातें करेगी, उसे समझायगी, उसकी मिन्नतें करेगी और जैसे होगा, उसे अपने विचार से अलग हटायगी! और ऐसा विचार रात ही, लाली ने अनुभव किया, जैसे उसमें कहाँ की स्फूर्ति आ गई है! वह आगे बढ़ी और पीछे से रंगा को पकड़कर उसके कान में कहा-मैं हूँ तुम्हारी भाभी। तुमसे कुछ कहना है।

रंगा ने उलटकर देखा-सच ही तो, वह उसकी भाभी है! उसके सारे शरीर में रोमांच हो आया। उसे लगा कि जैसे किसी मधुर स्पर्श से उसका रोम-रोम पुलकित हो रहा हो! वह स्पर्श, जिसका उसने कभी अनुभव तक न कर पाया था! वह कैसा स्पर्श है?

रंगा एक शब्द भी न बोल सका; पर वह आप-ही-आप जैसे आकर्षण की डोर पर बढ़ चला। क्यों वह स्पर्श उसे इतना अच्छा लगा? लाली उसे ऐसी जगह में ला खड़ी हुई, जहाँ से आवाज दूर नहीं जा सकती थी! रंगा चुपचाप उसके सामने खड़ा था, उसका हाथ लाली अपने हाथ में लिये हुए थी!

-सुनो, रंगलाल-लाली क्षीणकंठ से किंतु स्पष्ट शब्दों में बोल उठी  
तुम लोगों ने जो सलाह पछी की है, वह मैं जानती हूँ! तुम उसी मतलब से  
अपने साथी को लेने अभी आ भी गये हो ! जानती हूँ कि तुम बड़े निडर हो,  
जम से भी नहीं डरते; मगर इस तरह से जान पर खेलना अच्छा नहीं ! मैं नहीं  
चाहती कि तुम यों ही जान दो!

रंगा बड़ा विस्मित हो उठा ! उसे इस बात का क्यास तक न था  
कि उसके साथ किये गये परामर्श को किसीने सुना भी है !

रंगा कुछ क्षण खड़े-खड़े सोचता रहा, फिर वह मुस्कुराकर बोल उठा  
मैं नहीं जानता था कि तुम इतनी चोर हो, भाभी ? किसी की बात को छुप-  
छुप कर सुनना चोरी नहीं, तो और क्या है ? खैर, जब तुम सारा हाल जान  
चुकी हो, तब फिर छिपाना ही क्या है ! हमलोग गोनूबाबा के थान पर जा  
रहे हैं ! तुम उसके महातम को शायद जानती भी होगी। सुना है कि वहाँ के  
पुराने उजड़े हुए गाँव की डीहों पर, बड़े-बड़े पेड़ उग आये हैं ! उनकी जड़ों  
में, पुराने रूपयों और अशर्कियों की बड़ी-बड़ी कल्लियाँ बंधी पड़ी हैं।  
सभीलोग इस बात को जानते हैं। मगर वे हिम्मतकर वहाँ पहुँच नहीं पाते।  
रात को ही वे कल्सियाँ उखाड़ी जा सकती हैं, दिन को नहीं-दिन को तो वे  
मिल भी नहीं सकतीं ! -रंगा बोलकर क्षणभर के लिए चुप हो गया। वह आगे  
जो-कुछ बोलना चाहता था, उसकेलिए वह सोच रहा था कि भाभी से वह  
कहा जाय या नहीं। क्षणभर सोचने के बाद वह कहने को उत्कंठित हो उठा  
और बोला-तुमसे छिपा हुआ ही क्या है, भाभी ! हमलोग कितने गरीब हैं !  
कितनी कठिनाई से हमलोगों की घर-गिरस्ती चल रही है ? तुम अपनी ही  
देखो न ! भैया रात-दिन बैल की तरह जुटे रहते हैं काम में, फिर भी दोनों  
जून दाना नहीं जुटा सकते ! ऊपर से लहनदार की लाल-लाल आँखें !  
जमीन्दारों के लात-घुस्से ! ऊपर से घर का अलग खर्च ! क्या तुम ऐसी  
जिंदगी पसंद करोगी, भाभी ? सच-सच कहो, क्या तुम्हें ऐसी जिंदगी पसंद  
आती है ?

भाभी चिन्ता में पड़ गई ! वह जैसी जिंदगी से गुजर रही थी, उसका चित्र  
उसकी आँखों के सामने खिंच आया ! वह अवाकृ होकर रंगा की ओर देखने

लगी। उसे लगा कि जैसे रंगा, इतनी कम उम्र में, अपने जीवन के घाव खाकर पक चुका है ! उसे रंगा पर सहानुभूति हो आई, स्त्रियोचित ममत्व उसके भीतर घर कर गया और वह ममत्व इतना प्रबल हो उठा कि अपने जीवन की कठिनाइयाँ उसकी आँखों से ओझल हो गई और उसकी जगह पर आ गया गोनूबाबा का थान, घनघोर जंगल, जंगल के हिंसक पशु-बाघ भालू, भेड़िया-भैंसा, सौंप-बिचू और जाने क्या-क्या ? अँधेरी रात-रात के झिल्लियों का भयानक सॉय-सॉय शब्द, उबड़-खाबड़ पहाड़ी स्थान और वहाँ रंगा के साथ रामटहल के जाने की तैयारी ! वह अपने विचारों में इतनी डूब गई कि उसकी चिन्ताएँ मूर्त हो उठीं और वह घबराकर रंगा का हाथ अपने हाथों से जकड़ कर बोल उठो-नहीं रंगलाल, नहीं ! जो तुम सोच रहे हो, ठीक नहीं है ! जान के सामने रुपया-पैसा कोई चीज नहीं। जहाँ बड़े-बड़े हिम्मतवाले खुद नहीं जा सकते-जाने का विचार तक भी नहीं मन पर ला सकते, वहाँ तुम दोनों को मैं जाने नहीं दे सकती ! क्या हुआ, अगर दानों के लिए हम रात-दिन तरसा करें; मगर जीते तो हैं ! कभी भगवान सुनेंगे और दुख दूर भी होगा ! रुपया-पैसा ही तो दुनिया में -सब कुछ नहीं हैं !

रंगा को भाभी की घबराहट से लगा कि जैसे उसके पाँव लड़खड़ा रहे हैं, सारा शरीर कॉप रहा है, उसके हाथों की मुट्ठियाँ ढीली पड़ रही हैं। वह भाभी की बातों से प्रभावित हुए विना रह न सका ! कुछ क्षण तक दोनों नीरव हो रहे; मगर रंगा को नीरवता पसंद न आई। वह कुछ सोचने लगा और जो-कुछ उसने सोच पाया, उससे उसके ओठों पर हँसी आ गई और वह खिलखिलाकर हँस पड़ा और हँसते हुए बोला-भाभी, बुरा न मानना; तुम आखिर औरत ही तो ठहरी और औरतों का कलेजा ही कितना ? फिर गंभीर होकर कहने लगा-तुम जिल्लत की जिंदगी पसंद कर सकती हो, दाने-दाने को तरसकर भी, घर में छिपी सिसकती रह सकती हो। मगर मैं मर्द हूँ; छोटा हुआ तो क्या ? आखिर, कलेजा तो मर्द का ही रखता हूँ ! मैं ऐसी जिल्लत की जिंदगी पसंद नहीं कर सकता ! दुनिया हिम्मतवालों के लिए है ! और मैंने वह हिम्मत पाई है। अगर हिम्मत दिखाने में, अपने लक्ष्य तक पहुँचने में, भले ही जान चली जाय, मैं परवा नहीं करता और न किसी को करनी चाहिए !

रंगा कुछ क्षण चूप रहा, वह पूरे जोश में उतर आया था, उसकी आँखें चमक रही थीं, वह फिर से बोल उठा-और सुनो, भाभी, अमृत का फल मीठा होता है; मगर उसके पाने को बड़े भयावने रास्ते से गुजरने पड़ते हैं गुलाब के फल को ही देखो न ! कैसा सुहावना, कितनी उसकी मीठी गंध मगर उसको पाने केलिए, उसके काँटों से उँगलियाँ छिदानी ही पड़ेगी और भी कहूँ ?—और इसे तुम शायद अच्छी तरह समझोगी-आज समझी, तो दो-चार-दस महीने में तो समझोगी ही, जब तुम्हें लल्ला नसीब होगा ! क्या तुम कह सकती हो कि लल्ला के पैदा होने के समय कैसा कष्ट तुम्हें सहना पड़ेगा ? तुमने बच्चेवाली औरतों से तो यह जरूर सुना होगा भाभी के ओंठ हिल गये, वह और उसने अपने हाथ से रंगा का मुंह ढंककर हँसते हुए कहा-रहने दो, रहने दो, रंगलाल, मैं तो तुम्हें बिलकुल सूधा ही समझ रही थी । मगर आज मैंने जाना कि तुम पूरे उस्ताद हो !

और इसबार भाभी भी अपनी हँसी रोक न सकी, भभाकर हँस पड़ी । कुछ नया के लिए वातावरण सजीव हो उठा; पर वह सजीवता रही नहीं; लाली उसकी बातों पर गौर से विचार करने लगी । उसे लगा कि जैसे रंगा उसको और उसकी नारी-जाति को चुनौती दे रहा है, जैसे औरतों में हिम्मत होती ही नहीं है ! जैसे औरतें केवल घर के भीतर सिसकती रहने को ही बनाई गई हैं ! लाली को ऐसा सोचते-सोचते एक स्फूर्ति-सी हो आई । उसकी आँखों के सामने से क्षणभर केलिए अंधकार का पर्दा हट-सा गया वह कुछ बोलना ही चाहती थी कि रंगा से उसने कहते सुना-मैंने यह-सब मजाक में नहीं कहा है, भाभी ! जैसा मैं अबतक इस दुनिया को जान सका हूँ, और जो-कुछ इससे मुझे अनुभव मिल सका है, उससे मैंने यही जाना है कि वीरों केलिए यह दुनिया स्वर्ग है और कायरों केलिए नरक ! नरक और स्वर्ग कहीं दूसरी जगह नहीं है, हमारे विचार में है; जिसे हम इनदोनों में से लेना चाहें, ले सकते हैं !

भाभी रंगा के युक्तिसंगत वचनों से प्रभावित हुए विना न रह सकी । क्षणभर केलिए उसकी आँखों के सामने स्वर्ग-जैसे सुखद जीवन का चित्र उतर आया और वह उल्लसित कंठ से बोल उठी-क्या तुम मुझे अपने साथ ले जा सकते हो, रंगलाल ?

-तुम चलोगी, भाभी ! ओह, तुम ? -रंगा ने कुतूहल-भरी आँखो से लाली की ओर देखा ।

-हाँ, रंगलाल, मैं ही चलूँगी तुम्हारे साथ रामटहल नहीं । वह तुम्हारी उमर का है सही, मगर तुम-जैसी उसकी हिम्मत है कहाँ ? ले चलोगे मुझे ? बोलो ।

-सचमुच चलोगी तुम ? -आश्चर्यचकित होकर रंगा ने भाभी की ओर ताका ।

-तुम समझ क्या रहे हो, रंगलाल ! -लाली ने गंभीर होकर कहा-मैं औरत ठहरी, इसलिए क्या मुझमें वह हिम्मत नहीं ? तुम आखिर समझ क्या रहे हो, रंगलाल ?

रंगा ने इसबार आँख उठाकर लाली की ओर देखा । रात के घने अंधकार में उसकी आकृति साफ दीख तो न पड़ी; पर उसे लगा कि जैसे लाली की आँखें विलक्षण रूप से उद्धीषित हो उठी हैं! और उसने अभी जो बातें कही हैं वे जैसे तीर की तरह उसे जा लगी ! कुछ देर पहले वह औरतों की कमजोरी के बारे में बोल चुका था, वह उसे याद हो पाई । वह जरा झेंप उठा; पर वह अपनी भाभी के दुस्साहसपूर्ण वचनों पर विस्मय विमुग्ध होकर उसकी ओर देखते हुए बोल उठा-तुम साथ दो, और मैं न ले चलूँ ? यह क्या कहती हो, भाभी ? मैं तैयार हूँ ।

-तैयार हो ?-लाली ने उसका हाथ अपने हाथ में लेकर कहा । -हाँ, मैं तैयार हूँ ।

-मगर, मैं अभी तैयार नहीं हो सकती ! तुम्हारे भैया के पास से अभी-अभी उठ आई हूँ । अभी मेरा जाना किसी भी तरह हो नहीं सकता । समझते हो रंगलाल ? मगर मैं चलूँगी, जरूर चलूँगी-तुम विश्वास रखो । मगर मैं उस दिन चलूँगी, जब वे घर पर नहीं रहेंगे । चलूँगी रात को ही । और राते बीतने के पहले लौट आऊँगी । क्या कहते हो, है पसंद मेरी बात ?

-हाँ, पसंद है भाभी !-रंगा लाली की दृढ़ता के सामने झुक गया ।

-तो अभी तुम लौट जाओ । बीच-बीच में मेरे यहाँ आते रहना जिस दिन तुम्हारे भाई बाहर जायेंगे, उसी दिन हमलोग चल देंगे । रंगा भाभी के

सामने इतना झुक गया कि उसे कुछ प्रतिवाद करने के हिम्मत ही नहीं हुई।  
वह घर की ओर लौट पड़ा।

(तिरह)

रंगा उस दिन जिस उमंग और आकांक्षा को लेकरघर से बाहर हुआ था उसपर अचानक भाभी से आँगात पाकर वहघर लौटा तो अवश्य; पर उसके मन का उत्साह अब भी सजीव था, वह उस उत्साह को भंग नहीं करना चाहता! उसे अपने-आपपर विश्वास है, विश्वास है कि वह एक-न-एक दिन अपने काम में सफल होगा। सफल न भी हो—यह तो भविष्य की बात है पर वह अपने कर्मक्षेत्र में उतरेगा ही, वह पंगु होकर बैठ रहना नहीं चाहता। वह नहीं चाहता कि उसकी इन्द्रियाँ निर्जीव हो जाय! वह जीवन में सजीवता चाहता है, जीवन को प्रणमय देखना चाहता है!

पर, अंतराय उसके सामने आ पहुँचा। कई दिनों तक लगातार वह अपने साथी टहला के घर जाता रहा; पर टहला के लिए नहीं, जाता रहा वह भाभी केलिए-उस भाभी के लिए, जो उसके कर्मक्षेत्र को मुखर बनाने के लिए, उसका साथ देने को उल्लसित हो उठी है। वह अवसर की ताक में जाता है; पर जब उसे मालम होता है कि वह अवसर आ नहीं रहा है, तब वह उद्धिग्न होकर उस भाभी से पूछ बैठता है और कबतक भाभी-और कबतक ? और भाभी गंभीर होकर कहती है कि अधीर होने से कैसे काम चलेगा, रंगलाल ! आज न सही, कल वह अवसर आयगा ही-सच जानो, वह अवसर आयगा ही। और रंगा अपने को खोने-खोने से बचाकर-फिर उल्लसित होकर घर लौटता है और फिर से वह अपने स्वप्न में डूब जाता है! दिन बीतता है, रात आती है, दिन और रात का बारी-बारी से आना-जाना जारी रहता है पर वह अवसर उसके हाथ आता नहीं है। जाने वह अवसर उसके हाथ कभी आयगा या नहीं-इसी चिन्ता में वह डूबने-उतराने लगता है।

हठात् एक दिन पिछली पहर को रंगा घर से बाहर निकलने वाला ही था कि उसकी माँ बोल उठी-सुना है, रंगा, नंदा बीमार पड़ गई है ! आज गनेसी आये थे । कहते थे, नंदा को जोर का बुखार आ गया हैं । वह बेहोशी में रह-रहकर तुम्हारी याद करती रहती है । वह कह गये थे कि रंगा को एकबार भेज देना-शायद तुम्हारे जाने से नंदा की तबीयत अच्छी हो जाय ! रंगा ने माँ की बातें सुनीं, उसके पाँव ज्यों-के-त्यों रुक गये । उसकी आकृति क्षण मात्र के लिए धूमिल पड़ गई । वह कछ चिंतित हो उठा, वह सोचने लगा कि इतनी जल्दी वह बीमार पड़ गई कैसे ? इतनी स्वस्थ होकर उसका बीमार पड़ जाना ! वह अधिक सोच न सका और बोल उठा- बीमार पड़ गई है नंदा ? अच्छा जाता हूँ वहीं, माँ, नंदा को देख आने ! वह जरूर मेरी याद करती होगी !

-हाँ, बेटा, देख आओ; मगर ज्यादा ठहरना नहीं ।

-ज्यादा ठहरना नहीं-रंगा माँ की बात पर हँस पड़ा और हंसते हुए ही बोला-यह कैसे हो सकता है, माँ ! शायद उसकी तीमारदारी के लिए मेरी ही जरूरत हो जाय वहाँ ! संभव है, जल्दी छुट्टी न मिल सके मुझे....

-न मिले तो कई हर्ज नहीं; मगर जब तुम्हें रहना ही हो जाय, तब तुम मुझे खबर भिजवा देना ! अच्छा ?

-अच्छा, जैसा होगा; खबर कर दूँगा ।

और रंगा तेजी के साथ वहाँ से बाहर की ओर चल पड़ा ।

रंगा ने आकर देखा कि सचमुच नंदा बुखार में बदहोश है । रंगा को पाकर नंदा की माँ के चेहरे पर आशा की ज्योति खिंच आई, वह बोल उठी भगवान भला करे तुम्हारा रंगा, अभी-अभी मैं तुम्हारी याद कर रही थी ! तुम्हारे काका तुम्हारी खोज में गये थे, तुम्हारी माँ को वह कह पाये थे ! इधर तो तुम बहुत दिनों से आ ही नहीं सके यहाँ; और इसी बीच में.....

-हाँ, चाची, मैं नहीं आ सका था इधर ! मगर इतनी जल्दी नंदा बीमार पड़ जायगी-इसका तो कुछ खयाल न था मुझे । अगर जरा भी ऐसा मालूम होता, तो मैं लाख काम छोड़कर भी आ गया होता, चाची, मगर घबराने की कोई बात नहीं ।

रंगा नंदा के बिछावन के पास जा पहुँचा, और आहिस्ता-आहिस्ता उसने अपने हाथ को नंदा की ओर बढ़ाया। देखा कि नंदा का शरीर तबे की तरह तप रहा है; नंदा बड़ी बेचैन हो रही है, उसे होश तक नहीं!

रंगा के जीवन में यह पहला हो अवसर था, जब वह बीमार के सामने आ पहुँचा हो। वह जरा घबराया और घबराकर चिंतित भी हो उठा; वह सोचने लगा.....

इसी बीच में नंदा बहुत कातर होकर, क्षीण स्वर में बोली-पानी।

और माँ ने थोड़ा-सा पानी गलास में लेकर, उसके ओठों से लगा दिया। नंदा घूंट-घूंट कर पानी पी गई! उसके बाद उसने करवट बदली, बदलने में माँ ने उसको सहारा दिया! अब उसका चेहरा साफ रंगा के सामने था। मगर वह आँख मूँदे हुए थी।

इसी समय माँ ने पुकारा-बेटी-नंदा!

नंदा ज्यों-की-त्यों पड़ी रही, जैसे उसने कुछ सुना ही न हो! उत्तर में न तो कुछ वह बोल सकी और न आँखें खोलकर ही देख सकी।

मगर माँ चुप रही नहीं। उसने फिर से पुकारा-नंदा, मेरी बिड़ो रानी, देखो, रंगा आया है तुम्हें देखने! देखो, रंगा खड़ा है तुम्हारे सामने।

पर कोई फल नहीं! नंदा इतनी बदहोश थी कि वह रंगा के नाम पर भी आँख न खोल सकी !

इसबार रंगा चुप न रह सका। वह उसके सिरहाने बैठ गया और सिर को गोद में रखकर उसके क्रेशों को धीरे-धीरे सहलाने लगा।

घंटे-पर-घंटे निकल गये; मगर नंदा में कोई परिवर्तन दीख न पड़ा। वही बेकली, वही छटपटाहट, वही सब-कुछ !

इसी बीच में पास-पड़ोस के आदमी आये और गये। दोपहर बीती, दिन ढला, संध्या आई, अंधेरा हुआ; पर रंगा ज्यों-का-ज्यों नंदा के सिर को अपनी गोद में लिये, जड़भरत-सा पढ़ा रह गया ! अंधेरा कुछ सान होते ही रंगा जैसे चौंक पड़ा, बोला-चाची, यह बेहोशी कबसे है ?

-आज तीन दिन हुए, इसी तरह की बेहोशी रहती है, दोपहर से बुखार तेज होता जाता है, और पहर रात बीतने के बाद से वह उतरने लगता है।

-कोई दवा-दारु.....

-दवा-दारु अभी तो कुछ हुआ नहीं है, रंगा ! हाँ, कल ओझा आया था। उसने देखकर कहा- यह डाइन की करतूत है! मैं क्या बताऊँ! डाइन का नाम सुनते ही कलेजा मुंह को आया। मैंघबराई और घबराकर मैंने उससे अरज की कि मेरी नंदा मेरी गोद में खेले। इसके दुश्मन का ज्ञाश हो। जो भी हुकुम होगा, मैं बजाऊँगो! इसपर उसने हमलोगों को बड़ा धीरज बंधाया, और कहा-- चक्कर पूजना होगा, एक जोड़ा कबूतर लगेगा, एक बोतल दारू मँगानी पड़ेगी, सवा गज कपड़ा मँगाना पड़ेगा और सवा रुपया भेट चढ़ाना होगा। मैंने हरफ-हरफ उसकी बात मानी और सारा सामान इकट्ठा किया। यहाँ कल रात को चक्कर पूजा गया, जोड़ा कबूतर की बली दी गई, दारू चढ़ाई गई; सब-कुछ हुआ। मुझे तसल्ली हुई कि अब नंदा अच्छी हो जायगी। मगर नंदा कैसी है- तुम खुद देख रहे हो, बेटा! मेरी अकल तो जाने घास चरने को चली गई है! कुछ करते नहीं बनता। इधर चुल्हे में आग लक न जली, और वे (नंदा के पिता) बौखलाये हुए, जो भी लोग कह देता, करते-धरते हैं!

नंदा की माँ आगे न बोल सकी। उसका गला उच्छ्वसित हो उठा और उसकी आँखों से टपाटप आँसू जैसे बरस पड़े।

रंगा उन सारी बातों को सुनकर अवाक रह गया। उसकी आकृति का रंग क्षण-क्षण चढ़ता-उतरता दीख पड़ा। ओझा और उसके चक्कर-पूजने की बात से उसके नथुने फूलने लगे थे। उसे हो रहा था कि ये गँवार माता-पिता कितने सूधे-सादे हैं! जो चाहता है, उल्लू सीधा कर जाता है। आखिर इन भोले जीवों को क्या कहा जाय! इस तरह नंदा हाथ से निकल जायगी, ये लोग रोते-कलपते जान दे देंगे; मगर.....

मगर, नहीं, -रंगा सोचने लगा कि उसका भी कुछ कर्तव्य है नंदा के प्रति-उस नन्दा के प्रति, जो बचपन से उसे प्यार करती आई है, जिस नंदा को वह खुद प्यार करता है! आखिर, उपाय? रंगा की आकृति, क्षण मात्रमें, गंभीर हो उठी। उसके सहज-विनोद-प्रिय मुख-मंडल पर परिस्थिति की जटिलता ने जैसे कालिमा पोत दी। वह अस्थिर हो उठा और उसी अस्थिरता

में बोल उठा-चाची, देखता हूँ कि तुमलोग अपनी बेवकूफी से जान दे दोगे; पर नंदा तुम्हरे हाथ से बाहर चली जायगी! ओझा-गुनी के फेर में पड़कर ही तो बीमारी इतनी ज्यादा बढ़ गई ! अब अगर अच्छे वैद्य या अनुभवी डाक्टर का इलाज न कराया गया, तो हाथ मलने के सिवा और कुछ हाथ न आयगा! मगर घबराने की बात नहीं । मैं तैयार हूँ, अस्पताल के डाक्टर को बुलाने! अभयपुर कुछ ज्यादा दूर भी नहीं है। हाँ, अभी फीस के लिए कुछ रुपए की जरूरत पड़ सकती है। है पास में? या उसके लिए बंदोबस्त करना पड़ेगा?

इतने में गनेसी टोले के मंगरु गोसाई को लेकर आ पहुँचा ! गनेसी की नजर रंगा पर पड़ी और रंगा ने गोसाई की ओर रोष-भरी दृष्टि से ताका । मगर उसकी दृष्टि की भाषा को न तो गनेसी समझ सका और न गोसाई ! गनेसी और गोसाई-दोनों नंदा के पास आये । रंगा कुछ बोला नहीं; पर उसकी तीखी नजर अवश्य गोसाई की ओर लगी रही ।

गोसाई ने नंदा के सिर पर हाथ रखा, फिर उसकी देह पर; उसके बाद कुछ क्षण तक नाड़ी देखी; फिर एक गहरी आह लेकर वह बोल उठा-आसार अच्छे नजर नहीं रात, गनेसी ! जरूर ग्रह का फेर है और वह बड़ा दुष्ट ग्रह है! जबतक तुम उसकी शांति न करवाओ.....

-मगर गोसाई जी-रंगा ने बीच में ही उसकी बातें काटकर कहा . शांति-वांति से, आप विश्वास रखिए, कुछ होने हवाने को नहीं है। नंदा को बुखार लगा है और बुखार की दवा कराई जानी चाहिए। मैं ग्रह-उपग्रह नहीं मानता.....

और गोसाई ने रंगा की ओर, अपनी बिल्ली जैसी कंजी आँखों से धूरा और फीको हँसी हँसकर बोला-हाँ, यह हरिया का बेटा है न! यह तो ऐसा कहेगा हो? यह काहे को मानेगा ग्रह.....

-इसका मतलब गोसाई? -रंगा की भवें खिंच गई ।

मतलब ! -गोसाई झल्लाया-मतलब?.....जो तुम समझो!

रंगा उसकी छिपी हुई व्यंगोक्तियों पर कट गया; पर उसकी आकृति रोष से लाल हो उठी और बोल उठा-समझता हूँ, गोसाई और तुम्हें भी समझा सकता हूँ ! सिर्फ 'हरिया का बेटा' कह देने से अपनी धाक तुम

दूसरे पर नहीं जमा सकते ! और धाक ही जमानी है, तो जमा लो; मगर तुम मर्द के बच्चे हो, तो नंदा को.....

गनेसी ने बात को बिगड़ते हुए अनुमान कर परिस्थिति को काबू करने की गरज से, नप्र होकर, बीच ही में रंगा को रोका और बोल उठा-बेटा, बड़ों को ऐसी बातें नहीं कही जानी चाहिए ! तुम शायद गोसाई जी को नहीं जानते । अभी तुम कै दिन के हो ही ! गोसाई जी यों कहीं जाते-वाते नहीं; बहुत कहने-सुनने और मनाने दनाने पर तो आये हैं यहाँ । सिर्फ इनका हाथ पड़ना चाहिए ! फिर बड़ी-से-बड़ी बीमारी को ये चुटकियों में उड़ा देते हैं...

रंगा चुप होकर गनेसी की बातें सुनता रहा; पर कुछ प्रतिवाद करना उसने इसलिए उचित नहीं समझा कि मूरख को दो पैसे दे देना चाहिए; पर अकल नहीं ।

इधर गोसाई ने गनेसी की बातों में उसने विजय का अनुभव किया और उसी उल्लास में बोल गया-गनेसी, चुप भी रहो, ये लोग क्या जाने करामात की बातें ! और यह जमाना ही कुछ दूसरा है ! आज के लौंडों ने दो हरफ क्या पढ़े कि शेर के मुंह में हाथ डालना शुरू कर दिया ! मैं तो ऐसों को जी से नहीं लगाता ! तुम खुद जानते हो सभी बातें । अभी अगर चाहूँ तो इसके सामने, इसकी गोद में मुर्दे का खोपड़ा बरसा दूँ, इसे पागल तक बना दूँ, नंगा नाच नचवा दूँ ! आखिर बच्चा क्या समझेगा, गोसाई .....

-आखिर, कौन रोकता है गोसाई ?-रंगा ने पूरे रोष में उसे चुनौती देते हुए ललकारा-मर्द तो मैं तब जानूँ, जब तुम आँखों के सामने खोपड़े बरसाओ ! बात बनाने से काम नहीं चलने का । यह बहादुरी किसी दूसरे को सुनाओ, यहाँ तुम्हारी दाल नहीं गलने की । जब तक तुम एक भी खोपड़ी-खैर, खोपड़ी तो दूर रहे, मुर्दे का एक दाँत ही सही, यहाँ अभी दिखलाओ, तो मैं आज से तुम्हारा चेला बन जाऊँ । है ताकत ?

गोसाई की आग भड़क उठी, लगा जैसे रंगा को कच्चा ही निगल जायगा; पर रंगा भी यों डरकर चुप रहनेवाला न था । उनदोनों की हालत देखकर नंदा की माँ तो इतनी डर गई कि वह पनाह लेने को वहाँ से उठकर भाग चली; पर गनेसी ने परिस्थिति को संभालने का भार अपने ऊपर लिया,

और वह बोला-गोसाईजी, कुसुर माफ हो । मैं रंगा की ओर से खुद माफी चाहता हूँ। आपकी जो नीयत है, वही मेरे रंगा की भी है। जिस तरह आप बीमार को चंगा करना चाहते हैं, वह भी वही चाहता है। मतलब दोनों का एक, मगर रास्ता अलग-अलग! रंगा अभी बच्चा है और बच्चों की बात पर ध्यान न देना ही हम बड़ों का काम है! अब जो भी बात हो गई, वह जाने दीजिए, देखिये आगे ऐसी कोई बात न हो । मेरे लिए दोनों का दरजा बराबर है। रंगा से भी मैं यही निहोरा करता हूँ-उसे जानना चाहिए-'भारत के चित रहे न चेतू'। हमलोग अभी चिन्ता की छोर पर जा पहुँचे हैं, कई दिन से खाना तक पेट में गया नहीं; काम-काज सभी बंद हैं! माल मदेशी का दाना-घास जुटाना मुहाल हो गया है, सिर्फ इसलिए कि नंदा अपनी आँख खोले ! तुमको भी रंगा मैं मौका देता हूँ। जो भी तरकीब, जो भी दबा-दारू तुम तजबीज करो-करो-यह भी हो और उधर गोसाईजो ग्रह को शान्त करें! क्या हर्ज है-अगर दोनों साथ-साथ चले...

-नहीं, सो नहीं होने का -गोसाई उखड़कर बोल उठा-तुम्हें एक ही राह पर चलना होगा-चाहे तो मुझसे या जिससे तबीयत चाहे, ग्रह की शान्ति करवाओ या डागडर-हकीम से दवा कराओ ।

और तभी उधर से रंगा भी बोल उठा-ठीक कहते हैं गोसाई जी महाराज, आपकी बातें सर-आँखों पर! दो नाव पर चलने की जरूरत नहीं—एक ही पर चढ़ा जाय; मगर वह नाव हो पक्की-अटकल से या देव के भरोसे चलनेवाली न हो! क्या समझे ? हाँ, समझ तो गये होंगे, महाराज!

--समझूँ मैं क्या, बच्चू ! तुम समझो ।

-मैं तो खूब समझता हूँ कि आपके ग्रह-व्रह से कुछ नहीं होने का ! यों काका की मर्जी। मैं इनका दिल नहीं तोड़ना चाहता, जब कि इन्होंने आपको बुलाने की गलती पहले कर ली है ! मुझसे पहले इनकी भेंट हो गई होती, तो ऐसी गलतों नहीं होती ! खैर, गलती तो आदमी ही करते हैं...

गोसाई की आँखें रोष से सूखे हो आईं; पर मुंह से कुछ न बोल सका। कुछ क्षण तक वातावरण शान्त रहा, किसीके मँह से एक शब्द तक न निकल सका। सभी जैसे अपनी-अपगी दिशा में सोचने में तल्लीन हो गये।

अन्त में रंगा अचानक बोल उठा-गनेसीकाका, मुझे तो इस समय इजाजत दो। मैं बाहर निकलूंगा और जितना जल्दी हो सकेगा, लौट आऊंगा। ..... आप चाहें तो गोसाई से शान्ति भी करवाइए'.... "पीछे ऐसा न हो कि आप मुझे दोष देने लग जाय। मैं ऐसा मौका देना नहीं चाहता। नंदा अच्छी हो, चाहे किसी तरह अच्छी हो।

गोसाई और गनेसी कुछ सोचने में तल्लीन हो उठे; मगर रंगा रुका नहीं-वह बाहर निकला और जैसा कुछ, अपने मन में, सोचकर निश्चय कर रखा था, उसी निश्चय को पूरा करने के लिए वह बाहर चल पड़ा ।

### (चौदह)

रंगा कहाँ निकल भागा ? वह क्या किया चाहता है?

रंगा तीर की तरह वहाँ से चल पड़ा । वह न तो अपने घर की ओर बढ़ा और न अपने किसी साथी के घर। वह छूट पड़ा रास्ते पर और तुरंत वह गांव के बाहर निकला । नदी के खाल के पास कुछ टट्ठू घास चर रहे थे। उसने उनमें से एक को अपने लिए चुना, उसके पैरों की छान खोली और उसी छान को लगाम जैसा बनाकर, उसकी पीठ पर अपनी अंगोछी डाल, सवार हुआ। दिहात में ये टट्ठू बड़े मौके पर काम रात हैं। रंगा इन टट्ठुओं पर सवारी करना जानता था। वह तेज-से-तेज चाल पर इन दिहाती घोड़ों को दौड़ा सकता था। आज रंगा को अपने-आप पर कुछ गर्व का अनुभव हुआ। उसे लगा कि वह घोड़े को तेज दौड़ाकर अपने लक्ष्य तक पहुँच सकता है। उसने घोड़े को ऐंड लगाई, वह अपनी चाल में दौड़ पड़ा ।

रंगा आज कहाँ जा रहा है ? रात निकली जा रही है, विना कुछ कहे, बिना किसी को कुछ सूचना दिये ! मगर घोड़ा अपनी गति में जितनी तेज दौड़ा जा रहा है, उसका दिमाग भी उससे कम गति में नहीं धूम रहा! उसमें कई बड़े-बड़े निशान पड़े हैं-नंदा की छटपटाहट, ओझा का चक्कर-पूजना, गोसाई के साथ ग्रह-शान्ति लेकर कलह की सृष्टि, अपनी शान में नंदा के लिए घर से निकल पड़ना, अभयपुर का अस्पताल, वहाँ का कोट-पैटधारी

डाक्टर और उस डाक्टर की फीस .....रंगा ने घोड़े की पीठ थपथपाई, उसकी चाल रुकी और उसी चाल के साथ उसका दिमाग एक ही बिन्दु पर आ लगा-फीस! आखिर, फीस के रूपए वह कहाँ से लायगा! पता नहीं, डाक्टर रात के समय आने की जाने कितनी फीस तलब करेगा। रंगा के दृष्टि-पथ के सामने की ओर जा लगी। देखा-सामने के क्षितिज पर घोर अंधेरा छाया हुआ है। केवल पेड़ों का झुरमुट साँन हो उठा है, उसमें पथ का कहीं नामों निशान नहीं दीख पड़ता! अभयपुर अब भी आध कोस से कुछ ज्यादा रह गया है-आखिर फीस? रंगा को कभी अपनी गरीबी उतनी नहीं अखरी थी; पर आज वह, अपने को इस रूप में पाकर, विचलित हो उठा! वह मन-ही-मन सोचने लगा-रुपया संसार के लिए कितना मूल्यवान है! उसमें जीवन की आत्मा किस तरह सोई पड़ी हुई है! आज उसके बिना नंदा को वह किस तरह मुत्यु के मुख से निकाल बाहर करने में समर्थ होगा? वह सोचते-सोचते घबरा उठा; पर वह घोड़े से उतरा नहीं। अवश्य उसकी गति धीमी पड़ गई थी; फिर भी वह अपनी गति में बड़ी तेजी के साथ बढ़ा जा रहा था।

सहसा रंगा के सामने का अंधकार फटा-सा दीख पड़ा। उसकी दृष्टि के सामने प्रकाश की क्षीण रेखा खिंच आई और वह, उस भयंकर परिस्थिति में भी, एक बार खिलखिलाकर हँसे बिना रह न सका! उसने घोड़े को जोर से ऐंड़ लगाई और घोड़ा अचानक चोट खाकर तेजी से भागा। भागने के समय रंगा सावधान न था। उसे लगा कि जैसे वह गिरने-गिरने को हो रहा है; पर वह तुरंत सँभल बैठा। फिर उसने एक जोर की ऐंड़ मारी! इसबार घोड़ा हवा से बातें करता हुया सरपट भाग निकला!

रंगा ने अभयपुर का अस्पताल देखा था, वह वही पहुँच गया। अस्पताल के हाते में ही एक ओर डाक्टर का क्वार्टर था, जिसके दरवाजे से लैंप की रोशनी उसे दीख पड़ी। वह घोड़े से उतर पड़ा और उसे हाते के घेरे की टट्टी में बाँधकर क्वार्टर की ओर चल पड़ा।

उसने जाकर देखा कि बरामदे पर एक बड़े टेबिल को धेरकर चार आदमी चारों ओर से अलग-अलग कुर्सियों पर बैठे ताश खेल रहे हैं। टेबिल के बीच

में लैम्प रखी है और एक तस्तरी में पान की गिलौरियाँ, और उसी तस्तरी के पास ताश से फेंके हुए पत्ते छितराये हुए हैं। वह सामने जाकर चुपचाप खड़ा हो गया। उस समय ताश के आखरी पत्ते एक के बाद दूसरे चारों ओर से फेंके गये और उसीके साथ एक जोर का कहकहा निकल पड़ा। मालूम हुआ कि बाजी डाक्टरसाहब और उसके सामने बैठे हुए साथी के हाथ लगी। हारनेवालों में से एकने ताश के सभी पत्ते उठाये और उठाकर भाँजते हुए बोला-इसबार हमारी जीत रहेगी और शर्तिया।

इसपर सभी खिलखिलाकर हँस पड़े और उनमें से एक बोल उठा ऐसी बात!

हाँ, ऐसी नहीं, तो क्या तुम्हीं मुझसे जीतते रहोगे ?

इतने में डाक्टर ने पान के दो बीड़े मँह में लिये! रंगा ने सोचा कि यही मौका है, नहीं तो खेल शुरू हो जाने पर उसे और भी इंतजार करना पड़ेगा! वह ऐसा सोचकर जोर से खाँस उठा।

तुरन्त सभी की दृष्टि उस ओर जा लगी! रंगा निश्चित भाव से खड़ा था, वह जरा सकपकाया! इतने में उसने सुना कि कोई पूछ रहा है क्या चाहता है?

रंगा की सकपकाहट दूर हुई। उसने झुककर सलाम किया और बोला मैं डाक्टर बाबू को बुलाने आया हूँ।

और उनमें से एक ने, जो डाक्टर था, उसकी ओर धूरा। उसे सिर से पाँव तक निहारा और बोल उठा-कहाँ से आया है?

-बिसनपुर से! -रंगा ने साफ-साफ कहा-नंदा जोर की बीमार पड़ी है, उसीको दिखाना है! आपको लेने आया हूँ।

डाक्टर को लगा कि आगंतुक निडर है, लड़का है, पर जीवट रखता है! पूछा-अकेले आया है या और कोई साथ भी है ?

-साथ तो कोई नहीं आया-रंगा ने कहा-हाँ, घोड़ा जरूर साथ लाया हूँ !

सभी ने सुना-आगंतुक का साथी एक घोड़ा छोड़कर और कोई नहीं है !

उनमें से एक, जो मजाक-पसंद तबीयत का आदमी था, बोला-अच्छा साथी साथ लगा! आदमी का साथी पशु!

-ठीक कहा बाबू साहब ! -रंगाने छूटते हुए कहा-पशु ही साथी हो सकता है! बात कुछ झूठ नहीं है? आप काफी पढ़े-लिखे जान पड़ते हैं। हमलोग गँवरु गँवार ठहरे-अपने को आदमी कैसे कहें.....

और सभी ने अनुमान किया कि लड़का देहाती है जरूर; मगर दिमाग रखता है। और मजाक करने वाले ने समझा कि लड़का उस पर चोट कर गया। उसे लगा कि जैसे वह अपने साथियों में आप छोटा होता जा रहा है !

डाक्टर अपने प्रसंग पर आया और बोल उठा-कौन-सी बीमारी है उसे? कुछ कह सकते हो?

-बीमारी? -रंगाने कहा--बुखार है, खूब जोर का बुखार! शरीर से आग निकलती है, काफी बड़बड़ती भी है, आँख नहीं खोल सकती और न किसी को पहचान ही सकती है !

-आइ सी (I see) ! -डाक्टर के मुंह से निकला; पर रंगा उसे समझ न सका।

-बीमार तुम्हारा कौन होता है ?

इसबार रंगा जरा अप्रस्तुत हो उठा-क्या कहे वह ! बीमार उसकी कौन है? पर वह रुका नहीं, हड्डबड़ाकर बोल उठा-नंदा मेरी बहन है!

-जानते हो, फीस कितनी देनी पड़ेगी? लाये हो रुपए ?

-यहीं तो नहीं जानता था डाक्टरबाबू !-रंगाने सिर झुकाकर कहा-मगर उसके लिए चिन्ता नहीं है, जो भी आप माँगेंगे, देंगा; मगर आपको इसी समय चलना होगा। शायद देर करने पर बीमारी बिगड़ भी सकती है! आपकी चलकर उसे बचाना ही पड़ेगा।

डाक्टर थोड़ी देर चुप साधे रहा, फिर बोल उठा-बचाना मेरे हाथ की बात नहीं है। मैं दवा कर सकता हूँ-जीना या मरना मैं नहीं जानता। मगर फीस....

-फीस दूगा डाक्टरबाबू । इतनी दूर से आया हूँ, जानता हूँ कि रात को

कष्ट उठाना पड़ेगा आपको; आखिर फीस केले नहीं दी जायगी ! जीने-मरने की बात आप छोड़ दें! आप चल चलेंगे, इतने से ही मुझे विश्वास है वह मरेगी नहीं-जी उठेगी! मगर आप अब जरा भी देर न करें।

-मगर फीस तो तय हो जाय!

-तय? तय की कौन-सी बात ? -रंगा ने तनकर कहा-मैं तो कहता हूँ, जो भी आप कहेंगे, दूँगा !

-तुम दोगे?-डाक्टर उसकी ओर तकाने लगा।

-मैं नहीं दूँगा, तो कौन देगा! -रंगा हँस पड़ा-मैं आया हूँ बुलाने आपको ! आपका भार मुझपर है, क्यों कोई दूसरा लादे ! खैर, आप तय ही कराना चाहते हैं, तो आपही कह दें, मैं उतना दे दूँगा।

डाक्टर सिर झुकाकर कुछ सोचने लगा और उसके तीनों साथी रंग को धूरने लगे।

और डाक्टर ने सिर ऊपर किया, फिर बोल उठा-सुनो, दिन रहता तो पाँच रुपए से काम चल जा सकता था, दवा यहाँ से मुफ्त दी जा सकती थी मगर रात को चलना होगा और रात की फीस साधारण फीस से जरूर ज्यादा देनी होती है ! मैं बीस रुपए ले लूँगा! कहो, देने को तुम तैयार हो ?

-धन्यवाद है, डाक्टर बाबू ! आपने कुछ अधिक नहीं माँगा ! अगर और भी माँगते, तो मैं वह भी देता.....

नहीं, हमलोग ऐसा नहीं करते; मगर वाजिब छोड़ते भी नहीं हैं।

-वाजिब भी छोड़ सकते हैं, डाक्टरबाबू ! जिसके दिल में इतनी दया है, जिसके हाथ में जाने कितनों की जिंदगी का सवाल है, वह कठोर नहीं हो सकता। वहाँ वाजिब की कौन-सी बात, अपनी तरफ से भी कुछ लगाने की जरूरत पड़े, तो वह भी लगा सकते हैं।

डाक्टर कुछ क्षणतक शांत रहा, उसके बोल उठा-दस-पंद्रह मिनट और रुकना पड़ेगा तुम्हें! खाना खा लेना है।

-ठीक है; कोई हर्ज नहीं, खाना खा ही लिया जाय। -रंगा बोल उठा। डाक्टर उसे पास की पड़ी हुई बेंचपर बैठ जाने को कहकर भीतर गया।

रंगा चुपचाप बैठ गया! ताश-पार्टी टूट गई, साथ खेलनेवाले उठकर रास्ते लगे! रंगा अकेले बैठकर सोचने लगा-डाक्टर की फीस...बीस रुपये.....बीस रुपये?

-धन्य है बीस रुपया! जो डाक्टर को अंधेरी रात में एक जगह से दूसरी जगह पहुँचायगा-जिसके भीतर नंदा की आत्मा हँसती हुई खेल रही है!.  
.....मगर एक बीस आयगा कहाँ से!

रंगा का चेहरा स्थान पड़ गया। उसके दिमाग में जोर का तूफान वह निकला। मगर, भगवान को धन्यवाद! डाक्टर भीतर से आकर बोल उठा उठो, तुम भी; खाना परेसा हुआ तैयार है, जाकर खालो! जाने कब तुम्हें खाना नसीब हो-न हो!.....घबराने की बात नहीं! भगवान चाहेगा, तो बीमारी अच्छी हो जायगी! नंदा-तुम्हारी बहन !

रंगा चौका। उसे लगा कि जैसे डाक्टर ने रुपये की बात सुन ली हो! मगर तुरत उसने अपनेको सावधान किया, और उठते हुए बोल उठा-आप खाना खा लीजिए डाक्टरबाबू ! मैं.....

-नहीं; जानता हूँ कि ऐसे-ऐसे मौके पर घरवाले को दिन-के-दिन, रात की-रात भूखे रह जाना पड़ता है ! अभी वक्त है, खाना खा ही लेना चाहिए। लजाने की बात नहीं। चलो.....

रंगा इसबार नाही न कर सका। डाक्टर के पीछे-पीछे वह भीतर की ओर चल पड़ा।

खाना खा चुकने पर रंगा अपनी जगह पर आ बैठा। डाक्टर एक छोटे से बक्स में दवा भरने लगा। उधर नौकर अपने घोड़े की पीठ पर जीन कसने लगा। कोई दस मिनट के बाद डाक्टर आवश्यक सामान से लैस होकर बाहर आया। नौकर एक छोटा-सा बॉक्स टेबिल पर रख गया। डाक्टर ने टार्च की बत्ती जलाकर एक बार दूर में लाइट फेंकी, फिर उसे जेब में रखते हुए रंगा से कहा-उठो रंगा, ले लो यह बॉक्स। इसका फीता गले में डाल लो। रंगा ने अपने ट्यू के पास आकर उसे सँभाला। डाक्टर अपने घोड़े पर बैठा दोनों चल पड़े।

रास्ते में रंगा से कुछ ज्यादा बातचीत न हो सकी। हाँ, डाक्टर ने इतना जरूर जाना कि रंगा कौन है, गनेसी कौन और नंदा कौन?

और जब रंगा के साथ डाक्टर ने नंदा के आँगन में प्रवेश किया, तब उसने देखा कि बीमार केघर में सात-आठ लोग गोल बॉधे बैठे हुए हैं। बीच में एक काला-कलूटा-सा आदमी पत्थी मारे धत्र काली-धत्र काली कर रहा है और सामने जलते हुए धूप का धुँआ जोर से घर को धूमिल बना रहा है !

डाक्टर सिर से टोप उतारकर बगल में दबाये हुए बरामदे पर चढ़ा। उसकी आहट पाकर सभी लोग चौकन्ना हुए, सभी ने देखा कि बरामदे पर दरवाजे के सामने एक साहब, कोट-पैंट में लैस, खड़ा है और उसके बगल में रंगा उनलोगों की ओर धूर रहा है!

डाक्टर को देखते ही तमाशा देखनेवाले उठ खड़े हुए और धत-काली कहनेवाला अपनी बगलें झाँकने लगा! पर वहाँ भागने का कोई उपाय न पाकर, वह काँप उठा। जाने वह क्या कहा चाहता था; पर घिगी बंध जाने के कारण उसके मुंह से एक शब्द तक न निकल सका।

-गनेसी किसका नाम है ?-डाक्टर के स्वर में कर्कसता थी। उसे सुनकर गनेसी हाथ-बॉधे सामने हाजिर हुआ और गिड़गिड़कर बोला-हुजूर ! -यह सब क्या हो रहा है? तुमलोग पूरे जानवर हो-जानवर! ...कहाँ है बीमार, दिखाओ!

गनेसी काँपते हुए बोला-वह भीतर है। और डाक्टर जूता उतारे बिना ही उसघर में घुसा। घुसते ही उसे लगा कि जैसे धुएं से उसका दम घुटना चाहता है। उसने जेब से रुमाल निकालकर मँह पर रखते हुए कहा-फेंको धूपदानी, निकलो तुमलोग बाहर ? जान लेने को यमराज बन बैठे हैं !

सब-के-सब भीगी बिल्ली-जैसे बाहर निकल आये! सभीको रंगा पर खीझ हो रही थी-पाजी कहाँ से कहाँ जाकर साहब को लिवा लाया! जाने क्या हो!

एक-एककर सभी, एक दूसरे की आँखें बचा, फिरंट होने लगे।

डाक्टर ने नंदा को देखा-देखा कि वह बेखबर पड़ी हुई है।

घर में बड़ी गर्मी थी। डाक्टर कुछ ही क्षण में पसीने-पसीने हो गया। उसने बीमार को बरामदे पर लाने को कहा। गनेसी और रंगा-दोनों ने मिलकर खाट को बाहर निकाला। डाक्टर ने रोगी पर पंखा झलते रहने और सिर पर पानी की पट्टी लगाने को कहा।

कुछ क्षण तक डाक्टर वहाँ मोढ़े पर बैठकर रोगी को देखता रहा। रंगाने छोटा-सा बक्स निकालकर उनके सामने रख दिया।

नंदा की माँ सिर झुकाये पंखा झल रही थी; रंगा डाक्टर के बताये तरीके से नंदा के सिर पर पानी की पट्टी दे रहा था! डॉक्टर ने बाक्स खोलकर दवाओं की शीशियाँ निकाली और एक साफ शीशी में कई दवाएं मिलाकर एक दवा बनाई और एक छोटे-से गिलास में उससे थोड़ा उड़ेलकर रोगी को पिलाया। कोई आध घंटे तक उपचार करने के बाद रोगी ने आँखें खोली और बोल उठी-माँ!

और माँ को दम-में-दम आया! गनेसी का चेहरा खिल उठा! दोनों ने रंगा की ओर कृतज्ञता-भरी दृष्टि डाली और रंगा ने डाक्टर की ओर देखा। मगर रंगा को याद हो आया-फीस का रुपया।

उसे अभी बन्दोबस्त कर देनी होगी-फीस! करार हो चुका है, उसे चुकाना ही पड़ेगा; पर रुपए? ....रुपए हैं कहाँ उसके पास ? तो क्या वह गनेसी से कहेगा रुपए के लिए ?.....पर नहीं, वह गनेसी के सामने हाथ नहीं फैलायगा ! क्यों फैलायगा? उसने कहा तो नहीं था डाक्टर बुलाने ! कहने पर दे तो सकता है; मगर उसके पास रुपये हैं कहाँ? फिर रुपये के अभाव में उसे लज्जित क्यों करें वह ! .....नहीं, उसे कहीं दूसरी जगह रुपए का जुगाड़ करना पड़ेगा-और अभी करना पड़ेगा !

और वह बोल उठा---डाक्टरबाब, क्या मैं कुछ देर केलिए बाहर जा सकता हूँ?

-हाँ-हाँ, क्यों नहीं, जाओ!-डाक्टर ने दिलासा देते हुए कहा-घबराने

की कोई बात नहीं है! रोग तो अपना खुद सिरजा हुआ है। ये लोग नहीं जानते कि रोगी को किस तरह रखना चाहिए। दिहात में बहुत-से रोगी तीमारदारी के बगैर काल के मुंह में चले जाते हैं और ये ओझा लोग? - भगवान बच इन दुष्टों से! देश के दुश्मन हैं-दुश्मन ! ..... और लोगों को क्या कहा जाय! बीमारी में डाक्टर के यहाँ दौड़ने में उनकी नानी मरेगी; मगर इन ओझों के पास नंगे पाँव दौड़ लगाएंगे!

गनेसी सिर झुकाये सारी बातें सुनता रहा; पर रंगा तो बीच ही में निकल कर बाहर की ओर दौड़ पड़ा था।

कोई आध घंटे के बाद रंगा लौटकर वापिस आ गया ! डाक्टर ने देखा कि वह जोर-जोर से हॉफ रहा है। उसने पूछा-क्या बात है? तुम हॉफ क्यों रहे हो?

-यों ही! जोर से दौड़ा आ रहा हूँ न !

डाक्टर एक घंटे से अधिक ठहर नहीं सका; पर इतने ही अर्से में रोगी में काफी परिवर्तन दीख पड़ा। उसने रंगा को सभी बातें अच्छी तरह समझाकर दवा की शीशी भरी और कहा-चार खुराक दवा देता जा रहा हूँ। रोगी को टाइफाइड हो गया है। पूरे दो सप्ताह लगेंगे अच्छा होने में; मगर डरने की कोई बात नहीं। तीमारदारी की सख्त जरूरत है! मुझे विश्वास है, अगर यह भार तुम अपने ऊपर ले लो, तो रोगी जरूर अच्छा हो जायगा। मगर कहे रखता जरा भी इसमें कोई फर्क पड़ा, तो देवता भी अच्छा नहीं कर सकते, आदमी की क्या विसात! और हाँ, जैसा हो, मुझे खबर देते रहना।

शायद दो - एक बार मेरे आने की जरूरत पड़े !

डाक्टर उठकर चलने को खड़ा हुआ, तभी उसकी दृष्टि रंगा की ओर गई। रंगा उसके साथ बाहर की ओर चल पड़ा। औँगन में रात ही रंगा ने डाक्टर के जेब में दो नोट रख दिए और कहा-संभाल लीजिए, डाक्टरबाबू! दोनों बाहर आये, गनेसी भी बाहर आया। घोड़ा तैयार था। डाक्टर घोड़े पर उछल पड़ा। रंगा ने झुककर सलाम किया। घोड़ा एंड खाकर तेजी से चल पड़ा।

### (पंद्रह)

डाक्टर के चले जाने के बाद गनेसी की दृष्टि सामने की ओर गई और उसने देखा कि रंगा अबतक अपनी दृष्टि गड़ाये इकट्ठक उस राह की ओर देख रहा है। उसे लगा कि जैसे रंगा उसके लिए साकार देवता है। वह उसे पाकर जैसे अपने-चापमें लघु से लघुतर होते जा रहा है! उसे उस समय की घटना आँखों तले धूमने लगी, जिस समय उसने रंगा को एक तरह से झिङ्ककर ही गोसाई का पक्ष लिया था—उस गोसाई का, जिसने रंगा की अनुपस्थिति में, उसे राजी करके रोगिणी के पास, उसके उपचार के लिए पूजा-पाठ और शनिग्रह को शांत करने का तुम्रुल आँदोलन बाँधा। उसी बीच में रंगा का डाक्टर को लिवा लाना उस समय उसके लिए जितना दुखदायी और अशांतिमय जान पड़ा, उतना ही डाक्टर के उपचार से दुलारी नंदा की आँखें खुल जाने पर रंगा के प्रति उसका अगाध स्नेह उमड़ पड़ा। उसकी आँखें छलछला आई और रुधे हुए कंठ से वह बोल उठा-आखिर, रंगा, तुम बाप के बेटे निकले! इतना अपनापन, इतना अमायिक स्नेह और इतनी लगन ...सच कहता हूँ बेटा, तुमने आज मुझे जमीन से आसमान पर ला बिठाया। मुझे यह कहते बड़ी लाज लगती है, कैसे कहूँ अपने दिल की बात! तुम पर मुझे उस समय बड़ा रंज हुआ था... मगर मैं क्या जानता था कि तुम बात के इतने धनी हो?.....अभयपुर-डेढ़ कोस की दूरी तय कर-पता नहीं, तुम्हें कौन-कौन-सी तकलीफ न उठानी पड़ी होगी-डाक्टर साहब को न जाने क्या-क्या तुमने कहा होगा-उन्हें लिवा लाना कम जुर्त की बात नहीं.....

गनेसी और जाने क्या-क्या कहना चाहता था। लगा, जैसे उसकी जीभ लटपटा रही है। जैसे मुँह से शब्द निकलने-निकलने को होकर भी बाहर नहीं निकलना चाहता हो! मगर रंगा ने उसकी रक्षा की और बीच में ही वह बोल उठा-इतना बनाओ नहीं काका, इतना न बनाओ! आखिर, मैंने किया ही क्या है? दुख के समय आदमी की मदद आदमी न करे, तो और करेगा कौन? मैंने तुम्हारे लिए ऐसा कुछ किया तो नहीं है, जिसके लिए तुम इतने परेशान हो रहे हो! नंदा की तकलीफ....वह आज बिछावन पर पड़ी

है....मेरे साथ खेलने वाली.....काका, तुम नंदा को उतना नहीं जानते, जितना मैं जानता हूँ ! अच्छी होने पर वह क्या कहती, अगर मैं उसके काम न आता. ....दोनों अपने-आपमें आत्म-विभोर हो उठे; पर रंगा अपनेको अब भी सँभाले हुए था, बोला-चलो काका, डाक्टर दवा दे गये हैं, अभी नंदा को उसे पिलाना जो है!

और रंगा आँगन की ओर बढ़ चला, गनेसी भी उसके पीछे-पीछे आँगन में आया। नंदा की माँ नंदा के सिर पर पंखा झल रही थी। रंगा उसी जगह जा पहुँचा और बोल उठा-जाकर सो रहो चाची, रात ज्यादा हो गई है, कई दिनों तक लगातार जगते-जगते तुम कैसी हो गई चाची ! मैं मौजूद हूँ डाक्टर दवा देता गया है-चार-चार घंटे पर पिलाना होगा और उसके लिए मैं अकेला काफी हूँ

नंदा की माँ क्या बोले ! चार दिन के बाद आज ही तो वह शांति की साँस ले सकी है। उसे तो इतनी ज्यादा खुशी है कि वह अपनी भाषा में व्यक्त तक भी नहीं कर पाती और रंगा के प्रति उस रंगा के प्रति, जिसने नंदा को बचाने केलिए, अपने जान की परबा तक नहीं की, किस तरह अपनी कृतज्ञता प्रकट करे! मगर नहीं, वह रंगा के प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित करेगी, उसे अपनी आँखों के बीच वह रखेगी ही! कैसे वह कृतज्ञ हो सकती है उस रंगा के प्रति....

नंदा की माँ जाने कबतक इन बातों को अपने-आप सोचती रही? उसने देखा कि रंगा छोटे-से काँच के गिलास में किस तरह दवा उडेल रहा है, किस तरह नंदा के सिर को अपने सुकमार जाऊँगे पर लेकर कह रहा है-पी लो नंदा, पी लो...अब तुम अच्छी हो चली...घबराओ नहीं नंदा....और नंदा जैसे जादू की तरह उसके एक-एक शब्द को, आँखें मूरे ही सुनती है, फिर सुनकर उसके कहने के अनुसार,घट-घट करके वह दवा पी जाती है। फिर किस तरह रंगा इकट्ठ करके वह दवा पी जाती है। नंदा की माँ सब-कुछ देखती है और विमुग्ध होकर वह रंगा के प्रति कृतज्ञ होती है उसकी आकृति के धूमिल आवरण पर स्नेह - स्निग्ध ज्योति की रेखा खिंच आती है! उसकी आँखों से न जाने कृतज्ञता के कैसे आँसू

उमड़ आते हैं और वह बोल उठती है-यह कैसे होगा, रंगा! तुम जगे रहो बच्चा होकर और मैं बच्चे की माँ होकर सोने चली जाऊँ-ऐसा कैसे हो सकता है, बेटा ! ...तुम न होते, तो मैं नंदा से हाथ धोए बैठी थी.....मुझे ओज्ञा-गोसाई पर न तो पहले आस्था थी और न अब भी है ! सच जानों रंगा....

-तुम जगोगी, चाची ?-रंगा ने बीच में बात काटकर हँसते हुए पूछा । -हाँ, जगूँगी क्यों नहीं? तुम बहुत थक गये हो । बच्चे हो, आँखें, देखो, तुम्हारी लाल हो उठी हैं! ज्यादा जगने से कहीं तुम भी बीमार न पड़ जाओ ।

-मैं बीमार पड़ूँगा ? क्या कहती हो, चाची! -रंगा ठहाका मारकर बोल उठा - मेरे लिए डरने की बात नहीं! मैं कुछ कम उमर लेकर नहीं आया हूँ कि इतना जल्दी उठ जाऊँगा !

नंदा की माँ को ऐसे दुख के दिन में भी, रंगा की बातों पर हँसी आ गई । गनेसी भी वहीं था, वह भी हँसे विना न रह सका । रंगा अब भी पंखा ही झल रहा था, वह अविचल रूप से पड़ा रहा । मगर उन दोनों की सम्मिलित हँसी के प्रवाह से वहाँ के वातावरण में ताजगी आ गई और गनेसी हँसते-हँसते बोल उठा-ठीक कहते हो रंगा, तुम लम्बी उमर लेकर आये हो! आखिर ऐसा कहोगे क्यों नहीं! मेरे हरि भैया भी कम हँसोड़ न थे । वह भी अक्सर कहा करते थे कि मेरे सामने यमदूत फटक नहीं सकता! अगर वह कभी ऐसा दुस्साहस कर भी बैठे, तो समझो, उसके सिर सामत सवार हो गई । फिर वह बचा जान बचाकर भाग भी तो नहीं सकता !

रंगा ने अपने पिता (हरि) के संबंध की बातें सुनकर अपार गौरव का अनुभव किया । उसकी आकृति कुछ क्षण के लिए ओज से दमक उठी । मगर मँह से वह एक शब्द तक न बोल सका ।

आखिर, गनेसी ने जगने के संबंध में यही फैसला किया कि तीन-तीन घंटे पर तीनों आदमी बारी-बारी से सोयें और जगें ! इसपर तीनों राजी हुए; पर जगने की पहली बारी रंगा की हो रही । नंदा की माँ बरामदे पर ही चटाई बिछाकर पड़ रही । गनेसी भी आँगन में खाट बिछाकर लेट रहा, और रंगा नंदा के पास मोड़े पर बैठकर अपनी ड्यूटी में तत्पर हुआ ।

और रंगा इस तरह नंदा की तीमारदारी में इतना गर्क हो उठा कि कैसे इक्कीस दिन निकल गये, उसे इसका कुछ पता तक न रहा! इन इक्कीस

दिनों में मुश्किल से एकाध घंटे के लिए वह घर पर आया हो ! या तो वह नंदा के पास पड़ा रहता या डाक्टर को बुलाने अथवा उसे बीमारी की खबर देने को, अभयपुर दौड़ना पड़ता ! वह डाक्टर को लिवा लाता, दवाइयों का प्रबंध करता । हाँ, लुक-छिपकर कुछ घंटों के लिए, जबकि डाक्टर को फीस देने का अवसर आता, एकाध जगह और कहीं जाता; पर कहाँ जाता और कहाँ से रुपये जुटाकर फीस चुकाता-यह न तो गनेसी ही जान सका और न नंदा की माँ ही । नंदा की अम्मा अवश्य इन बातों को जानना चाहती थी । उसे लगता था कि आखिर, बगैर रुपये पाये डाक्टर क्यों कर आ सकता है! तो फिर रंगा रुपया लाता है कहाँ से? वह उसके मकान की माली हालत जानती है और यह भी जानती है कि रंगा की माँ कितनी मुश्किल-मस़क्त से अपनी गुजर बसर करती है; मगर जानने की इच्छा होने पर भी उसे रंगा से पूछने की हिम्मत जाने क्यों नहीं हुई ।

इन इक्कोस दिनों में नंदा में कितने परिवर्तन हुए-और कैसे-कैसे होते गये-नंदा की माँ उनका हिसाब क्या जाने! मगर रंगा पल-पल का, घड़ी-घड़ी का, हिसाब दे सकता है । रंगा ने बड़ी बारीकियों से उन्हें देखा है - देखा है नंदा का तापमान घटकर नारमल पर आना, उसके लंबे बढ़े हुए क्रेशों का पतला होना, उसकी हड्डी-पसलियों का निकल जाना, चेहरे पर की जर्दी, बहुत क्षीण-स्वर में उसका पानी मँगना, बोलने की अनिच्छा-फिर धीरे-धीरे इन सभी बातों में परिवर्तन । अब तो नंदा विना किसी सहारे के चल भी लेती है, बोलती है, हँसती भी है, शरीर के अंग-प्रत्यंगों पर माँस भी भरने लगा है, कुछ ताजगी भी आ गई है ! धीरे-धीरे पथ्य से कबूतर का जूस, जूस से रोटियों की पपरियाँ, पपरियों से भात भी खाने लगी है और अब तो दिन-भर खाने के पीछे वह आप भी तबाह रहती है और घर-भर को तबाह किये रहती है! रंगा उसकी हरकतों पर बाग-बाग होता है । वह अधिक खिलाने को रवादार नहीं । जब नंदा खाने के लिए मचल उठती है, तब वह उसे खाना देने को मना करता है । इसपर वह तुनक उठती है और कुछ रोष में आकर बोल उठती है-तुम रोकनेवाला कौन ! मैं खाऊंगी! देखू, कौन मुझे रोकता है !

और जब नंदा बड़े रोष में आकर रसोई घर की ओर दौड़ लगाने को होती तब रंगा उसे बीच ही में पकड़कर बोल उठता है-यह हर्मिज नहीं हो सकता। मेरे रहते तुम दिन-भर ठूस-ठूस कर खा नहीं सकती। तब नंदा लाचार हो जाती है; पर उस लाचारी में भी वह बिगड़कर बोल उठती है-- ऐसा करोगे तो मैं रो दूँगी, रंगा! हाँ, मुझे यह-सब अच्छा नहीं लगता!

-अच्छा रो ही लो पहले ! देखूँ तुम्हारा रोना!

और रंगा मुस्कराकर उसके मँह की ओर देखता है ! नंदा निरुपाय होकर लौट पड़ती है। फिर बिछावन पर आकर, तकिए में मँह गड़ाकर, सचमुच रो पड़ती है!

नंदा की माँ बाहर से उन-दोनों की बातें सुनती है ! ऐसा एक दिन नहीं, जबसे नंदा के पेट की ज्वाला प्रबल हो उठी है, वह ऐसा ही करती है और रंगा उसे इसी तरह से रोकता है। नंदा की माँ को नंदा पर दया हो आती है, उसकी रुलाई माँ के लिए असह्य हो उठती है, तब वह खुद रंगा से गिड़गिड़ाकर कहती है-बस, एकबार उसे खा लेने दो, रंगा ! क्या करोगे, जब वह खाने को रो पड़ी है.....

और रंगा खीझकर बोल उठता है-खूब खिलाओ; मगर इतना न खिलाओ कि वह पचा ही न सके और फिर कोई दूसरा रोग मँगा बैठे।

-सो नहीं होगा, बेटा! इतमिनान रखो, ऐसा हर्मिज न होने दूँगी! आखिर रंगा ऐसा क्यों करता है ? -नंदा की माँ जानती है; मगर नन्दा जानती है कि नहीं, कौन कह सकता है।

इन इक्कीस दिनों में रंगा ने नहीं जाना कि हवा का रुख किधर-से-किधर बदल गया, दुनिया कहाँ-से-कहाँ निकल गई, गाँव में क्या-से-क्या हो गया। उसे तो बस, एक ही चिन्ता थी, उसका एक ही लक्ष्य था, उसकी एक ही ओर दृष्टि थी। जैसे वह अपनी साधना में अपने-आपको विलीन कर चुका हो। जैसे वह एकनिष्ट योगी बनकर अपनी धूनी में संलग्न हो पड़ा हो ।

पर अचानक एक दिन टहला खुद रंगा से मिलने को नन्दा के घर आ पहुँचता है! बहुत दिनों के बाद, जाने कैसे वह रंगा से मिलने को उत्कंठित

होकर नन्दा के घर आ पहुँचा है। रंगा टहला को देखते ही विहँस पड़ता है और कहता है-कैसे भूल पड़े आज टहला, कहो खैरियत।

-सब अच्छा है, रंगा। तुम तो इन दिनों यहाँ पड़े रह गये, कभी खोज-खबर भी न ली.....

रंगा न जाने क्या सोचकर उदास हो जाता है! उसने सचमुच इतने दिन तक खोज-खबर ले न पाई ! उसे लगा कि जैसे वह किसी के साथ कुछ गुनाह कर गया है। लगा-जैसे उसने कहीं भूल की है; पर कहाँ पर भूल है, रंगा टटोलने को हो कर भी टटोल न सका ! उसका जी वहाँ से जाने क्यों उचट जाता है, वह बाहर की हवा पाने के लिए चंचल हो उठता है और तभी वह बोला उठता है-जरूर मैं खोज खबर न ले सका, टहला ! मगर अब मैं निश्चित हो गया हूँ; अब यहाँ मेरी कोई जरूरत नहीं रह गई। चलो, आज हमलोग जरा नदी के किनारे चलकर टहलें! क्यों ?

हाँ, चलो, रंगा-टहला उसका हाथ पकड़कर कहता है-चलो आज टीले पर ! तुमसे बहुत सारी बात करनी है.....

#### (सोलह)

आज बहुत दिनों के बाद रंगा पहाड़ी टीले पर पाया है। शाम का वक्त, सूरज की लाली पच्छिम की क्षितिज पर छा रही है। वहाँ से नदी एक पतली सी धारा के रूप में दीख पड़ती है। दूर पर मवेसियों का गिरोह गाँव की ओर लौटने लगा है। हवा की गति पहले से तीव्र हो गई है। रंगा टीले पर बैठकर सोच रहा है, टहला उसीके पास बैठकर पच्छिम की ओर टकटकी बाँधे देखने में तल्लीन है।

रंगा सोच रहा है और सोचते-सोचते उसकी चेतना सजग हो उठती है। वह सोचता है कि इस टीले पर बैठकर उसने एक दिन सोचा था, टहला के साथ गोनूबाबा के थान पर जाने के लिए-रूपए की चिन्ता थी उस दिन। उसने वहाँ से निश्चय कर टहला से भी अपना विचार कह सुनाया था। उसके बाद वह एक रात को उसे साथ करने की गरज से, उसके यहाँ गया भी; पर उससे मिल न सका, मिली उस दिन उसकी भाभी ही और उसी भाभी के साथ मिलकर यह तय हुआ कि, अवसर पाकर, जब कि उसका पति घर से

अनुपस्थित हो, चल देना चाहिए और रात रहते ही फिर वापस भी होना चाहिए। इस बीच में नन्दा का बीमार पड़ना और बीमारी का समाचार पाकर उसकी तीमारदारी में उसके घर इतने दिनों तक पड़े रहना.....रंगा अपनी धारा में बहा ही जा रहा था कि टहला ने पुकारा-रंगा?

और रंगा चौंककर बोल उठा-क्या है टहला !

रंगा की विचारधारा जहाँ-की-तहाँ रुक गई, पर अभीतक उसके दिमाग में वह स्मृति धूमिल होकर पड़ी थी । वह टहला की ओर देख रहा था । उसे हो रहा था कि वह पूछे टहला से भाभी के बारे में; मगर नहीं, भाभी के बारे में वह पूछना नहीं चाहता । भाभी ने मना कर दिया है उसे, कि उसके सम्बन्ध में किसी से कुछ न कहा जाय । फिर भाभी के बारे में टहला से चरचा ही क्यों चलाई जाय ! रंगा इसी सोच-विचार में कुछ गंभीर हो पड़ा था कि इसी बीच में टहला बोल उठा-तुम तो इधर की बात नहीं जानते, रंगा ! भाभी आजकल यहाँ नहीं है, वह पीहर चली गई और मैं ही खुद उसे पहुँचाने को उसके साथ गया था । वहाँसे लौटने के समय भाभी ने कहा था कि रंगा से कह देना-भाभी पीहर चली गई !

टहला बोलकर चुप हो गया । रंगा उसकी ओर देख रहा था । उसने सुना-भाभी ने कहा था कि रंगा से कह देना-भाभी पीहर चली गई ! रंगा का मुंह जाने क्यों उत्तर आया ! पर टहला उसकी ओर देख रहा था, इसलिए रंगा ने अपने को सँभाला और बलपूर्वक अपनी आकृति पर मधुरिमा लाने का प्रयत्न करते हुए हँसकर कहा-भाभी चली गई, टहला ? क्यों चली गई ? इतनी जल्दी उसके जाने की कोई बात न थी ! आखिर, जाने के दिन तुमने मुझे खबर क्यों न दी, टहला ?

रंगा की आकृति गंभीर हो उठी । वह जरा सख्त हो उठा । उसकी आँखें टहला के मुंह पर आकर जम गई । टहला ने उसका रुख देखा, तो सिर झुका लिया और लजाते हुए कहा-हाँ, नहीं दी, रंगा ! मौका नहीं था, आखिर खबर देता कैसे ? कौन जानता था कि ऐसा घटेगा....

रंगा चंचल हो उठा, उसने रहला की बातें समझने की कोशिश की; पर वह कुछ भी समझ न सका-मौका क्यों नहीं था ? हठात् कैसे वह मौका आज पहुँचा, कौन-सी बात घटी और क्या घटी ? उसे टहला पर रोष हो

आया और वह झुँझलाकर बोला-मौका कैसे नहीं था, टहला? पाँच मिनट के लिए मुझे दौड़कर खबर देने का मौका नहीं था गधे ?

-नहीं था, रंगा! इसे सच मानो! -रंगा को विश्वास दिलाने की चेष्टा करते हुए टहला ने कहा। पर इसके बाद जो प्रसंग आना चाहता था, उसके लिए वह आप जरा कुठित हो उठा। उसने गरदन झुका ली; मगर रंगा की उत्कंठा प्रबल हो उठी और वह व्याकुल होकर बोल उठा-नहीं कैसे था? आखिर हुआ क्या, जो वह इतनी जल्दी चली गई। साफ-साफ क्यों नहीं कहते?

टहला बड़ी देर तक उधेड़बुन में पड़ा रहा। जाने उन बातों के कहने में उसे क्यों कुंठा का अनुभव हो रहा था ! पर रंगा उसकी ओर टकटकी बाँधे देख रहा था। इसलिए उसे मौन साधे पड़े रह जाना कठिन हो उठा। उसने इधर-उधर एक बार दृष्टि दौड़ाई, फिर रंगा के पास खिसक आया और बहुत धीमे स्वर में उसने कहा-तुमसे मैं सारी बातें कहूँगा, रंगा ! तुमसे दुराव क्या है? मगर शर्म की बात है, कैसे कहूँ कि भाभी पर क्या-क्या बीता!

टहला इतना बोलकर रुक गया। रंगा उत्कंठित हो उठा और साथ ही उत्तेजित भी और इतना उत्तेजित हो उठा कि उसका चेहरा सूर्ख हो उठा और रोष में आकर बोल उठा-आखिर कहते क्यों नहीं, भाभी पर क्या- क्या बीता। असल बात पर आओ! सरमाने की कौन-सी बात है?

टहला कहने को तैयार हुआ। मुश्किल से उसने अपने को तैयार किया कहने को और कहने लगा.- शायद तुम मुंशी छगनलाल को जानते होगे, रंगा। वह जर्मांदारी कचहरी का तहसीलदार है-लंबा-सा अधेड़ आदमी। मूँछे मुड़ाये हुए जवान-जैसा बना जो रहता है। उसने चार आने रोज के करार कर भैया को बेगार में बुलाकर, अमानत की जंजीर खिंचने को बाहर भेज दिया। भैया जाना नहीं चाहते थे। तुम खुद जानते हो कि खेती-पत्ती के कामों में उन्हें खुद फुर्सत नहीं रहती; मगर तहसीलदार ने खुद मेरे यहाँ आकर, मेरी माँ के सामने पाँच रुपए फेक दिये और कहा कि लो ये रुपये, इनसे घर का काम चलाओ, मंगना को काम पर जाने दो। उस वक्त माँ बड़ी प्रेशोपेश में पड़ गई, वह क्या कहे-क्या न कहे ! तुम जानते हो, इधर तीन

सालों से खेत का खजाना नहीं चुकाया गया है, रोज प्यादे-पर-प्यादे आते थे, भैया डर के मारे छिपे-छिपे रहते थे! आखिर उसकी बात कैसे काटी जाती, fr i j e<sup>u</sup>h r k s o g d<sup>h</sup> c<sup>h</sup> k u g h a j g k f<sup>h</sup> t c m usi s<sup>h</sup> k h g h i<sup>h</sup> रुपये फेंक दिये, तब भैया ने समझा कि बेजा क्या है ? कम-से-कम उसको नेक नजर तो रहेगी, प्यादों से छुटकारा रहेगा। और भैया ने हामी भर दी। माँ कुछ बोल न सकी। भैया काम पर भेज दिये गये! माँ को लगा कि तहसीलदार बड़े मेहरबान आदमी हैं...वह बराबर मेरे यहाँ आता रहा, माँ ने बुरा नहीं माना। समझा कि वह नेक आदमी है; मगर मुझे जाने क्यों कुछ शक हो रहा था, फिर भी इस तरफ मेरा ध्यान नहीं गया.....और एक रोज रात को भाभी के घर में पकड़ा गया....जानते हो पकड़ा गया किससे..... भाभी ने ही पकड़ा, जब वह इज्जत उतारने को तैयार हुआ.....बिछावन पर ही पकड़ा गया... मगर तारीफ है रंगा, भाभी ने उसीकी धोती से उसे खाट में जकड़कर बाँध छोड़ा और दौड़कर मेरे घर में आई। माँ को जगाया, मैं भी जाग पड़ा। भाभी ने दीप जलाया, माँ और भाभी के साथ हमलोग वहाँ जाकर देखते हैं तो मेरा जी सन्न हो गया! -कौन ?-तहसीलदार साहब!....पता नहीं, माँ ने चुन-चुनकर उसे जाने कितनी गालियाँ दी, कितने भले-बुरे कहे ! भाभी तो लाज के मारे वहाँ से खिसक पड़ी थी। आखिर, माँ को पीछे दया हो आई, और बोली-खोल दो टहला तहसीलदार साहब को, आखिर यह भी क्या कहेंगे ! मगर याद रखिए तहसीलदार साहब, जो दूसरों की बहू-बेटी की इज्जत लेना चाहता है, उसकी बहू-बेटी की इज्जत भी कोई दूसरा लेता है ! आपकी चाल अब समझ में आई! हमलोग गरीब हैं सही; पर आबरू तो है। जब आबरू ही नहीं बचेगी, तब धन कमाकर क्या होगा! आपकी बुद्धि पर दया आती है... और मैंने उसे खोल दिया। वह घर से निकला और बड़बड़ता हुआ चलता बना! मगर उनकी बड़बड़हट में इतना जरूर समझ में आया कि वह इसका बदला बुरी तरह चुकायगा और किसी-न-किसी दिन वह भाभी के मुँह को काला जरूर करेगा।

टहला कुछ क्षण चुप रहा, फिर कहने लगा-उस दिन, सच कहता हूँ हमलोग इतना डर गये थे कि रात भर फिर किसी को नींद न आई। एक और

माँ थरथर कॉप रही थी, दूसरीओर भाभी रो रही थी और मैं उन दोनों के बीच ढौँत मसमसाकर रह जाता था। आखिर, माँ और भाभी के बीच यह तय हुआ कि, भाभी को कुछ दिन केलिए पीहर भेज दिया जाय। और भोर होते-होते मैं भाभी को लेकर, वहाँ के लिए चल पड़ा।

रंगा ने एक-एक शब्द बड़े गौर से सुना; रोष के मारे उसके नथुने फूलने लगे। लगा, जैसे वह तहसीलदार को जिन्दा न छोड़ेगा। मगर कुछ क्षण के बाद ही वह ठहका मारकर हँस पड़ा और हँसते-हँसते ही बोल उठा-भाभी ने बाँध रखा था, टहला, उसे-उस पाजी को?

-हाँ, रंगा, बाँध रखा था उसे ! सिर्फ बाँध ही नहीं रखा था, रंगा, मैंने तो अपनी आँखों देखा उसे, जब मैं खोलने गया था-- उसके बदन पर कई जगह दाग थे, शायद दांतों से काटने के दाग थे वे ! जगह-जगह उनसे खून छलाछला आया था ।

रंगा भाभी की बहादुरी पर गर्व में भर उठा। उसकी आँखें क्षणभर के लिए खिल उठी और वह बोल उठा-बेचारे की काफी मरम्मत की भाभी ने। चलो अच्छा ही हुआ.....

टहला रंगा की हँसी को समझ नहीं सका। इसलिए वह चिढ़ गया और चिढ़ते हुए ही उसने पूछा-क्या अच्छा हुआ, रंगा? इसको तुम अच्छा समझते हो? कोई घर में घुसकर इज्जत पर हमला करे और उसे तुम अच्छा समझो ! जानते हो, उस पाजी ने उसके बाद क्या किया?

-क्या किया, टहला!

-सो ही तो कहता हूँ ! टहला दुखित होकर कहता चला-उसके बदले ऐया पर मार पड़ी-बेतरह मार पड़ी। उनको काम में जोतकर दिन-दिन भर भूखे रखा। आखिर, काफी कमज़ोर बनाकर छोड़ दिया और कमाये हुए रूपए भी न दिये। उस दिन पाँच रुपए उसने जो दिये थे, उन्हें रोष के मारे माँ ने तहसीलदार के मँह पर फेंककर कहा था-ले जाइये, अपने रुपये, जिसका लोभ देकर हमारी बहू की अस्मत लेने को कुत्ते-जैसे दौड़ पड़े ! हम इन रुपये पर धूकते हैं।

रंगा का रोष इस बार उबल पड़ा और बोला-क्या कहा, भैया पर मार पड़ी, काम से हटा दिये गये, मजदूरी तक नहीं मिली? प्रेशरी रुपए तक लौटा दिये गये? क्या कहते हो, टहला, इतनी बातें हो गई?

रंगा-थोड़ी देर चुप रहा, न जाने क्या सोचता रहा। उसके बाद फिर बोल उठा-इतनी बातें हो गई, मगर मैं जान भी न सका! खैर, तुम कह सकते हो, टहला, वह तहसीलदार रहता है कहाँ?

रहता कहाँ है? -टहला ने कहा-यहीं गांव के बाहर जो कचहरी है!

-इधर देखा है तुमने उसे?

-नहीं रंगा, उस दिन से मैं बाहर निकला ही कहाँ? भैया बीमार जो घर पर पड़े हैं।

-बीमार हैं? घर पर?

-हाँ, कूट-कूटकर उन्हें मरवाया है पाजी ने!

इसके बाद दोनों कुछ क्षण चुप रहे। संध्या सान हो आई थी, आकाश में तारे छिटकने लग गये थे; पर वे दोनों बातों में इतने तल्लीन रहे कि उन्हें समय का कुछ खयाल ही न रहा। रंगा बड़ी देर तक गहरे विचार में पड़ा रहा। उसके बाद उसने एक सर्द आह ली और फिर वह बोल उठा-ओह, इतनी बातें हो गईं

-इतनी ही क्यों, रंगा! -टहला ने बड़ा खिन्न होकर आगे कहा-हमारे घर पर तो शनीचर की नजर जो लगी है! वह पाजी ऊधम मचाने पर तुल गया है। उसने अदालत में खजाने की नालिश ठोक दी है। उसका सम्मन भी आ गया है। मगर कौन पैरवी करे? भैया कमर के बल खड़े तक नहीं हो सकते! खैर, रुपया भी पास रहता, तो किसी दूसरे से भी पैरवी करवाई जा सकती थी; मगर यह भी नहीं होने का! देखता हूँ, रंगा, हमलोग अब जमीन नहीं बचा सकेंगे। और, इसी समय कोढ़ में खाज की तरह राजाबाबू भी पीछे पड़ गया है कर्ज चुकाने को! रोज आदमी दौड़ता है.....भैया तो अपनी बीमारी में अलग दम तोड़े पड़े हैं, दूसरी ओर एक-साथ इतने-इतने हमले! "तुम जानते हो, माँ एक तो योंही परेशान रहती थी, अब, जबसे ये सब बातें घट गई हैं, कह नहीं सकता, कितनी बुरी गत हो रही है उसकी? जान पड़ता है

कि उसी पाजी ने राजाबाबू को भी सनका दिया है ! कहो रंगा, एक मुसीबत रहे तो आदमी झेले ! पर इतनी मुसीबतों के साथ, एक साथ, खिलवाड़ नहीं किया जा सकता ! इधर खेत की उपज से हम पेट नहीं चला सकते । इसकी चिन्ता तो अलग खाए जा रही है । उसपर इतनी मुसीबतें ...लगता है कि जहर खाकर सो रहूँ-आखिर, ऐसी जिंदगी किस काम की....

टहला बोलते-बोलते उच्छ्वसित हो उठा ! वह अपने को जप्त न कर सका ! उसके पेट में इतनी सारी बातें घुमड़-घुमड़कर निकलना चाहती थीं; पर वह किसके सामने इन्हें निकालता ! उसका अंतरंग था ही कौन ? रंगा को टहला की करुण परिस्थिति का हाल सुनकर बड़ा सदमा पहुँचा ! वह इतना हँसोड़, इतना सख्त और इतना ऊधम मचानेवाला होकर भी स्थिर कैसे रह सकता था ! उसने एक गहरी आह भरी और वहाँ से उठकर, उसो चोटी पर वह टहलने लग गया ।

रंगा टहलते-टहलते कठोर हो उठा ! उसने, इसी अरसे में, बहुत-सारी बातों पर सोच डाला ! इसके बाद वह वहीं बोल उठा-टहला, तुमने सोचा है कि आखिर कौन-सा उपाय किया जा सकता है जमीन बचाने के संबंध में ?

-उपाय-टहला ने लापरवाही से कहा-उपाय क्या होगा रंगा ! मुझे उसकी चिन्ता नहीं है ! न रहे जमीन, इससे क्या होना-जाना ! जबकि देख रहे हो, साल भर का अनाज उस जमीन से नहीं जुटा पाता ! मगर चिन्ता है, रंगा ! मैं डर रहा हूँ, जैसा कि मैं कभी-कभी डर उठता हूँ, सिर्फ भैया के लिए..... पता नहीं क्या होने को है ! शायद भैया..... ! हाँ, पहले भैया को ही बचाने का उपाय कर दो, रंगा ! भैया को बचाना जरूरी है । जमीन न भी बचे, उसकी मुझे रक्ती भर परवा नहीं ! मगर भैया के बिना मेरा कुछ भी नहीं चल सकता ! और माँ की हालत भी इतनी नाजुक हो जायगी, रंगा, मैंने कभी सोचा तक न था !

रंगा अपने आप में इतना अधिक ढूबा हुआ था कि उसने टहला की सारी बात सुनी या नहीं-नहीं कहा जा सकता ! पर रंगा अधिक क्षण तक चुप न रह सका ! वह बोल उठा - घबराने से कोई काम नहीं चल सकता, टहला, इसे याद रखो ! मुसीबतों को ढोने केलिए ही हमलोग बनाये गये हैं ! आखिर, मुसीबतों की पैदाइश ही क्यों होती ! मगर, ये मुसीबतें जितनी जोर से आई

हैं; उतनी देर से दूर भी हो जायेंगी! इस ओर ज्यादा सोचने की जरूरत नहीं; जरूरत है अपनेको संभालने की! अभी तो हमलोग लौट चलें घर को, रात भी अधिक हो आई है। कई दिनों से मैं घर भी नहीं जा सका हूँ, अभी तो मुझे घर ही जाने दो। कल सुबह मैं तुम्हारे यहाँ आऊंगा - और जरूर आऊंगा, आकर ही जैसा-कुछ हो सकेगा, कोशिश की जायगी! तुम्हारी माँ भी बचेंगी, भैया भी बचाये जायेंगे और जमीन भी नीलाम होने से बचाई जायगी! जमीन भी आखिर माँ ही तो है, टहला!

टहला ने सारी बातें सुनीं। उसकी कुछ हिम्मत भी बंधी, कुछ हैसला भी बढ़ा। वह रंगा की बातों से इतना प्रभावित हुआ कि उसकी आँखें भर आईं। उसने अपना मैंह फेरकर अंगोछे की खूँट से आँसू पोछ डाले। रंगा वहाँसे चल पड़ा और टहला भी उसका साथ देता चला।

#### (सतरह)

कल्याणी रंगा की गतिविधि की ओर से विमुख न थी। वह सदा से उसमें पाती आ रही थी कि रंगा को जितनी अपने-आपकी खोज-खबर नहीं है, उतनी वह दूसरों की खोज-खबर रखता है। यहाँ तक कि वह अपने घरेलू कामों को भी समझना नहीं चाहता और न कभी समझने की कोशिश ही करता है। नंदा की तीमारदारी में रंगा जितना परेशान रहा, कल्याणी पल-पल की खोज रखती आ रही है। उसे यह भी पता है कि गाँव में छोटे-बड़े सभी की जुबान पर एक ही बात चढ़ी रहती है और वह यह कि, रंगा नहीं रहता तो गनेसी की बेटी हाथ से जरूर निकल गई होगी! साहस तो देखो उस लड़के का, वह डाक्टर को बुला लाया। गोसाई को झिड़कियाँ दी-जिस गोसाई से लोहा गाँव का अमीर भी नहीं ले सकता! कितना निडर है-कितना बेलौस.....आदि जाने और कितनी नमक-मिर्च लगी हुई बातें वह अपने रंगा के सम्बन्ध में जान गई है। ऐसे रंगा को वह क्या कहे, कैसे उसे रोक रखा जाय यह कहकर कि किसीकी मदद में बह जाया न करे! वह तो कुछ बुरे काम में जाता नहीं, जरूर वह खरे दिल का है। अन्याय को वह सह नहीं सकता; बड़े-बूढ़ों को भटका हुआ देखकर वह बौखला भी उठता है। फिर ऐसा कौन होगा, जो दूसरों के लिए अपनी जान खतरे में डाले रहे। जान किसे

प्यारी नहीं है ? पर यहीं तो माँ को कष्ट होता है। यहीं तो दुख है कल्याणी को। कल्याणी एकलौते बेटे की माँ होकर कैसे बद्राश्त करे कि उसका बेटा जिस-तिस से भीड़कर संकट मोल ले ! वह गोसाई को जानती है, वह जानती है कि गोसाई-जैसा उस अंचल में कोई भी सिद्ध ओझा नहीं है। उसे सिद्धि प्राप्त है, वह बात-की-बात में भूतों को नचा सकता है, वह हड्डियों का ढेर बरसा सकता है और जिसकी चाहे, पलक मारते, जान तक ले सकता है।

जान लेने की बात का स्मरण कर कल्याणी को रात के समय भी पसीना निकल आया। उसके कानों में अंधेरे घर में भूतों की किलकारियाँ तक स्पष्ट सुनने में आई। वह घबरा उठी। उसे लगा कि जैसे रंगा को पकड़ने के लिए ही वे भूत गोसाई से भेजे गये हैं। कल्याणी अपने को रोक न सकी, वह जोर से चीख उठी और वह अचेत होकर जमीन में लुढ़क पड़ी। और उसी समय किसी चीज की आवाज पाकर रंगा बिछावन से उठ बैठा; पर उसे अंधकार में कुछ दीख न पड़ा। उसने बिछावन पर टटोलकर अपनी माँ को पाना चाहा; पर वह तो जमीन पर लुढ़की पड़ी है। उसे वह कैसे मिले! रंगा बिछावन से उतरा और जैसे ही उसने पाँव बढ़ाया कि उसके पैर में ठोकर लगी। वह उझककर उसे उठाते हुए बोल उठा-क्या हुआ अम्मा! क्या हुआ! रंगा को लगा, मगर कल्याणी बेखबर थी; पता नहीं, रंगा की बातें उसने सुनी या नहीं। जैसे उसकी माँ बदहोश हो पड़ी है। जाने कोई अनहोनी तो नहीं घटी! उसने माँ को उठाया और उसे अपना भरपूर बल लगाकर घर से बाहर लाकर चाँदनी में उसने पाया कि वह बिलकुल अचेत है!

वह पंखा लाने को घर की ओर मुड़ा; पर अंधेरे में पंखा पाना सुलभ न हो उठा। वह दौड़कर बाहर आया, तब तक बाहर की ठंडी हवा के स्पर्श मात्र से उसकी मूर्छा भंग हुई। रंगा ने उसमें चेतना का अनुभव किया और कुछ क्षण के बाद ही उसने आँखें खोल दी। रंगा ने उससे कुछ कहना चाहा। कल्याणी तब तक सचेत हो गई थी। उसने अपने को खुले आँगन में और पाया कि रंगा बिलकुल बबराकर उसकी ओर ताक रहा है! माँ को अपने-आप पर लज्जा हुई और कुछ खेद भी हुआ। वह उसी परिस्थिति में बोल उठी-क्या देख रहे हो, बेश, मुझे कुछ नहीं हुआ है-कुछ नहीं हुआ है! तुम यहाँ उठा लाये क्यों ?

इस बार रंगा बोलने को तैयार हुआ, उसने पाया कि माँ सरासर भुलावा दे रही है उसे। वह कैसे विश्वास करे अपनी माँ की बात पर! वह बोल उठा-क्यों तुम्हें यहाँ उठा लाया माँ, क्या तुम खुद नहीं कह सकती, जब तुम कह रही हो कि तुम्हें कुछ नहीं हुआ है? तुम्हें कुछ होता भी है, तो तुमने मुझे कभी सच-सच बतलाया भी है या आज तुम बतलाओगी! पता नहीं, तुम्हें मुझसे कहने में क्यों हिचक होती है ? तुम समझती होगी कि सच-सच बतलाने पर मैं डर जाऊँगा - तुम मुझे डराना नहीं चाहती; मगर माँ, यह तुम्हारा खयाल बिलकुल गलत है। मैं किसी से भी नहीं डरता, आदमी हो या जानवर, भूत हो या प्रेत, देवता हो या दानव-सच कहता हूँ अम्मा, मुझे जरा भी भय नहीं है किसीका! अब तो कहो, अम्मा, तुम्हें हुआ था क्या?

कल्याणी आज बेतरह पकड़ी गई! अब वह क्या करे ? क्या वह सच-सच कह दे कि क्यों वह अचेत हो पड़ी थी! कल्याणी कुछ क्षण तक चुप रही। उसके बाद बोल उठी-डर गई थी, बेटा, डर गई थी!

रंगा डरने की बात सुनकर ठहाका मारकर हंस पड़ा और उसी हँसी में बोला-ताज्जुब है अम्मा, तुम इतनी डरपोक हो! डर ?

-हाँ, डरपोक हूँ, बेटा ! मगर मैं अपने लिए नहीं डरती-फिर जरा रुककर बोली-डर तो तुम्हारे लिए है ! तुम जो-जो काम करते हो, तुम्हें मालूम नहीं, उससे मैं कितना डर गई हूँ ! और डरँ कैसे नहीं बेटा, जब कि मुझे गोसाई की करतूत मालूम है-उस गोसाई की, जिसको तुमने भला-बुरा कहा है, जिसको तुमने डॉट-डपट तक बताई है !

रंगा अपनी माँ की बातें सुनकर फिर से खिलखिला उठा, फिर आगे उसने कहा-ओह, समझ गया माँ, मैं समझ गया! तुम गोसाई के नाम से इतना भय खाती हो, जिसको तुम्हारा बेटा उँगली पर नचा सकता है, जिसके सिर से भूत उतार सकता है, जिसको अपनी बातों से मूर्छित तक कर सकता है ! अम्मा, वैसे आदमी से तुम डरो, यह मेरे लिए बड़ी लज्जा की बात है. - लज्जा की बात कुछ नहीं है, बेटा। जिससे दुनिया भय खाती है, उससे मैं भय खाऊँ, तो इसमें लज्जा की बात कहाँ रह जाती है ! तुम नहीं मानो, मगर जिसे दुनिया मानती है, तुम्हें भी उसे मानना चाहिए! तुम बेवकूफ हो सकते हो, मगर दुनिया नहीं हो सकती।

-दुनिया हो सकती है, मैं नहीं हो सकता-रंगा उफान पर बोलता चला--दुनिया लकीर पर चलती है, उसके आँख नहीं होती, कान होते हैं; मगर मुझे आँख भी है और कान भी ! मैं सुनी हुई बात को नहीं मानता-न मानना ही चाहता हूँ। मैं अपने तरीके से चलना चाहता हूँ किसी का पीछा करना मुझे मंजूर नहीं। और मैं सच कहता हूँ अम्मा, दुनिया ऐसे धोखेबाजों से भरी पड़ी है और मैं ऐसे धोखेबाजों का नाम-निशान मिटा देना चाहता चाहता हूँ-उसकी छाती पर.....

मैं उस पाजी को मौके-बेमौके पटकना रंगा बोलते-बोलते उत्तेजित हो उठा। कल्याणी उसे देखकर काँप उठी और काँपते हुए स्वर में बोली-छिः-छिः, ऐसा नहीं करते बेटा; पैर पड़ती हूँ रंगा! तुम बड़ों का सम्मान करना सीखो, बेटा! किसीका दुश्मन बनना जैब नहीं.....

कल्याणी क्षण भर केलिए चुप रही, फिर आप ही बोल उठी-तुम्हें उसी रास्ते पर चलना चाहिए, बेटा, जिसपर सभी चला करते हैं ! लीक पर चलना गुनाह नहीं। लीक पर चलते चलो, तो मंजिल पर आसानी से पहुँच सकते हो। जहाँ रास्ता है ही नहीं, वैसे बीहड़ और कटीले जंगल में अपने को ले चलना कोई बुद्धिमानी नहीं! वैसे जंगल में जाने पर पैर छिलेंगे, काँटे गड़ेंगे, जान की बन आयगी, इसके अलावा कोई फायदा तो मिलेगा नहीं ! फिर तुम उस जंगल से क्यों गुजरना चाहते हो ?.....और कोई भी माँ अपने बच्चे को उस रास्ते पर जाने से कैसे भय नहीं खाय! आखिर माँ का दिल....

-जानता हूँ माँ का दिल, अम्मा ! और उस दिल को जानता हूँ, जो अपने बच्चे को बुजदिल बनाता है। वह दिल नहीं चाहिए, अम्मा ! मुझे तो बस, अम्मा का दुआ चाहिए, जिसके बल पर मैं कटीले रास्ते को फूल की सेज जान सकूँ! आखिर, तुम क्या चाहती हो, अम्मा ! मैं बुजदिल बनकर अपने दिल की न कर सकूँ? क्या अपने दिल की पुकार को मैं कान बन्द कर टाल दूँ ....आखिर क्या कहती हो, अम्मा !

रंगा चुप होकर माँ की ओर देखने लगा। कल्याणी सिर झुकाये जाने कहाँधूम रही थी! रंगा बड़ी देर तक उसकी ओर देखता रहा; पर उसने पाया

कि उसकी अम्मा किसी जटिल समस्या में बेतरह फँस गई है, जिससे निकलकर बाहर आना उसके लिए कठिन हो रहा है। वह स्वयं मुलायम पड़ गया, और माँ को उस संकट से उद्धार करने के लिए वह मधुर स्वर में बोल उठा-जानता हूँ, अम्मा, तुम्हें मुझ पर छोह है, ममता है और उस ममता के कारण तुम कैसे मुझे उस रास्ते पर जाने को कह सकोगी! मैं तुम्हें अपनी हरकतों से दुखी नहीं करना चाहता; पर मैं चाहता हूँ कि मैं उसी रास्ते पर चलूँ, जिस रास्ते से तुम ले जाना चाहती हो मुझे ! मैं आज अपने को समर्पित करता हूँ, अम्मा ! सच कहता हूँ, मैं अपनी सारी आकांक्षाओं और सारे अरमानों के साथ अपने को तुम्हारे हाथों सौंपता हूँ मगर नहीं, मैं बुजदिल होकर मौन साध लूँ, कायर होकर मैदान से पीठ दिखा दूँ, डरपोक बनकर सच-को-सच और झूठ-को-झूठ कहने से मँह मोड़ लूँ ? बोलो, अब तो तुम्हें मुझपर रंज नहीं है ? बोलो माँ-बोल दो एक बार-तुम अब खुश हुई न!

कल्याणी ने एक-एक शब्द सुना, अक्षर-अक्षर वह समझती रही; पर समझ कर भी वह प्रसन्न नहीं हो सकी! रंगा ने समझा था कि अम्मा उसकी बातों पर बाग-बाग हो जायगी और उसी बाग-बाग में वह बोल उठेगी कि हाँ, बेटा खुश हूँ; मगर रंगा ऊपर-ही-ऊपर उड़ा रहा था। उसे क्या पता कि उसकी माँ का हृदय कितना गंभीर है, उसमें कितनी बढ़ी हुई आकांक्षाएँ हैं। रंगा फेल कर गया, जब उसने सुना कि माँ के तेजोदीप्त मुख से प्रवाहमयी वाणी निकल रही है, उस वाणी में उसकी माँ के मुँह से आग की जैसे चिनगारियाँ झड़ रही हैं ! वह कह रही है-नहीं, रंगा, मैं खुश नहीं हुई ! और कैसे खुश हो सकती हूँ, जब मैं खुद डरपोक हूँ ! पर क्या तुम समझ रहे हो कि मैं तुम्हें डरपोक बनाकर तुम्हारी मिट्टी बर्बाद करूँ? तुम्हें कायर बनाकर तुम्हें निकम्मा कर छोड़ दूँ? हर्गिज नहीं, मैं सौंबार-हजार बार-लाख बार कहूँगी-मैं ऐसा हर्गिज नहीं चाहूँगी ! तुम जो भी रास्ता अछियार करो-मुझे तुमपर भरोसा है! मैं तीक पर चलने को अब तुम से हर्गिज नहीं कहूँगी - तुम अपनी तीक अपने से बनाओ-अपने जीने के लिए अपने पथ की आप खोज करो-मुझे सारी बातें मंजूर हैं। मैं नहीं चाहती कि तुम्हारी आकांक्षा मर जाय! मैं यह

बिल्कुल नहीं चाहती कि तुम्हारे अरमान को मेरे व्यवहार से ठेस लगे! आखिर, वह माँ किस बात की, जो अपने बेटे को कायर बनाती है, डरपोक बनाती है-बुजदिल बनाती है .....मैं सच कहती हूँ, मैं कुछ देर पहले वैसी ही माँ थी; मगर नहीं! अब मैं हर्गिज वैसी नहीं रह गई.....लो, मैं आज तुम्हें दिल खोलकर दुआ देती हूँ-नारी के दिल से नहीं-अबला के दिल से नहीं-माँ के दिल से दुआ देती हूँ बेटा ! तुम्हारे शूल के रास्ते में फूल बिछे ! तुम अजेय बनो, अभय रहो; मगर सबसे पहले तुम आदमी बनो.....

कल्याणी बोलते-बोलते इतनी उच्छ्वसित हो गई कि उसकी आँखें आँसुओं से भर आई और उत्तेजित होकर रंगा को अपनी गोद में खींचकर उसके सिर और आँखों को चूमने लगी।

रंगा उस स्नेह-स्पर्श को पाकर आनंद में उद्बुद्ध हो उठा; पर उसी आवेग में आकर वह बोल उठा-आदमी बनने को कहती हो अम्मा! तुम्हें विश्वास है कि मुझ-सा नादान भी कभी आदमी बन सकेगा? आदमी बनना क्या इतना आसान है, माँ ?

-हाँ-रे-हाँ, रंगा, आदमी बनना आसान नहीं तो क्या है ? और इस दुनिया में आसान क्या नहीं है ? मगर उसके लिए आसान है, जिसमें उसके लिए सच्ची आकांक्षा है, उसके लिए जिसमें दिली तड़प है; जो लगनशील है और जो अपने आपमें इमानदार है! समझो बेटा, आदमी बनना कितना आसान है.....

माता और पुत्र के बीच जाने कब तक इस तरह की बातें होती रहती; मगर इतने में कोयल पास के ग्राम के पेड़ से कूक उठी ! कल्याणी ने तन्मयता में ढूबी हुई पलकें उठाकर देखा-ओह, यह तो भोर हो गया ! अब क्या उसके लिए बैठे रहना संभव हो सकेगा ?.....

कल्याणी उठकर बाहर की ओर चल पड़ी। रंगा नदी-तट की ओर जाने को आँगन की ओर बढ़ चला।

(अठारह)

रंगा नदी-किनारे से प्रातःकृत्य से निवृत होकर ज्योही घर पहुँचा, ल्योही उसकी दृष्टि बरामदे पर बैठे हुए टहला पर गई। उसे देखते ही रंगा

की गत रातवाली उसके साथ की हुई सारी बातें याद हो आईं। उसे यह समझने में देर न लगी कि टहला के आने का उद्देश्य क्या है। इसलिए वह बोल उठा-अच्छा किया, तुम आ गये टहला ! मैं तो तुम्हारी बातें भूल ही बैठा था!

-नहीं रंगा, तुम झूठ बोलते हो-टहला बोल उठा-जिसने अपने सिर बोझ उठा रखा है, वह कभी कैसे भूल सकता है रंगा? मुझे तो यह कभी विश्वास ही न जगा कि जिस बात में तुम एकबार 'हाँ' कह दोगे, वह दुहराकर 'नहीं' नहीं हो सकता ! सच कहता हूँ-'नहीं' तुम कैसे कर सकते थे....

कल्याणी वहाँ से थोड़ी दूर पर बरामदे को लीपती आ रही थी। उसने उनदोनों की बातें सुनीं। वह उत्कंठित हो उठी। उसने जानना चाहा कि टहला का ऐसा कौन सा काम आ पड़ा है, जिसके लिए रंगा ने हामी भरी है। वह अपनी उत्कंठा दबा न सकी, बोल उठी-क्या है रंगा? टहल तुमसे क्या कह रहा है? क्या मैं जान सकती हूँ, बेटा?

-क्या तुम्हें मालूम नहीं है अम्मा? - रंगाने प्रश्न के रूप में कहा टहला का बड़ा भाई तहसीलदार से पीटा गया है !

-नहीं तो कल्याणी आश्चर्यचकित होकर बोली-क्यों पीटा गया वह किसने पीटा उसे?

-उसके पीटे जाने में एक बड़ा रहस्य है, अम्मा!-रंगा ने जरा रुककर कहना शुरू किया-मगर लोग तो यहीं जानता है कि खजाना चुकाने में बराबर टाल-मटोल के कारण ही वह पीटा गया है! कारण जो भी हो; मगर यह कितना अन्याय है अम्मा ! आखिर, तहसीलदार को पीटने का क्या हक था? खजाना बाकी था, तो वह उससे तलब कर सकता था; मगर कूट-कूटकर पिटवाना कहाँ का न्याय है? जाने इस तरह आये दिन कितने गरीब इन सोहदों से पीटे जाते हैं, अपमानित होते हैं, उनकी बहू-बेटियों की इज्जत उतारी जाती है। फिर भी उन बेकसों की जुबान नहीं खुलती ! और गाँव के इन भले आदमियों को देखो तो भला! एक पीटा जाता है और दूसरा हँसता है ! एक पर सितम ढाहा जाता है और दूसरा उसपर नमक छिड़कता है !

मगर उन भक्तों को यह पता नहीं कि एक दिन उस पर भी सितम वरपा हो सकती है । एक दिन उसके घाव पर भी नमक छिड़का जा सकता है ! उन अभागों को एक दूसरे से डाह होती है; पता नहीं, इस डाह में उसे कौन-सा रस मिलता है !

रंगा और भी कुछ कहना चाहता था; पर माँ के सामने वह कहने में सकुचा गया । वह चुप हो गया, कल्याणी उसकी ओर देखने लगी ।

कल्याणी रंगा की बातें सुनकर कुछ चिन्ता में पड़ गई । उसे लगा कि जैसे रंगा को उसके पीटे जाने पर बेहद दर्द है और इस दर्द को वह किसी दूसरे तरीके से निकालने को पिल भी सकता है । कल्याणी इस अभावनीय चिन्ता में पड़कर कॉप-सी उठी । वह रंगा को जानती है, उसे अच्छी तरह से वह जानने भी लगी है और उस रंगा को उसने अपनी ओर से अभयदान भी दे दिया है ! कल्याणी इन सब बातों को पलक मारते ही सोच गई । पर उसने अपनेको निरुपाय समझा । कैसे वह अपने रंगा को अपनी सीमा के अंदर रखने में समर्थ हो सकती है? वह घबराहट में पड़ी, उसके हाथ लीपने से रुक-से रहे, उसकी जुबान बोलने-बोलने को होकर भी रुक-सी रही ! मगर टहला सामने है, वह उसे बुलाने आया है; वह रंगा को क्या कहकर रोके-रोकने केलिए तो कोई काम भी चाहिए ! वहाँ तो रंगा का कोई काम है नहीं - घर पर ऐसा उसके लिए काम ही क्या है, जिसमें वह उसे उलझाये रखे ! कल्याणी की चिन्ता बढ़ चली; मगर रंगा अपनी माँ को ताड़ गया और वह हँसकर बोल उठा-डरो मत अम्मा ! मैं उस पीटने वाले से उलझना नहीं चाहता; मैं तो टहला के घर जाना चाहता हूँ । शायद टहला के भाई को अस्पताल तक पहुँचाने में मेरी जरूरत महसूस हो । क्या मैं जा सकता हूँ, अम्मा !

कल्याणी को लगा, जैसे उसके आण फिर आए । वह जरा मुस्कराई और उसी मुस्कराहट में वह बोल उठी-तुम्हें कब मना किया है रंगा, जो आज तुम्हें मना करूँगी !.....मगर हाँ रे रंगा, सुना है कि डाक्टर साहब तुम्हें बहुत मानते हैं? क्या यह सच है, बेटा ?

-हाँ, सच नहीं तो झूठ थोड़े ही है, अम्मा! -रंगा गर्व में फूल उठा-बड़ा अच्छा आदमी है वह, माँ! लोग कितने बेबकूफ हैं कि उनके पास जाने को डरते हैं! और यहाँ के लोगों को क्या कहा जाय-डाक्टर का डर, हकीम का डर, हाकिम का डर, दरोगा का डर, प्यादों का डर, साँप का डर, जानवर का डर, भूत का डर, देवता का डर-समाज का डर, धर्म का डर - यहाँ तक कि ईश्वर का डर! क्या मैं झूठ कहता हूँ, अम्मा ! जिसके रोम-रोम में डर का डेरा पड़ा हुआ है, उसे न कभी राम मदद कर सकता है, न रहीम ही कर सकता है ! जहाँ एक के डर से दिल की धड़कन बंद होने को होती है, वहाँ इतने डरों में जान नहीं निकल जाती है-यही ताज्जुब है ! मैं किसीको नहीं डरता तुमसे कई बार कह चुका हूँ। मैं मजे में डाक्टर बाबू के यहाँ जाता हूँ, बेखौफ होकर बातें करता हूँ वह भी मेरी बातों में रस लेते हैं, मुझसे घुलमिलकर बातें करते हैं .....और माँ, तुम जिस गोसाई से भय खाती आ रही हो, जिसके भय से गाँव भर उसकी पूजा में जुटा रहता है, उसी गोसाई को उस दिन प्रेशाव उत्तर आया, जब डाक्टर ने उसे डॉटकर कहा-ऐसा आदमी कानून की रुख से सजावार है, चाहूँ तो आज इसे जेल में ठूँसवा सकता हूँ! सच कहता हूँ, अम्मा ! उस दिन उसका चेहरा अगर तुम देख लेती, तो पता लग जाता कि हजरत कहाँ हैं.....

कल्याणी गोसाई के नाम पर लजा-सी उठी, फिर जरा रुककर बोली-तुम्हें तो उस गोसाई से जख चढ़ गया है। जब देखो, तब उसी की बात --उसकी चरचा ! मैं यह सुनना पसन्द नहीं करती-तुम्हीं उसका नाम जपो!

-क्यों अम्मा, अब उसका नाम जपने से मन थक गया?

-हाँ, थक गया, रंगा, थक गया ! मगर तुम यहाँ इसी तरह खड़े-खड़े बात करोगे या टहला के यहाँ जाओगे?

-ओह, अच्छी याद दिलाई ! अच्छा, अम्मा, लो, मैं चला ।

और रंगा टहला के साथ उसके घर की ओर चल पड़ा। रंगा ने उसके घर पर आकर देखा कि एक ओर चटाई पर मांगन पड़े-पड़े कराह रहा है, दूसरी ओर उसके बगल में टहला की माँ छटपटा रही है। रंगा ने उन दोनों को देखा और वह सन्न रह गया! आज से कुछ दिन पहले रंगा ने उसके घर

को देखा था । उस समय उसमें श्री थी, शोभा थी; पर आज उसने देखा कि न तो वहाँ श्री रह गई है और न शोभा ही! लग रहा है, जैसे घर में मातम छाया हुआ है; घर की ठठरी पड़ी हुई है, मगर उसके आण निकल गये हैं ! रंगा उदास आँखों से एक बार बाहर की ओर देखता और दूसरी बार उन बीमारों की ओर! उसे रह रहकर बड़ा ताज्जुब हो रहा था कि इन्हीं कुछ दिनों के भीतर इतना बड़ा परिवर्तन आखिर हो गया कैसे ? उसने एक सर्द आह ली और वह टहला को माँ के पास जा बैठा । टहला ने अपनी माँ से रंगा के आने की बात कही । माँ उसका नाम सुनते ही रो पड़ी और रोते-रोते ही बोली--कहाँ रहे बेटा ! क्यों भूल गये थे, बेटा ! तुम-जैसे आदमी का जिस दिन से आना रुक गया, हमारे सिर पर बला सवार हो गई! क्या देखते हो, बेटा ! इस समय गाँव का एक कुत्ता भी हमारा घर झाँकने को तैयार नहीं! फिर यहाँ कौन भाई का लाल इतना जीवट वाला है कि हमारी मदद करे! मगर आज तुम आ गये हो । हमारी फिकर छोड़ दो, बेटा ! मैं चली जाऊँ तो समझना, सिर का बोझ ही हल्का हुआ । मगर अपने भाई की हालत देखो-उसकी कराह जान काढ़े लेती है । कैसे कहूँ कि एक ही साथ कितना सदमा उठाना पड़ा है.....

अम्मा हाँफने लगी, उसका गला रुँध गया, और इसकी आँखों से आँसू अवाध गति में बह निकले !

रंगा ने अपने मन को कड़ा किया । उसका जी करुणा से द्रवित हो गया था । उसने अपने को सँभाला और उस बूढ़ी अम्मा को दिलासा देते हुए बोल उठा-इतने दिनों तक न आकर मैंने जो गुनाह किया है, उसका प्रायाशित मैं न करूंगा तो और कौन करेगा? मुझे खुद अफसोस है कि इसी बीच कैसे-कैसे भयंकर काम हो गये! मगर जो होना था, उसके लिए अब चिन्ता करने की जरूरत नहीं । अब मैं आ गया हूँ। मुझे और कोई काम नहीं रह गया है । मैं चाहता हूँ कि माँगन भाई को लेकर अस्पताल पहुंचा आऊँ! अभी डाक्टर यहाँ आ नहीं सकते-अस्पताल में इस समय उनका रहना जरूरी है ! मैं समझता हूँ कि अस्पताल में इनकी देखभाल अच्छी हो सकती हैं - घर पर नहीं । मगर वहाँ इन्हें ले जाने के लिए एक बैलगाड़ी का तुरंत जुगाड़ करना पड़ेगा ! क्या तुम्हारा विचार है, चाची ?

-मेरा क्या विचार होगा बेटा-बूढ़ी की आँखों भर आई। वह बोली मैं तो उसे भला-चंगा देखने को मर-मरकर जी रही हूँ। जो तुम चाहो, करो... रंगा उठा और टहला को इशारे से बुलाकर कहा - आखिर बैलगाड़ी का जुगाड़ केसे होगा, टहला! क्या तुम कहीं से गाड़ी ला सकते हो?

टहला रंगा के मँह की ओर देखता रहा; पर उसके मँह से हूँ-हाँ कुछ भी न निकल सका।

रंगा टहला से इससे अधिक की आशा भी नहीं रखता था। उसने जरा भी रुकना उचित नहीं समझा! वह सोचने लगा कि तड़के तड़के अस्पताल जाने में आसानी हो सकती है। जब रोगी को ले जाना ही निश्चित है, तब क्यों नहीं लगे हाथ वह गाड़ी का भी बन्दोवस्त करले! मगर गाड़ी मिलेगी कहाँ? -रंगा अपने-आपमें गंभीर हो उठा।

और कुछ क्षण के बाद सहसा रंगा बोल उठा-हाँ ठीक है। मैं अभी तुरत गाड़ी लिये आता हूँ टहला। तुम तब तक भैया को तैयार कर रखो आखिर, टट्टी-पैखाने से फुर्सत तो पा ही लेनी चाहिए। फिर वह बाहर की ओर दौड़ पड़ा। टहला उसकी ओर टकटकी बाँधे देखता रह गया।

कोई पन्द्रह-बीस मिनट के बाद रंगा एक गाड़ी जुताये हुए लाकर हाजिर हो गया। गाड़ी विरजा की थी, विरजा ही गाड़ीवान के रूप में गाड़ी हाँक रहा था; मगर गाड़ी उसके बाप की गैर हाजिरी में, केवल विरजा को तैयार करके ही ले आया था--इस खयाल से कि जितना शीघ्र हो सकेगा, गाड़ी वापस आ जायगी। रंगा ने विरजा और टहला की मदद से मँगन को गाड़ी पर लिटाया। विरजा गाड़ीवान की जगह पर जा बैठा। टहला रोगी को धामकर बैठ गया। रंगा ने विरजा को खूब जोर से गाड़ी हाँकने को कहा। गाड़ी चल पड़ी ! रंगा पैदल ही गाड़ी के साथ-साथ चलने लगा।

गाड़ी की सड़क गाँव की कचहरी होकर पड़ती थी। जब गाड़ी कचहरी होकर गुजर रही थी, तब कचहरी की ओर से कहकहे की आवाज कानों में गई। रंगा को इस बात का जरा भी खयाल न था कि गाड़ी कचहरी के पास से गुजर रही है। मगर ज्योंही उसने कहकहे की आवाज सुनी, ज्योंही उसने सिर घुमाया और देखा कि दो-तीन आदमी कुर्सियों पर बैठे हुए हैं, कुछ जमीन बैठे हुए हैं और कुछ हाथ बाँधे खड़े हैं !

रंगा को टहला की बात याद हो आई और टहला ने तहसीलदार के रूप-रंग का जैसा खाका उसके सामने रखा था, रंगा ने अपने मन में उसके रूप-रंग को उस खाके से मिलाया और उसे यह समझते जरा भी देर न लगी कि उस ओर से उड़ते हुए कहकहे का क्या अर्थ है। रंगा उस कहकहे पर कठोर हो उठा, उसकी मुट्रिठाँ बंध गई आप ही-आप और वह उत्तेजित होकर बोल उठा - हकाओ जोर से विरजा!

विरजा ने चाबुक खोंची, बैलों को पूछ उमेठी। गाड़ी की चाल में जरा-सी तेजी आई पर इतने से रंगा संतुष्ट न हो सका! उसने फिर से कहा-जरा और तेज से विरजा भाई-जरा और तेज से!

विरजा ने इसबार पूरी ताकत लगाई। बैल तेज थे जरूर, मगर वे दोनों अपने असल हाँकने वाले मालिक का इशारा समझते थे ! विरजा तो नौसिखिया गाड़ीवान ठहरा; मगर बैलों ने उसकी इज्जत रख ली, गाड़ी तेजी से निकल पड़ी!

रंगा का उफान धीमा पड़ा। उसकी उदासी मिटी उसने निश्चिन्तता की साँस छोड़ी!

गाड़ी गाँव से बाहर निकल आई, रंगा की निगाह खाल में चरते हुए टहुओं पर जा पड़ी। वह दौड़ पड़ा उस ओर और एक टहू की छान खोलकर लगाम बनाई। वह उस पर चढ़ा, उसने ऐंड लगाई और वह गाड़ी के साथ हो लिया मगर वह गाड़ी के साथ लगा न रह सका। उसने विरजा से कहा कि वह गाड़ी को जरा तेज चाल से हाँकते हुए चले आवे, रुकने को कहीं जरूरत नहीं; और यह आगे बढ़ जाने को तत्पर हो उठा।

विरजा ने अपनी स्वीकृति की सूचना दी, रंगा आगे बढ़ चला। पर वह जिस आशंका से प्रेरित होकर, अपने साथियों को पीछे छोड़कर, आगे बढ़ आया था, वह आशंका ठीक ही निकली। अस्पताल पहुँचकर उसने देखा कि डाक्टर के बंगले में एक आदमी उनसे बहुत धीमी आवाज में बातें कर रहा है। रंगा ने भीतर प्रवेश करना झशिष्ट समझा। वह बरामदे पर दरवाजे के पास खड़ा होकर डाक्टर की प्रतीक्षा करने लगा। डाक्टर तो काफी उलझे थे: पर भीतर जो बातें चल रही थीं, वे कुछ अस्पष्ट रूप में रंगा के कानों गईं।

रंगा सतर्क हुआ, उसने बंगले की ओर अपने कान लगा दिये। उसने जो कुछ सुन पाया, वह उसके लिए बड़ा भयंकर था। उसके हृदय में जो आशंका छिपी पड़ी थी, वह बाहर आकर झाँकने लगी; पर रंगा घबराया नहीं। उसने अपने आपको सँभालने की, संपूर्ण बल लगाकर, कोशिश की और उसमें उसे पूर्ण सफलता भी मिली। फिर भी वह अपनो आशंका को दबा न सका।

पर रंगा ने छिपकर जिन बातों को सुन पाया था, उनसे उसके सुकमार हृदय पर गहरी चोट पड़ी। वह खड़े-खड़े चिन्ता में डूब-सा गया ! पर उसमें डुबकियाँ लगाकर वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि यह दुनिया गरीबों के लिए-संत्रस्त, उत्पीड़ित, बुभुक्षा-ग्रस्त मानवता के लिए नहीं है। वे सताये जाएंगे ही, उनपर ठोकरें लगेंगी ही। इन अत्याचारों से उन्हें मुक्ति नहीं मिल सकती.....

रंगा अब तक सोच रहा है-आखिर प्रतिकार ? प्रतिकार, संभव है, हो; पर इन अभागों के लिए, उस प्रतिकार का कोई मूल्य नहीं। कारण है, उनमें पारस्परिक सद्भावना का अभाव है, उनमें एक दूसरे के प्रति ईर्ष्या है-प्रतिस्पर्धा है, वे मिलकर चलना नहीं चाहते, उनमें दोस्त और दुश्मनों को परखने की सूक्ष्म बुद्धि का भी बिलकुल अभाव है ! वे गहराई तक पहुँचना नहीं चाहते-न उनमें आकांक्षा रह गई है और न कुछ उन्हें आशा ही है ! फिर उन्हें समझावे कौन? ओर फिर रंगा के दिमाग का चक्र धूमा। उसकी दृष्टि दूसरी दिशा की जहाँ उसने पाया कि नहीं, वस्तुस्थिति इससे बिलकुल भिन्न है! क्योंकि वे भी मनुष्य हैं, उनमें भी हसरतें हैं, उन्हें भी जीने का अधिकार है। उनके लिए भी सूर्य एकरस गर्मी और प्रकाश का वितरण करता है, हवा उनमें भी प्राण-संचालन करती है, चाँद अपनी चाँदनी की चादर पसारकर उन्हें भी अपनी गोद में विश्राम का सुख बांटने से विमुख नहीं होता प्रकृति एक-सी सभी को अभिनन्दित करती है। फिर यह भेद क्यों? आखिर, यह भेद पाया कहाँ से? आखिर, इसकी सृष्टि की किसने?.....

मगर इसी समय हठात् डाक्टर बाहर निकले और उनके साथ वह आदमी भी निकला, जिसके साथ अभी-अभी बातें हो रही थीं। रंगा को लगा कि जैसे उसे उसने कहीं देखा हो और उसे याद हो आया कि उसने अभी-अभी तो उसे कचहरी पर देखा है-तहसीलदार के साथ बैठे हुए ! मगर

रंगा की विचार-धारा रुक-सी गई, ज्योंही डाक्टर ने उसे पूछा---कैसे आये हो, रंगा!

खैरियत तो है? रंगा की विचारधारा, हठात् मुड़ने के कारण, वह कुछ उद्विग्न-सा हो उठा। इसी उद्वेग में वह उनके प्रति बिना अभिवादन ही किये, बोल उठा-हाँ, खैरियत है; मगर मैं तो फिर से आपको तकलीफ देने को ही पहुँच गया हूँ, डाक्टरबाबू !

डाक्टर जरा मुस्कराये और मुस्कराते हुए ही बोल उठे -अच्छी बात है ! जब तुम तकलीफ ही देना चाहते हो, रंगा, तब मैं ही उसे ग्रहण करने से अपने-आपको क्यों रोक रखूँ। शौक से उसे मैं ग्रहण करूँगा। मगर यहाँ नहीं, डिस्पेन्सरी में चलो! मुझे अभी वहीं जाना है।

और डाक्टर चल पड़े, रंगा भी चल पड़ा। रंगा ने एक बार फिर से उस ‘राज-पुरुष’ को देखना चाहा; पर वह तो कमरे से निकलते ही चलता बना। फिर उसे उससे भेट होती तो कैसे होती? रास्ते में डाक्टर ने रंगा से जानना चाहा कि वह कौन-सी तकलीफ देना चाहता है उन्हें। इस पर उसने उनकी दृष्टि को पीपल के तले की बैलगाड़ी की ओर आकर्षित किया और कहा-बस, उन्हीं को लेकर आज मुझे यहाँ आना पड़ा है, डाक्टरबाबू! आपसे मिलकर अब मुझे तसल्ली हो रही है कि जिस तरह से आपने नंदा के लिए तकलीफ उठाई, माँगन भाई के लिए भी.....

डाक्टर रंगा को जानते थे कि वह अपनी माँ का इकलौता लड़का है; पर अभी माँगन भाई का नाम सुनकर वह जरा चकरा उटे और तभी बोल उठे भाई !.....तुमने तो एक दिन मुझसे कहा था रंगा कि मैं अकेला हूँ-मेरे भाई-बहन कोई नहीं है, एक अम्मा को छोड़कर। फिर यह भाई!

रंगा मुस्कुरा उठा और मुस्कराते हुए बोला - हाँ, यह सच है, डाक्टरबाबू, मैं अकेला हूँ; मगर यह बात सच नहीं है, जब मैं पाता हूँ कि मेरे लिए भाई बहन, काका-ताऊ आदि जाने कितने हैं ! और मैं इसे कैसे इन्कार करूँ कि जो मुझे भाई-सा मानता आया है, उते मैं भाई न समझूँ !

डाक्टर को इसी सिलसिले में उसदिन की बात याद हो आई, जिस दिन रंगा पहले-पहल उनसे मिला था और उनके पूछने पर उसने कहा था-नंदा मेरी बहन है और जिस बहन को देखने जाकर उन्होंने पाया कि रंगा

पिछड़े समाज का व्यक्ति होकर भी अपने आप में कितना बड़ा है ! और, ऐसा सोचकर उनका हृदय रंगा के प्रति प्रेमल हो उठा ।

डाक्टर डिस्पेंसरी में आ पहुँचे और रंगा से कहा-अपने भाई को लिवा लाओ, बगल के कमरे में ।

रंगा सन्न होकर गाड़ी के पास पहुँचा और विरजा और टहला की सहायता से उसे निर्दिष्ट स्थान पर उठा लाया ।

विरजा अपने बाप से बिना पूछे ही गाड़ी लाया था । अब उसे चिन्ता हुई कि उसे तुरत चल देना चाहिए । ऐसा विचारकर वह रंगा से बोल उठा-क्या मुझे जाने की इजाजत देते हो, रंगा !

रंगा उसकी हालत जानता था । फिर भी वह हँस पड़ा और हँसते हुए ही बोला-दो-एक घंटे के बाद ही जाओ तो कोई हर्ज है, विरजा ?

॥४॥ २ gk हर्ज है रंगा ! -विरजा कुछ देर के बाद बोल उठा-तुम खुद जानते हो कि टहला को किसी ने गाड़ी नहीं दी । शायद न देने का कारण भी तुम्हें मालूम ही हुआ होगा । बाबूजी घर पर रहते तो शायद उनसे भी तुम्हें वही जवाब मिला होता ! मगर मैंने तुम्हारी बात मान ली, अपने पर मुसीबत लेकर-शायद अभी वक्त है, बाबूजी लौटे नहीं होंगे-अगर इसी बीच, वहाँ पहुँच गया तो समझो, वह मुसीबत टल भी जाय ।

विरजा बोलकर चुप हो गया । वह रंगा की ओर आशा-भरी दृष्टि से देखने लगा । रंगा ने परिस्थिति पर विचार किया क्षण भर रुककर, फिर वह बोल उठा-जा सकते हो, विरजा !

विरजा को ऐसी आशा न थी कि रंगा उसे इतना जल्द छोड़ देगा । वह खुश हुआ और गाड़ी की तरफ बढ़ चला; मगर पाँच-सात कदम जाते ही रंगा ने पुकारा-सुनो विरजा, एक बात ।

विरजा सकपकाया, जरा रुका भी; फिर वह लौटकर रंगा के पास आ गया ! रंगा ने सोचकर कहा-सुनो विरजा, शायद तुम्हारी मुसीबत न भी टले, ऐसा लगता है मुझे; मगर उसे तो मेरे नाते तुम्हें उठानी ही चाहिए और मैं भी तुम्हारी मदद करने से कभी पीछे नहीं रह सकता । खैर, अभी जाओ, देखा जायगा ।

इसके बाद वह टहला की ओर मुड़ा। उसे उसकी बूढ़ी माँ की याद हो आई - वह तो घर पर यों ही अकेली पड़ी हुई है। उसके लिए वहाँ और दूसरा है ही कौन ? इसलिए उसने टहला से कहा-और तुम भी जा सकते हो, टहला! माँ के पास ही रहना और उससे कह देना कि माँगन भाई के लिए चिन्ता न करे । डाक्टर अपनी सारी शक्ति लगाकर उसे चंगा करेंगे ही, मुझे विश्वास है। यहाँ केलिए मैं अकेला ही काफी हूँ। जरूरत पड़ने पर यहाँ आदमी की कमी नहीं हो सकती ।

दोनों टहला और विरजा-गाड़ी की ओर चल पड़े ।

(उन्नीस)

आउटडोर पेसेंट का काम पूरा कर यथा समय डाक्टर ने माँगन को आकर देखा, उसकी अच्छी तरह तजबीज की, यंत्र से पता लगाया और पाया कि केस सिरियस है-अवश्य मार बहुत जोर की पड़ी है और वह मार इतनी गहरी है कि इससे उसकी मौत तक हो सकती है ।

डाक्टर गंभीर होकर रोगी को परीक्षा करते रहे । उसके बाद और कुछ क्षण तक जाने क्या सोचते रहे । रंगा भी वहीं पास ही खड़ा था । रंगा की ओर देखा और वे बोल उठे-इस केस के साथ तहसीलदार साहब का भी कोई संबंध है, रंगा, कह सकते हो ?

-संबंध !-रंगा ने जोर देकर कहा - संबंध कहते हैं डाक्टरबाबू ! उसीकी तो यह सारी करतूत है ! वह कैसा रुबैल आदमी है, आपको शायद पता न हो; मगर गाँव का बच्चा-बच्चा उसके नाम से डर उठता है । उसीने तो माँगन भाई को मरवाया है ।

डाक्टर ने रंगा की बातें खूब गौर से सुनी, वह और भी गंभीर हो उठे ! उन्हें यह समझते देर न लगी कि जिसने उसे इतना बेदर्द होकर मरवाया है, उससे जरूर बच्चा-बच्चा भी डर खाता होगा !.....मगर नहीं, वह भी कुछ कम डरपोक नहीं है ! खुनी चाहे जितना बेखौफ होकर खून कर बैठे; मगर

खून उसके सिर पर चढ़कर उसे बेचैन किये बिना नहीं रह सकता ! और उस बेचैनी का कारण आखिर अपनी जान का डर ही तो है! और तभी तो उसने बीमार के आने का पता पाकर, तुरंत अपना आदमी भेजा था और भेजा था इसलिए कि डाक्टर उसके प्रति अनुकूल और सदय रहे! उसपर आँच न आने पाये ! शायद वह जानता है कि इस मार से रोगी बच नहीं सकता। आगे चलकर वह (तहसीलदार) मुजरिम साबित हो सकता है, सरकार उस पर मुकदमा चला सकती है और भगवान न करे, इस मुकदमे में उसकी फँसी या काला पानी की सजा तक हो सकती है ! मगर धूस.... डाक्टरसाहब की आँखें लाल हो उठी, उसके कान को जड़ें झनझना आई ! डाक्टर को अपने कर्तव्य का ज्ञान है! वह जानते हैं कि उसका प्रेशा-उनकी सेवा है-मानवता की सेवा ! जहाँ उनके हाथ में जीवन-मरण का प्रश्न है, वहाँ वह कैसे अपने कर्तव्य से च्युत हो सकते हैं ! और धूस?.....छः, डाक्टर इतना पतित नहीं है, उनका प्रेशा इतना पतित नहीं है ! ...और तभी तो उन्होंने तहसीलदार के आदमी को खरा जवाब दे दिया है....वह अपनेको कमज़ोरी बनाकर अन्यायियों को प्रश्रय नहीं दे सकते.....

डाक्टर जरा मुस्काराये और बोले-तभी तो-तभी तो, रंगा ! मगर...  
.. डाक्टर सोचने लगे कुछ क्षण तक, फिर बोल उठे-देखो रंगा, इसमें एक बात है ! और मैं ऐसा करना चाहता हूँ और जो कुछ मैं करना चाहता हूँ उसमें मुझे तुम्हारी राय को भी जरूरत है ! तुम्हीं बीमार की ओर से यहाँ आये हुए हो ! दूसरा आदमी रहता, तो मैं ऐसा करने को तैयार हो सकता या नहीं, मैं नहीं कह सकता। मैं भी तुम्हें सोचने-विचारने का मौका देना चाहता हूँ देखने लगा ।

-आखिर कहिए भी तो, डाक्टरबाबू! - रंगा उनकी ओर डाक्टर कुछ क्षण के बाद बोले-जो केस तुम यहाँ लाये हो रंगा, वह साधारण नहीं है। संभव है, वह बच भी जाय और न भी बचे ! मगर मैं अपनी शक्ति-भर उसे बचाने का ही जतन करूँगा। फिर भी मैं जोर देकर नहीं कह सकता कि वह बच ही जायगा। काफी खतरा है, अच्छा किया कि आज तुम यहाँ ले आये। मगर उसे तो बहुत पहले ही दिखलाना चाहता था! इस केस पर मुकदमा चल

सकता है, सरकार मुद्दई हो सकती है। क्योंकि इसमें मौत का खतरा है! और इसीलिए मैं तुम्हारी राय लेना चाहता हूँ ! मैं इस केस को पुलिस के सिपूर्द करना चाहता हूँ और उसे बुलाकर रोगी का इजहार दर्ज करवा लेना चाहता हूँ। मेरी चुप्पी साध लेने पर भविष्य में शायद मुझपर, अपने-आप पर, कानूनी इलजाम लगाया जा सकता है। शायद एक को कानून से बचाने कोलिए ही उसमें उलझना न पड़ जाय ! क्या कहते हो तुम रंग चकराया, डाक्टर की बातें समझने में उसने काफी कोशिश की। उसके सामने माँगन के जीवन-मरण का सवाल था ! डाक्टर उसे पूरा-पूरा विश्वास भी नहीं दिला रहे हैं, रंग ने यह भी समझा। उसकी आकृति क्षण भर में धूमिल पड़ गई। इसी सिलसिले में उसके स्मृति-पटल पर खींच आया टहला, टहला की बीमार बूढ़ी माँ और तहसीलदार से सताई गई उसकी भाभी-माँगन भाई की पत्नी ! और यहीं आकर रंग का चेहरा सिंदूर-जैसे रंग उठा। उदासीनता जाने कहाँ विलीन हो गई और वह बोल उठा-इसमें मेरी राय की क्या जरूरत डाक्टरबाबू! जिसने इस तरह बेरहमी से मारा है वह जरूर सजावार है और सजावार पर जरूर मुनासिब कार्रवाई की ही जानी चाहिए और न्याय का तकाजा भी....

-हाँ, ऐसा ही करूँगा रंगा! ऐसा मुझे करना ही पड़ेगा ! - कहकर डाक्टर अपने आफिस में आये। उन्होंने कुछ लिखा और चपरासी के हाथ उस कागज को देते हुए कहा-जामो थाना, दारोगा को दे आओ। चपरासी बाहर की ओर चला गया।

डाक्टर ने प्रिसक्रिप्शन लिखा और उसे अपने कंपाउंडर के हवाले किया। उसके बाद वह रोगी के कमरे में आये।

अधिक नहीं, कोई पंद्रह-बीस मिनट के बाद दारोगा अपनी खाकी-बर्दी में आ पहुँचा। डाक्टर ने रोगी के संबंध में अपनी राय पेश की। दारोगा ने सारी बातें सुनीं और रोगी को भी देखा। उसके बाद वह बोल उठा-बहुत दिनों पर हाथ लगा है डाक्टर ! मैं इस बार फँसे बिना छोड़ूँगा नहीं ! और यह तो कुछ झूठा भी न होगा....

दारोगा ने अपनी डायरी निकाली और रोगी ने अपना इजहार देना शुरू किया। सारा इजहार दर्ज हो जाने के बाद रोगी से दस्तखत कराया फिर

डाक्टर ने साक्षी के रूप में अपना दस्तखत बनाया। इसके बाद डाक्टर अलग कागज पर उस रोगी की रिपोर्ट लिखी और उसे दारोगा की ओर बढ़ाया। दारोगा ने वह रिपोर्ट और अपनी डायरी संभाली और वह चलता बना। इधर डाक्टर रोगी के उपचार में लगे।

इनडोर पेसेंट के रूप में रोगी को रखकर जितनी सुविधाएं दी जानी संभव थीं, दी गई। खुद डाक्टर ने उसके लिए अच्छी-से-अच्छी दवा तजबीज कर उसे पिलाई, खुद वह रोगी को दिलाशा देते रहे। रंगा उसकी तीमारदारी और देख-रेख में लगा रहा।

माँगन के साथ रंगा को कभी बातचीत करने का मौका न मिला था, फिर भी माँगन को उसके बारे में कुछ उलटा-सीधा ज्ञान जरूर था-वह जानता था कि, रंगा बड़ा शरीर लड़का है, अपने साथियों को बड़ा दिक करता, मारता-पीटता है। लड़के डर के मारे उससे दबे और दोस्त बने रहते हैं! उसने मछुओं का जाल काटा है, मछलियाँ बहा दी हैं और कुछ मछलियाँ इधर-उधर भी बाँटी हैं-इन सबका उसे उन मछुओं से ही पता लगा है। पर, इन कुछ दिनों में उसके संसर्ग में आकर उसने यह भी जान लिया कि रंगा शरीर ही नहीं है। वह नेक भी है, उसने नंदा की जान बचाने के लिए अपनी तरफ से कुछ उठा नहीं रखा है और अब वह प्रत्यक्ष देख रहा है कि वही रंगा उसकी तीमारदारी में रात-की-रात और दिन-के-दिन उसके पास पड़ा रहता है। उसे यह भी मालूम नहीं होता कि कब वह सोता है, कब वह खाता है और कब वह और दूसरा काम करता है! ऐसे रंगा को पाकर, उसके प्रति जैसी उसकी धारणा पहले बंधी हुई थी, वह छिन्न-भिन्न हो गई। उसके प्रति स्नेह का भाव जग गया और अब तो वह घंटों उसके साथ बातें करता रह जाता है।

और एक दिन इन्हीं बातों के सिलसिले में माँगन ने उससे कहा-तुम तो मलयपुर जानते होगे रंगा, कभी तुम वहाँ गये भी हो?

-गया तो नहीं हूँ, भैया। क्यों मलयपुर मुझे जाना होगा?

-हाँ, जाना चाहिए रंगा। मैं देख रहा हूँ, अकेला तुम्हें मेरी सेवा में रहते-रहते, बहुत तकलीफ उठानी पड़ती है। वह तो यहाँ से ज्यादा दूर भी नहीं है। कोस भर ही तो होगा यहाँ से! अच्छा हो कि तुम एक बार वहाँ

जाओ और अपनी भाभी को वहाँ से लिवा लाओ। उसके आने पर तुम्हारा बोझ हल्का हो जायगा। वह तो शायद मेरे बारे में जान भी गई होगी। जाने उसपर कैसी बीतती होगी! जाओगे रंगा? -

रंगा अपनी भाभी के नाम से उल्लिखित हो उठा। उसे लगा कि भाभी का यहाँ आ जाना अच्छा ही होगा। पत्नी अपने पति की जैसी सेवा कर सकती है, वैसी किसी दूसरे से होना संभव नहीं। इसलिए विना अधिक सोचे-समझे ही वह बोल उठा-जाऊँगा क्यों नहीं भैया! तुम भेजो और मैं न जाऊँ?

-तो आज ही पिछली पहर को तुम जाओ वहाँ और उसे लिवा लाओ।

-अच्छा, वही करूँगा भैया!

-हाँ, एक बार उसे लिवा लाओ रंगा! कुछ दिन यहाँ वह रहे। अगर उसकी तबीयत यहाँ लग गई, तो अच्छा ही; नहीं तो वह घर जाकर माँ की देखभाल करेगी और टहला यहाँ चला आयगा। क्यों ठीक है न? -हाँ, ठीक सोचा है, भैया! मैं आज ही चल दूँगा।

और ठीक उसी दिन पिछली पहर को वह मलयपुर की ओर रवाना हो गया। रंगा को अपनी भाभी के घर का पता लगाने में विशेष कुछ दिक्कत न उठानी पड़ी। पूछताछ करते हुए वह उसके घर पर जा पहुँचा; पर वह दरवाजे पर रुका नहीं, आँगन को ओर चल पड़ा, देखा कि उसकी भाभी घास की गड़ासे से कुट्टी काट रही है।

रंगा क्षण भर ठिठककर खड़ा रह गया, फिर हँसकर बोल उठा-भाभी! और भाभी ने उधर गरदन उठाकर देखते ही आश्चर्य से कहा-ओह, तुम! तुम रंगलाल? और बोलते हुए ही उसने झट से आँचल की खूँट को सिर पर थोड़ा खींच लिया।

लाली उठी और बरामदे पर कंबल बिछाकर बोली-आओ, बैठो! कहो, खैरियत तो है?

-खैरियत! हाँ, खैरियत है, भाभी!

-मगर तुम आज कैसे भूल पड़े रंगलाल! -लाली मुसकरा उठी, फिर बोली-तुम तो यहाँ कभी आये नहीं थे।

भूलकर नहीं आया हूँ भाभी-रंगा ने गंभीर भाव से कहा-जान  
बूझकर ही आया हूँ और पहले-पहल आया हूँ।

-गाँव से आ रहे हो?

-नहीं।

-तो

रंगा जरा रुका, लगा, जैसे उसकी भाभी अपने घर का हाल शायद  
कुछ भी जानती नहीं है ! मगर वह अपने घर का समाचार-और वह दुखद  
समाचार-उसे सुनाये कैसे ? पर नहीं-वह सोचने लगा-वह तो यही सुनाने को  
आया है वहाँ, उसे सुनाना ही नहीं पड़ेगा, अपनी भाभी को लिवा ले चलना  
भी होगा वहाँ ! मगर नहीं, झटपट रंगा सब-कुछ सुना न सकेगा उसे-अपनी  
भाभी को । वह सिर झुकाये कुछ क्षण पड़ा रहा । फिर हिम्मत बाँधी और  
उसने एक-एककर सारी बातें अपनी भाभी को सुनाकर अन्त में कहा-इसलिए  
भैया ने तुम्हें लिवाने को भेजा है । क्या तुम्हें यह सब समाचार सचमुच नहीं  
मिल सका था, भाभी ?

लाली अपने आपमें काँप उठी । वह अब तक खड़ी-खड़ी बातें सुन  
रही थी; पर उससे अब खड़ा न रहा गया । वह बैठ गई । उसे लगा कि जैसे  
उसकी आँखों के सामने अंधकार धना हो उठा हो । पर उसने अपने को तुरंत  
संभाला और वह बोल उठी-जानते हो, रंगलाल, अगर मुझे यह सब समाचार  
मिला होता, तो मैं यहीं बैठी रह जाती !

-हाँ, यहीं तो मैं भी सोचता था, भाभी !

रंगा कुछ देर तक चुप रहा, लाली भी चुप रही । वातावरण कुछ क्षण  
के लिए कठोर हो उठा । उसके बाद रंगा ने निस्तब्धता भंग कर पूछा तो क्या  
कहती हो भाभी ! चलोगी न ?

चलूँगी ? हाँ, पर चलूँगी कैसे रंगलाल ! मैं यहाँ आजाद तो हूँ नहीं,  
मैं यहाँ की सलाह लिये बिना जा कैसे सकती हूँ !

-तो किससे सलाह करनी चाहिए भाभी-रंगा ने पूछा-कहो तो मैं भी  
उसीसे मिलूँ ?

-हाँ, तुम्हें कहना पड़ेगा, रंगलाल ! मैं माँ को बुला लाती हूँ ।

लाली उठकर बगल के घर की ओर बढ़ी। रंगा चुपचाप बैठा रहा। वह कुछ ही देर में लौट आई। रंगा ने देखा कि उसके साथ उसकी माँ और कई दूसरी स्त्रियाँ आ रही हैं।

रंगा सकुचाए पड़ा था। उन स्त्रियों को देखकर वह और भी लजा उठा; वह मँह से कुछ बोल न सका।

पूछा। -कहाँ से आ रहे हो, बेटा? एक प्रौढ़ा स्त्री ने पूछा।

-भाभी ने कुछ नहीं कहा है? .....खैर, मैं ठहला का दोस्त हूँ। माँगन भैया अस्पताल में बीमार पड़े हैं और भैया की माँ भी घर पर बीमार हैं। अस्पताल में देखभाल के लिए आदमी की जरूरत है। मैं भाभी को लिवाने आया हूँ। मैं रुकूँगा नहीं। वह अकेले हैं। अभी तुरत मेरे साथ भाभी को रुखसत कर दीजिए।

-पाँव रकाब में डाले कहीं बेटी की रुखसत्ती होती है, बेटा? -लाली की अम्मा बोल उठी रहो रात भर, मालिक खेत से आयेंगे, उनकी सलाह होगी तो वह खुद रख आवेंगे ....ऐसे कैसे होगा, बेटा!

रंगा मुस्कराया। वह शायद कुछ कठोर बातें कहने जा रहा था; पर वह नम्र हो पड़ा--वह अपनी भाभी की माँ से कठोर बात कैसे बोले! आखिर, वह बोल उठा-रकाब पर पाँव दिये ही मैं लिवाने आया हूँ, अम्मा! ऐसे अवसर पर तो जरा भी सलाह की जरूरत नहीं है।

-जरूरत न हो, मानती हूँ; मगर भेजना संभव नहीं है।

इसबार रंगा के मुंह की लालिमा घनी हो उठी और तीखे स्वर में बोल उठा-जरूरत तो यह कहती है कि बीमार को देखने के लिए आपके घर-भर को दौड़ लगानी चाहिए थी! मगर मैं जानता हूँ कि आपलोग ऐसा नहीं कर सकते। फिर भी आपको अपनी बेटी को रोक रखना मुनासिब नहीं। बीमार की हालत में अस्पताल में अपना दिन काट रहा है, उसी की ओरत ठहरी आप की बेटी। और उसको जरूरत पड़ गई है कि वह अपनी ओरत को बुलाये! मुझे उन्होंने भेजा है। जैसा हो, मुझे तुरत कहिए। मुझे ज्यादा ठहरने का वक्त नहीं है।

भाभी ने रंगा की सारी बातें सुनीं; पर वह रुक न सकी वहाँ। वह टलकर घर की ओर चली गई।

बात की बात में बहुत सी औरतें, लड़कियाँ और बच्चे वहाँ इकट्ठे हो गये। किसीने रंगा की ओर ताका, किसीने उसकी बातें सुनीं और किसीने कुछ अनुमान लगाया और किसी ने उसके प्रति हमदर्दी भी जाहिर की! रंगा चुपचाप पड़ा रहा। औरतों में किसी का विचार हुआ कि लाली को अभी तुरत चल देना चाहिए और किसी का विचार हुआ कि नहीं, लड़की इस तरह बिदा नहीं की जा सकती! जो बात जिस तरीके से चलती आ रही है, उसी तरीके से चलनी चाहिए, तभी शोभा है। इसी तरह बातें होती रहीं कोई निश्चय न हो सका।

मगर तैयार होकर आ गई लाली अपने घर से और आते ही बोली-मां, मुझे तो कोई यहाँ लिवा लाया नहीं था, मैं दुख के मारे खुद यहाँ आ गई थी। पर देखती हूँ कि उससे भी घना दुख मेरे सामने है। मैं एक क्षण भी रुकना नहीं चाहती-सलाह दो चाहे न दो, मैं तैयार होकर आ गई हूँ। फिर रंगा की ओर देखकर बोली-चलो, रंगलाल!

लाली की निर्भीकता और छटपटाहट देखकर सभी सन्न रह गए। कोई आँखों में हँसी, किसीने कनखियाँ चलाई और कोई कूढ़कर रह गई ! पर लाली चुप न रह सकी, बोली-रंगलाल चलो, हमलोग चलें। देर करोगे तो पहुँचने में अँधेरा हो जायगा।

लाली की माँ अबतक चुप थी; पर लाली की बात सुनकर सन्न रह गई। वह बड़ी नाराज होकर उठी, बोली-क्या मेरी नाक कटाना चाहती हो, बेटी! लोग क्या कहेगा कि बेटी को खाली हाथ भेज दिया, किसी पराये के साथ। कोई भाई-बंद पहुँचाने भी नहीं जा सका। क्या यह लाज की बात नहीं है, लाली!

-नहीं, हर्गिज नहीं ! लोग कुछ कहेगा-इसी डर के मारे जो उचित काम हो, वह भी नहीं किया जाय ! यह कैसी बात है माँ! चाहे जो भी कहे. मझे जाना ही चाहिए.....आखिर.....उठो रंगलाल, सोचते क्या हो ?

रंगा उठा, लाली आगे बढ़ी, रंगा पीछे-पीछे चल पड़ा। सभी टकटकी लगाये उन दोनों की ओर देखते रह गये! किसीने कहा-कलजुग है!

और दूसरी बोली-आजकल की लड़कियाँ ऐसी बेहया ही हुआ करती हैं ! और माँ गरजकर बोली-सुने जा लाली, जितनी तुनककर आज जा रही हो, वैसी अपनी शान बनाये रखना! याद रखना, अब जब-कभी इस तरह आई, झाड़ू से तुम्हें निकाल बाहर करूंगी। मैं यह बेहयापन पसंद नहीं कर सकती!

मगर रंगा और लाली चल पड़े थे! लाली ने सारी कटु बातें सह लीं; मगर अपनी जुबान से वह एक शब्द भी न बोल सकी !

कुछ देर के बाद दोनों गाँव से बाहर निकल आये। लाली ने देखा कि सूर्य पश्चिम दिशा में ढूबना ही चाहता है। और रंगा ने देखा कि भाभी के मैंह पर उस ढूबते हुए सूर्य की लालिमा पड़कर और भी उसे सुन्दर बना रही है। शायद ऐसा भला चेहरा रंगा ने इसके पहले न देखा था। अचानक उसने कहा - भाभी !

-क्या है रंगलाल ! - लाली ने उसकी ओर निहारा। -हाँ, भाभी, तुमने टहला से क्या कहा था, मुझे आने को? याद है तुम्हें ?

-हाँ, याद है, कहा था तो ! क्यों ? - लाली ने फिर से उसकी ओर ताका।

-यों ही !

-हाँ, कहा था रंगलाल ! -लालीने कहा-तुम्हारे आसरे में पड़ी रही, जब मुझे मौका मिल चुका था; मगर तुम आये कहाँ ? कहाँ.....क्या याद है न उस दिन चलने की बात जो पक्की हुई थी.....

-हाँ, याद है भाभी ! - रंगाने उदास होकर कहा।

-तो फिर ?

-फिर क्या ? मौका का इन्तजार करना पड़ेगा, भाभी ! मगर अभी नहीं, जब भैया अच्छे हो जायँ। दोनों बातचीत में इतने उलझ पड़े कि कब अस्पताल के सामने वे दोनों आ पहुँचे-किसी को पता तक न चला। और कुछ क्षणके बाद, लाली ने रोगी के कमरे में प्रवेश किया।

### (बीस)

लाली के आ जाने से रंगा का भार कुछ हलका हुआ जरूर; मगर लाली ने जब अपने पति को इतने बुरे हाल में देखा, तब रंगा को लगा कि जैसे लाली विक्षिप्त होकर, रोते-रोते, अपनी जान दे डालेगी। रंगा एक को ही (रोगी को) सँभालने में परेशान था। अब तो उसे उन दोनों को सँभालने की नौबत आई ! यह सोचकर वह भीतर से घबरा उठा। उसे लगा कि लाली को लिवा लाना बुरा हुआ। व्यर्थ ही उसे, महज माँगन को खुश करने के लिए ही, इतना महंगा सौदा खरीदना पड़ा! उसने सोचा था कि लाली के आ जाने पर वह स्वतंत्र हो जायगा और उस हालत में वह गाँव जा सकेगा। पता नहीं, इस बीच में तहसीलदार ने जाने कौन-सा रुख अख्यार किया हो, जब वह डाक्टर से भी चोट खा चुका है, जब वह समझ गया है कि मांगन को संभालने वाला एक खड़ा हो गया और उसे डाक्टर ने अपने अस्पताल में दाखिल कर जगह दे दी! पर रंगा जा न सका और न उसे कोई ऐसी तदबीर ही सूझ पड़ी कि वह अपनी भाभी को समझा-बुझाकर, उसकी रुलाई बंद करे, उसके मन का भार हलका कर सके!

और सच तो यह कि वह लाली को बड़ी बहादुर समझ रहा था। पर अब उसने पाया कि वह तो संपूर्ण रूप में नारी है-केवल आँसू बहाने वाली अबला मात्र, तब उसका सारा अहंकार वहीं चूर्ण-विचूर्ण होकर ढह गया। लाली के प्रति उसके हृदय में जो श्रद्धा घर गई थी, वह दूर हो गई ! वह अपने-आपमें झुंझला उठा। उसने उसे धैर्य बंधाना, या उसे दिलासा देना भी छोड़ दिया और उसी झुंझलाहट में आकर उसने बिलकुल चुप्पी साध ली। मगर रोगी की देखभाल जैसा वह पहले करता आ रहा था, वैसा करता रहा। उसने लाली के प्रति सारा रोष भीतर-भीतर पीकर अपने को बाहर से इस रूप में ला रखा कि माँगन भी कुछ अनुमान न कर सका कि रंगा रुठा हुआ है।

मगर, भगवान को धन्यवाद ! रोगी को जो-कुछ खतरा था, वह जाता रहा। वह डाक्टर की सदिच्छा और लगन से आराम होता चला। रंगा ने उसकी हालत दिन-दिन सुधरती देखी, तो वह अपने मनमें बढ़ा खुश हुआ।

उसे हुआ कि अब वह उसे छोड़कर गाँव पर भी जा सकता है !

उस दिन रंगा इन्हीं बातों को सोचते हुए अस्पताल के बरामदे पर अपना अंगोष्ठा बिछाकर सो गया था । अब उसे रोगी के निकट रात को रहना नहीं पड़ता, लाली ही रहती है । सच तो यह कि वह भी तो सो ही रहती है । उठकर रोगी की देखभाल करने की उसे भी अब कोई जरूरत नहीं पड़ती । रोगी अब अपनी स्वाभाविक नींद में आप-से-आप सो जाने लगा है । उन दिनों इनडोर पेसेंट के रूप में, उस छोटे-से अस्पताल में, रोगियों को रहने के लिए सिर्फ एक हॉल था और साथ में पाँच अलग-अलग कमरे थे । उनमें जो भी रोगी थे, वे आराम होकर अपने-अपने घर चले गये थे । रह गया था केवल माँगन । अब तो वह भी आराम हो चला था ! इस तरह वह स्थान बिलकुल निरापद-बिलकुल जन-शून्य-सा दीख रहा था ।

और उसी रात को जब रंगा भरपूर नींद में सोया पड़ा था, लाली अपने कमरे से उठी । उसने अपने पति के बिछावन के पास जाकर पाया कि उसका पति गहरी नींद में सोया हुआ है । उसने लालटेन की बत्ती धीमी कर दी । वह धीरे-धीरे बाहर निकली । पर, उसे कुछ सूझा न पड़ा । रात अंधेरी थी, हाथ को हाथ नहीं सूझता था । बादलों से आकाश धिरा था, इसलिए फिर भी वह अनुमान करके आगे बढ़ती चली; पर कुछ आगे बढ़ते ही उसे पता चला कि अनजान में, शायद अपनी घबराहट में, उसके पैर से सोने वाले को ठोकर लगी और वह सोनेवाला हड्डबड़ाकर बोल उठा-कौन ?

-चुप, रंगलाल, मैं हूँ । - लाली तुरत झुककर उसके कान में बोली । और रंगा ने आवाज पहचानकर समझा कि आगंतुक और कोई नहीं, उसकी भाभी है, जिससे वह इन दिनों रुठा हुआ है ! और अपने रुठेपन की बात याद रात ही, वह रुखाई से बोल उठा-हाँ.....मगर, रात को?

-क्यों, रात को तुम्हारे पास आना गुनाह है देवरजी ?- फिर कुछ रुककर बोली-चौंकते क्यों हो ? मैं तुम्हें उठा न भागूँगी ! उस दिन तो मैं ही उठकर आई थी, जब तुम अपने दोस्त को चुराने मेरे घर आये थे ! ख्याल है ? -लाली रंगा के पास बैठ गई, और बैठते हुए फिर हँसकर बोल उठी--और

आजकल तो मैं तुम्हारा मन ही नहीं पाती, जाने क्यों मुझसे रुठे हुए हो? क्यों रुठे हो रंगलाल?

मगर रंगा तो चुप्पी साधे पड़ा है, वह बोते क्यों! लाली प्रत्याशा में पड़ी रही अवश्य, पर फल कुछ न मिला।

लाली जाने क्या कुछ सोचकर क्षण भर चुप रही, फिर बोल उठी-जानती हूँ, तुम चुप्पी साधे क्यों बैठे हो? मुझसे तुम कुछ बोलोगे, तो तुम्हारी जात चली जायगी। मगर तुम्हें बोलना ही पड़ेगा रंगलाल! मैं जानना चाहती हूँ कि तुम रुठे क्यों हो? क्या रुठे नहीं हो तुम?

-हाँ, रुठा हूँ! - रंगा अकड़कर बोल उठा।

-सो तो मैं भी जानती हूँ कि तुम रुठे हो; मगर यह तो नहीं जानती कि क्यों रुठे हो? आखिर मुझसे क्या गलती हो गई, कहाँ गलती हो गई—मुझे नहीं मालूम। पर जब तुमने पाया कि मैं गलती कर बैठी हूँ, तब उचित तो यह था कि तुम मेरी गलती ठीक-ठीक बतला देते! सो तो तुमने कुछ किया नहीं, उलटे मुँह फुला बैठे! आज मैं फैसला करना चाहती हूँ, जब तुम मुझे भाभी कहकर पुकारते हो, मुझे अपनी भाभी मानते हो, तब मेरा भी तो तुमपर अधिकार हो जाता है और आज तुमसे मैं उसी अधिकार के बल पर पूछने कुछ आई है कि तुम क्यों रुठे हो? सच-सच बतलायो, रंगलाल!

देखूँ, मेरी गलती कहाँ है?

मगर रंगा फिर भी ज्यों-का-त्यों पड़ा रह गया, कुछ बोला नहीं।

इसबार लाली सचमुच बड़ी दुखी हुई! उसे ऐसी आशा नहीं थी कि बह खुद रंगा के पास जाकर भी उसे खुश न कर सकेगी। फिर भी वह निशाश न हुई, बोली-तो क्या तुमने कसम ही खा ली है कि एक लफज न बोलोगे क्या तुम्हें मुझसे इतनी नफरत हो गई कि मुझसे तुम कुछ बोलोगे, तो तुम छोटे हो जाओगे? खैर, यही सही, इतना भी कह दो, तो फिर मैं तुम्हें तंग न करूँगी!

क्या मंजूर है? कह दो, जो जी मैं आय!

इसबार रंगा अपने को रोके न रख सका! लाली का स्वर अपने आप में इतना करुण हो उठा कि रंगा का अभिमान क्षण भर में चूर हो गया और वह बोल उठा-मैं रुठा जरूर था और इसलिए रुठा था कि तुम रोते-रोते जान देने को तैयार हो बैठी थीं! मैंने अपनी शक्ति भर तुम्हें मनाना चाहा; पर

तुमने न माना । मैंने हार खाई और हार खाकर मैंने जाना कि मेरी जो भाभी होगी, वह ऐसी रो-रोकर जान देने वाली नहीं हो सकती ! मैंने तुम्हें उस दिन देखा था, जब तुम टहला को रोककर खुद मेरे साथ चलने को तैयार हो पड़ी थीं ! और इसके बाद मुझे यह जानकर कुछ कम अभिमान न हुआ था, जब मैंने सुना कि तुमने उस पाजी तहसीलदार को अपने घर में, खाट से बाँध रखा था! जो औरत इतनी बहादुर हो, वह सिर्फ अपने पति को बीमार देखकर रोते-रोते अपने को बुला डाते.....

रंगा की बातें पूरी भी न हो पाई थीं कि लाली खिलखिलाकर हँस पड़ी और रंगा का हाथ अपने हाथ में लेकर बोल उठी-गलती कर गये रंगलाल, गलती कर गये ! अब समझी कि तुमने मुझसे अभिमान किया था और सिर्फ इसलिए कि मैं रोती रही !.....लाली फिर से हँस पड़ी ! कुछ क्षण के लिए वातावरण सजीव हो उठा, और उसी सजीवता को लेकर वह फिर से बोल उठी-तुम गलती कर रहे हो, रंगलाल ! यह तो तुम्हें मानना ही पड़ेगा कि

औरत चाहे जैसी बहादुर क्यों न हो य पर वह हर हालत में औरत ही रहेगी ! और मैं औरत होकर, अगर अधीर हो उठी थी, और अपने को सँभाल न सकी, तो यह कुछ अचर्ज की बात नहीं । मौत के पास पहुँचकर कौन नहीं घबराता, रंगलाल ? और मैं तो औरत ही ठहरी, वह भी ऐसी कि जिसने दुनिया को देखा-भाला नहीं, जिसने सुख को नहीं जाना, गरीबी में पली, गरीबी में बढ़ी, क्या उसे आँसू बहाने का भी अधिकार नहीं दोगे, रंगलाल ? क्या कहते हो, वह इतने का भी अधिकारी नहीं हो सकती ?

-मगर जहाँ तुम्हें प्रतिहिंसा होनी चाहिए थी-रंगा अपने आप में बोल उठा-रोष होना चाहिए था; वहाँ मैं तुम्हें रोते-कलपते देखूँ -- यह असंभव था मेरे लिए । और जब मैंने ठीक यही पाया, तब मैं अपने को रोक न सका । तुमसे रुष्ट हुआ, तुम्हारे प्रति मेरे मन में वितृष्णा उत्पन्न हुई, समझा-ऐसी आँसू-बहानेवाली लड़की मेरे काम में नहीं आ सकती । मैं उसे अपनी आँखों देखना भी गवारा नहीं कर सकता.....

रंगा का एक-एक शब्द लाली ने सुना और कान खोलकर सुना। उसकी आकृति उत्तर आई। वह कुछ देर तक गम्भीर बनी रहकर, जाने क्या-क्या सोचती रही। फिर कुछ क्षण के बाद ही वह बोली-तो तुम मुझे किस रूप में देखना चाहते हो, रंगलाल ! जरा सुनूँ, तुम मुझे कैसा देखना चाहते हो....

रंगा क्षणभर सोचता रहा। फिर वह लाली की ओर आँख गड़ाकर देखता रहा। उसके बाद बोल उठा-मैं कैसा तुम्हें देखना चाहता हूँ? सच कहूँ, भाभी!

--हाँ, सच-सच ही कहो। लाली की आवाज गंभीर थी।

रंगा कुछ देर तक चुप रहा, उसके बाद बोल उठा-तुम देखना चाहते हो, भाभी, उस नारी की? अच्छी बात है। मैं चाहता हूँ कि वह परी न हो, तितली न हो, अबला न हो, उसकी आँखों में छलकती हुई मादकता न हो, उसमें जहर हो। वह इतनी सुकमार न हो कि आप सौ-सौ बल खाए, बल्कि वह इतनी मजबूत-इतनी ताकतवर-हो कि वक्त पड़ने पर शेर से टक्कर ले सके ! वह इतनी दयामयी न हो कि पकड़े गये शत्रु भी वह शत्रुता करने को छोड़ बैठे ! वह इतनी भावुक न हो कि दुनिया को वह कृपा पात्र समझ बैठे! वह सोले पर चलने वाली हो, वह पानी में आग लगाने वाली हो ! वह दुष्टों को दंड देने की दिल में हौसला रखने वाली हो! वह वितासिता को ही आनन्द न समझ बैठे, वह कर्मठ हो, कठोर हो, अंडे सेनेवाली मुर्गी न हो, उसकी वाणी में हूँकार हो, वह रणचंडी दुर्गा हो - .शक्ति हो.....

रंगा का स्वर काफी उत्तेजित हो उठा था और उसी उत्तेजना में आकर अपनो भाभी के सामने अपनो नारी-मूर्ति का चित्र वह खींच गया। लाली ने उस चित्र को संपूर्ण रूप में देखने का प्रयास किया; पर वह रूप पूरा-पूरा उसके दिमाग पर उत्तर न सका। कुछ तो इसलिए कि वह पूरा-पूरा समझने में असमर्थ रही, और कुछ इसलिए कि वह चित्र अतिरिंजित रूप में उसके सामने आया। लाली कुछ क्षण के बाद खिलखिलाकर हंस पड़ी !

मगर रंगा को उसकी हँसी पसंद न आई। वह चिढ़ा और चिढ़कर बोल उठा-मेरी बात पर हँसी आ गई तुम्हें ? समझता हूँ, तुम्हारी हँसी....मैं पागल नहीं हूँ-सनकी नहीं हूँ कि कोई मेरी बात पर दाँत दिखा दे! मैं तो

वैसी नारी चाहता हूँ, चाहे वह दूसरों को पसंद न आये-और पसंद ही क्यों वह आये-जब आज की स्त्रियाँ कलहकारिणी और ईर्ष्यालु हुआ करती हैं ! और उनमें लाली अपवाद नहीं हो सकती ।

लाली ने आज पहले-पहल रंगा के मँह से सुना कि वह अपने नाम से अभी-अभी पुकारी गई है । रंगा ने बराबर उसे भाभी ही कहा है और भाभी शब्द से उसने रंगा से प्रति जो अपनापन पाया था, वह इस समय एक जबरदस्त धक्का पाकर मूर्छित हो पड़ा ! उसने रंगा में पाया कि वह हमेशा ‘अति’ पर पहुँचकर ही बातें करता है और अति पर पहुँचकर ही वह चलना भी चाहता है; पर क्या यह ‘अति’ सदैव एक-रस रह सकता है ? क्या वह ‘अति’ को साथ लेकर सब समय अपने को चला सकता है ?..अभी-अभी उसने जो नारी-चित्र सामने रखा है, क्या वह नारी हो सकती है ? क्या वह ‘अति’ बीमारी नहीं कहला सकती ? नारी हर हालत में नारी ही रहेगी-पीछे चाहे वह और-कुछ हो-और-कुछ उसका रहना जरूरी नहीं-जरूरी है उसे नारी बनकर रहना ही!.....पर, दुख तो यह है कि रंगा कि नारी वैसी नारी नहीं है, ... और इसीलिए तो लाली को हँसी आ गई थी, वह अपने को रोक न सकी, हँस पड़ी थी । क्या उसका हँसना स्वाभाविक नहीं था ? क्या वह हँसी थी इसलिए कि वह रंगा का अपमान करे-उस रंगा का जिसे वह देवर कहती है --जो उसके पति को मृत्यु के मुख से बचा सकता है ?....और क्या उसने भाभी को लाली कहकर लज्जित और अपमानित नहीं किया ? क्या अधिकार था रंगा को उसे अपमानित करने का ?

और लाली यहीं आकर रुकी । वह सब-कुछ बरदाश्त कर सकती है; पर अपमान को वह सह नहीं सकती-और यहीं तो उसकी कमजोरी है और शायद यहीं तो उसका नारीत्व है !

और वह बोल उठी-मेरी हँसी में तुमने मेरा जो रूप देखा, रंगलाल, शायद वह तुम्हारे लिए घृणा की ही पात्र थी ! अच्छा ही किया तुमने, वैसी लाली निरादर की ही पात्र हो सकती है ! तुम पुरुष हो और मैं नारी हूँ तुम्हारा बढ़कर बोलना अधिकार है, और मेरा पीछे हटकर अनुताप करना उचित ! .....,मुझपर तुम्हारा एहसान है ।

तुमने इनकी सेवा को है; इनके लिए कष्ट सहा है। मैं इस भार से दबी हूँ, तुम्हारे आगे गरदन नहीं उठा सकती.....तुम चाहे जो भी अभी कह जाते; मैं सिर झुकाकर उसे सुन लेती.....मगर नारी कलहकारिणी ही नहीं होती, इर्ष्यालु ही नहीं होती, इसके परे भी वह और कुछ भी होती है-पापिनी भी हो सकती है, दुराचारिणी भो हो सकती है, पतिघातिनी भी हो सकती है-यहाँ तक कि मानव-समाज की शत्रु तक हो सकती है.....मगर वह तुम्हारी कल्पना की नारी नहीं-दुनिया की ही नारी हो सकती है। और दुनिया की नारी ही हो सकती है, जो एक हाथ से अमृत लुटा सकती है, तो दूसरे हाथ से ग्रिष भी बाँट सकती है। उसकी आँखों में मदिरा भी हो सकती है, तो उनसे चिनगारियाँ भी निकल सकती हैं! हाँ, वह दयामयी हो सकती है, भावुक भी हो सकती है, वह रसवती भी हो सकती है। वह शत्रुओं को दंड न देकर क्षमा-दान भी कर सकती है। क्योंकि वह नारी है-याद रखना चाहिए-नारी रचना चाहती है, संहार नहीं। संहार से उसे स्वाभाविक धृणा है; पर समय पड़ने पर वह वैसा भी कर सकती है। फिर भी सब दशा में वह नारी रहकर ही वैसा करेगी पुरुष के रूप में नहीं। क्योंकि वह पुरुष नहीं-उसमें पौरुष नहीं। क्योंकि लाली उसे समझाने आयी थी, अपने रुठे को मनाने आई थी; पर यहाँ तो बात ही कुछ ऐसी छिड़ी कि उसके लिए अब क्षणभर ठहरना ही असंभव हो उठा। वह विना कुछ और रंगा से कहे-सुने बाहर की ओर निकल भागी; पर भागने के समय भी वह इतना जरूर बोल गई-बुरा न मानना रंगलाल, मैंने तुम्हारे सोने में खलल डाला। शायद तुम और कुछ सोच न लो-मेरी कोई दूसरी नीयत न थी!

लाली चली गई। रंगा चंचल हो उठा। वह जिस पथ की ओर बढ़ी, रंगा उधर टकटकी बाँधे देखता रहा; मगर जब उसकी छाया तक उसे दीख न पड़ी, तब उसने एक सर्द आह भरी और अपनी आँखें दूसरी ओर फेर ली। वह गम्भीर चिन्ता में फँस पड़ा।

रंगा को कभी ऐसी आशा न थी कि उसकी भाभो उससे इतनी रंज हो उठेगी। मगर जब वह आवेश में चली गई, तब रंगा को बड़ा दुख हुआ। वह चिन्तित हो उठा। वह विछावन से उठा और बरामदे पर बड़ी देर तक

टहलता रहा । उसके बाद उसने अपने आपको ही समझने की चेष्टा की और एकबार अपनी भाभी को फिर से पाना चाहा ।

मगर वह अब भी सोच रहा था कि उसकी भाभी ऐसी नहीं हो सकती । अभी जो नारी वहाँ बठी थी, वह मात्र उस भाभी से विवेक में बहुत ऊँची है बहुत-बहुत ऊँची है । और वही उसकी सच्ची भाभी हो सकती है-दूसरी नहीं ।

#### (इककीस)

उसदिन बात-की-बात में रात ज्यादा निकल गई; पर लाली को कुछ पता न चला । जब वह लौटकर धीरे-धीरे अपने पति के कमरे में घुसी और बत्ती को तेज किया, तब उसने पाया कि उसका पति गहरी नींद में अचेत सोया हुआ है । पर उसी समय कहीं दूर से मुर्गे की बाँग सुनकर उसे पता चला कि रात तो निकल गई है, अब भोर हुआ ही चाहता है । वह कुछ क्षण छत की ओर टकटकी बाँधे पड़ी रही । जाने उसका कौन-सा घाव उभर आया था! वह उसे भरने का प्रयास करके भी अपने में वह शक्ति नहीं पा रही थी, जिससे वह उस घाव को भर सके । वह कुछ देर तक उसी रूप में पड़ी रही । उसके बाद वह प्रातः कृत्य के लिए बाहर की ओर चल पड़ी ।

समय पर माँगन उठा । आज वह अपने में काफी चेतना पा रहा था । आज उसने देखा कि वह पूर्ण स्वस्थ है । उसे लगा कि अब उसे यहाँ रहने की जरूरत नहीं रह गई है ।

इतने में लाली भीतर आई और रात ही बोल उठी-मैं घर जाना चाहती हूँ । अगर तुम कहो तो मैं वहाँ चली जाऊँ । माँजी का भी तो कुछ पता नहीं लगा । रामटहल वहाँ पड़ा रह गया । उससे इतना भी न बन पड़ा कि जरा खबर ही तो भिजवा दें! किस अकिल पर वह दुनिया काट सकेगा? क्या कहते हो?

-जाओगी ?-माँगन उसकी ओर मुखातिब हुआ अच्छा है, एक बार हो आना ठीक है ! मैं भी चाहता हूँ कि घर चला जाऊँ, अगर मुझे डाक्टर चले जाने की इजाजत दे दे !

-तुम घर जाओगे? अभी?-लाली विस्मित होकर बोली-इतने मजबूत नहीं हुए हो कि तुम घर जा सको ! तुम्हें और कुछ दिन यहाँ ठहरना चाहिए। जब खुद डाक्टर साहब कहें जाने को, तभी तुम्हारा जाना ठीक हो सकता है। अभी मुझे अकेली ही जाने दो।

-रंगा को भी साथ ले लो, अकेली कैसे जाओगी?

लाली ने अपने पति की बातें सुनी; पर उसे उसका कहना रुचा नहीं! वह अकेली क्यों नहीं जा सकती है? रंगा का साथ जाना क्या इतना अपेक्षित है? क्या वह इतनी असहाय है कि वह अपने जाने के लिए एक सहायक ढूँढे! नहीं, उसे सहायक न चाहिए। वह अकेली जा सकती है। वह असहाय नहीं है ! .....लाली उत्तेजित हो उठी और उसी उत्तेजना में बोल उठी नहीं, मैं अकेली ही जाऊँगी-कोई मेरे साथ न जायगा ।

और लाली अपने क्षोभ में खुद घर के बाहर निकल पड़ी। मगर लाली अकेली जा न सकी। माँगन अपनी नवयुवती पत्नी को अकेले कैसे जाने दे सकता है? कैसा भी हो, वह उसका पति है, उसका संरक्षक है....और वह उठा, रंगा बाहर में दातौन कर रहा था, माँगन उसके पास आया और बोला-तुम्हारी भाभी अभी घर जा रही है, रंगा, अच्छा हो, तुम भी जाओ उसके साथ। अभी तो वह ज्यादा दूर गई नहीं होगी। मेरे लिए अब चिन्ता की बात नहीं, अकेला मजे में रह सकता हूँ; मगर उसका अकेली जाना ठीक नहीं। जाओ तुम भी।

रंगा ने जल्दी-जल्दी मँह धोया, वह अपनी भाभी को अकेली जाने की बात सुनकर इतना चंचल उठा कि क्षण भर के लिए भी रुकना उसे असह्य-जैसा लगा! उसने कमरे में आकर कुर्ता पहना, अंगोछा काँधे पर डाला और माँगन से बोला-चलता हूँ, भैया, मैं भी जाने को ही सोच रहा था, अभी तुरत झपटकर भाभी का साथ हो सकता हूँ।

और रंगा उसी क्षण बाहर की ओर तेजी से निकल गया ।

रंगा काफी तेजी से निकला। वह कुछ ही क्षण में अस्पताल के निकट के बगीचे को पार कर गया। उसके बाद सीधी सड़क सामने दीख पड़ी और तब उसने देखा कि उसकी भाभी अकेली, उस सड़क पर बढ़ी चली जा

रही है। वह दौड़ पड़ा-दौड़ा-और दौड़ा, और जब उसके निकट पहुँचने-पहुँचने को हुआ, तब वह जोर से पुकार उठा- -भाभी, ओ भाभी, ठहरो, मैं भी आ रहा हूँ।

और लाली जरा रुकी। उसने गरदन धुमाकर देखा कि रंगा बेतहासा दौड़ा आ रहा है। वह रुकी-सी रही। रंगा इतने में उसके पास पहुँच गया। वह जोर-जोर से हाँफ रहा था, फिर भी वह पास रात हो बोल उठा--चलो।

लाली कुछ न बोली। वह चलने लगी, रंगा चलने लगा। दोनों चुप, दोनों अपने-आपमें डूबे हुए। बस, दोनों का चलना-सिर्फ चलना! मगर रंगा हाँफ रहा है और लाली की डगें उखड़ी-उखड़ी-सी पड़ रही हैं। रंगा सोच रहा है कि भाभी रात को उससे रुठकर चल पड़ी थी, और अब भी वह रुठकर ही अकेली घर की ओर बढ़ी। और लाली सोच रही है-रंगा कल रुठा जरूर था; मगर अब वह अपने-आपमें गल रहा है। ओह, बह अब भी कितना हाँफ रहा है! मैं छुपाकर भागी थी, अकेली जाना सोचा था; मगर रंगा को पता लगा और दौड़ पड़ा.....रंगा ?.....दौड़ा क्यों?

...नहीं भी आ सकता था.....मगर नहीं, वह अपनी भाभी को इतनी उल्लंग इतनी असहाय कैसे जाने दे.....

लाली अपने-आपमें पानी-पानी हो गई, उसका जो भी रोष था रंगा के प्रति, वह गल गया और वह बोल उठी-हाँफते हो, रंगलाल! आखिर, दौड़ लगाने की क्या जरूरत थी.....

रंगा सँभला। सोचा था कि वह खुद पहले न बोलेगा; पर उसने जब पाया कि भाभी ही उसके दौड़ने पर सहानुभवि दिखा रही है, तब वह भी उत्तर देने को बोल उठा-सुना, तुम अकेली ही घर को चल पड़ी, मुझे लगा कि तुम मुझसे रुठकर जा रही हो। उसी रोष के मारे मेरा मँह तक देखना तुम्हें रुचा नहीं.... तभी तो तुमने घर जाने को ठानी ! क्या यह सच नहीं है, भाभी!

-सच ? हर्गिज नहीं।

-हर्गिज नहीं, यह मैं कैसे मानूँ भाभो ?

-नहीं मानो, यह तुम्हारी खुशी है; मगर यह सच नहीं ! तुमने मेरा क्या बिगाड़ा है कि मैं तुम्हारा मँह तक देखना पसंद नहीं करती? क्या तुम इतने बदशकल हो, रंगलाल ?

रंगा को इसबार हँसी आ गई, और उसी हँसी में जो कुछ उसके मनमें कल्मश आ गया था, आप-ही-आप वह धुल गया और वह रस लेने को बोल उठा-तो क्या तुम मुझे खूबसूरत समझ रही हो, भाभी ? क्या मैं खूबसूरत हूँ ?

-जो सच है, उसे कोई इन्कार कैसे करेगा? तुम्हें शायद अपना पता न हो, मगर मैं तो पाती हूँ कि तुम खूबसूरत हो।

रंगा को लगा कि जैसे उसके सारे शरीर के रोएँ खड़े हो गये हों लगा जैसे सारे शरीर में बिजली की लहर-सी दौड़ रही हो। लगा कि जैसे उसके रग-रग में हलचल सी मच गई हो ! मगर ऐसा क्यों हो रहा है-रंगा ने न जाना और वह बोल उठा-तुम तो दिल्लगी करतो हो, भाभी ! मैं जो खूबसूरत हूँ, मैं ही जानता हूँ। मुझे भी कोई खूबसूरत ही कहे तो तुम्हें क्या कहेगा...

-मुझे क्या कहेगा ? लंबा बेडौल-जैसा मँह, डायन-जैसी बाहर की ओर निकली आँख, कंकाल-जैसा शरीर का ढाँचा ! खूब ! मैं जो खूबसूरत हूँ ! कौन कहेगा-ऐसा ? खैर, कोई कहे भी, तो समझना चाहिए कि उसकी अकल मारी गई है !

रहने दो-रहने दो भाभी ! इतना न बनो। कोई तुम्हारी खूबसूरती को चटनी-जैसा उंगली में लगाकर चाट न जायगा !

-आखिर चाटने के लायक रहे भी तो।

और दोनों, अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार सौंदर्य की मीमांसा में इतने उलझ पड़े कि उन दोनों में किसी को इस बात का पता तक न चला कि कौन किससे कब रुठा हुआ था ! खैर, ऐसी उलझनदार चर्चा से यह लाभ जरूर हुआ कि रास्ता कैसे तय हो गया- -किसीको इसका पता न चला! दोनों गाँव के समीप आ पहुंचे। मगर रंगा के पाँव जितना आगे को बढ़ रहे थे, लाली के उतने ही पीछे पड़ रहे थे। आखिर, दोनों की चाल में इतना विभेद क्यों? क्या लाली थक गई है?

और रंगा ने मुड़कर पाया कि उसकी भाभी बहुत पीछे पड़ गई है। वह रुका; पर यह रुकना उसे अखर रहा था। लग रहा था कि जैसे उसके उल्लास का खून हो रहा है....लाली पास आ पहुँची; मगर रंगा ने उसकी आकृति में देखा कि वह आप-से-आप मलिन पड़ गई है! और वह कुछ देर पहले उस आकृति को देख चुका है-वह आकृति....रंगा कह नहीं सकता कि कितनी वह आकर्षक है-कितनी मनहरण.....फिर?

-क्या थक गई हो भाभी ! बैठना चाहती हो ? चाहो तो बैठ सकता हूँ। क्या बैठोगी ?

-जहाँ बैठने की जरूरत थी, वहाँ तो बैठे नहीं, रंगलाल ! अब क्या बैठना । पांच मिनट से ज्यादा का रास्ता तो है नहीं! चलो ।

और दोनों चल पड़े ।

दोनों तिमुहानी पर आये। रंगा ने एक को पकड़ा और उसपर बढ़ चला ।

मगर लाली रुकी। रंगा को पुकारकर वह बोल उठी-मुझे उधर नहीं चलना है! तुम चाहो तो उसी रास्ते से जा सकते हो ।

-क्यों, यह तो सीधा रास्ता है भाभी !

-मगर मैं तो सीधा नहीं चाहती ।

रंगा को कुछ समझ में न आया कि लाली क्या कह गई ! आखिर उसने पूछा-सीधा तुम्हें पसन्द नहीं, यह कैसी बात है, भाभी ?

लाली अपने को खोलना नहीं चाहती थी। वह अपने को बंद रखकर रंगा के साथ खिलवाड़ करने लगी; मगर खिलवाड़ के वक्त में भी लाली सावधान रही और बोल उठो-यही रास्ता अच्छा होगा, रंगलाल, इधर से ही आओ ।

और जरा और वे दोनों लाली के बताये हुए रास्ते पर ही चल पड़े! पर कुछ दूर जाते ही, रंगा कचहरी के बंगले को देखते ही चौंक पड़ा रुककर बोल उठा-तुम सीधा क्यों नहीं चाहती थी, अब मुझे पता चला ।

- खैर, समझ गये, यह अच्छा ही हुआ-लाली का सिर आप-से-आप नीचे की ओर झुक गया ।

दोनों ने गाँव में प्रवेश किया। लाली सिर झुकाए अपने घर की ओर बढ़ी जा रही है-काफी लम्बे धूघट में अपनेको डालकर; मगर रंगा? उन्मुक्त, बिल्कुल उन्मुक्त, भीतर-बाहर एक-सा! एकदम उल्लसित....

मगर यह क्या? रंगा को लगा कि जैसे उसका दिल बैठता जा रहा है। लग रहा है, जैसे वह अपने-आपमें कुछ कमी पा रहा है। लगा-जैसे वह अपने-आपमें हलका होता जा रहा है। उसने अपनी दृष्टि चारों ओर दौड़ाई और पाया कि गाँव के आदमी जो जहाँ हैं, वहीं से उन दोनों को ओर देख रहे हैं-शायद उपेक्षित भाव से, शायद तिरस्कृत भाव से! रंगा समझ न सका कि आखिर, वह ऐसा समझ रहा है क्यों? क्यों उसका हृदय इतना कमजोर हो पड़ा है? -रंगा न कुछ जाना और वह क्षणमात्र में अपनी भाभी के साथ, उसके घर पहुँच गया।

टहला की दृष्टि पहले रंगा पर पड़ी, फिर भाभी पर। वह बोल उठा-आ गये रंगा-आ गये? भाभी को लिवा लाये -यह अच्छा ही किया, खूब अच्छा किया! जानते हो-माँ भाभी के लिए कितनी चंचल हो पड़ी थी? अभी-अभी तो माँ यही कह रही थी.....

तुम गधे-के-गधे रह गये टहला! -रंगा बीच ही में उसकी बात अनसुनी करके बोल उठा- -माँ की खबर तक न भेजी कि वह मरी है या जीती! न कभी देखने ही गया कि भाई आराम हो रहा है या नहीं.....

-तुम जो कहो रंगा, माने लेता हूँ; मगर तुम यहाँ की बात जानोगे, तो तुम खुद ठड़े हो जाओगे! मैं कैसे जाता रंगा! यहाँ और ऐसा है कौन, जो मेरी खबर पहुँचाने को तुम्हारे पास दौड़ा जाता?

रंगा खुद नम्र पड़ गया। वह थोड़ी देर तक वहाँ की परिस्थिति की ओर सोचता रहा। गाँव के उदास वातावरण की ओर उसका खयाल और तभी वह उससे बोल उठा-गाँव की क्या खबर है टहला? कुछ मुझे अजीव-अजीव-सा मालम पड़ रहा है? आखिर ऐसा क्यों लग रहा है? सो तो लगेगा ही-टहला के मन का भय जाता रहा-अजीब हालत है यहाँ की! रोज बैठक! रोज बैठक! जाने कचहरी पर कौन-कौन सी बातें रात-दिन हुआ करती हैं। जभी पाया, गाँव के आदमी जादू-जैसे खिंचे चले जाते हैं। उनपर

दबाव डाला जाता है। किसी को लालच देकर, किसी को आँखें दिखा कर और किसी के घर खुद जाकर तहसीलदार जाने क्या-क्या सलाह-मशविरा करते रहता है और इन गाँववालों को तो देखो रंगा, कुत्ते तक को मेरे दरवाजे पर चढ़ने नहीं देते—आदमी न आदमजाद ! मैं आखिर माँ को किसके भरोसे छोड़ जाता-शायद उतने में उनकी जान निकल जाती तो.....अच्छा, रंगा, यह तो नहीं मालूम हुआ कि दारोगा और पुलिस क्यों अपने गाँव पर मजमा बाँधे पड़ी थी ?

-दारोगा आया था ? कहाँ ? क्या कचहरी पर ?

-हाँ, कचहरी पर !.....और, हाँ रे रंगा, सुना है कि उस पर सरकार मुकदमा चला रही है ? जानते हो ?

-तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि सरकार मुकदमा चला रही है?-रंगा टकटकी बाँधे उसके मुंह की ओर देखने लगा।

-मालूम हुआ-टहला कहता चला-मैं रात को छिपे-छिपे विरजा के घर गया था, इसलिए कि मुकदमें के बारे में मालम करूँ ! मैं विरजा से मिला और उसने बतलाया कि यह सब रंगा की कारस्तानी है; नहीं तो सरकार को क्या गरज पड़ी थी कि मुकदमा चलाए। और तहसीलदार तो समझो, मेरे लिए आग हो रहा है-आग रंगा ! उस दिन विरजा को, जानते हो, कितनी मार पड़ी? महज इसलिए कि वह अपनी गाड़ी पर भैया को अस्पताल पहुँचाने गया था। तहसीलदार ने उसके बाप को बुलाकर खब डाँटा और गाड़ी पर पहुँचा आने को सजा में पचीस रुपये का रुक्का लिखवा लिया ! और इधर तो मत पूछो-जाने कैसी-कैसी चाल चली जा रही हैं, गाँव में हड़कंप मच गया है, सभी तुम्हरे नाम को कोस रहे हैं, किसी को हमारे घर की हालत पर छोह नहीं होता! माँ भी घबरा उठी है, वह कहती है कि बड़े से रार करके कैदिन हमलोग जी सकेंगे? माँ ही से पूछ लो न ! रंगा अब तक टहला से ही उलझा रहा; उसे माँ की याद तक न पड़ी। जब टहला ने माँ का जिक्र किया, तब वह माँ के घर की ओर बढ़ा और उसने आकर देखा कि भाभी उसके पास सिर झुकाए बैठी है। और माँ ने भी रो-रोकर, टहला से जो कुछ सुन पाया था, एक-एक कर सभी बातें कह डाली! रंगा चुप साधे वहाँ घंटों बैठा रह गया; मगर उसके मँह से एक शब्द तक न निकल सका!

मगर रंगा के लिए यह-सब कुछ अचंभे की बात न थी। डाक्टर ने इन बातों की ओर कई बार इशारा कर दिया था और कहा था कि गाँव-भर को यथासंभव मिलाकर रखे-इस समय एकका की खास जरूरत है। माँगन की ओर से गवाह की भी जरूरत पड़ेगी। गवाह के बल पर ही मुकदमे में कामयाबी हो सकती है-और तभी तहसीलदार ठंडा भी पड़ सकता है; नहीं तो वही तहसीलदार आगे फन काढ़कर एक दिन सारे गाँव को डस भी सकता है !

रंगा को इन बातों के सोचते-सोचते लगा कि जैसे वह कितना उलझ पड़ा है! जैसे उसकी शक्ति अपने-आपमें कितनी क्षीण होती जा रही है, जैसे उसकी बुद्धि किस तरह पंगु होती जा रही है ! रंगा वहाँ के वातावरण में कुम्भला सा उठा। लगा कि जैसे उसकी सांस रुकती-सी जा रही है- जैसे हवा की सख्त जरूरत आ पड़ी है-जैसे उस हवा के बिना वह वहीं निर्जीव होता जा रहा है।

रंगा वहाँ रुका नहीं और न कुछ बोला ही। वह उठा, बाहर की ओर निकल गया और अपने घर की ओर चल पड़ा। रास्ते में इच्छा हुई कि वह विरजा से मिलता चले पर वह उसके घर के सामने आकर भी रुका नहीं, आगे बढ़ा। बह रामू के घर के पास आया। उसका मन मचल पड़ा कि रामू से तो वह जरूर मिलता ही चले; पर वह वहाँ भी न रुका। वह सभी की आँखें बचाकर घर आया। उसकी दृष्टि माँ पर पड़ी। उसी समय माँ ने भी उसे देखा और वह हुलसकर बोल उठी-आ गये, बेटा, आ गये।

और तब रंगा के जी-में-जी आया। वह माँ के पैरों की धूल सिर पर लगाकर ज्यों-का-त्यों उसके सामने खड़ा हो रहा।

(बाईस)

कल्याणी ने उस दिन बड़े उत्साह से रसोई बनाई। कई दिनों के बाद उसका बेटा घर लौटा है। जाने वह वहाँ कैसा खाता-पीता रहा होगा। माँ होकर इस बात को कैसे बद्राश्त कर सकती है ! आज वह अपने हाथों अपने बेटे को खिलायगी- ठूँस-ठूँसकर खिलायगी ! वह अपने रसोई घर में रसोई

बनाने को पिल पड़ी और रंगा को नहाने के लिए नदी के किनारे भेज दिया । यथासमय नहा-धोकर वह पहुँचा । वह थाली में रसोई संजोकर उसके सामने लाई । वह पीढ़े पर बैठकर खाने लगा और उसकी माँ उसके पास जमीन पर बैठकर पंखा झलने लगी ।

खाने के समय कल्याणी ने उत्फुल्ल होकर इधर-उधर की काफी चर्चा की; पर वह गाँव का हाल उसके सामने न रख पाई ! रंगा को लगा कि जैसे उसकी माँ बोलने में आज कितनी चतुर हो उठी है । ऐसी चतुर-ऐसी वाकपटु वह तो थी नहीं, शायद ही वह ऐसी रही हो कभी ! मगर उसने जबसे होश संभाला था, कभी उसने इतनी चतुर, इतनी वाचाल अपनी माँ को नहीं पाया । आखिर, इतनी वाचाल माँ आज हुई कैसे ? रंगा सोचने लगा ।

मगर खाने-पीने के बाद जब माँ रसोई घर के बरतन-बासन धो-धाकर रंगा के पास आ पहुँची, तब उसने देखा कि माँ न तो उतनी उत्फुल्ल है और न वैसी वाचाल ही । वह काफी चिंतित और काफी गंभीर होकर बोल उठी-मैं तो गाँव की हालत देखकर मरी जा रही हूँ, बेटा ! समझ में नहीं आता कि यह जो आज आग भड़की है, वह कहाँ जाकर शांत होगी ! तुम तो वहाँ एक काम लेकर पड़े रहे और तुम्हारी मेहनत भी सफल रही । मगर यही तो दूसरे को पसंद नहीं आता ! आज जिधर से होकर गुजरती हूँ, कानाफूसी सुन लेती हूँ । लगता है, जैसे तुम कितनों के सर चढ़े हुए हो । यहाँ होम करते हाथ जलता है । इसका पता अगर मुझे पहले से होता, तो मैं हर्गिज तुम्हें उस काम में जाने न देती !

कल्याणी बोलकर चुप हो गई । उसने एक सर्द आह ली और मुंह दूसरी ओर को फेर लिया ।

रंगा गाँव का सारा किस्सा पहले ही सुन चुका था, इसलिए वह उस विषय में काफी अर्से तक सोचता रहा और अब भी वही सोच रहा था । जब उसकी माँ उसके सामने बैठकर बातें सुना गई, तब उसने माँ की सर्द आह लेते हुए सुना और उससे यह भी छिपा न रहा कि उसकी माँ ने क्यों दूसरी ओर को मुंह फेर लिया है ! अब वह चंचल हो उठा, वह अपनी माँ के घाव को देख नहीं सकता, अपने चलते उसकी माँ इतनी विकल हो पड़े ! उसके

लिए यह असह्य हो उठा, और उसी हालत में बोल गया - होम करते हाथ जलता है - इसमें अचरज ही क्या है, अम्मा ! आग के पास बैठकर ताप से बचना चाहे, तो फिर आग के पास कोई बैठे हो क्यों? और मैं तो जान-बूझकर आग के पास जा बैठा था, अम्मा ! इसमें घबराहट को बात हो क्या है? और तुम कानाफूसी की बात कहती हो। इससे डरकर कैदिन काम चलेगा, अम्मा ! काम करनेवाला काम करना जानता है, उसे उस काम में ही तृप्ति मिलती है और उस काम को करना ही उसका स्वयं एक पुरस्कार है! फिर अगर मुझे वही पुरस्कार के रूप में मिलता है, तो मैं इसे क्यों नहीं ग्रहण कर लूं, अम्मा ! और इसकेलिए चिन्ता करने की बात ही कहाँ रह जाती है !

-मगर यह साधारण बात नहीं है, बेटा !-कल्याणी अपने उद्देश में बोल उठी-एक तरफ तहसीलदार-जैसे आदमी की चालवाजी, उसका रोब. दाब और दूसरी तरफ गाँव वाले की बदला चुकाने की नीयत और वे गाँव वाले जो सब तरह से उस तहसीलदार के हाथों को पुतलियाँ हैं ! फिर कौन तुम्हारी मदद करेगा, बेटा ? जब मैं इस बात को सोचती हूँ तब लगता है, जैसे मेरी जान कितने संकट में आ फंसी है! दूसरे का विपद अपने पर बुला लेना तुम्हारी नासमझी का नतीजा है। बला से उसपर जैसा कुछ बीतता, तुम्हें तहसीलदार पर मामला चलवाने का ख्याल जगा क्यों? क्या यह तुम्हारी बेबकूफी नहीं है?

-बेवकूफी ! हर्गिज नहीं अम्मा !-रंगा कहता चला --उसने मांगन को मरवाया है, यह झूठ नहीं है। उसका भीतरी बदन मार से चूर-चूर हो गया था-डाक्टर ने जांचकर बताया था। आखिर, ऐसे कातिल को सरकार की इजलास में सजा मिले, तो क्या यह अन्याय होगा, अम्मा ? और मैं अन्याय को आगे के लिए रोकने का अगर कुछ सहायक बन सका, तो क्या मैं सजावार कहलाऊँगा, अम्मा ! चाहे लोग जो भी समझे, चाहे गाँव-के-गाँव उसकी तरफदारी में जुट पड़े, तो भी मैं आखिरी दम तक अपने पाँव पर खड़ा रहूँगा ही। फल चाहे जो हो-मेरे जी को मलाल तो नहीं रह जायगा कि मैंने न्याय का गला धोंटा है। कोई हमारा सहायक न हो, मगर ऊपर भगवान तो हैं। मैं जब इतना दूर पहुंचकर उलझ ही पड़ा हूँ, तब घबराने से कैसे काम

चलेगा, अम्मा ! और ऐसा तो होगा ही नहीं कि गाँव में, समझाने-बुझाने पर, कोई मिले ही नहीं, जो हमारी तरफ आकर जुट सके.....

-तुम्हें विश्वास है, ऐसे आदमी तुम्हें मिल सकेंगे?

-आखिर, कोशिश तो की ही जायगी, अम्मा !

मगर कल्याणी को रंगा की बातों से संतोष न हुआ ! उसके सामने गाँव वाले की कायरता और उनकी बेबसी तस्वीर-जैसी खिंच आई। उसका दिल दहल उठा; मगर वह रंगा के सामने कैसे प्रकट करे-उस रंगा के सामने, जिसे अपने हौसले पर बढ़ने के लिए उसकी माँ ने आजाद छोड़ दिया है।

कल्याणी ने कुछ भी जवाब न दिया। रंगा भी आगे न बोल सका। दोनों चुप ही रहे और कुछ देर चुप्पी साधने के बाद कल्याणी ने देखा कि रंगा की पलकें झप गयी हैं और लो, वह तो बेखबर होकर सो पड़ा है।

कल्याणी वहाँ से उठी और बाहर आकर अपने काम में लग गयी। रंगा घोर नींद में जाने कब तक सोया रहा। माँ ने उसे उठाया नहीं। वह समय पर आप-से-आप जगा, उसने अंगड़ाइयाँ लीं, बाहर की ओर देखा और उठकर तैयार हुआ; फिर वह बाहर की ओर चल पड़ा।

मगर बाहर जिस उद्देश्य से रंगा निकला था, उससे वह फिसल पड़ा। रास्ते में उसे नंदा को याद हो आयी, और वह उसी पथ पर बढ़ चला। बढ़ते समय नंदा से मिलने की उसकी उत्कंठा इतनी वेगवती हो उठा कि उसकी आँखों के सामने नंदा के अतिरिक्त और कुछ रह नहीं गया। अगर वह इतना तन्मय न हो गया होता, तो अवश्य उसे पथ में ही कुछ ऐसी बातें दीख पड़ती कि उसका एक कदम आगे बढ़ाना कठिन हो उठता ।

जब उसने अपनी उसी उत्कंठा के साथ नंदा के आँगन में प्रवेश किया, तब उसने देखा कि गनेसी खाट के एक किनारे बैठा है, उसी खाट पर पल्थी मारे गोसाई गाँजे की चिलम में दम लगा रहा है और उसका धुआँ चक्राकार होकर आकाश की ओर बढ़ रहा है।

रंगा जैसे झोंक में वहाँ जा पहुँचा, वैसे ही वह ठिठककर रह गया! कुछ क्षण तक वह सोच नहीं पाया कि वह अपने सामने क्या देख रहा है मगर जब गोसाई का विकट अद्व्यास उसके कानों गया, तब वह चमका उठा!

गनेसी ने उसे चमकते हुए देखा भी; पर रंगा को लगा, जैसे गनेसी को उमका आना अप्रीतिकर हो उठा है। सोचते ही रंगा की आकृति धुँधली पड़ गयी। वह झेंप उठा। वह वहाँ रुका नहीं, पीछे की ओर मुड़ चला।

इसी समय बगल के घर से किसीने पुकारा-रंगा! और रंगा ने उसकी ओर देखा, देखा नंदा की माँ उसे रसोई घर से आने को इशारा कर रही है और नंदा भी उसीके पास बैठी जलपान कर रही है! क्षण भर तक रंगा की दृष्टि उस ओर अटकी रही; पर वह आज अटक न सका। वह जैसे चलने को डगे आगे बढ़ाता चल रहा था, उसी तरह से वह बाहर की ओर झपटता हुआ निकल भागा।

रंगा बाहर की ओर निकल भागा सही; मगर गोसाई की हँसी अब भी उसके मस्तिष्क में उथल-पुथल मचा रही थी।

मगर रंगा अब जाय कहाँ? कहाँ उसे शांति मिल सकेगी? - वह बीच रास्ते पर पाकर क्षण भर सोचता रहा; पर उसे कहाँ कूल-किनारा न मिला। फिर भी वह नदी की ओर बढ़ चला और जितना जल्दी उससे हो सका, पहाड़ी टीले पर आकर उसने एक गहरी आह छोड़ी।

रंगा को नंदा के घर से ऐसी आशा न थी। नंदा को उससे जीवन मिला है, कौन इसे स्वीकार न करेगा? गनेसी उससे उपकृत हुआ है, वह उसे आज भूल जाय; मगर दुनिया नहीं भूल सकती! मगर यह मानव स्वभाव है, उपकारी उपकृत से वैसी ही प्रत्याशा रखता है। - शायद यही उपकारी का स्वार्थ है। पर रंगा को गनेसी के व्यवहार से अभी जो टेस लगी है, वह कैसे तुरत उसे भुला सके! गोसाई को उसके घर आने का वैसा ही अधिकार है, जैसा उसको अधिकार प्राप्त है; फिर रंगा उसके घर आने पर क्यों झुँझलाये? उसकी कूर हँसी रंगा के लिए क्षम्य हो सकती है, क्योंकि उसने उसे एक दिन तिरस्कृत किया है; पर गनेसी उसके लिए क्षम्य नहीं हो सकता गनेसी, जिस पर उसका अभिमान था, जिस पर वह अपने गाढ़े दिन में, जबकि गांव भर उसके विपक्ष उठ खड़ा हुआ है, सहायता की प्रत्याशा रखकर सबसे पहले उसी के घर जा पहुंचा था। रंगा अपने विचार में बड़ी देर तक उलझा पड़ा रहा; पर गनेसी के प्रति जो विक्षोभ उसके मन में जागरूक हुआ था, वह और

घना ही होता गया ! और जब वह इतना घना हो उठा, तब रंगा को अपने आप हँसी आ गई और उसके मँह से निकल पड़ा - अहसान-फरासोश !

रंगा वहाँ से पागल की तरह नीचे उतरा और गाँव की ओर बढ़ चला । वह अपने घर के पास पहुँचा; पर अंदर घुसने की उसे इच्छा न हुई ! वह आज ही सारे गाँव को एक बार जाँच लेना चाहता है, वह प्रत्येक से आज अपना निवेदन सुनायगा और न्याय की वह भिक्षा माँगेगा ! भिक्षा माँगना उसने कभी जाना नहीं, न उसका वैसा स्वभाव है; पर आज वह अपने स्वभाव पर भी अधिकार जमाना चाहता है। वह अपने लिए भीख माँगने को तो आज निकला नहीं है.- शायद आगे भी वह कभी नहीं निकलेगा; पर अपने दोस्त ठहला के घर की विपत्ति वह कैसे भुला दे! एक बार उसे तो कोशिश करके देख ही लेना चाहिए कि कौन कितने पानी में है! और ऐसा विचार कर वह रामू के घर पहुँचा । सौभाग्य से रामू के पिता से उसकी भेट हो गई और उसी ने रंगा को बहुत दिनों के बाद सामने देखकर पूछा- -कैसे भूल पड़े रंगा ! इधर तो तुम जाने कहाँ-कहाँ धूमते रहे !

भगवान को धन्यवाद ! रंगा को आज एक पूछने वाला तो मिला ! उसे प्रसन्नता ही हुई और वह उसी प्रसन्नता में बोल उठा-भूलकर नहीं आया हूँ, काकाजी, आज जरूरी समझकर आपसे मिलने को चला आया.....

-चाहे जैसे हो, आये तो रंगा ! पर कौन-सा जरूरी काम है, वह तो तुमने कहा ही नहीं ।

-कहूँगा काकाजी, सब-कुछ कहूँगा-रंगा बोलकर कुछ सोचने लगा । फिर वह बोल उठा-आप तो माँगन को जानते होंगे? उसकी औरत बेइज्जत की गई, उसके चरवाहे को चकमा दिया गया, उसपर बेतरह मार पड़ी, मरने-मरने को पड़ा रहा; मगर गाँव में किसीने झाँका तक नहीं । मैंने उसे अस्पताल पहुँचाया, डाक्टर ने जाँच की, दारोगा बुलाया गया । उस समय माँगन को जान का खतरा समझकर दारोगा ने उसका इजहार नोट किया और उसीने उस नोट को बड़े अफसर के पास भेज दिया । वहाँ उसकी सुनवाई हुई । तहसीलदार पर सम्मन हुआ । सरकार खुद मुदर्दी बनी है । मगर आप जानते हैं कि मुकदमा गवाह पर टिकता है और आज मुझे यहाँ पर पता चला है कि उसके पक्ष में कोई गवाह देने को तैयार नहीं । यह कैसी

बात है ? आज उसपर बीता है, कल दूसरे पर भी वैसा बीत सकता है ! ऐसी हालत में, एक दूसरे की मदद के लिए खड़ा न हो, तो कहिए, यह कैसा अंधेर है!

सकपकाते हुए रंगा बोलकर चुप हुआ। रामू के पिता ने कान लगाकर उसकी सारी बातें सुनी। वह अपने-आपमें काँप उठा! तहसीलदार से लोहा लेना अकेले उसके बूते की बात नहीं। वह तहसीलदार को अच्छी तरह जानता है और वह यह भी जानता है कि वह कितना पतित, कितना उदंड और कितना नृशंस है! मगर रंगा ने जो कुछ उसके सामने रखा है-उसमें तथ्य है, उसमें सचाई है, उसपर धूल नहीं डाला जा सकता। मगर वह क्या कहे ? ....उसकी दृष्टि रंगा की ओर जा लगी। रंगा उससे उत्तर पाने की प्रत्याशा में, उसकी ओर टकटकी बाँधे पड़ा है। रामू का पिता चंचल हो उठा और बोला-सारी बातें जानता हूँ रंगा। गाँव में रहकर कोई बात छिपी कैसे रह सकती है ! मगर यह तो कुछ साधारण बात है नहीं। जानता हूँ कि माँगन पर आज जो बीता है, वह कल दूसरों पर भी बीत सकता है। माँगन के प्रति मेरी सहानुभूति जरूर है; मगर तुम तो मुझे अच्छी तरह जानते हो कि मैं सूधा-सीधा आदमी ठहरा, छल-छंद में पड़ना नहीं चाहता ! मैं अकेला आदमी ठहरा, थोड़ी-बहुत जगह-जमीन, माल-जायदाद भी रखता हूँ। मुझे तहसीलदार से बैर बिसाने से कैसे बन सकता है। आखिर, इज्जत-आबरू का सवाल जो सामने हैं।

रंगा हताश हो चला; मगर वह आखिरी दम तक देख लेना चाहता था। इसलिए वह फिर से बोल उठा-इज्जत-आबरू का ही तो सवाल है, काकाजी! जो आदमी इतना पतित हो सकता है, उससे दूसरों पर दया दिखाने की आशा की जाय, वह कैसे संभव हो सकता है! सच बात तो यह है कि आदमी आदमी की मदद न करे, तो और कौन मदद कर सकता है, काकाजी ? माना कि धन-दौलत और जगह-जमीन का मोह भुलाया नहीं जा सकता; मगर यही तो सब-कुछ नहीं है! आप-जैसे आदमी जब उसके काम न आवेगे, तब गाँव में फिर ऐसा दूसरा है ही कौन, जिससे आशा की जा सके। आपको

कोई-न-कोई राह निकालनी चाहिए काकाजी ! यह तो आदमीयत का तकाजा है न ! यह भुलाया कैसे जा सकता है!

इस बार रंगा की युक्ति कुछ काम कर गई। रामू का बाप कुछ क्षणों तक मौन साधे पड़ा रहा, उसके बाद बोल उठा—खैर, मैं तुम्हें निराश नहीं कर सकता। जब तुम लड़का होकर इतना कर रहे हो, वैसी हालत में हमारा हाथ खींच लेना शोभा न देगा। मगर मैं अपनेको बचाव में रख लेना चाहूँगा, खुलकर मुझसे कुछ न हो सकेगा। हाँ, इतना मैं जरूर करने को तैयार हूँ कि रुपये-पैसे की यथासंभव सहायता अवश्य करूँगा और अपने को बचाते हुए जो भी तदवीर कारगर हो सकेगी, उससे मैंह न मोड़ूँगा! मगर एक बात है, मैं तहसीलदार साहब से जैसा मिलता आ रहा हूँ, वैसा ही मिलते-जुलते रहूँगा-इसमें मैं अंतर नहीं डाल सकता.....

रंगा भीतर से खुश हो गया। वह इससे अधिक और चाहता भी क्या? बला से वह सामने आकर न लड़े मगर दाव से ही लड़ना क्या वेजा है साँप भी मरे और लाठी भी न टूटे !

और उसी रात को रामू के बाप ने उसका साथ दिया। गाँव में जितने आदमी उसके मेल के थे, सभी से वे दोनों मिले, बातें की, और सभी ने उसके प्रभाव में आकर रंगा को आशा बढ़ाई ! रंगा को इतनी भी आशा न थी; पर जितने लोग कुछ उसके पक्ष में आ सके, उसके लिए वह भगवान का कृतज्ञ हुआ !

दोनों लौट पड़े, मगर मिलकर नहीं। रंगा दूसरी राह से लौटा और वह दूसरी राह से !

मगर रंगा ने लौटते समय देखा कि गोसाई के घर पर बहुत-से आदमी इकट्ठे हैं। बीच में एक झिलमिलाती हुई कज्जल से सनी लैंप जल रही है। उसीके क्षीण प्रकाश में, उस गरोह के बीच जरा ऊँचे आसन पर तहसीलदार बैठा है और उससे कुछ फासले पर गनेसी नजर आ रहा है। रंगा ने एक बार गौर से देखा, उसे गहरी व्यथा हो आई और उसी व्यथा को लेकर वह घर वापस आया।

### (तेईस)

इन दिनों रंगा गाँववालों को अपने पक्ष में लाने के लिए इतना व्यस्त हो उठा कि रात-की-रात और दिन-के-दिन उसने एक कर डाले। अब उसे विश्वास हो चला कि गाँव वाले अवश्य मँगन का साथ देंगे। उसे अपने प्रयत्न पर काफी भरोसा हो आया और वह अपने उद्देश्य पर कटिबद्ध हो उठा।

यथासमय अदालत में मुकदमा की तारीख निश्चित हुई। दोनों ओर के गवाहों के नाम सम्मन भेजे गये और ठीक निश्चित तारीख को अदालत गवाहों और तमाशबीनों से खचाखच भर गई।

दिहातों में जर्मांदार या तहसीलदार के विरुद्ध मुकदमा चलाने का शायद पहला ही अवसर था। इसलिए अदालत में लोगों की इस कदर भीड़ लगाना आश्चर्यजनक न था। मगर उन तमाशबीनों को अवश्य आश्चर्य हो रहा था कि रंगा-जैसा एक नवयुवक इसके मूल में पड़ा हुआ है और उसी की एक मात्र लगन का फल है कि आज तहसीलदार के विरुद्ध बगावत का झांडा बुलंद किया गया है। फिर भी उस रंगा के मँह पर न तो प्रसन्नता का ही कुछ चिह्न है और न अवसाद की छाया।

मुकदमे के पहले दिन सरकारी पक्ष के गवाहों के बयान दर्ज किये गये। मगर उनकी संख्या इतनी अधिक थी कि एक दिन में सभी का बयान लिया जाना संभव न हो सका। अदालत ने दूसरी तारीख मुकर्र की, और लगातार कई दिनों तक गवाहों के बयान लिये गये। उसके बाद फिर से तारीख मुकर्र हुई और तहसीलदार के गवाहों की इस बार बारी आई। उन गवाहों के बयान लिये गये और उस दिन अदालत बरखाश्त हुई। फिर दूसरी तारीख पड़ी। अब जिरह का वक्त आया। इसबार तहसीलदार ने एक से एक अच्छे वकीलों को मुकर्र किया। सरकारी पक्ष में केवल एक ही वकील के मगर वे कुछ साधारण न थे।

तहसीलदार ने यद्यपि वकीलों के जुटाने और पानी की तरह रूपये बहाने में कुछ उठा न रखा। फिर भी उसके दिल में जो आतंक छा गया था, वह जड़ से उखड़ न सका। उसे विश्वास था कि अपने रोब से वह गाँव

वालों को अपने पक्ष में कर लेगा; मगर जब वे गवाह अपनी-अपनी बारी में, माँगन के समर्थन में गवाही दे चुके, तब उसे विश्वास हो गया कि अब उसका बचना किसी तरह संभव न होगा, उसे जेल की चक्की चलानी ही पड़ेगी। फिर भी वह घबराया नहीं, और न उसने अपनी हिम्मत ही हारी। उसने संभव और असंभव उपायों से उन गवाहों को फोड़ने की ठानी। अभी तक जिरह तो हुई थी नहीं। इसलिए उसे पूरा विश्वास था कि अब भी मुकदमे की हालत सुधारी जा सकती है। अब भी उसका मुकदमा कब्जे में आ सकता है! फलतः जिरह के दिन वह अपने काम में मुस्तैद हुआ।

और उसने देखा कि जब उसके पक्ष के वकील उन गवाहों से जिरह करने में आ जुटे और जब गवाहों की जबाने लड़खड़ाने लगी, तब उसने मूछों पर हाथ फेरा और विजयोन्नत मस्तक से उसने धूर-धूर कर उन गवाहों की ओर देखा। इस्तरह जब दोनों पक्ष के गवाहों को जिरह हो चुकी, तब सफाई के बयान लिये जाने की तारीख मुकर्रर के बाद उस दिन अदालत बर्खास्त हुई।

और वह भी दिन आया, जब सफाई गवाह के रूप में माँगन की पुकार हुई। रंगा को अबतक विश्वास था कि यद्यपि गवाह जिरह में उखड़ गये हैं, फिर भी माँगन अपने बयान में सही-सही उतरेगा ही और फलस्वरूप तहसीलदार को सजा भुगतनी होगी। मगर जब माँगन का बयान लिया जाने लगा, तब रंगा सन्न रह गया। लगा कि जैसे उसपर बज्र गिर पड़ा हो, लगा कि जैसे दुनिया उलट रही हो और लगा कि जैसे उसकी आँखों-तले लाल-हरे-पीले-कई रंगों के धुए उड़ रहे हों!

रंगा स्थिर न रह सका। वह अदालत से निकलकर बाहर आया और एक पेड़ की छाया में सुस्त होकर बैठ गया। वह पसीने-पसीने हो रहा था। बाहर में काफी हवा बह रही थी; मगर उसे लगता था जैसे उसका दमघुट रहा हो, जैसे वह तिल-तिल अपने को खो-सा रहा हो।

रंगा को कभी ऐसी झाशा न थी और ऐसी झाशा हो भी कैसे सकती थी, जब उसने खुद माँगन को मार के दर्द से कराहते पाया था, जब वह(माँगन) ऐसी हालत में पहुंचा था, जहाँ उसकी जान तक जा सकती थी, जिसे देखकर

डाक्टर भी घबरा उठा था और जिस घबराहट के कारण उसने दारोगा को बुलवाकर उसके बयान तक दर्ज करवाये थे। इतना ही नहीं, जिस तहसीलदार ने उसे चकमा तक दिया और जिसने उसकी औरत को अस्मत पर हमला तक किया; फिर यह कैसे संभव हो सकता था कि तहीलदार के पक्ष में, इतनी तरह की चोट खाये हुए माँगन अपने बयान में गच्छा खा जाय? फिर ऐसा हुआ क्यों? आखिर, अदालत के सामने डाक्टर सही-सही अपना बयान दे चुका है, दारोगा ने भी ठीक डाक्टर-जैसा ही अपना बयान दिया है और जिरह तक में भी वे दोनों ज्यों-केंत्यों रह गये! गवाहों में अवश्य अधिक ऐसे निकले, जिन्हें धोखेबाज कहना अनुचित नहीं कहा जा सकता। मगर माँगन! उफ, इतना नीच, इतना पतित, इतना कायर और इतना चापलूस मनुष्य हो सकता है !! रंगा, दुनिया से अनभिज्ञ नवयुवक रंगा, भला यह कैसे समझे-कैसे विश्वास करे?

और रंगा सोचते-सोचते संक्षुब्ध हो उठा। उसे माँगन पर धृणा हुई, उसके परिवार के प्रति धृणा का भाव भर उठा और उस धृणा की गठरी सिर पर लादे वह उठ खड़ा हुआ। उसने एकबार अदालत की ओर देखा और पाया कि जैसे अदालत का एक-एक पाया उसकी ओर धूर रहा है ! जैसे वहाँ की प्रतिध्वनि हवा में उड़कर उसके कानों में व्यंग की वर्षा कर रही है ! वह अपने को स्थिर-संयत न रख सका और वह क्षोभ और ग्लानि से भरकर अपने घर के रास्ते की ओर मुड़ चला।

रंगा आँधी-जैसे अपने पथ पर बढ़ा चला जा रहा था; मगर इससे भी तेज उसका दिमाग चक्कर काट रहा था। वह क्या सोचे, क्या न सोचे कुछ निश्चित किये बिना आगे बढ़ता ही चला।

और उसी दिन, कुछ झुटपुटा-सा होने पर, जब वह अपने गाँव में पहुँच कर अपने घर की ओर बढ़ रहा था, अचानक उसने आवाज सुनी-जैसे कोई उसे, उसका नाम लेकर पुकार रहा है। आखिर वह है कौन?-रंगा चौकन्ना होकर देखने लगा; पर उसने कुछ भी नहीं देख पाया। मगर अब भी इसके कानों में वह शब्द गूँज रहा था ! उसे लगा कि अवश्य

किसोने उसे पुकारा है। वह रुक-सा रहा। मगर उसे ज्यादा देर रुकना नहीं पड़ा। उसने देखा कि कोई उसकी ओर बेतहासा दौड़ा आ रहा है।

रंगा जरा चौंका और ठीक उसके चौंकने के समय ही उसने पाया कि उसके सामने नंदा खड़ी है और वह पूछ रही है क्यों रंगा, मैंने कौन-सा कसूर किया है, जो तुम मुलाकात तक नहीं देते?

रंगा ने नंदा की ओर देखा। शायद उसे नंदा को देखकर वित्तुष्णा ही हुई और तभी वह रुक्ष स्वर में बोल उठा-मुलाकात से मतलब?

-मतलब क्यों नहीं है रंगा!

-मगर मुझे तो नहीं है।

तुम्हें न हो, मगर मुझे तो है! क्यों, मेरे लिए तुम इतना भी नहीं कर सकते?

-कर सकता था; मगर अब तुम्हें मेरी क्या जरूरत?.....अब तो तुम कुछ मरी नहीं जा रही हो.....

नंदा को अन्तिम वाक्य सूई की तरह चुभा। वह उससे कभी ऐसे कठोर शब्द सुनने की आशा नहीं रखती थी। उसकी आँखें आँसुओं से गीली हो गई, उसका स्वर रुद्ध हो गया। वह कुछ क्षण तक चोट को संभालने में लगी रही, फिर वह बोल उठी-तुम कैसे जानते हो रंगा कि मैं मरी नहीं जा रही हूँ। मैं तुम्हारे सामने खड़ी हूँ, तुमसे बातें कर रही हूँ, मेरो साँस चल रही है क्या तुम इन्हीं बातों को देखकर कहते हो कि मैं मरी नहीं हूँ ! मरना सिर्फ साँस का रुकना ही तो नहीं है रंगा! सभी हरकतें होने पर भी आदमी मुर्दा समझा जा सकता है-यह तुम नहीं जानो; मगर मैं तो जानती हूँ। और मैं आज जिन्दा रहकर भी वही मुर्दा बनी जा रही हूँ। ,

नंदा का गला इतना अधिक उच्छवित हो उठा कि वह अपने भावों को इच्छा रहते हुए भी, व्यक्त न कर सकी। उसने अपने मुंह को दूसरी ओर घुमा लिया।

मगर रंगा के दिमाग में तो आँधी चल रही थी और वह उसी आँधी

में अपने को बहाये लिये जा रहा था, नहीं तो अवश्य वह नंदा के प्रति सदय ही होता ! मगर वह सदय न हो सका उसके प्रति, जिसे उसने एक दिन मृत्यु मुख से निकालने में जमीन-आसमान को एक किये था । आज तो वह उसके सामने रुके रहने को भी रखादार न हुआ और अपने पाँव आगे की मोर बढ़ाते हुए वह बोल उठा-जिन्दा रहो या मुर्दा, इसकी अब मुझे दरकार नहीं रह गई ।

वह एक कदम आगे बढ़ा ही था कि नंदा की आवाज उसके कानों में गई-सचमुच तुम्हें दरकार नहीं हैं रंगा !

-नहीं ।

-नहीं ? -नंदा बोलकर रंगा की ओर देखने लगी ।

-हाँ, नहीं, नहीं, सौ बार नहीं, हजार बार नहीं, लाख बार नहीं क्योंकि तुम्हारे बाप ने मेरे साथ दगा किया है, मेरे विरुद्ध बगावत की है! दुनिया ऐसा करती तो मैं उसे क्षम्य समझ सकता था; मगर वह मेरे लिए क्षम्य नहीं हो सकता-वह दगावाज, पाजी.....

-चुप रहो, रंगा, चुप रहो ! मैं यह बात सुनना नहीं चाहती-नंदा रोष में आकर बोल उठी-वह ऐसे नहीं हो सकते, हर्गिज नहीं हो सकते.....

-हर्गिज नहीं ! यह तो अच्छा रहा ! खैर, न रहे-मुझे तो तुमसे झगड़ा मोल लेना नहीं है ! मान लो, वह पाजी नहीं तो देवता ही है....खैर, अब तो खुश हुई ।

खुश-नाखुश की बात नहीं !-नंदा जरा नम्र होकर बोली-न तो वह पाजी ही हैं और न देवता ही, रंगा ! वह आदमी जरूर हैं और तुम्हें समझना चाहिए कि आदमी और कुछ नहीं-कमजोरियों का एक पुतला है! और तुम्हें भी शायद इसीलिए वैसा बनना पड़ा हो । खैर, चाहे जो भी कारण हो, मैं तुमसे बहस नहीं करना चाहती, मैं उनके बारे में उनके दोष और गुण के बारे में भी कुछ नहीं कहा चाहती; मगर मैं कहना चाहती हूँ और जोर देकर कहना चाहती हूँ कि तुमने मुझे बचाया है, मेरे लिए तकलीफें उठाई है मेरे लिए डाक्टर की खुशामदें की हैं, फीस के रुपए अपनी जान पर खेलकर मेरे लिए अदा किये हैं, इसके लिए मैं तुम्हारा उपकार मानती हूँ और मानती रहूंगी; मगर यही आशा तुम्हें दूसरों से क्यों करनी चाहिए ? मैं अगर तुम्हारे विपक्ष खड़ी होती तो तुम्हें मुझपर बिगड़ने का-रंज होने का हक था । मैं सिर

झुकाकर तुम्हारी झिड़िकियाँ सुन लेती, उसे बर्दास्त कर लेती और जुबान चलाती तो तुम्हें हक था कि उस जुबान को तुम बाहर खींच लेते....मैं तुम्हें रोकती नहीं.....तुम्हारा यहसान मेरे सिर-आँखों पर है और उसे मैं.....

-रखो अपनी सफाई नंदा ! मैं समझ गया कि तुम क्या हो, दुनिया क्या है और यहसान क्या है !

इसबार नंदा फूटकर रो पड़ी; मगर रंगा रुका नहीं, वह अपने पथ पर बढ़ चला। नंदा उसकी ओर डबडबाई आँखों से देखती रही और जाने क्या समझकर वह खुद उसी दिशा में दौड़ पड़ी और बोली-रंगा-रंगा, मेरी शपथ है, एक बात मेरी भी सुन लो.....

और रंगा वहीं से बोल उठा-क्या कहती हो, जरा सुनूँ भी!

और वह क्षण मात्र के लिए रुक-सा रहा ।

-मुझे और कुछ कहना है नहीं, रंगा! तुम आज काफी रंज हो, इसलिए तुम अभी मेरी बात समझोगे ही कैसे ? मगर मैं फिर भी कहे रखती हूँ - दुनिया चाहे जैसी हो, उसके बारे में मैं कुछ नहीं कह सकती; मगर अपनी मैं कह सकती हूँ। नंदा की आँखें भर आई और उसे जो कुछ कहना था, वह उसके गले से बाहर न निकल सकी। उसके भीतर से जैसे कोई कह रहा था-इस जन्म में अगर वह न भी चुका सकी, तो उस जन्म तक जरूर चुकाकर ही मैं दम लूँगी! याद रखना कि नंदा ने एक दिन कहा था और वह नंदा एकदिन के लिए भी, अगर अपनेको खोकर भी, तुम्हें पा सकी.....हाँ, पा सकी.....

नंदा कुछ कहने को होकर भी कह न सकी । मगर रंगा अपने रंज में इतना आगे निकल गया था कि उसने नंदा को परखने की जरा भी चिन्ता न की; बल्कि वह और रंज में आ गया और जिस गति में वह बढ़ते-बढ़ते रुक गया था, फिर उसी गति में वह बढ़ चला ।

नंदा कुछ देर तक उसकी ओर टकटकी बाँधे रुकी रही; मगर जब रंगा उसकी दृष्टि से ओझल हो पड़ा, तब वह लौट पड़ी । मगर लगता था कि जैसे उसके पांव जमीन में धूँसते जा रहे हों! जैसे वह गुरुतर बोझ के कारण चलने में असमर्थ हो पड़ी हो !

## (चौबीस)

कल्याणी ने वात्सल्य स्नेह-वश अपनी लगाम इतनी ढीली रख छोड़ी थी कि रंगा अपनी स्वच्छंद गति में बढ़ते-बढ़ते वहाँ आकर रुका, जहाँ उसने चारों ओर की ठोकरें खायीं; उसने अनेक तरह की फवतियाँ सही; ताने बर्दाश्त किये; उसने व्यांग-विद्रुप की बौछारें खायी; उसने एक-एक की, सामूहिक रूप में सभी की भर्त्सनाएँ सुनी; वह गाँव से-गाँव की स्वजाति और समाज से बहिष्कृत हुआ; मगर किसीने उसका साथ न दिया, यहाँ तक कि किसी ने भी उसके प्रति सहानुभूति तक न दिखलाई। उसे कभी ऐसी आशा न थी! उसने अबतक जो कुछ किया था, वह कर्तव्य के नाते ही किया था। मगर उसे तो दूसरों का कोप-भाजन बनना पड़ा। उसे तो अपनी पश्त-हिम्मती पर आठ-आठ आँसू बहाने पड़े ! कौन उसकी हिम्मत बँधाय! कौन उसे भरोसा दे! उसके लिए अब अपनी माँ के सिवा उस गाँव में दूसरा था ही कौन, जो उससे कहे कि उसे मुकदमे की हार पर रंज होना उचित नहीं?

और उसके लिए तो वह दिन और भी विषाक्त हो उठा, जिस दिन तहसीलदार ने अपनी अभावनीय विजय पर ज़शन मनाया, दोस्तों को दावतें दी, गाँव-घर में मिठाइयाँ बाँटी और रात-भर रंडियों का मुजरा करवाया। और उस महफिल में गाँव के बच्चे-बूढ़े और जवानों ने जिंदगी के लुत्फ उठाये; मगर एक रंगा था, जिसकी न बुलाहट हुई, न उसके घर मिठाइयाँ बाँटी गई और न किसी ने अपने साथ उसे वहाँ जाना ही चाहा। और उसी रंगा को जब यह भी मालूम हुआ कि टहला और मांगन दोनों भाइयों ने तहसीलदार के जलसे में तम्बाकू की चिलमें भरी हैं, कुएं से पानी उठाया है, जूठे पत्तल फेंके हैं और ये सब काम बड़े उछाह से किये गये हैं, तब रंगा न जाने क्यों, अपने रंज में आप छटपटा उठा! उसे लगा कि जैसे वह ज्ञान रंगा के लिए मार्शिया हो और माँगन का उछाह उसके लिए सौ बिछुओं का डंक जैसा चुभ रहा हो ।

रंगा ज्यों-ज्यों इस प्रसंग को लेकर विचार करता, त्यों-त्यों उसकी ज्वाला उग्र हो उठती। वह इस रहस्य पर जितना ही दिमाग लड़ाता, उतनी ही उसकी वितृष्णा बढ़ चलती। मगर वह यह तो समझने की कोशिश करके भी समझ नहीं पाता कि गाँव के छोटे-बड़े कैसे तहसीलदार के आतंक में आ गये, कैसे उसके पक्ष में आये हुए व्यक्तियों ने उसके साथ दगा किया और सबसे ताजुब की बात तो यह कि माँगन अपनी इज्जत और हुरमतों को किस तरह, इतनी जल्द भूलकर, तहसीलदार के पक्ष में आ गया ! रंगा अबतक गाँववालों को सूधा-सच्चा ही समझता आ रहा था। उसकी उम्र ही कितनी थी कि वह उनके सम्बन्ध में कोई दूसरी राय पक्की कर सकता ! मगर अब उसने जाना कि मनुष्य का जो बाहरी रूप है, वह भीतरी कदापि नहीं। अब उसने महसूस किया कि उसने मनुष्य के पहचानने में गलती की है, धोखा खाया है! उसने एक दिन गनेसी का भी उपकार किया था, दूसरे दिन माँगन का भी उपकार किया था; उसने अपने सहपाठियों की भी वक्त-वक्त पर सहायता की थी और जाने कितनों पर उसकी सहानुभूति आप-से-आप बरस पड़ी थी; पर उसने पाया कि वह जो कुछ अब तक करता आ रहा था, महज उसकी वह नादानी थी, महज उसकी खामखयाली थी ! उसने अब समझ पाया कि उसे अपने तरीके पर चलना चाहिए था-अपने घर में दीया जलाकर दूसरों की ओर मुड़ना था....और आज उसने समझा कि व्यों वह अपने उद्देश्य में फेल हो गया ! उसने अब पाया कि आदिम काल से जड़ता में जकड़े हुए प्राणियों का उद्धार महज एक दिन में संभव नहीं हो सकता। उसने अब समझा कि बरसों की अशिक्षा से कुठित हुई बुद्धि पर क्षण मात्र की पालिस चमक पैदा नहीं कर सकती। रंगा इन दिनों घर से बाहर नहीं निकला करता। वह क्षोभ और आत्मग्लानि से इतना जर्जर हो उठा कि कल्याणी की बोलती बन्द हो गई, उसके होश गायब हो गये; पर वह उसे समझाये तो क्या कहकर समझाये। आखिर, उसी ने तो उसे इतनी दूर तक पहुंचाया था। आज वह किससे कहे कि उसके रंगा को कोई दिलासा दे, हिम्मत बंधाय और कर्तव्य की ओर उसे प्रेरित करे ।

मगर कल्याणी अपने प्रयत्न से विमुख न हुई। उसे अपने आप पर भरोसा था, उसे अपनी हिम्मत पर विश्वास था, और उसका अब तक ढीला पड़ा रहना अवश्य कुछ अर्थ रखता था। वह चाहती थी कि रंगा सभी बातों में प्रौढ़ हो, वह हार को चोट को बद्राशित करने की शक्ति रखे, दस की उपेक्षित दृष्टियों का विष-पान कर उसे पचाने की क्षमता प्राप्त करे और अपनी अहमन्यता पर विजय प्राप्त करने के लिए वह प्रयत्नशील रहे। मगर जब उसने पाया कि रंगा अपनी दिशा में बहुत आगे निकल गया है, और उससे आगे बढ़ना उसकी पहुंच से बाहर हो उठा है, तब वह अपने कर्तव्य पर सावधान हुई और बड़ी सतर्कता से वह उसके घाव पर मरहम-पट्टी करने को तैयार हो उठी।

कुछ दिन इसी तरह सोचते-सोचते ही निकल गया। हठात् एक रात को, जब कल्याणी अपने रंगा के साथ लेटी हुई थी, उसने पाया कि रंगा करबट बदल रहा है, शायद उसे नींद नहीं आ रही है। वह बड़ी देर तक इस बात को लेकर सोचती रही और सोचते-ही-सोचते हठात् पूछ बैठी क्या तुम्हें अबतक नींद नहीं आई, बेटा ! -

-हाँ, नींद आई थी माँ; पर बीच ही में उचट गई। तभी से नींद ही नहीं आ रही है!

-बराबर से मैं देखती आ रही हूँ, तुम्हें नींद नहीं आती, क्यों बेटा, ऐसा क्यों होता है? तुम क्या सोच करते हो? - माँ ने रंगा के क्रेशों को सहलाते हुए, पूछा।

-सोचता तो कुछ नहीं, अम्मा !

-जरुर कुछ सोचते हो, बेटा! कल्याणी बोल उठी-यह कैसे हो सकता है कि तुम कुछ न सोचो। मुझसे छिपाओ ना बेटा, सच-सच कहो क्या सोचते हो?

उत्तर में रंगा कुछ न बोल सका; मगर उसके मुंह से एक सर्द आह कढ़कर रह गई।

और कल्याणी ने अनुभव किया कि वह जो कुछ सोच रहा था, वह कह नहीं सका और इसीलिए उसने अभी एक गहरी आह ली है! वह स्थिर

न रह सकी । उसके मनपर इधर जो बोझ आ पड़ा है, उसे आज हलका करना चाहती है वह! और इसीलिए वह बोल उठी-तुम जिस पहलू से अब तक उन बीती बातों को सोच रहे हो, बेटा, वह तुम्हारी भूल है! मैं मानती हूँ कि जब कोई अपने काम में सफल नहीं होता, तब उसे गहरा दुख जरूर होता है; मगर वह दुख फिजूल है! आदमी काम के लिए बनाया गया है। जो उसे उचित जँचे, उसे करते चलना चाहिए। फल देनेवाला दूसरा है! वह फल का भागी नहीं-भागी है सिर्फ काम करने का! तुम कोई बुरे रास्ते पर थे नहीं, मैं तुम्हें बुरे रास्ते पर नहीं जाने देना चाहती। अगर वह रास्ता लोगों को पसंद नहीं आया, तो उसके लिए हमें रंज नहीं होना चाहिए। यह कोई बात नहीं कि जिस काम को तुम पसंद करो, उसे दुनिया भी पसंद करे ! सभी के विचार एक-से नहीं होते । सभी अपने-अपने तरीके से सोचने को आजाद हैं। किसीको जोर देकर समझाया नहीं जा सकता!

-मगर यह तो ताज्जुब की बात है, अम्मा, लोग कितने अहमक हैं! मैंने जो भी जिसका उपकार किया, उसे वह तुरत भुला बैठा ! इसपर अगर मुझे रंज हो आवे, तो क्या वह बेजा कहलायगा? तुम क्या उसे बेजा समझती हो, माँ ?

-बेजा हो या न हो, यहाँ वह सवाल नहीं है ! सवाल तो यह है कि तुमने उपकार किया अपनी आत्मा के पुकार पर -किसीको दिखाने के ख्याल से नहीं। तुम्हारा उतना ही स्वार्थ था-उससे ज्यादा की तुम्हें उम्मीद न करनी चाहिए थी। मगर तुम उससे ज्यादा की उम्मीद रखते आ रहे थे, और आज जब तुम्हें उस उम्मीद पर चोट लगी है, तब तुम कहते हो कि उसका करना बेजा है।

तो क्या माँगन का साथ मैंने किसी उम्मीद से दिया था, अम्मा? इसबार कल्याणी हंस पड़ी और हँसते-हँसते ही बोली-जरूर वहाँ उम्मीद थी बेटा! उम्मीद कैसे नहीं थी-तुम्हीं कहो? क्या तुमने जुल्म के खिलाफ बगावत न की? तुमने उसका पीटा जाना जुल्म समझा और लोगों को समझाया उसके खिलाफ यह जुल्म है और वह जुल्म रोका जाना चाहिए। मगर माँगन ने खुद उसे जुल्म नहीं समझा और न गँववालों ने ही समझा। ऐसी हालत में अगर

वह तुम्हारे विचार पर डटा न रह सका, तो वह उसका जुल्म कैसे कहा जा सकता है, रंगा !

-मगर यह कितनी दर्दनाक बात है, माँ!

-दुनिया में इससे भी ज्यादा दर्दनाक बात है बेटा ! मगर लोग उन्हें सहन के इतने आदी हो गये हैं कि उनके लिए वे बातें बिलकुल साधारण हो गई हैं.....

रंगा कुछ देर सोचता रहा; पर उसकी समझ में कुछ नहीं आया । इसलिए वह फिर से पूछ बैठा-कुछ समझ में नहीं आती माँ, कुछ समझ में नहीं । मगर यह कैसे संभव हो सकता है कि जिसका उपकार करो, अपकार करने पर तुल जाय इन्सान इतना एहसान-फरामोश नहीं हो सकता । और जब मैं पाता हूँ कि.....

-- इनसान इतना एहसान-फरामोश नहीं हो सकता, रंगा, यह ठीक है । फिर भी ज्यादा एहसान फरामोश ही दीख पड़ते हैं! हो सकता है कि ऐसा करने के समय उन्हें भी कुछ कम दुख न होता हो । मगर फिर भी अपने दुख पर अपने दिल की बेबसी से वे विजय पा ही जाते हैं और यही तो इनसान की कमजोरी है । सभी आदमी इतने बलवान नहीं हो सकते कि वे कमजोरी पर विजय पावें और उसपर विजय पाना कुछ मामूली बात भी तो नहीं है? मगर उसके लिए वे माँफी के काबिल हो सकते हैं रंगा! कसूर किये जाने पर मन में जो रंज आता है, वह कुछ अस्वाभाविक नहीं; फिर भी अपराधी पर जो क्षमा करते हैं, वे जरूर महान् हैं और मैं तुमसे यही आशा करती हूँ !

कल्याणी बोलकर चुप हो गई । वह इसी बीच में बहुत-कुछ सोच-गई । फिर आप-ही-आप बोल उठी- -तुम्हें अपनी कोशिशों को बेकार समझ कर जो रंज हुआ है, बेटा, वह तुम्हारी कमजोरी है ! आज पाती हूँ कि हमारा चारों तरफ से बहिष्कार हुआ है-हमलोग समाज की नजरों में सजावार समझे गये हैं । मगर इसके लिए मुझे रक्ती भर भी दुख नहीं है ! आज हमारा समाज जिस ढाँचे पर खड़ा है, वह बहुत कमजोर है; मगर हमारा समाज उस ढाँचे को देखना नहीं चाहता । तुम उस ढाँचे को बदलना चाहते थे । क्योंकि तुम्हारा मंशा यह था कि उसकी सतह ऊँची हो । मगर जो हमेशा से नीची सतह पर रहता आया है, वह चाहे जितनी शीलदार, चाहे जितनी बदबूदार और चाहे

जितनी जहरीली क्यों न हो, वह उसके लिए सरग है। मगर तुम्हें वह पसंद नहीं आया। तुम उसके लिए पिल पड़े। लोगों को अखरा। उन्होंने उसके लिए तुम्हें कोसा भी और आज वे तुम्हें सजावार तक समझ रहे हैं! मगर इसमें उनका कसूर नहीं और न तुमको उसके लिए मलाल ही होना चाहिए! और वह तहसीलदार कुछ साधारण जीव नहीं है। सदा से उसकी गुलामी में वे लोग रहते आ रहे हैं। उन्हें वह गुलामी कभी अखरी नहीं--अगर कभी अखरी भी हो, तो उसकेलिए उन्हें कोई खेद नहीं। और न उनमें वह ताकत है, जिसे लेकर वे मैदान में कूद सकें। संभव है, उसके साथ बगावत करने में उनका स्वार्थ ज़ष्ट होता हो। फिर कोई जान-बूझकर अपने स्वार्थ की हत्या कैसे कर सकता है? तुमने उन्हें रास्ता दिखाना चाहा; मगर उनका दिमाग अभी इस काविल न था कि वे भले-बुरे की पहचान कर सकें। फल यह हुआ कि उसकी चपेट में आकर वे लोग सचाई से मुकर गये। मगर यहाँ भी कोई रंज को बात नहीं। संसार में सभी बातों का अलग-अलग अस्तित्व है! हवा अपने साथ खुशबू और बदबू लेकर उड़ पड़ती है। मगर एक जगह उसका विज्ञाश है तो दूसरी जगह उसका अस्तित्व। हम खुशबू पाकर खिल उठते हैं और बदबू पाकर नाक बन्द कर लेते हैं। मगर उन दोनों के अस्तित्व को हम भुला नहीं सकते! कहीं-न-कहीं जाकर वह बदबू भी रहेगी ही और खुशबू भी। इसी तरह आज तुम जिस बात में हार समझ रहे हो, वह बात यों ही लोप नहीं हो गई। वह तो कहीं अपने लिए जगह तैयार कर रही होगी और कभी वह भी समय आवेगा, जब तुम देखोगे कि लोग उसे महसूस करेंगे और कोशिश करेंगे कि वह फिर से सामने आ जाय! उस दिन शायद तुम्हें अजहद खुशी होगी।

कल्याणी एक झटके में इतनी बातें बोल गई। रंगा कान खोलकर उन सारी बातों को सुनता रहा और मन-ही-मन समझने की कोशिश करता रहा। इस बार उसके मुख पर एक हल्की-सी मुस्कराहट की रेखा खिंच पाई और वह उसी मुस्कराहट के साथ बोल उठा-सचमुच ऐसा होगा, माँ? सचमुच उन सब को होश होगा किसी दिन?

-होगा क्यों नहीं, बेटा ! आखिर वे भी तो आदमी ही हैं । आज अपनी बुद्धि के कारण वे गलत रास्ते पर हों; मगर कभी तो वे सही रास्ते पर आ-जा सकते हैं! आदमी इतना तुच्छ नहीं है, बेटा !

-तुच्छ! तुच्छ.....

-क्या तुम्हें सन्देह होता है, बेटा ? हाँ, वे तुच्छ नहीं हो सकते ! आज वे जिस हालत पर पहुँचकर गलती कर गये हैं, जब वह हालत कभी बदल सकी, तब वे जरूर उस दिन अपनी गलती महसूस करेंगे । ....और जिसका तुमने एक दिन उपकार किया था, वह तुमसे आँख मिलाने में भी लजायगा । और यही उसके लिए दंड होगा बेटा ! सजा और जजा आपसे-आप मिलती है, बेटा ! न कोई सजा दे सकता है और न कोई जजा !

रंगा इन बातों को सुनकर चुप पड़ा रह गया । कल्याणी भी चुप रह गई । बड़ी देर तक सन्नाटा छाया रहा । मगर रंगा सुन रहा था, उस गहरी रात में भी, गाँववाले बहुत दूर पर रामायण की कथा, झाँझ और करतालों के साथ, गा रहे हैं । रंगा का ध्यान उस ओर खिंच गया और उसे लगा कि जैसे वे लोग कैसे धार्मिक बने हुए हैं ! रामायण गायेंगे; मगर उसका मर्म समझने तक की कोशिश नहीं करेंगे ! यह ढोंगी समाज ! यह इनका शिष्टाचार ! रंगा और बहुत-कुछ आगे बढ़कर सोचता रहा, और सोचते. सोचते वह जिस नतीजे पर आ पहुँचा, वहाँ आकर पाया कि वह जो कुछ कहा चाहता है, वह उसकी जुबान से निकलता ही नहीं ! आखिर उसने मन पर जोर डाला और अपने में साहस का संग्रह कर बोल उठा-अच्छा माँ, अब मैं उन पचड़ों में पड़ा रहना नहीं चाहता ! मैं अब कुछ करना चाहता हूँ । मगर जो कुछ करना चाहता हूँ, उसके लिए यह जगह फिट नहीं पड़ती । इसलिए मैं तुमसे सलाह चाहता हूँ । अगर मैं बाहर जाकर कुछ कमाने-धमाने में लग जाऊं, तो कैसा हो !

कल्याणी ने रंगा का प्रस्ताव सुना । वह सहम उठी कुछ क्षण के लिए । लगा कि जैसे रंगा उससे कितनी दूर हटता जा रहा हो ! लगा जैसे वह वियोग उसके लिए कितना कष्टकर होगा ! कल्याणी क्षणभर के लिए चुप

रही, उसके बाद वह बोल उठी--काम ?.....काम तो यहाँ तुम्हारे लिए बहुत है, बेटा! बाहर जाने की जरूरत?

-यहाँ काम है ? -रंगा आश्चर्यचकित होकर बोल उठा-यहाँ कौन-सा. काम है, माँ! जरा सुनूँ भी!

-क्यों नहीं है! अबतक जो तुम करते आ रहे थे, क्या वह कम है? क्या उसकी भी कभी कमी हो सकती है ? .

-फिर तुम वही काम करने को कहती हो, अम्मा !

-क्या वह बेजा है?

बेजा कैसे नहीं है? काम भी करूँ; मगर फायदे की जगह गालियाँ खाऊँ? अच्छा काम करने कहती हो!

यहीं तो तुम गलती करते हो, बेटा ! जो काम अच्छा है, उसके करने में अपने-आपको संतोष होता है, मन को आनंद मिलता है। यह क्या कुछ कम लाभ है, बेटा ! बला से लोग उसपर गालियाँ.....

-हार्गिज नहीं! मैं इन नालायकों के बीच रहकर अपनी ताकत को बर्बाद नहीं करना चाहता! मैं जरूर दूसरी जगह जाऊँगा और अपनी सच्चाई और ईमानदारी के साथ अपनी ताकत-भर धन कमाने की कोशिश करूँगा। मैं अब ऐसी जिंदगी पसंद नहीं करता ! आज मैं अगर धनी होता, तो मेरी जीत रखी हुई थी। कोई मुझपर हँसने का ढोंग नहीं कर सकता.....

खैर, मैं तो धनी होकर ही लौटूँगा। अब ऐसी जगह मैं क्षणभर के लिए भी रहना पसंद नहीं कर सकता.....तुम साथ चलो तो अच्छी बात है! क्या कहती हो, अम्मा?

-मुझे धन की उतनी जरूरत नहीं है, बेटा, जितना तुम्हें मैं आदमी के रूप में देखना चाहती हूँ ! मैं चाहती हूँ कि धनहीन होकर रहना अच्छा है; मगर धनवान पशु बनकर नहीं।

-मैं आदमी ही बनने की कोशिश करूँगा और धन के लिए भी कोशिश करूँगा। अगर सोने में सुगंध आ गई तो अच्छी बात है! नहीं तो कम-से-कम अपने बूते पर अपनी जिंदगी तो काट सकूँगा! यह जिल्लत की जिंदगी तो काट खाने को तैयार पड़ी हुई दीख न पड़ेगी? मैं अब तुम्हें आराम

देना चाहता हूँ, माँ ! उस बेटे से लाभ ही क्या, जो अपनी माँ को जन्म भर गुलामी में पीसे जाने के लिए छोड़ दे ! मैं तो यह हर्गिज पसंद नहीं करता कल्याणी रंगा की बात सुनकर सहम गई। वह जानती है कि रंगा जिदी है, जिस बात पर अड़ जाता है उसे छोड़ना नहीं चाहता। वह बड़ी देर तक उधेड़बुन में पड़ी रही, उसके बाद वह बोल उठी-मैंने तुम्हारे रास्ते में कभी काटें नहीं बिछाएं, बेटा ! और आज भी नहीं बिछाना चाहती। तुम संसार-समुद्र में अपनी इच्छा से कूदने जा रहे हो। मुझे इस बात से गर्व और गौरव है। मगर माँ का दिल ! वह कैसे दिखलावे कि उसमें कहाँ-कहाँ दर्द है और कैसा दर्द है !

-मगर यह दर्द तो उस माँ के लिए वरदान है, माँ !.....मैं इच्छा करके ही आज बाहर नहीं जाता; मगर यहाँ बिलकुल अकेला होकर मैं पा रहा हूँ कि जैसे मेरे प्राण धुट रहे हों, मेरी जीवनी-शक्ति का छास होता जा रहा हो. ....और मैं वह छास देखना अपने में नहीं पसंद कर सकता! मैं जीवन चाहता हूँ, माँ और उस जीवन में चेतना चाहता हूँ और वह चेतना बाहर की इच्छा लगे विना मुझे मिल नहीं सकती।.....हाँ तो एक बार खुलकर तुम कह दो न माँ!

कल्याणी को इसबार आँखें डबडबा आई, गला रुंध-सा गया और वह आहिस्ते से अपनी आँखें पोंछकर बोल उठी-भगवान तुम्हारा भला करे बेटा ! मैं तुम्हारेलिए सब-कुछ कर सकती हूँ।.....

-मेरा वक्त फिजूल बातें करने में बीत रहा है। मैं उसके पल-पल को काम में लाना चाहता हूँ, माँ! मैं और कुछ नहीं चाहता। जैसा तुम करना चाहो, कर सकती हो।

आखिर, बात निश्चित हो चुका और उस दिन के लिए माँ-बेटे का विचार विस्तर बड़ी देर के बाद समाप्त हुआ।

### (पचीस)

कल्याणी ने उस दिन रंगा को बाहर जाने की आज्ञा तो दे दी; पर वह अपनी बात पर टिक न सकी। जब-जब रंगा बाहर जाने को तैयार होकर

माँ के पास पहुँचता, तब-तब माँ की आँखों से आँसू फूट निकलते और उन आँसुओं के साथ उसके हृदय की स्नेह-सरिता इतनी प्रखर गति में बह निकलती कि रंगा उसमें डबने-उतराने लग जाता, फिर वह अपने उद्देश्य पर पहुँच ही नहीं पाता। आखिर, वह अपनी माँ को दुखी करके, उसे आँसुओं में डूबो करके, उसे अकेली छोड़कर निकल-भागने में समर्थ न हो सका। रंगा जानता था कि यह माँ की स्नेह-परवशता के भिन्न और कुछ नहीं! आखिर माँ का हृदय ही तो ठहरा! फिर भी वह इस बात को भी अवश्य जानता था कि उसकी माँ उसके जीवन को मरुभूमि होने देना नहीं चाहती। वह हर्गिंज नहीं चाहती कि उसकी एक मात्र संतान कायर होकर, डरपोक बनकर, अपने को निकम्मा साबित करे! कल्याणी वैसी नारी नहीं है! उसमें नारीत्व के साथ-साथ उस पौरुष का भी अभाव नहीं, जिसे पाकर निकम्मा भी कर्मठ बन सकता है! कल्याणी स्वयं उस बात को जानती है और वह यह भी जानती है कि उसने अपने आसक्त पति को किस तरह उत्साहित किया था, किस तरह उसे यहाँ तक शक्तिशाली बनाने में वह समर्थ हुई थी कि अन्याय को शमन करने के लिए उसके पति ने जेल की हवा तक खाई और वहीं उसका शरीरांत तक भी हुआ! कल्याणी ने वैधव्य अपनाया, जबानी की बहार में उसने अपने बदन में मिट्टी लगाई और सारा सुख एक मात्र रंगा में केंद्रित किया। रंगा भी यह जानता है, आए दिन के प्रसंग पर उसकी माँ ने उससे सब-कुछ कह दिया है। रंगा को अपने पिता पर अभिमान है, अपनी माँ पर उसे गर्व है और वह उसी अभिमान और गर्व का संबल लेकर, अपने लिए नित्य नई-नई परिस्थितियाँ उत्पन्न कर, उनके साथ भिड़ता-जमता और लड़ता-पछड़ता आ रहा है! अवश्य कुछ क्षणों के लिए -मात्र कुछ दिन के लिए: -वह अपने कर्तव्य से च्युत हो, सांसारिक लोक-लज्जा की निविड़ छाया में अपने को सभी से छिपा रख सका; पर उसने अपने को, उस हालत में भी, संयत रखा। अपनी विलुप्त हुई शक्ति का फिर से आवाहन किया और अब तो वह सभी की आँखों से दूर-इतनी दूर जाने को तैयार हो उठा है कि जहाँ दिहातियों की पहुँच सस्ती साबित नहीं हो सकती! और वह अपनी माँ की स्नेह-सीमा में नित्य-प्रति आबद्ध हो होकर भी अपने स्वप्न में उसी तरह

तल्लीन है, उतना ही तल्लीन है कि जहाँ प्रवास-जीवन के सिवा वह और कुछ भी नहीं पाता ।

और रंगा इसी बीच में अब घर से धीरे-धीरे बाहर निकलने लगा है। कभी संयोगवश किसी साथी से मुलाकात हो जाती और कभी किसी दूसरे से भी। वैसे अवसर पर उसकी चपलता उसे बातचीत करने को विवश कर छोड़ती है, पर उसे अपने-आप पर व्रश है और उसी वश्यता में आकर वह विना कुछ बोले-चाले ही वहाँ से टल जाता है ! साथी स्वयं लज्जा में गड़कर उसकी ओर टकटकी बाँधे रह जाते हैं, मगर उसके मुंह पर एक हलकी-सी मुस्कान की रेखा तक भी नहीं खिंच पाती ।

मगर वह इतना क्लू नहीं है। वह अपने साथियों के प्रति इतना कठोर नहीं हो सकता! वह सब-कुछ समझता है और यह भी समझता है कि उसका व्यवहार अपने साथियों के प्रति सराहनीय नहीं कहा जा सकता, जब कि भेंट होने पर भी, वह दूसरे से बोलने की भी रबादार नहीं! आखिर इन साथियों का दोष क्या! वे तो सदा से उसका साथ देते रहे हैं, सदैव उससे दबते रहे हैं। वह बराबर उनपर हुकूमत करता आ रहा है, समय-समय पर उसने उन्हें पीटा तक भी है; पर आज वह उनके प्रति क्यों इतना निष्ठुर हैं.....

मगर अब तो वह अपने आप में ही समाकर अपने आपको रखना चाहता है। उसे अपने साथियों से घृणा नहीं, कोई मनमुटाव नहीं, अवश्य उनके प्रति प्रेम है और जिससे प्रेरित होकर वह हमेशा आग में फाँदता आया है.....

और वह एक दिन अपने घर से निकलकर अपने पथ पर बढ़ा जा रहा था। अचानक उसकी टहला से भेंट हो गई और टहला कतराकर बढ़ना ही चाहता था कि इतने में उसने पुकारा-टहला!

और टहला के पाँव जहाँ-के-तहाँ रुक गये। उसका सिर आप-से-आप नत हो गया। लगा, जैसे सौ घड़ा जल उसके सिर पर बरस पड़ा हो।

इतने में रंगा उसके पास पहुँचकर बोला--क्या बात है टहला! इधर बहुत दिनों से तुमने मेरी खोज-खबर तक न ली-क्यों? टहला, इतनी जल्दी तुम्हारा मन मुझसे कैसे फिर गया?

टहला ने रंगा की बातें सुनीं। लगा जैसे वह लज्जा में स्वयं जैसे धंसा जा रहा हो। मगर रंगा उसके सामने खड़ा है। उसने जो कुछ पूछा है, वह उसका उत्तर चाहता है। टहला ने परिस्थिति पर विचार किया और लजाते हुए बोल उठा- तुमसे मैं कैसे फिर सकता हूँ रंगा! तुम तो मुझे आज से नहीं, बचपन से जानते हो। अलबत्ता यह बात तो तुमसे मुझे ही पूछनी चाहिए थी। मगर तुमसे पूछने को मेरा मँह ही कहाँ रह गया है! तुम तो मेरे लिए जैसे पहले थे, वैसे अब भी हो। मगर मेरे घर के चलते तुम्हारे दिल में जो दुख हुआ है, उसका मुझे कितना रंज है, वह मैं तुम्हें कैसे बतलाऊँ!

टहला बोलकर चुप हो गया। रंगा ने लक्ष्य किया कि टहला की आवाज आप-से-आप धीमी पड़ती गई है। उसका गला आप-से-आप रुद्ध होता गया है और वह दूसरी ओर इसलिए देख रहा है कि वह अपने आँसुओं को उससे छिपाये रहे। रंगा को उसके प्रति दया हो आई और उसका हाथ अपने हाथ में लेकर वह बोल उठा-नहीं, टहला, सो बात नहीं है! मैं जानता हूँ कि माँगन भाई ने जो कुछ किया है, वह परिस्थिति के फेर में पड़कर ही किया है। तहसीलदार का आतंक जहाँ सारे गाँव पर छाया हुआ है, वहाँ माँगन भैया की विसात ही क्या! इसके लिए मुझे एक दिन दुख जरूर था; मगर अब वह नहीं है! मैं पहले खुद ही गलती पर था। अब मैं उसे महसूस कर चुका हूँ! मगर माँगन भैया की सुधाई पर मुझे खुद दुख भी होता है, दया भी आती है और हँसी भी! मुझे यकीन तक न था कि इतना जल्दी वह खुद मुकर जायगा.....खैर, अब उन बातों पर मैं तूल देना नहीं चाहता.....

-तूल न दो, रंगा, यह तुम्हारी भलामंशी है-टहला ने अपने-आप में बल को संचारित करते हुए कहना शुरू किया-यह कैसे नहीं दुख की बात हो सकती है कि जिसके लिए तुम अपने कान तक कटा डाली और वही तुम्हें कनबुच्चा कहे! बेशक तुम्हारा दुखी होना अस्वाभाविक नहीं कहला सकता! और ऐसी हालत में आकर आदमी बदला चुकाने के लिए पूरे तौर से तन

जाता है; मगर तुम अबतक एकरस बने रहे-यह हमारे लिए कम गौरव की बात नहीं हो सकती! मगर रंगा, माँगन भैया पर, उनकी नादानी के लिए, जैसी फटकार पड़ी और जैसी-जैसी बातें उन्हें सहनी पड़ी हैं, तुम अगर उन बातों को जान पाते, तो तुम्हें खुद उनपर तरस आए विना न रह सकती... ..एक तरफ मैया की फटकार और दूसरी ओर भाभी का तनकर लड़ना..... यहाँ तक कि.....

रंगा बीच ही में बात काटकर बोल उठा-मैया बिगड़ सकती थीं, मगर भाभी का बिगड़ना-सचमुच टहला, भाभी बिगड़ गई हैं उनसे क्या? यह नहीं होने का। क्या सच ही वह बिगड़ी हैं?

-बिगड़ी ही नहीं हैं, उस दिन तो, जब माँगन भैया अदालत से वापस आये और जाने भाभी को कैसे पता लग गया कि भैया जिरह में खुद उखड़ गए और मामला खत्म हो गया। भाभी ने उन्हें ऐसी-ऐसी जली-कटी सुनाई कि सुननेवाले दंग रह गये; मगर भैया की जुबान तक न हिली और हिलती ही कैसे? उन्होंने खुद गलती की थी, वह खुद सजावार थे.... और उसी दिन तो भाभी ने साफ-साफ कह दिया कि जो मर्दुआ अपनी औरत की आबरू बचा नहीं सकता, जिसको अपने पराये का ज्ञान तक नहीं है, वैसा आदमी उसका पति नहीं हो सकता। और, उसी दिन से तो भाभी खुद अलग रसोई बनाकर खाती-पीती है; मगर भैया की छाया के भीतर तक नहीं आ पाती! तुम रंगा, अगर उसका गुस्सा देखते, तो तुम्हें खुद ताज्जुब होता कि जो देखने में इतनी सूधी-सादी हो, वह कैसे एक बात के चलते इतनी बदल जा सकती है। उसी दिन से भैया उन्हें बहुत कुछ समझाते हैं; मगर वह काहे को मानने लगीं! पता नहीं, उनका गुस्सा कभी उतरेगा या नहीं.....

-ऐसी बात है टहला ऐसी बात ?-रंगा ताज्जुब में आकर बोल उठा।

-तो क्या मैं झूठ कह रहा हूँ, रंगा ? और तुमसे झूठ बोलूँ? सिर्फ इतनी ही बात नहीं है, रंगा! उनकी जबान तो इतनी खुल गई है कि वह जैसे रुकना ही नहीं चाहती। उन्होंने चुन-चुनकर गाँव के एक-एक आदमी को जाने कितनी गालियाँ न दी होंगी। कहती हैं- भेंडे हैं भेंडे ! आदमी किस बात के? दुम हिलाते हुए तहसीलदार की बातों में आ गये ! सोचा होगा कि

खुशामदें करने पर उनकी नाक के बल बनकर रहेंगे, कभी कोई उनसे खतरा न रह जायगा और उन्हीं भेड़ों के चलते ये (माँगन भैया) भी भेड़ा बन गये! वाह जी, भेंडे महाराज !.....ऐसी-ऐसी बातें कहती हैं कि ‘चलोगे रंगा, मेरे यहाँ देखने भाभी को ?.....चलो न रंगा?

मगर रंगा अपने आपमें इतना डूबा हुआ था कि टहला की बातें उसके कानों तक गई नहीं, उसकी हरकत से कुछ भी पता नहीं चला। सबमुच वह इतना आत्म-विभोर, इतना अन्यमनस्क और इतना चिंतित हो उठा कि टहला चुप होकर कबतक उसकी ओर ताकता रहा, इसका उसे रत्ती भर का भी खयाल न रहा! टहला ने रंगा को इतना अन्यमनस्क कभी न देखा था। उसे लगा कि क्यों वह इतनी बातें आप-से-आप बोल गया और क्यों वह उसे अपने घर चलने को कह गया है। टहला को अपने आपपर भी रंज हो आया; मगर उसने कुछ क्षणों में ही अपनेको संयत कर लिया और तभी बोल उठा-रंगा, शायद मेरे घर जाने की बात से तुम्हें रंज हुआ हो। मैं कैसे कहूँ कि तुम्हारा बह रंज बेकार है। मुझे ऐसा निहोरा करते हुए खुद शर्म हो रही है। मगर रंगा, हमारे घर में भैया की नादानी के चलते जैसी आग जल उठी है कि वह यों दम लेने को नहीं ....पता नहीं, कब क्या हो जाय!

टहला अपने-आपमें अवसन्न हो उठा। उसको करुणा विगतित हो उठी। इसबार रंगा ने उसकी ओर लक्ष्य किया और जो-कुछ उसने वहाँ पाया, उससे वह भी कुछ कम दुखी न हुआ और उसी दुख से दयार्द्र होकर वह बोल उठा-मुझे तुम्हारे घर जाने में कोई इतराज नहीं है, टहला ! मगर मैं अभी वहाँ जाना उचित नहीं समझता। कह नहीं सकता, क्यों मेरा मन आगे को नहीं बढ़ता! मगर भाभी की बातें, जो कुछ तुमने कही हैं, अवश्य मुझे कौतूहल में डाले जा रही हैं! उन्हें इतना बाहर नहीं जाना चाहता था..... रंगा आप-ही-आप बीच में रुककर चुप हो गया ! कदाचित् वह जो कुछ बोलने जा रहा था, वह बोल न सका ! टहला भी चुपचाप खड़ा हो रहा। कुछ क्षणों तक दोनों अपने आपमें उलझे रह गये; मगर वहाँ दूसरा था ही कौन, जो दोनों को एक रेखा पर लाकर खड़ा कर देता!

मगर रंगा चुपचाप न रह सका । फिर भी वह जो-कुछ बोलना चाहता था, वह न बोलकर टहला से ही पूछ बैठा-आखिर भाभी का खाना-पीना कैसे चलता है?

-चलेगा कैसे नहीं, रंगा ! -टहला अपनी सुधाई में बोल गया-भाभी को तुम खुद जानते हो, कितनी जवाँ मर्द हैं वह ! वह किसी काम के करने से नहीं घबराती । वह खुद घर से निकल पड़ती हैं, खेतों में कच्छा कसकर पिछौड़ा बाँधे मजदूरी करती हैं, और उसी मजदूरी के पैसों से अपना खर्च चलाती है.....

-मगर यह तो तुमने कहा नहीं टहला कि तुम से उनको बोल-चाल है या नहीं?

-बोल-चाल- नहीं!

-क्यों? तुम नहीं चाहते हो उसने बोलना, या वही नहीं चाहती ।

.-शायद वही नहीं चाहतीं । और मैं तो इसलिए नहीं कुछ कहा चाहता कि वह मुझपर भी कम बिगड़ी नहीं रहती-पहले भी कहा करती थीं-मैं निकम्मा हूँ, काहिल हूँ, सुस्त हूँ, मुझे दिमाग नहीं है....जाने और क्या-क्या ?

इसबार रंगा खिलखिलाकर हँस पड़ा और हँसते हुए कहा-वाह, टहला, तुम्हें भाभी ऐसा समझती हैं ?

टहला ने कोई उत्तर न दिया । उसने दूसरी ओर गर्दन फेरी, देखा संध्या अधिक घनी होती आ रही है, अब उसके लिए ठहरना कठिन हो उठा । वह चंचल हो उठा । रंगा ने उसे ताड़ लिया । इसलिए रंगा बोल उठा-खैर, अभी जाओ, टहला ! अगर मौका लगा तो मैं आऊँगा एक दिन और हो सकेगा तो तुम दोनों में मेल कराने की कोशिश भी करूँगा.....

-हाँ, कोशिश करके देखो, रंगा, मेरे मेल की जरूरत नहीं, मेल तो भैया को चाहिए । नहीं तो यह कलह बड़ी महँगी पड़ेगी । भैया तो दिन-भर खेत में रहते हैं । रसोई मुझे पकानी पड़ती है । फिर उन्हें खाना पहुँचाने को मुझे ही खेत पर भी जाना पड़ता है-इधर माँ की देख-रेख.....

-तो आजकल खूब पीस रहे हो, नहीं टहला ?-रंगा ने हँसकर कहा ।

-हाँ, रंगा !

-और इसीलिए चाहते हो कि मेल हो जाय-कम-से-कम रसोई पानी से तुम्हें छुट्टी तो मिले? क्या यही मंशा है न?

ठहला के ओठों पर हँसो आ गई, और वह बोल उठा-हाँ यही बात है। रंगा! .....मगर अब तो मुझे जाने ही दो रंगा!

-जाओ।

और रंगा अपने रास्ते पर बढ़ चला और ठहला अपने रास्ते पर मगर ठहला पहले से अधिक खुश था और रंगा पहले से बहुत अधिक उदास !

### (छब्बीस)

रंगा जिस साँचे का ढला जीव था, उसकेलिए नक्कू बनकर गाँव में रहना, इस हालत में रहना जबकि उसके दो-चार लंगोटिये दोस्तों के सिवा उससे कोई मिलने या उससे दो बातें करने को रबादार नहीं, इतना दूभर हो उठा कि जैसे उसका दम अपने-आप में घुट रहा हो। पर वह आजकल करते हुए भी, गाँव से बाहर प्रवास-जीवन के लिए उत्सुक और तैयार हो.- होकर भी, जाने से असमर्थ हो रहा। उसे लगता कि वह अपनी माँ को किसके आसरे पर छोड़ जाय! कौन उसकी देखरेख करेगा, कौन उसका हाथ बटाने को तैयार होगा। पर जब उसने सब तरह से सोचकर देखा, तब उसे लगा कि उसका अब घड़ी-भर के लिए रुकना मानो अपना आत्मघात अपने हाथों करना है। वह माँ से यह उम्मीद नहीं कर सकता कि उसकी माँ खुशी-खुशी उसे विदा करेगी; मगर उसे तो निकलना ही पड़ेगा-निकलना पड़ेगा इसलिए कि वह कुत्तों की जिन्दगी खुद नहीं पसंद करता; वह गरीब होकर-दीन होकर-भीखमंगों की जिन्दगी पसन्द नहीं करता। उसके लिए गाँव में ऐसा कोई आकर्षण भी तो नहीं रह गया, जिससे वह पड़ा रह जाय! किसके लिए वह ठहरेगा? नंदा उसे प्यार करती थी; मगर उससे वह धाव खा चुका है! साथियों में दो-चार हैं भी; पर वे दिलके इतने कच्चे कि कोई उसका साथ दे ही नहीं सकता। सभी अपने-अपने अभिभावकों के डर से दुबके पड़े हैं। गाँववालों ने उससे सामाजिक बहिष्कार ही कर रखा है। फिर किस बूते पर वह गाँव में पड़ा रहे। तभी उसे लाली याद हो आई। पर लाली? जिसने अपने

पति को धता बता दिया जिसने गाँव वालों को चुन-चुनकर गालियाँ दीं? जिसकी जुबान पर कोई लगाम नहीं है, और जिसने कभी उसकी खोज-पुछार तक न की ? लाली के नाम से वह उल्लसित हो उठा। उसे लगा कि लाली ही एक ऐसी है, जिसे अपनी इज्जत का ख्याल है। जो टूट सकती है, पर नव नहीं सकती ! फिर भी जिस उद्देश्य से लाली के नाम से उसे उल्लास हो उठा है, उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसका साथ करना असंभव-सा जान पड़ा। यहाँ तक कि उस कल्पना मात्र से वह स्वयं सिहर उठा। वह आप-ही-आप बोल उठा नहीं-नहीं, ऐसा नहीं हो सकता-ऐसा नहीं हो सकता। वह अकेला निकलेगा, वह अकेला दुनिया को देखेगा.....

रंगा रात को अपने बिछावन पर इन बातों को सोचते-सोचते थक-सा गया। उसके मन की अशांति इतनी ज्यादा बढ़ गई कि स्थिर होकर लेटे न रह सका। वह उठा और धीरे-धीरे घर से निकल कर आँगन में आया। कुछ देर तक वह आप-ही-आप टहलने लगा फिर भी वह अपने को संयत न कर सका। वह और जोर-जोर से टहलने लगा। उसका दिमाग धूम रहा था, उसकी धड़कन तेज चाल से चल रही थी। अब उसके लिए वह क्षण इतना विषाक्त हो उठा कि वह पसीने-पसीने हो गया ! आखिर वह क्या करे ? कहाँ जाकर उसे शांति मिल सकेगी ? कौन इस विकट परिस्थिति में उसमें शक्ति का संचार कर सकेगा ? माँ है कहाँ ? वह माँ जो जीवन भर उसमें रस की व्रष्णा करती आ रही है-वह माँ जिसने अपनी स्नेह-सरिता की धारा उसकी ओर प्रवाहित कर रखी है। मगर-मगर ? वह अपनी माँ को अपने लिए कष्ट देगा ? वह क्या अपनी माँ को कष्ट देकर अपनेको सुखी बनाने मैं समर्थ हो सकेगा ? नहीं, वह ऐसा नहीं करना चाहता; नहीं, वह हर्गिज ऐसा नहीं चाहता ! आखिर वह क्या करे ? रंगा को चिन्ता-धारा अपनी गति में तीव्रता के साथ आगे बढ़ रही थी। वह उसमें इतना डूब गया कि उसके लिए निर्णय करना कठिन हो चला। वह आँगन से दरवाजे की ओर बढ़ा। उसने पीछे की ओर मुड़कर देखा घर-वही घर, जो उसकी जन्म-भूमि है-मातृभूमि है-जहाँ उसकी माँ अचेत निद्रा में सोई पड़ी है ! कितना भयावह, कितना करुण हो उठा है उसके लिए ? उसने अपनी आँखें मींच ली। वह कुछ क्षण के लिए

रुका; पर उसका दिमाग अब भी घूम रहा था, उसकी धमनियाँ अब भी तेज चल रही थीं, उसकी धड़कन पहले से भी अधिक चाल में थी। वह रुका नहीं, धीरे-से दरवाजे की टट्टी अलग की, वह बाहर निकला। उसने देखा कि बाहर का बैठक खाना धाँय धाँय कर रहा है उसका छप्पर नीचे झुका हुआ है। टट्टीयाँ टूटी-फूटी, जैसे बुढ़ापे में अस्थि-पंजर ढीले पड़कर नीचे लटके जाते हों! उसका दिल हिल उठा। वह क्षणभर के लिए रुक-सा गया; मगर फिर से दूसरा झाँका आया, तेज को आँधी आई और वह ठीक उसी आँधी की तरह अपने रास्ते पर बढ़ चला !

रंगा की मानसिक अशांति इतनी गंभीर हो उठी थी कि वह कहाँ जा रहा है, किधर उसके पाँव बढ़ रहे हैं-उसे जरा भी मालूम नहीं! लगा जैसे कोई अदृश्य शक्ति बलपूर्वक उसे आगे की ओर घसीटे लिये जा रही हो! वह तेज चल रहा है-तेज चल रहा है-घरों को पार करते हुए एक रास्ते से दूसरे रास्ते पर कई पगड़ियाँ, कई सड़कें पार कर ! पर अचानक वह कहाँ आकर रुक गया? कहाँ वह आकर रुक गया ! मगर नहीं, फिर वह आगे बढ़ा। उसने दरवाजे पर की टट्टी को टटोला। लगा जैसे खुला हुआ है। वह धोरे से उसे हटाते हुए आगे बढ़कर आँगन में आ पहुँचा; फिर आगे बढ़कर सीधे बरामदे पर चढ़ा। मगर अब ? अब ? वह कुछ क्षण तक रुका रहा। उसकी अंतरात्मा में जाने कैसा द्वन्द्व मचा था वह उसे पुकारे या नहीं? या सीधे बाहर को निकल जाय ? आखिर वह क्या करे ? मगर नहीं, उसे याद आया कि एक दिन उसने कहा था-मैं साथ दूँगी, रंगलाल, मैं साथ दूँगी। रंगा को लगा कि उसने कुछ झूठ नहीं कहा है। वह जरूर साथ दे सकती है और शायद इसीलिए तो केवल उसी की पुकार पर ही तो-उसके पाँव आप-से-आप यहाँ तक बढ़ पाये। वह बरामदे पर आकर दरबाजे की ओर बढ़ा, फिर कुछ रुका और बहुत धीमी आवाज में वैसे वह अपने-आपमें ही-बोल उठा - भाभी, भाभी.....

उसकी साँस जोर की चल रही थी। लग रहा था जैसे कोई दूसरा भी उसकी पुकार सुन रहा हो। उसने घूमकर चारों ओर देखा; मगर अंधकार के सिवा उसे कुछ भी पता न चला। मगर भगवान को धन्यवाद! उसे लगा कि

जैसे भीतर से कोई उठकर दरवाजे की ओर आ रहा हो और सचमुच उसने पाया, जब कोई दरवाजे के पास पाकर बोल उठा- -कौन, रंगलाल....

-हाँ भाभी! -उसकी आवाज कांप उठी।

और भाभी अपने अधखुले कपड़े को सरियाते हुए, अपने केशों को संभालते हुए धीरे-धीरे दरवाजा खोलकर बाहर आई। उसने उस अंधकार के बीच में रंगा को पहचाना और वह बोल उठी-कैसे आये, रंगलाल ! इत्ती रात को?

-हाँ, इत्ती रात को भामी-रंगा धीरे से बोल उठा-आ गया मिलने तुमसे आज! मुझे विदा दो, भाभी! जा रहा हूँ बाहर, गाँव छोड़कर.....

-गाँव छोड़कर बाहर ?-भाभी आश्चर्य से बोली-कहाँ जाओगे?

-कोई निश्चय नहीं है। क्या बतलाऊँ ?

-आखिर?

-कुछ नहीं कह सकता, भाभी! जहाँ ये पैर चल पड़ें।

-अकेले हो?

-और कौन होगा? कौन है यहाँ दूसरा साथ देने को ?

-आखिर, तुम यहाँ कैसे आये? किस मतलब से?

-मतलब कुछ नहीं, शायद-रंगा कुछ रुककर बोला.- शायद.... पता नहीं, क्यों आ गया?

और लाली कुछ क्षणों तक आत्म-विभोर हो पड़ी! जाने वह क्या सोच रही हो-जाने उसके दिल में क्या कैसा हो रहा हो? ....मगर वह रुकी न रह सकी; वह बोल उठी-क्या तुम्हें मुझपर विश्वास है, रंगलाल!

-हाँ, है क्यों नहीं, भाभी! -रंगा ने जोर देकर कहा-मगर विश्वास..

-इसलिए कि.....लाली के ओठों-ओठों में बात निकलकर पूरी न हो सकी।

-हाँ, इसलिए कि.....रंगा का वाक्य भी अधूरा ही रह गया।

--आखिर किसलिए ?--इस बार फिर से लाली ने पूछा।

-क्या तुम्हें मालूम नहीं भाभी ! -रंगा ने प्रश्न में ही उत्तर दिया।

-वाह, क्या कहना ! क्यों, कभी तुमने कहला भी पठाया-लाली ने जरा रुष्ट होकर पूछा।

-पठाया तो नहीं, रंगा ने हकलाते हुए कहा-मगर मैं खुद तुम्हारे लिए आ गया हूँ-क्या इतना काफी नहीं है ?.....लाली क्षण भर चुप रही। रंगा चुप रहा, हठात् लाली बोल उठी-खैर, बाहर चलो, मैं अभी आई!

और रंगा चुपके चुपके बाहर आया। पर उसके हृदय में जोर की झंझा बह निकली। वह खुद सोच भी न सका कि उसे बाहर में ठहराने का क्या अर्थ हो सकता है। पर उसे द्वंद्व में अधिक देर तक रुकना नहीं पड़ा। अधिक नहीं, पाँच मिनट भी बीतने न पाया था कि आँगन से बढ़ती हुई लाली आ पहुँची और उसका हाथ पकड़कर बोली-झटके से चलो रंगलाल, झटके से! और दोनों तेजी से बाहर की ओर निकल पड़े। मगर रंगा लाली के इस रहस्य को न समझ सका। सच तो यह कि रंगा इस स्थिति में न था कि वह क्या करने जा रहा है। वे दोनों इस आकस्मिक रूप में सम्मिलित होकर रास्ते पर इस तरह बढ़ चले। लगा कि आगे बढ़ने के सिवा जैसे उन दोनों के लिए कुछ भी करणीय ही न हो! कुछ ही क्षणों में दोनों गाँव से बाहर सपाट रास्ते पर आ गये।

दोनों अपनी-अपनी शक्ति भर तेजी से बढ़ चले! जैसे हवा के पंखों पर तिरते उड़े जा रहे हैं-दोनों भागे जा रहे हैं-दोनों दौड़े जा रहे हैं.....

मगर?-मगर? कोस भर निकलकर लाली थक-सी गई। उसके पाँव जैसे आगे को बढ़ते ही न थे-सुनसान रास्ता, न आदमी, न आदमजाद। चारों ओर निविड़ अन्धकार-बस, काला पर्दा-एकदम काला! फिर भी वे दोनों चलते चले। कितनी दूरी निकल गई- कुछ पता नहीं; मगर अब? लाली जो थक गई है !

रंगा ने पूछा-बैठोगी भाभी ?

-हाँ, सुस्ताने दो, रंगलाल। तुम पुरुष हो, पुरुष थकना नहीं जानते मगर मैं तो औरत ठहरी। कितनी भी सबल होऊँ; मगर मर्दों से होड़ नहीं ले सकती!

दोनों बैठ गये, एक छतनार बटवृक्ष की छाया में। रंगा बैठ गया पलाथी मारकर हरी दूध पर : मगर लाली बैठ न सकी, वह चित्त होकर लेट गई, रंगा की जाँध पर सिर रखे। और तब रंगा ने अनुभव किया कि नारी-

आकृति में जो सुकुमारता है, जो चारुता है, वह कितनी शाश्वत, कितनी आकर्षक और कितनी आणमयी है ! लाली काफी थक गई थी। उसका दम फूल रहा था। वह जोर-जोर से साँस ले रही थी।

मगर रंगा खुले आकाश की ओर देख रहा था, देख रहा था कि शुक्रतारा कहाँ से कहाँ आ पहुँचा है ? वह सोच रहा था कि शायद दो बज रहे होंगे। अभी ढाई कोस से अधिक नहीं आये होंगे और उन्हें जाना है-अब भी पाँच कोस से ज्यादा? और रात रह गई सिर्फ तीन घंटे! फतहपुर स्टेशन!

और फतहपुर की याद रात ही उसे वह भी स्मरण हो आया कि उसके पास किराये के लिए पैसे हैं कहाँ? एक नहीं-दो-दो आदमी.... किराया? रंगा के मँह से एक गहरी आह निकल गई और लाली ने उस आह में पाया कि रंगा जाने क्यों चिंतित हो उठा है! आखिर, कौन-सो चिन्ता हो सकती है? मगर चिन्ता?

लाली अपने-आप में हँस पड़ी। उसने रंगा का हाथ अपने हाथ में लेकर पूछा -क्या सोचते हो, रंगलाल !

-कुछ नहीं तो, भाभी!

-कुछ नहीं ! -लाली हँस उठी--यह कैसे हो सकता है कि कुछ नहीं सोचो और आप-से-आप आह कढ़ जाय! आखिर कहो भी तो कुछ, शायद मैं उसे सुलझा सकूँ।

-सचमुच? क्या सुलझा सकोगी, भाभी ?

-कैसे नहीं सकूँगी ? अब हमदोनों के सिवा तीसरा है कौन, जो सुलझाने को आये। आखिर कहो भी तो!

-सोच रहा था कि फूटी कौड़ो तक तो पास नहीं, फिर आगे कैसे बढ़ा जाय!

-ओह, समझा इसीलिए तुम घबरा रहे थे, रंगलाल ! लाली खिल-खिलाकर हँस पड़ी और हँसते हुए ही बोली-क्या मेरे गले की हँसुली और कान के सोने से काम नहीं चल सकता?

-मगर तुम्हें .....-हाँ-हाँ, बोलो, चुप क्यों रह गये ? कहो न - मगर तुम्हें नंगी कैसे करूँ यही न!

-तो क्या यह कहना मेरा अन्याय होता?

-अन्याय क्यों नहीं होता, बेशक होता! तुम क्या समझते हो कि मुझे इन दस-पाँच टके के गहने पर मोह है? तुम ऐसा न सोचो, रंगलाल! इन गहनों की तो विसात ही क्या, वक्त पड़ने पर.....समझते हो रंगलाल, तुम औरत को नहीं पहचानते, वह जिस काम को ठान लेती है, उसके लिए न जान उनकी महंगी है, न इज्जत महंगी है-न और कुछ.....वह सब कुछ कर सकती है, उसके पास एक-से-एक हथियार तैयार है, चाहे जब जिससे वह काम ले.....रंगलाल, तुम इतनी-सी बात लेकर घबरा रहे हो, फिर आगे का रास्ता तुम कैसे तय कर सकोगे ?

रंगा ने लाली को दर्द भरी बातें सुनीं, वह अपने-आपमें लजा-सा गया और लजाते हुए ही बोल उठा-तय कर लूँगा भाभी, जब तुम मेरी रहनुमा बनी हो। मैं उस शक्ति को पहचानता हूँ, भाभी! मुझे उसी शक्ति का ही तो भरोसा है। पुरुष का पौरुष उसी शक्ति को पाकर जागरूक होता है....और मैं उसी शक्ति को.....

-इतना न बढ़ो, मेरे देवर, तुम अपनी भाभी को अभी से इतने आसमान पर न चढ़ाओ.....तुम्हारी भाभी धरातल की रहनेवाली है, जिस पर तुम रहते आ रहे हो, दुनिया रह रही है, उससे न कम, न ज्यादा और तुम्हारी भाभी वहीं रहना चाहती है.....

-जो सच है, वह सब समय के लिए सच रहेगा भाभी! मैं तुम्हें आसमान पर चढ़ाने की शक्ति नहीं रखता। यदि मुझे वह शक्ति होती, तो शायद उससे भी ऊँचे स्तर पर तुम्हें बैठाकर तुम्हारी आरती उतारने में सुख का ही अनुभव करता.....

लाली विहंस पड़ी और आवेश में आकर उसका हाथ जोर से दवाते हुए बोली-बहुत हुआ, बहुत हुआ रंगलाल, मेरी आरती उतारना-इसके सिवा तो तुम्हें कुछ करने को रही क्या गया है !

लाली भीतर से कुछ रुष्ट हो उठी थी, वह संभलकर उठ बैठी। रंगा से यह छिपा न रह सका ! वह अपने आपमें सिकुड़कर संकोच से बोल उठा भाभी...ऐसा मैंने कुछ कहा तो नहीं कि तुम रंज में आ जाओ....क्या सच को सच...

-रहने दो सच को....अभी उसकी ज़रूरत नहीं है। मगर यह तो कहो, इसी तरह बैठे-बैठे रात खत्म कर डालोगे या रास्ता भी नापोगे?

-तुम थक गई थीं न ।

-हाँ, थकी थी; मगर अब तो दौड़ लगाने को काफी हूँ-दौड़ोगे ?  
रंगा दौड़ने का नाम सुनकर खिलखिलाकर हँस पड़ा, और हँसते हुए बोला-दौड़ सकोगी भाभी ?

-खैर, आजमा हो लो न ! उठो, चलो, हमलोग सड़क पर आवेन्टवे दौड़ लगाओ, हो तैयार....

-हार मानी भाभी ! मैं दौड़ लगाने को तैयार नहीं; हाँ, तेजी से चलो, तो चल सकता हूँ।

-बड़े फिसड़ो हो, रंगलाल !

लाली हँस पड़ी, फिर उसका हाथ खींचते हुए उठ खड़ी हुई और दोनों साथ-साथ चल पड़े।

और दोनों तेजी के साथ अपने पथ पर बढ़ चले ! रंगा ने इसबार पाया कि उसकी भाभी उसका साथ मजे में देती आ रही है.....दोनों चल रहे थे-दोनों में उत्सुकता थी कि कितनी जल्दी वे दोनों स्टेशन पर पहुँच सकें! इस तरह चलते-चलते पथ का बीहड़ हिस्सा निकल चुका था, अब जो सामने था-वह सड़क थी और उसके दोनों ओर थे विस्तृत मैदान बीच-बीच में हरे-भरे खेत.....गाछ-वृक्ष.....

लगातार चार कोस तक एकरस चलते रहने के बाद दोनों परेशान हो गये थे; पर न तो रंगा मुँह खोलकर अपनी कमजोरी प्रकट कर सका और न लाली ही एक शब्द बोल सकी.....

और कुछ दूर बढ़ने पर उन दोनों ने देखा कि वे लोग जहाँ आ पहुँचे हैं, वहाँ एक पुल है, जिसकी दोनों ओर टिकाव है और पुल के नीचे धीरमंथर गति में बहती हुई नदी !

और उस नदी को देखते ही लाली बोल उठी-यहाँ पर कुछ देर ठहर लिया जाय, रंगलाल ! आगे फिर कहीं पानी मिले या नहीं ! पास में लोटा भी तो नहीं है !.....क्या ?

हाँ, भाभी, ठीक तो है य मगर पुल पारकर उसपार चला जाय, और

वहीं निपट लिया जाय ।

और दोनों उसपार जाकर प्रातः कृत्य में सन्नध हुए ।

कोई पंद्रह-बीस मिनट के बाद, मँह-हाथ धोकर निश्चित होते ही, उन दोनों ने अनुभव किया कि रास्ते की थकान बहुत-कुछ दूर हो गई है; फिर भी कोसभर जमीन और तय करने को बाकी है और अब पौ फटने-फटने को ही है, यहाँ ठहरना ठीक नहीं; अभी ठिकाने से चलने पर सुबह की गाड़ी मिल जायगी। शायद न भी मिले तो कोई हर्ज नहीं, वहीं कहीं ठहरकर आराम तो कर ही लिया जाना चाहिए और ऐसा तय पाकर दोनों चल पड़े। अब रास्ते पर इक्के-दुक्के बटोहियों को भेट भी होने लगी य कुछ गाड़ियाँ-कुछ खाली, कुछ माल से लदी और कुछ सवारियाँ-रास्ते पर दीख पड़ने लगीं। मगर ये दोनों जिस गति में बढ़े चले जा रहे थे, उसी तरह चलते ही रहे।

अब प्रभात की ठंडी-ठंडी हवा उन दोनों की थकान को हलका कर रही थी, दोनों को चलने में काफी स्फूर्ति थी, काफी उमंग थी।

मगर ज्योंही स्टेशन के पास वे दोनों जा पहुँचे, देखा कि गाड़ी लगी हुई तो ठीक है; मगर गार्ड सीटी बजाते हुए हरा झंडा दिखला रहा है! और लो, अब तो गाड़ी भी तेज सीटी देते हुए चल पड़ी। वे दोनों थकान, क्लेश और क्षुधा-पिपासा से बहुत अधिक व्यस्त हो पड़े। जैसे रास्ते की सारी थकान पूँजीभूत हो उठी हो।

और दोनों के लिए निकट की धर्मशाला में आश्रय ढूँढ़ने के सिवा और दूसरा चारा ही क्या रह गया था! दोनों एक-दूसरे की ओर कुछ देर देखता रहा, फिर दोनों बढ़ चले।

### (सताईस)

सुनसान बयावान जगह में फतहपुर का स्टेशन, पास में स्टेशनमास्टर का छोटा-सा रहने का पक्का मकान, कुछ दूरी पर दो-तीन छोटी-छोटी दुकानें—स्टेशन के सामने पक्का इनारा और कुछ दूरी पर एक छोटी-सी जन शून्य धर्मशाला-शायद एक-दो बटोही-एकाध कमरे में अंगोछा बिछाए लेटे पड़े हैं और बाहर के बरामदे पर दो-एक भिखारी डेरा डाले पड़ा है।

और उसी धर्मशाला के कोनेवाले कमरे में रंगा और लाली थके-मांदे आकर अपने शरीर का अवसाद मिटाने को आश्रय लिये हुए हैं! लाली अनमनी होकर कमरे की खुली खिड़की से बाहर की ओर जाने क्या देख रही है और रंगा उससे कुछ दूरी पर-पक्के की सहन पर चित्त लेटा हुआ है! वातावरण शांत, धूमिल.....

बड़ी लाइन का छोटा-सा फतहपुर का स्टेशन। जाने कितनी मेल, कितनी एक्सप्रेस गाड़ियाँ दोनों ओर से आई-गई, पर वे रुकी नहीं; जिस गति में आई, उसी गति में वे चली भी गई! स्टेशन मास्टर कार्य में व्यस्त रहा और उसके सिवा शायद भूले-भटके दो-एक आदमी आये गये; पर लोगों का जमघट किसी भी दशा में दीख न पड़ा ! उधर वे दोनों अपनी समाधि में उसी तरह तल्लीन रहे, न कोई बातचीत, न कुछ अंग-संचालन.....

मगर मानव-प्रकृति की यह बिडच्चना है कि वह निर्जीव रहना नहीं चाहती--वह नीरवता को पसंद नहीं करती। आखिर मनुष्य तो पथर है नहीं, वह सामाजिक जीव है, वह किसी का आश्रय लेकर जीना और बढ़ना चाहता है। वह बोलने और सुनने-सुनाने के लिए साथी की खोज लगाता है, चाहे वह साथी सजातीय हो, चाहे पशु और चाहे और कुछ। वह किसी और के साथ अपने को फंसाकर रखना चाहता है, भुलाकर रहना चाहता है; क्योंकि इसमें उसे सुख मिलता है। क्योंकि इस तरह वह शांति उपलब्ध करता है।

मानव-जीवन के दो स्तर हैं-एक बाह्य-संसार, जिसमें मनुष्य अपने सुख-दुख को झेलता है, जिसमें मजदूरों को दिनभर धूप में पड़े-पड़े पथर तोड़ने पड़ते हैं, जिसमें ड्राइवर को अविश्रांत इंजिन चलानी पड़ती है, जिसमें चोर-डाकुओं को अपनी आत्म-मर्यादा का हनन करके दूसरों का घर घुसना-लूटना पड़ता है और जिसमें गृह-स्वामी को अपने आश्रितों के भरण-पोषण के अवहनीय भार को दिन भर ढोना पड़ता है-इस बाह्य संसार में जबकि कर्म का बंधन इतना जबर्दस्त है, तब शांति की आशा कैसे रखी जाय! पर नहीं, उसके जीवन का वह दूसरा स्तर भी है, जिसे कल्पना-जगत कहते हैं! और उसी कल्पना-जगत का आश्रय लेकर मनुष्य अपनी व्यथा को हलका करता रहता है। वहीं उसे प्रेरणा मिलती है, वहीं वह अपनी खोई हुई शक्ति को फिर

से अपने में भरने के लिए उद्यत होता है और उसी जगत में उसे पूर्ण शांति भी मिलती है !

और खाली उसी कल्पना लोक में आकर उसी शांति की छाया में अपने को डालकर शक्ति-संचय करने में उद्बुद्ध हो उठी है। उसका बाह्य संसार उससे तिरोहित हो गया है, वह भूल गई है कि वह कहाँ है, क्यों कर आ सकी है वहाँ- -क्या उद्देश्य है उसके सामने ? वह सब कुछ एक-एक कर खो-सी रही है। उसके सामने से उसका पति हट गया है, उस पति के सहवास में वह जो कुछ मधु और तिक्त का आस्वाद पा सकी थी वह आस्वाद नष्ट हो चुका है; उसकी गृहस्थी, उसका समाज, उसका संसार एक-एककर उसकी आँखों से आज ओझल हो रहा है य वह दूर-बहुत दूर निकल गई है, जहाँ वह देखती है कि रंगा एक ओर से मुस्कराता हुआ आ रहा है, वह देख रही है कि वह राजरानी के रूप में पलंग पर लेटी मधुरस्वप्न को सृष्टि में तल्लीन है, वह देख रही है-वह सोच रही है-वह पा रही...ओह, यह स्वप्न-वह स्वप्न !

मगर रंगा? वह रंगा जिसकी सृष्टि विषाद-वन्या के आवर्त में हुई है, जिसे दुख-दैन्य से निरंतर युद्ध करना पड़ा है, कल्पना-लोक तक आखिर उसकी पहुँच कैसे हो! उसने तो केवल बाह्य संसार को ही अब तक झेला है और अब भी वही झेल रहा है। उसने गाड़ियों का आना-जाना सुना है, उसे याद है कि उसकी गाड़ी पाँच बजे संध्या के पहले आयगी नहीं, वह क्षण-क्षण को खोते हुए अब उस क्षण में पहुँच गया है, जब उसकी जठरानि धू-धकर जल उठती है और वह सोच रहा है कि वह अग्नि-शिखा आखिर शांत कैसे हो ! वह तो आज निःस्व है, निःसंबल है.....

और वह रंगा अधिक न ठहरकर अचानक पुकार उठा-भाभी ! और भाभी कल्पना-लोक से तुरत नीचे उतरकर बोल उठी- क्या है रंगलाल !

-गर्मी ज्यादा है भाभी, मैं जरा बाहर से हो आता हूँ, तुम ठहरो! गर्मी ज्यादा है ?-लाली ने विस्मित होकर कहा-क्या कहते हो रंगलाल ! इतनी काफी हवा बह रही है, फिर भी तुम कहते हो कि गर्मी ज्यादा है !

-क्या ज्यादा नहीं है, भाभी?

.-शायद होगी; मगर मैं तो ऐसा नहीं समझती.....

-खैर, जरा घूमकर बाहर की हवा लगा पाऊँ? ज्यादा देर न करूँगा  
.....अभी आता हूँ.....

और रंगा बाहर की ओर निकल पड़ा।

मगर रंगा अभी जा भी नहीं सका था कि भीतर से लाली ने  
पुकारा--रंगलाल !

-क्या है?

जरा भीतर भी आओ भले आदमी; बाहर से ही बातें करोगे?

और रंगा भीतर गया, उसने पाया कि लाली मुस्कराती हुई कुछ  
बोलना चाहती है। वह उसकी ओर टकटकी बाँधे खड़ा हो रहा।

लाली ने उसकी ओर देखा और वह बोल उठी-रंगलाल, क्या देख  
रहे हो इस तरह! क्यों भौचक्का-सा हो रहे हो ?

रंगा को ये कुछ वाक्य अटपटे-जैसे जान पड़े। वह जिस आशा से  
लौटकर भीतर आ खड़ा हुआ था, उसमें व्याधात-सा जान पड़ा और बोल  
उठा-भौचक्का तो नहीं हूँ, भाभी ! तुमने बुलाया, मैं लौट पड़ा। क्या यही  
कहने को बुलाया था भाभी? सच कहो-यही कहने को बुलाया था?

लाली खिलखिलाकर हंस पड़ी और हँसकर बोली-क्या आज निराहार  
ही कटेगा, या कुछ फलाहार, या अन्नाहार भी करोगे? क्या करना चाहते हो?  
यही जानने को मैंने तुम्हें बुलाया था! बोलो, भूख लग रही है! रंगा असमंजस  
में पड़ गया। वह तो स्वयं जठरामि की ज्वाला से दग्ध हो रहा है। मगर  
उसके पास वह साधन है कहाँ, जिससे वह अपनेको शांत कर सके! वह क्या  
कहे भाभी को? वह चुपचाप खड़ा रह गया; मगर बोला कुछ नहीं।

मगर लाली ने उसे संभाल लिया। उसने कमर से एक छोटी-सी  
पोटली निकालकर उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा-लो इसे रंगलाल, जानो  
बाहर, कुछ खाने-पीने का तुरन्त जुगाड़ कर डालो.....आखिर दम रोककर तो  
रहा नहीं जा सकता! बाहर में तुम्हें हवा भी लगेगी और कुछ खाने का भी  
इन्तजाम कर सकोगे, क्यों?

और रंगा ने पोटली को हाथ में लेते समय पाया कि उसमें कुछ ठोस  
द्रव्य है, जिसे वह बड़ी जतन से लेते आई है ! मगर, इतने की अभी जरूरत

ही क्या है? वह बोल उठा -इसे रख लो भाभी, अपने पास। हाँ, इससे कुछ पैसे निकालकर मुझे दे दो -कुछ ही से अभी काम चल जायगा।

-रहने दो उसे अपने पास, तुम्हारे साथ ही उसका रहना अच्छा है। जितने की जरूरत समझो, निकाल लेना.....मगर, देखना, खाने की चीजें इतनी कम न लाना कि अधिपेटा ही रह जाना पड़े.....

लाली बोलते-बोलते हँस पड़ी। रंगा विना कुछ बोले बाहर चला गया।

वह उस छोटे-से बाजार में घूमा, स्टेशन आया-प्लेटफार्म पर कुछ देर तक घूमता रहा, और लौटने के समय अपने को बिलकुल एकान्त पाकर उसे पैसे गिनने का लोभ संवरण न हो सका। उसने धीरे से पोटली खोली और देखा कि तीन रुपये, पाँच अठन्नियाँ, आठ चौबन्नियाँ, ग्यारह दुअन्नियाँ, सात इकन्नियाँ, बीस ताम्बे के पैसे और पाँच धेले हैं! रंगा अपने-आप में खिल उठा। उसने फिर से गिनकर जानना चाहा कि आखिर ये कितने हैं और पाया कि उतने से रास्ते का बहुत-सा हिस्सा तय हो सकता है। शायद वह जहाँ जाना चाहता है, उतने से वे दोनों मजे में पहुँच सकते हैं। वह खुश हो गया। उसने वह पोटली ठीक से बाँधकर कमर में खोंस ली। उससे कुछ पैसे और धेले निकालकर बाहर रख लिये और दूकान की ओर बढ़ चला। दूकान पर जो भी चीजें खाने को थीं-सभी बासी-कई दिनों को तैयार का हुई-आखिर वह क्या खरीदे? उसने देखा कि चूड़ा अच्छा और हाथ का कूटा हुआ है, और देखा कि लम्बे-लम्बे खीरे अभी-अभी जैसे तोड़कर लाये गये हैं! उसने उन्हीं चीजों का भाव-मोल किया और उन्हें ही खरीद कर अपने अंगों में अच्छी तरह बाँधकर धर्मशाला की ओर चल पड़ा।

लाली उस समय खिड़की के सामने खड़ी होकर शून्य क्षितिज की ओर जाने क्या देख रही है। कबसे देख रही है - उसे भी नहीं मालूम; पर ज्यों-ही रंगा ने बाहर से हड्डबड़ाये हुए आकर कहा- -देखो, भाभी, कुछ मिला नहीं, खीरा और चूड़ा ले आया हूँ, त्यों ही वह अपने-आपमें पहुंचकर चिह्नक उठी- -क्या खीरा और चूड़ा ले आये? अच्छा ही किया, चूल्हे जलाने की नौवत तुमने भाभी पर आने न दी। जानती हूँ रंगलाल, तुमने मेरा काम हल्का करने की गरज से अधिपेटा रहने को ठाना, क्यों ?

रंगा ने भाभी के हृदय में पैठने की कोशिश न की। उसने उसके प्रश्नों के उत्तर में कहा-सो बात नहीं है, भाभी, सो बात नहीं है! असल तो यह कि खाने की कोई अच्छी चीजें दीख नहीं पड़ी, चूल्हे जलाने का टंटा कौन खड़ा करे ! किसी तरह पेट भर लेना है। लो, यह गठरी सभालो, मैं लगे हाथ पानी-वानी का इंतजाम किये लेता हूँ।

पानी की बात याद रात ही लाली बोल उठी-मगर लोटा-डोर तो लेना भूल ही गये, फिर पानी आबे तो कैसे ?-यह-सब ला भी कैसे सकता था-रंगा ने कहा-कुछ तो तैयार होकर हमलोग चले नहीं। जाने दो, न लाया तो क्या हुआ, कुएँ पर बाल्टी और डोर पड़ी हुई है। मैं पानी लिये आता हूँ। अभी तो काम चल जायगा, पीछे देखा जायगा ।

रंगा बोलकर बाहर की ओर मुड़ चला। लाली वहीं खड़े-खड़े कुछ निगूढ़ चिन्ता में अनमनी ज्यों-की-त्यों पड़ी रही। जाने उसके मस्तिष्क में कौन-सा चक्र चल रहा था, लाली खुद नहीं जानती। क्यों वह इस तरह अपने-आपमें छोटी होती जा रही है? कौन-सी स्मृति उसके हृदय को मथ रही है बेरहमी से? मगर उसे अधिक कुछ ऐसा अवसर मिला नहीं, रंगा जो बाल्टी भर पानी लिये वहाँ आ खड़ा था!

लाली ने जब सोचकर देखा कि रंगा काम में कितना फुर्तीला है, जरा भी आलस नहीं, जरा भी उलझन नहीं, तब उसे जरा अपने-आप पर ही रंज हो आया। वह जरा आप-ही-आप खिड़ी भी; पर अपनी आकृति पर उसने जरा भी सिकुड़न न आने दी और ओठों पर जरा मुस्कराहट लाकर वह बोल उठी-वाह, पानी भी ले आये! अच्छा ही किया। अब बैठ जाओ, मैं दिये देती हूँ खोलकर ।

और लाली बड़े चाव से अपनी जगह से हिली, उसने सामने रखी हुई पोटली को खोला और फिर वह बोल उठी-बैठ जाओ रंगलाल, मैं दिये देती हूँ। खा लो ।

मगर तुम न खाओगी भाभी ? -वाह ! खाऊँगी क्यों नहीं ? मगर पहले तुम खा लो, पीछे मैं खा लूँगी! -नहीं, सो कैसे होगा! सो कैसे नहीं होगा? क्या तुम मेरा हिस्सा भी खा जाओगे ? -अगर खा ही जाऊँ?

-तो बाजार क्या थोड़े ही बंद हो गया ! -लाली ने हँसकर कहा फिर आ जायगा । मगर इतना थोड़े ही खा जाओगे ?

रंगा को भाभी की बातों से हँसी आ गई और हँसते-हँसते ही बोल उठा- सो बात नहीं है, भाभी ! मुझे अकेले खाने की आदत नहीं है बराबर मैं किसी-न-किसी के साथ खाता रहा हूँ । जब घर पर खाने को होता, तब माँ भी साथ-साथ बैठती । बाहर में जब खाने की बारी आती, तब मेरा कोई-न-कोई साथी जरूर होता । आज तो तुम हो और मैं हूँ ! मैं बैठा-बैठा खाता रहूँ तुम तमाशा देखती रहो-यह मुझे मंजूर नहीं । ऐसा मैं हर्गिज नहीं चाहता !.

तुम्हें भी मेरा साथ देना ही चाहिए ! तुम भी बैठ जाओ, एक साथ न खाओ-कोई बात नहीं; पर अलग-अलग तो दोनों आदमी एक साथ खा सकते हैं ।

लाली कहे तो क्या कहे ! क्यों वह खाने से हटना चाहती थी, रंगा ने न सोचा और न लाली खुद स्पष्ट रूप से जतला ही सकी! बात यह थी कि लाली अब तक पुरुष समाज के सामने बैठकर कभी खा न सकी थी; बरसों का पला संस्कार आज अचानक वह कैसे छोड़े और इसीलिए उसका वैसा आग्रह था; पर लाली ने जब जान लिया कि रंगा यों ही उसे छोड़ने को नहीं, तब वह जरा असमंजस में पड़ी । उलझन सामने थी, पर उसके प्रतिकार में कुछ करते उससे न बना । फिर भी वह बोल उठी-खाओ रंगलाल, मैं तुम्हारे सामने बैठी बातें करती रहूँगी-सिर्फ तमाशा ही देखना मुझे पसंद नहीं । मैं पीछे खा लूँगी ।

-नहीं, नहीं; सो कैसे होगा भाभी ! जब तुमने मेरा साथ दिया है, तब तुम्हें हर हालत में साथ देना ही चाहिए । ऐसी छोटी-छोटी बातों में लाज करोगी भाभी, तो हमलोगों की दुनिया एक दिन भी नहीं चल सकती ! फिर, साथ खाने में लाज ही क्या ? यहाँ दूसरा है ही कौन, जिससे तुम लाज-संकोच करो ! लाली खिलखिलाकर हंस पड़ी और हँसते हुए भी बोल उठी-तुम्हारी सरारत समझती हूँ, रंगलाल, तुम बड़े दुष्ट हो ! देखती हूँ, तुम मुझे अपने तरीके से चलने न दोगे !

-कैसे चलोगी अपने तरीके से भाभी ! जब मेरा और तुम्हारा साथ है, जब मैं और तुम एक ही राह के पथिक हैं, तब अलग-अलग राह पकड़ने

से मुझमें और तुममें कितना अंतर आ जायगा, भाभी ! मैं कहाँ रहूँगा और तुम कहाँ रहोगी ! फिर मेरी शक्ति तुम्हारा बल और सहारा पाकर आज जैसी पैनी हो उठी है, वह क्या शिथिल न हो जायगी ! हम दोनों के सामने जो भी दीवार खड़ी दीख पड़े, उसे ढाहे विना हमलोगों की राह सीधी और स्पष्ट कैसे हो सकेगी, भाभी ! तुम्हें इन उलझनों से ऊपर उठना ही चाहिए। यहाँ न मैं बड़ा और न तुम छोटी ! दोनों बराबर-दोनों एक-से-कोई घटकर नहीं, फिर साथ-साथ रहने में-साथ-साथ खाने में-जो आनन्द आयगा, वह दूसरी जगह कहाँ मिलेगा, भाभी ! आज भगवान को धन्यवाद है कि यह कुछ भी खाने को मयस्तर हुआ; मगर जब एक दिन यह भी सपना हो जायगा, तब फिर एक साथ रहने का जो सम्मिलित आनंद है, उसीका तो सहारा रहेगा और उसी सहारे पर ही तो हम दोनों की दुनिया टिकेगी ! क्या अब भी तुम कुछ सोच रही हो, भाभी ?

रंगा ने अपना सिर उठाया और देखा कि लाली नीचे की ओर आँख गढ़ये बैठी है ! पर लाली ने उतने हो क्षणों में अपने को पूरी तरह तैयार कर लिया और वह बोल उठी - सोचने-समझने को ही अगर कुछ रहा होता रंगलाल, तो फिर मैं साथ देती कैसे ? जानती हूँ, जो दुनिया हमारे सामने थी, वह आज नहीं है; आज जो दुनिया है, वह सिफ मेरी नहीं है, तुम्हारी भी है। फिर मेरा अकेला रह क्या गया ? खैर, बातें तो होती ही रहेंगी। इनका कब अंत होने को है ! मगर भोग तो लगाओ मेरे देवर ! मैं जरा मुँह-हाथ धोकर बाहर से आती हूँ।

और लाली ने बाल्टी उठाई और बाहर बरामदे पर आकर मुँह-हाथ धोया और अंदर आकर हँसती हुई बोली-लाओ, मेरा हिस्सा !

रंगा ने खुशी-खुशी उसकी ओर सारी पोटली बड़ा दी ! लाली ने उसमें से थोड़ा निकालकर अपने अंचल में ले लिया और दोनों अलग-अलग खाने को बैठ गये।

(अठाइस)

रंगा जिस उद्देश्य से घर छोड़ा, अपने साथ लाली को लेकर बाहर निकल पड़ा, उसने कभी महसूस न किया कि बाहर उसे किन मुसीबतों का सामना करना पड़ेगा। उसकी जिंदगी में यह पहला मौका था कि वह शहर में आया। शहर के संबंध में उसने सुन रखा था कि जिसे दिहात में कोई रोजी-रोजगार नहीं मिलता, उसे शहर में विना किसी प्रयास के, नौकरी मिल जाती है, या कोई रोजगार लग जाता है और जो जितना ही खट सकता है, वह उतना ही कमा सकता है। रंगा को अपने आप पर विश्वास था और उसने मगर जैसा कुछ सुन रखा था, उससे उसका विश्वास और भी पुष्ट हो चुका था; रंगा अपने पथ पर ज्यों-ज्यों बढ़ता जाता, त्यों-त्यों कठिनाइयाँ सामने आती जातीं और उन कठिनाइयों में वह पाता कि रुपया कमाना इतना आसान नहीं, जितना वह पहले से समझता आ रहा था। फिर भी वह अपने को सँभालता ही चला। क्योंकि अपनी भाभी के सामने कभी वह झुका नहीं, झुकना उसने जाना नहीं और जबकि उसी का साथ देने के लिए उसकी भाभी भी आ जुटी है, तब वह अपनेको उसके सामने छोटा कैसे करे! स्त्रियों के सामने कौन ऐसा पुरुष है, जिसने अपनी हार स्वीकार की है!

मगर लाली?

हाँ, लाली की दशा भी रंगा से कुछ अच्छी नहीं कही जा सकती! फर्क सिर्फ इतना ही है कि रंगा जिस तरह भीतर और बाहर से एकरस दीख पड़ता, लाली वैसी नहीं कर पाती! उसके भीतर चाहे जैसी हलचल मची हो, पर वह बाहर उसे व्यक्त नहीं कर पाती! क्योंकि वह समझती थी कि बाहर व्यक्त कर देने से वह कोई लाभ अपने देवर रंगा को न पहुँचा सकेगी। और जब अपनी कमजोरियों को सामने लाकर वह न तो अपने-आपको फायदा पहुँचा सकती है और न रंगा को ही, तब वह व्यर्थ का ऐसा आयोजन करे ही क्यों? वह अपने सामने रंगा को देख रही है देख रही है कि वह रह-रहकर काफी खिन्च हो उठता है, देखती है कि उसके ओठ सूख-से रहे हैं, उसके ललाट पर सिकुड़न उभर आई है; उसके चेहरे पर ताजगी नहीं, आँखों में हँसी नहीं और पूछने पर जो कुछ वह बोल सकता है, उसमें कोई रस नहीं, और शायद उसमें उतनी सच्चाई भी नहीं। लाली समझती है कि जो रंगा कभी

ऐसा देखा नहीं गया, जिस रंगा की हँसी टोले महल्ले को हरा किये रहती थी, वह रंगा आज रुक-रुककर बातें करता है। वह रंगा बोलने के समय अपनी आँखों से आँखें मिला नहीं पाता और सच तो यह कि इतने ही कुछ समय में वह कितना पीला पड़ा जा रहा है-लाली महसूस करती रही; मगर इन सब बातों का प्रतिकार हो आखिर कैसे? जो कुछ जमा-पूजी वह जुटा पाई थी, उससे वे दोनों सिर्फ हवड़ा तक आ पाये। अब तो दो दिन मुसाफिरखाने के कोने में ही यों ही कट गये। मगर इस तरह और के दिन कर सकेंगे। इतना बड़ा शहर-इतनी लोगों की भीड़, इतना कोलाहल, इतनी सरगर्मी, वे दोनों कहाँ जाकर टिके, कौन-सा रोजगार पकड़े और किस तरह अपनी रोटी का हिला जुटावें-ये सब कम उलझन की बातें नहीं हैं! लाली सोचती है, शायद रंगा भी सोच चुका होगा; मगर समाधान सामने न पाकर रंगा चुप है, लाली भी चुप है !

मगर लाली भीतर से चुप नहीं है। वह सोच रही है कि जिस परिस्थिति में वह घर से बाहर आने को तैयार हुई और रंगा ने जिस परिस्थिति में उसका साथ दिया, अब वह अपने में उस बल का प्रभाव पाती है और वह यह भी पाती है कि उसका लौट चलना कुछ आसान बात नहीं है। लाली जानती है कि पुरुष स्वतंत्र है; वह हिलडुल सकता है, उधम मचा सकता है, शैतानियत कर सकता है, दूसरों को लूट सकता है, फिर भी वह पुरुष का पुरुष ही कहलायगा, उसके नाम के साथ कलंक का गठजोड़ा नहीं हो सकता; मगर वही औरत के लिए कलंक का कारण हो सकता है! क्योंकि वह स्वतंत्र नहीं, उसे हिलने-डुलने का अधिकार नहीं, वह ऊधम नहीं मचा सकती, धमाचौकड़ी उसके लिए शोभा की बात नहीं, और शैतानियत ? हरे हरे! वह राक्षसी करार दे दी जायगी-और शैतानियत ? औरत और शैतान! . . . लाली इसके आगे सोच नहीं पाती; मगर.....नहीं.....उसे ऐसा सोचना चाहिए ही क्यों? रंगा का ही तो दोष नहीं है इसमें! वह खुद, रंगा को एक दिन कह चुकी थी-दूँगी-दूँगी मैं तुम्हारा साथ। और उस रंगा को इसी एक बात से शक्ति मिली, उत्साह मिला और उसका परिणाम यह रहा कि आज रंगा उसके सामने न हंस रहा है, न बोल रहा है। उसमें न उमंग है और न

हौसला ! जैसे उसकी हिम्मत प्रश्न हो चुकी है, जैसे उसकी भावना कुंठित हो चुकी है! क्या रंगा को इस हालत में वह वापस लौट जाने को कहे? क्या वह उस रंगा को अकेला, चाहे जिस तरह निपटे, छोड़कर चली जाय? आखिर, कौन-सा सुख धरा रखा है वहाँ, जिसे पाने को वह व्याकुल हो उठे! उसका पति?.....निकम्मा आदमी, पौरुष-हीन, धोखेबाज, जिसके सामने अस्मत की कोई कीमत नहीं! उससे हीजड़े लाख अच्छे! उन्हें कोई क्यों दोष दे! क्योंकि वे तो खुद हीजड़े पैदा ही हुए हैं। मगर मर्द होकर हीजड़े बनना ....नहीं लाली उसे क्षमा नहीं कर सकती। लाली पौरुष पसंद करती है, खुद पौरुष दिखलाना चाहती है। वह दिखाना चाहती है कि देखो, स्त्रियाँ भी कुछ कर सकती हैं! और तभी तो वह संसार से अनभिज्ञा होकर भी संसार से अनभिज्ञा, मगर उमंग में मतवाले रंगा का साथ देने को निकल पड़ी है.....

लाली यहाँ पहुँचकर रुक सी रही, और रुकते ही उसकी दृष्टि स्वभावतः रंगा तक जा पहुँची और उसने पाया कि रंगा भागीरथी की ओर देख तो रहा जरूर है, मगर उसकी दृष्टि शून्य हो उठी है! जैसे वह देखकर भी कुछ देख नहीं रहा है ! मानसिक कठिनाइयों और उलझनदार गुथियों के सामने दृष्टि का यह व्यापार अनिवार्य है! आखिर आँखें तो देखती नहीं, जो देखने वाला है, अगर वह खुद प्रेरणा है, खुद अपनेको छिपाकर रखना चाहता है, तो वहाँ दूसरा है कौन जो देख सके ! लाली बड़ी देर तक सोचती रही, फिर अचानक बोल उठी-क्या देख रहे हो रंगलाल ?

और रंगा की दृष्टि उस ओर से मुड़ी और मुड़ते ही उसकी आँखें अपनी भाभी की आँखों से टकरा गई। रंगा के ओढ़ों पर आपसे-आप मुस्कराहट दौड़ गई और उसी मुस्कराहट में से छन कर निकला-क्या, कुछ तो नहीं भाभी!

रंगा क्षणभर के लिए रुका, फिर वह आप ही बोल उठा-भाभी, तुम्हें यह कलकत्ता शहर कैसा लगता है ?

-मेरे लगने, न लगने से क्या होता है, रंगलाल ! मैं कहूँ अच्छा, तो क्या यह अच्छा हो जायगा और मेरे बुरा कहने से बुरा ?

-यह तो अलग बात है भाभी ! चीज चाहे अपने-आपमें जैसी हो, उसका अपना एक वजन है। और वह वजह हर हालत में एक-जैसा रहेगा ही। पर इतनी-सी ही बात नहीं है; उसपर व्यक्तिगत राय भी ली ही जाती है, और कभी-कभी वह राय उस चीज को चाहे तो ऊपर उठा सकती है चाहे नीचे गिरा सकती है ! खैर, मैंने तो इसलिए पूछा-चूकि मैं जानना चाहता था-आखिर, कलकत्ता तुम्हें पसंद लग रहा है या नहीं !

-अच्छा ही है, झूठ क्यों कहूँ; मगर तुम अपनी तो सुनाओ! तुम्हें..

-मुझे ! मुझे क्या, मेरे लिए भी यह कुछ कम आकर्षक नहीं! देखो, भाभी, सच तो यह कि यहाँ के आदमी कितने फुर्तीले, कितने चंचल, कितना खटनेवाले दीख रहे हैं! कोई एक क्षण के लिए भी रुकता नहीं, कोई किसी की सुनता नहीं और आखिर, किसीकी कोई सुने ही क्यों ? सबको अपनी-अपनी पड़ी है! खूब कमाओ, खूब खाओ। यहाँ ऐसा ही होता है! एक देहात है, जहाँ लोग फितूर बाँधा करते हैं बैठे-बैठे! जहाँ दो जने बैठे, वहाँ किसी तीसरे की बात चल पड़ी! चाहे कोई अच्छा चले, तो चरचा; बुरा चले तो चरचा! कैसे आदमी बसते हैं देहातों में! मगर यहाँ देखो-देखो, जैसे आदमी का समंदर उमड़ता आ रहा है ! देखो, उसे एक मिनट के लिए आराम नहीं! इतनी भीड़! मगर सब अपने-अपने में मुस्तैद य कोई किसीको नहीं छेड़ता, कोई किसी को जानना नहीं चाहता। यहाँ जो जितना बढ़ना चाहेगा, बढ़ेगा। कोई रुकावट नहीं, कोई बिगड़नेवाला नहीं। मुझे तो लगता है कि हमलोग जरूर एक दिन यहाँ कामयाब होंगे। नहीं भाभी, तुम क्या कहती हो?

लाली रंगा के उत्साहपूर्ण वचनों को सुनकर जो कुछ कहा चाहती थी, भूल बैठी और वह खुद काफी उत्साहित होकर बोल उठी-ठीक कहते हो, रंगलाल! हमलोग एक दिन जरूर कामयाब होंगे। यहाँ तो अपनी नींद से सोना और अपनी नींद से जागना है! कोई क्यों रुकावट डाले ? किसको यहाँ इतनी गरज पड़ी है कि वह दूसरों के लिए रुका रहे! लाली कुछ क्षण तक रुकी रही, फिर उसके बाद बोली-मगर, तुम्हें विश्वास है कि हमलोग कामयाब होंगे, रंगलाल ?

-विश्वास ?-रंगा ने अपने गले पर जोर डालते हुए कहा-इतना जन्द विश्वास जाता रहेगा, भाभी, यह क्या कहती हो? जरा-सा खटका पाकर ही विश्वास चलता बने ! आखिर उसे भी विश्वास ही कहोगी, भाभी ..

लाली इसबार हँस पड़ी, और उस हँसी में रंगा ने भी योग दिया। कुछ क्षणतक, लगा, जैसे उनदोनों के सिर से मुसीबतों का बादल टलसा गया हो।

इसके बाद रंगा आप-ही-आप बोल उठा-मगर इस वक्त हमलोगों के सामने जो मुसीबतें हैं, वे साधारण नहीं हैं, भाभी! मैं सोच रहा हूँ कि कैसे वे मुसीबतें टलें। आखिर, काम का कोई जुगाड़ लगे बगैर कैसे काम चलेगा? फाकाकसी कबतक चलती रह सकती है? मैं यही सोच रहा हूँ और सोचकर पाया है कि कल तो कुछ-न-कुछ राह निकल ही आयगी। जो काम सामने आ जायगा, उसे करने में कौन-सी आना-कानी! पढ़ा-लिखा तो कुछ ज्यादा नहीं कि बड़ी-से-बड़ी नौकरी लगेगी, काफी तनखाह मिलेगी, मजे की जिंदगी गुजरेगी; मगर इतना मैं जानता हूँ कि मजे में जिंदगी गुजरने का मानी रुपया ही सिफ्फ नहीं है। फिर भी हमें तो रुपया ही चाहिए ! क्या भाभी, कह सकती हो, रुपये ही चाहिए कि और कुछ?

रंगा बोलते-बोलते खुद हँस पड़ा और लाली भी अपने को न जप्त कर सकी, बोली-और कुछ का मानी तो मैं नहीं जानती हूँ, रंगलाल ! हमलोग रुपये के लिए निकले हैं और इसलिए कि जिन रुपयों के चलते आदमी आदमी को नहीं पहचानते, उन रुपयों से हमलोग आदमी को आदमी तो बनायेंगे ही, ऊपर से कोशिश तो यह रहेगी कि पशु भी आदमी बनने लग जाय। मगर, यह काम जितना आसान हमलोग समझ रहे हैं, देखती हूँ कि उतना आसान नहीं! फिर भी उम्मीद है और इसलिए उम्मीद है कि तुम काफी मुस्तैद आदमी हो, तुम में उमर्गें हैं, काफी सोच सकते हो, काफी बद्राश्त कर सकते हो। सच तो यह कि मैं खुद घबराई थी, तुम्हें फाकाकसी करते देखकर मुझे बड़ा दुख हो रहा है। मगर अभी तुम्हारी बातों से मैं बहुत खुश हुई। उम्मीद है कि भगवान कल कोई-न-कोई राह पर ला ही देंगे।

रंगा भाभी की बातों से बड़ा उत्साहित हुआ और उसी उत्साह में वह बोल उठा-हाँ, सो तो होगा ही भाभी ! यों भूखे-प्यासे की वह न खबर लेंगे,

तो कौन लेगा ! आज तो कुछ करते-धरते बना नहीं, सोचने में ही सारा दिन बीत गया । मुझे दिन भर सिर्फ एक ही चिन्ता सताती रही और वह यह कि मुझे अपने लिए तो कोई परवा है नहीं, भूखे-प्यासे भी दिन काट सकता हूँ; मगर मेरे चलते तुम्हें भूखे रहने की मुसीबत बद्राशत करनी पड़ेगी । यह मुझे नहीं रुचता । देखता हूँ मेरे चलते तुम्हें बड़ी तकलीफ हो रही है । दुख है मुझे, तो केवल इतना ही ।

रंगा बोलकर चुप हो गया । उसके मुंह पर उदासीनता की रेखा खिंच आई । उसने एक गहरी आह ली, फिर वह दूसरी ओर देखने लग गया । लाली ने उसकी आह सुनी, उसकी ओर उसने आँखें फेरी, देखा कि बगल की ओर से बिजली की तेज रोशनी उसके मुंह पर पड़ रही है और उस रोशनी में वह देख रही है कि रंगा का मँह उत्तर गया है । लाली के दिल में चोट-सी लगी । वह मर्माहत-सी हो उठी । वह रंगा के कंधे पर अपना हाथ रखते हुए बोली-तुम मेरे लिए इतने दुखी होगे, रंगलाल ! यह मुझे बद्राशत नहीं । जानती हूँ तुम मुझे कितना प्यार करते हो और यही कारण है कि तुम मेरे लिए इतना ज्यादा सोचा करते हो य मगर मैं यह बिलकुल नहीं चाहती । मेरे लिए तुम्हें इतना सोचना मुझे अच्छा नहीं लगता । हमदोनों का निवाह इस तरीके से कैसे हो सकेगा । इसमें तुम्हारा दोष ही क्या है ? आज ऐसा ही समय आन पड़ा है कि हम दोनों भूखे हैं और कभी वह भी समय आयगा, जब हमलोग खुशहाल भी होंगे । फिर इतना सोचने से फायदा ही क्या ? जो बात अपने बूते की नहीं है, उसके लिए सोचना ही कैसा ! जब तुम इतनी अदनी-सी बात लेकर इस तरह सोचा करोगे, तो आगे का काम तुमसे कैसे हो सकेगा ? सिर्फ पेट भरना ही तो हमलोगों का मतलब नहीं है और न इसीलिए हमलोगों को यहाँ तक आना पड़ा है ! खैर, अब इस तरह खड़े-खड़े कबतक रहोगे ! चलो, हमलोग कहीं आराम करें । कल देखा जायगा, कल जरूर भगवान् सुध लेंगे ।

रंगा विना कुछ बोले ही वहाँ से चलने को तैयार हुआ, लाली भी उसके साथ-साथ चल पड़ी । दोनों मुसाफिर खाने के एक कोने में बैठे आ बैठे । दोनों अपने-अपने में बड़ी देर तक तल्लीन हो रहे ।

रात अधिक निकल जाने के बाद रंगा अपना अंगोछा बिछाकर वहीं लेट गया। लाली कुछ देर तक उसके पास सिर झुकाये बैठी रही। दोनों चुप थे। मगर रंगा इसी बीच अचानक बोल उठा—खूब तड़के मैं शहर चला जाऊँगा भाभी ! और जबतक मैं कुछ इंतजाम न कर लूँ, तुम यहाँ रहना। क्या तुम्हें यहाँ कोई डर तो नहीं लगेगा?

-डर ?-लाली हँस पड़ी-इतने आदमियों की भीड़ में मुझे डर लगेगा? क्या सोच रहे हो रंगलाल? क्या मैं इतनी डरपोक हूँ ?

रंगा ने जाने भय की बात क्या सोचकर कहा था ! वह शायद कुछ और कहना चाहता था; मगर वैसा न कहकर सिर्फ भय की बात ही वह कह सका। लाली ने भय की बात को दूसरे तरीके से उड़ा तो दिया; मगर वह भी कुछ उलझन में पड़ गई। दोनों में कोई खुल न सका। बात छिपी-छिपी ही रह गई और उसे छिपाते हुए उत्तर में रंगा ने कहा-सो मैं जानता हूँ, भाभी, तुम डरनेवाली नहीं हो। मैं यों-ही बोल गया। शायद मुझे लौटने में देर हो सकती है और मेरे लौटने तक तुम मेरी बुरी तरह इंतजार भी करती रह सकती हो। शायद उस समय तक, मेरे न लौट सकने पर भय भी हो सकता है।

इसबार लाली शायद भय का कुछ अंदाज लगा सकी और उसकी समझ में आ गया कि भय से रंगा का क्या मतलब है। वह जरा अपने आपमें खिंची और खींचती हुई बोल उठी-इतना न डराओ, रंगलाल ! मुझे तुम पर विश्वास है। चाहे तुम मुझपर विश्वास करो, या न करो। मगर मैं यह कहे रखती हूँ कि मैं अबतक किसी से नहीं डरती। समय आने पर कोशिश-भर सामना कर सकती हूँ। अगर उसमें कामयाब न हो सकी, तो मेरे लिए जो दूसरा रास्ता है, उससे मुझे कोई नहीं हटा सकता। तुम मेरे लिए निश्चित रहो लौटकर तुम मुझे जहाँ-की-तहाँ पड़ी पाओगे।

लाली बोल तो गई, पर रंगा ने पूरा सुना भी नहीं। कारण, उसे बीच में ही गहरी नींद हो आई!

(उनतीस)

बहुत तड़के रंगा उठा, उसने देखा कि उसकी भाभी कपड़े में लिपटी हुई सोई पड़ी है। उसने उसे उठाया नहीं, वह उठ बैठा और फिर खड़े होकर

उसने एकबार फिर से सोई हुई भाभी की ओर दृष्टि डाली और वह शहर की ओर चलता बना।

रंगा ने रात को ही निश्चय कर लिया था कि जो भी काम सामने आ जायगा, वह करेगा। और इसी उद्देश्य से वह शहर की ओर चल पड़ा। वह सीधे हवड़ा-पुल पार कर हरीसन रोड के चौराहे पर आकर जरा ठिक रहा। उसके सामने कई रास्ते थे, वह किधर बढ़े - वह सोचने लगा और आखिरकार यही निश्चय किया कि वह सीधी लाइन को ही पहले तय कर ली जाय। वह चौकन्ना-सा, लोगों की भीड़ में, उसी रोड पर बढ़ चला।

उस समय हरीसन रोड की दुकानें बंद थीं, सड़क पर ट्राम गाड़ियों का आना-जाना भी शुरू नहीं हुआ था, सिर्फ लारियाँ, बसें, मोटरें और रिक्षा चल रहे थे। रंगा अपने पथ पर उसी तरह बड़ा चला जा रहा था, जैसे आज उसके पथ का कहीं अंत न हो! वह हरीसन-रोड से चलते-चलते सियालदह तक जा पहुँचा। तब तक सूर्योदय हो चुका था, धूप निकल चुकी थी। वह सियालदह के चौमुहाने पर आकर रुक गया। अब वह किधर जाय, किससे पूछे ? क्या पूछे और किस काम के लिए पूछे ! वह फुटपाथ के एक सिरे पर बैठ गया। उस जगह अखबार के हॉकर शोर मचा-मचाकर अखबार बेच रहे थे। रंगा उन अखबार-बेचनेवालों की ओर बड़ी दर तक देखता रहा। वह सोच नहीं रहा था कि उसे क्या करना चाहिए ! कहाँ उसे जाना चाहिए या उसकी भाभी कहाँ है और वह खुद कहाँ है ! इसी बीच में उसने पीछे की ओर सुना-कुली-कुली ! और पुकारनेवाला उसके पास आकर रुक-सा गया।

रंगा ने पुकारने वाले की ओर देखा और पुकारने वाले ने भी उसकी ओर। पुकारनेवाला उससे कुछ बोलना ही चाहता था कि वह खुद पूछ बैठा कुली चाहिए?

-हाँ, क्या तुम चल सकते हो?

-क्यों नहीं ! - रंगा प्रत्याशित दृष्टि से उसकी ओर देखने लगा-क्या ले चलना है? कहाँ चलेंगे?

रंगा ने पूछा; पर वह अपने पूछने पर आप खिन्न हो उठा। वह ऐसा पूछ ही रहा है क्यों ! कहाँ चलना है, कौन-सी चीजें ले चलनी हैं। जब से

कुलीगिरी ही करनी है, तब ऐसा-कुछ पूछने की जरूरत ही क्या है? वह जरा अपने आप में सहम गया, जरा कुछ छोटा भी हो पड़ा; मगर पुकारनेवाला इतने में ही बोल उठा- -ऐसी कुछ ज्यादा बोझ है नहीं; कुछ पुस्तकों का एक बंडल है और चंगेरी में कुछ फल ! चलेंगे? राजाबागान चलना है, कुछ ज्यादा दूर नहीं जाने को!

--ज्यादा और कम का क्या सवाल ! जहाँ आप ले चलेंगे, चलूँगा !  
चलिए, कहाँ है चीज ?

मगर मजदूरी क्या लोगे ?

-मजदूरी ? -रंगा हँस पड़ा-मजदूरी क्या आपलोगों से भी ठहरानी पड़ेगी बाबू ! जो दे दीजिएगा, ले लूँगा ।

-बाबू क्षणभर रुका रहा, फिर बोल उठा-खैर, चलो ।

-रंगा उस बाबू के साथ उसके डेरे की ओर चल पड़ा ।

रंगा जब बाबू के साथ राजाबागान के एक मकान के पास पाकर रुका, तब तक बाबू सीढ़ियों की राह ऊपर आ गया था । रंगा सामान सिर पर लिये कुछ क्षण तक ठिठका रहा । इतने में उसने सुना कि कोठे से बाबू पुकार रहे हैं-सामान के साथ ऊपर आ जाओ । वह भीतर घुसा और सीढ़ियों की राह ऊपर आया, उसने देखा कि बाबू इन्तजार कर रहा है । रंगा रुका, उसने हाथ की चंगेरी नीचे रखी, फिर उसने अपने सिर से सामान उतारा । उसके बाद उसकी दृष्टि दरवाजे की ओर गई और उसने देखा कि एक युवती खड़ी है किवाड़ थामे और उसके सामने, उसकी साड़ी का अंचल पकरे, दो-ढाई साल का बच्चा रंगा की ओर धूर रहा है ।

बाबू ने चंगेरी में से अंगूर का गुच्छा अपने हाथ में लेकर बच्चे की ओर बढ़ाते हुए कहा-यह लो, अंगूर माधव !

और माधव नाम के उस बच्चे ने माँ की ओर से झपटकर बाबू के पास आ अंगूर का गुच्छा हाथ में ले लिया और माँ की ओर बढ़कर बोला-अंगुल, लो, माँ, अंगुल !

माँ की नजर बाबू पर पड़ी और बाबू ने भी अपनी पत्ती की ओर देखा। दोनों हँस पड़े। बच्चा माधव कितना समझदार है कि अपने अंगूर न खाकर माँ को दे रहा है! माँ ने उसे अपनी गोद में उठा लिया।

रंगा कुछ क्षण तक रुककर बच्चे की ओर देखता रहा। उसे भी बच्चे का यह व्यवहार बड़ा ही भला लगा। उसके ओठों पर भी मुस्कराहट दौड़ गई।

कुछ क्षण के बाद रंगा सावधान हुआ। इतने में बाबू ने अपने कुरते के मनीबेग से एक चौअन्नी निकाली और रंगा की ओर बढ़ाते हुए कहा लो यह !

और रंगा ने विना कुछ बोले, चवन्नी अपने हाथ में ले ली और जरा सिर झुकाये वहाँ से चलने को वह पीछे की ओर मुड़ा।

रंगा सीढ़ियों की राह उतर ही रहा था कि बाबू की आवाज उसके कानों गई, बाबू उसे ऊपर बुला रहा था।

रंगा फिर से ऊपर की बढ़ा और बाबू के निकट आकर बोला-क्या कहते हैं?

-हाँ, कहता हूँ। तुमसे एक जरूरी काम है-बाबू ने कहा-क्या तुम मेरी चिट्ठा लेकर उस डेरे पर जा सकते हो, जहाँ से अभी हमलोग आये हैं? तुम्हें इसके लिए और कुछ दे दूँगा ! उस समय कहने को एक बात भूल गया था, अभी वह याद पड़ी।

-जाऊँगा क्यों नहीं बाबू ! कहाँ है चिट्ठी, दीजिए।

-ठहरो जरा, चिट्ठी लिखे देता हूँ।

रंगा रेतिंग के सहारे वहाँ खड़ा रहा और बाबू भीतर आकर टेबिल के पास बैठे चिट्ठी लिखने लगे।

चिट्ठी कोई बड़ी लिखनी नहीं थी, दो चार लाइनों में वह पूरी की गई। उसके बाद उसे रंगा के हाथ में देकर कहा-क्या तुम वहाँ पहुँच जाओगे चिट्ठी लेकर?

-पहुँचूँगा क्यों नहीं बाबू ? - रंगा ने हँसते हुए कहा ।

--देखो, बाबू इसका जवाब भी देंगे, उसे लेकर तुरत यहाँ चले आना, कहीं रुकना नहीं। मुझे अभी आफिस जाना है, मेरे जाने के पहले तुम्हें यहाँ आ जाना चाहिए। क्यों ?

-ठीक है, मैं रुकूँगा नहीं !

-और रंगा वहाँ से चल पड़ा ।

रंगा ने अपने जीवन में आज पहली बार कुछ अर्जन किया है और जो कुछ अर्जन किया है, महज थोड़ा है वह; मगर वह उतने से ही काफी उत्साहित हो उठा है। उसे यह भी ख्याल है कि अभी तो और उसे कुछ मिलने को ही है। वह पत्र पहुँचाने जा रहा है, फिर उसका जवाब लेकर भी वह लौटेगा उसके पास ! आना-जाना-ज्यादा नहीं, तो फिर वह दो-चार आने तो देंगे ही ! क्या बेजा है ! भगवान ने खबर तो ले ली ! इतने पैसों से हम दोनों मजे में खा-पी लेंगे । देखा जायगा पीछे ।

रंगा रास्ते-भर मनसूबे बाँधता आया, वह उत्साहित भी था । उसने पहले डेरे पर पहुँचकर एक सज्जन के हाथ में वह चिट्ठी दे दी । उन्होंने उसकी ओर देखा और कहा-क्या तुम फिर वहाँ जाओगे ?

-हाँ, चिट्ठी का जवाब जो बाबू ने माँगा है !

-अच्छा ठहरो, मैं तुरत लिखकर दिये देता हूँ ।

रंगा उनके लिखने तक ठहरा रहा, उसके बाद फिर से वह चिट्ठी लेकर वहाँ से चलता बना ।

उस समय बाबू नहा-धोकर खाने को बैठने वाले ही थे कि रंगा ने धम् से उसके सामने हाजिर होकर चिट्ठी सामने रख दी और बह बोल उठा-क्या मैं अब जा सकता हूँ ?

-हाँ, हाँ, क्यों नहीं; मगर ठहरो, मैं पैसे दिये देता हूँ ।

उस समय रंगा को पैसे देने की बात सुनकर कुछ उत्फुल्लता न हुई; वह जरा लजाते हुए बोल उठा-पैसे तो मुझे मिल चुके हैं !

-मिल चुके हैं ? किसने दिये ?-वह जरा रुका ।

-आपने हो तो दिये थे !

-मगर इसके लिए तो नहीं दिये थे ?

-खैर, मैं काफी पा चुका हूँ....और यह तो कुछ आपका बोझा लाया नहीं हूँ। यों मैं बेकाम अभी पड़ा ही रहता। इतना-सा अगर काम करने का मौका मिल ही गया, तो इसके लिए मैं आपसे पैसे लूँ, मुझे अच्छा नहीं लगता!

बाबू उसकी ओर मुखातिब हुए, उसने देखा कि यह कलकत्ता के मजदूरों जैसा नहीं हैं! मजदूरी करनेवालों में इतना संतोष! उसके लिए सचमुच यह एक अनहोनी-सी बात थी। वह कुछ क्षण तक रंगा की ओर देखता रहा, फिर मुस्काते हुए बोल उठा-खैर, तुम्हारी ओर से मुझे माफी मिल गई, खुशी की बात है; मगर मेरी ओर से तुम्हारा सम्मान तो होना ही चाहिए !

और इतना कहकर उसने भीतर आकर एक अठन्नी निकाली और बाहर आकर उसके हाथ पर रखते हुए कहा-इसे तो रख ही लो!

रंगा असमंजस में पड़ गया कि वह उसे ले या नहीं! सम्मान की बात बाबू ने कही है ! क्या मजदूर भी सम्मान का अधिकारी हुआ करते हैं? वह बाबू के सद्भावनापूर्ण वचनों से बड़ा प्रभावित हुआ। उसे बाबू के प्रति श्रद्धा हो आई और विना-कुछ कहे-सुने, उनकी दी हुई अठन्नी हाथ में रखे ही, उनके प्रति सिर झुकाकर वह वहाँ से चल पड़ा।

रंगा सीधे कोठे से उतरकर नीचे आया, कुछ क्षणों तक नीचे आकर रुका रहा, फिर उसने एकबार ऊपर की ओर दृष्टि डाली और वहाँ से चलता बना।

रंगा आज सुबह-सुबह जितना उद्धिग्न होकर शहर की ओर निकला था, वैसी उद्धिग्नता उस समय न थी। वह सीधी सड़क पर आकर कुछ क्षणों तक और रुका रहा उसके बाद वह हवड़ा-स्टेशन की ओर चल पड़ा। आने के समय सारी दुकानें बंद थीं; मगर लौटने पर उसने पाया कि इन दुकानों में जैसे संसार को संपदा आकर इकट्ठी हो गई हो। वह जिस दुकान के निकट से गुजरता, जरूर एक बार वहाँ की चीजों को सरसरी निगाह से देखने की कोशिश करता। उनमें बहुत-सी चीजें ऐसी होती, जिन्हें वह रखने को लालीयित हो उठता। उसके हृदय में उन चीजों के प्रति एक खिंचाव-सा

उत्पन्न होता; पर अपने अभाव के प्रति उसके मँह से एक सर्द आह कढ़ जाती। उसने चलने के समय खयाल किया था कि वह उमंग से तुरंत लौटकर भाभी को चकित कर देगा। वह शहर से उन पैसों से, जिन्हें उसने जिंदगी में पहली बार कमाया है, अपनी भाभी के लिए उम्दा-से-उम्दा खाना ले जायगा, भाभी उन चीजों को पाकर कितनी खुश होगी! वह उसे चकित विस्मित कर छोड़ेगा! मगर ये बातें उसके दिल में-दिल के एक कोने में ज्यों-की-त्यों दबी रहीं, और दिल की बाकी जगह पर उन चीजों ने दखल जमाया, जिन्हें वह अपनी खुली हुई निगाह से देख रहा था। इस तरह वह अपने आपमें ही उलझकर रास्ता तय करता रहा। जिंदगी में उसके लिए यह तो पहला ही अवसर था, जबकि उसके सामने विभिन्न प्रकार चीजें, अपनी-अपनी जगहों पर पड़ी उसे दीख रही थीं। फिर उनका आकर्षण कोई साधारण न था, जिनकी वह उपेक्षा कर सके। इस तरह देखते-देखते जब उसका दिल भर गया, तब उसे अपनी भाभी की याद हो पाई और भाभी की याद रात ही यह भी उसे याद आया कि उसे अभी तुरत वहाँ पहुँचना चाहिए, खाने की चीजें लेकर और उसके बाद उसने यह भी महसूस किया कि खुद उसे भी तो जोरों की भूख लगी हुई है!

अब रंगा को क्षण-भर के लिए भी ठहरना भारी हो उठा, वह तीर की ओर रास्ते में एक फल की दुकान से कुछ केले और संतरे खरीदे, और दूसरी दूकान से पूड़ी और जलेबियाँ ली। फिर भी उसने देखा कि उसकी कमर में अब भी पाँच आने बच रहे हैं। उसे हुआ कि इतने पैसे तो रख ही लेने चाहिए, आखिर जरूरत ही ठहरी, कब क्या लग जाय। मगर इतना समझते हुए भी वह पान का मोह न छोड़ सका; पर उसने उसे खरीदकर रख नहीं लिया। हाँ, मन को मारकर एक पैसा उसके लिए अलग रख छोड़ा। अभी उसकी जरूरत ही क्या है! खाने-पीने के बाद ही न तो उसकी जरूरत पड़ेगी और वह तो वहाँ भी ले लिया जा सकता है ताजा बनवा कर। इस तरह मन में सभी बातें सोच-सोचकर वह, विना क्षण-भर रुके, अपने स्थान के लिए चल पड़ा।

मगर ज्योंही वह अपनी जगह पर आ पहुँचा, उसने पाया कि उस जगह पर उसकी भाभी नहीं है, वहाँ जो है, वह मुसाफिरों की एक टोली है,

अपने सामानों के साथ ! उसे कुछ संशय हुआ, उसने चारों ओर दृष्टि डाली; पर कहीं उसे वह दीख न पड़ी । अब तो वह और भी चकराया । आखिर वह गयीं कहाँ ! उसे तो कह दिया गया था कि उसके न आने तक वह ज्यों-की-त्यों एक जगह बैठी रहे, कहीं जाय नहीं; मगर उसने वैसा किया नहीं । रंगा को ऐसा सोचते ही रंज हो आया और उसी रंज में वह मुसाफिर खाने में ढूढ़ने के लिए पिल पड़ा ।

मगर, भगवान को धन्यवाद ! लाली मिल गई; पर देखो तो भला, किस तरह वह कुछ स्त्रियों के बीच में बैठी, हँस-हँसकर बातें कर रही हैं! कौन हैं वे स्त्रियाँ ! वे तो उसके सम्बन्ध की हो नहीं सकतीं य जरुर वे किसी भले घर की बहू-बेटियाँ हो सकती हैं ! फिर उसकी भाभी उस दल में दाखिल कैसे हो सकी ? रंगा चकराया, पर उसका रंज पहले से उत्तर चुका था । वह बुलाए कैसे ? क्या कहकर ? वह सोचने लगा । पर उसके लिए अब अधिक ठहरना कठिन हो उठा । वह विना कुछ सोचे-बिचारे जोर से पुकार उठा-भाभी, ओ भाभी !

और लाली के कानों वह आवाज गई, उसने उसे पहचाना, वह चौकन्नी हुई और उसने पाया कि कुछ दूरी पर रंगा, कुछ सामान अंगोले में बाँधे, खड़ा उसकी ओर देख रहा है । लाली उन स्त्रियों से ओठों-ओठों में कुछ बोल गई । उन स्त्रियों का भी ध्यान रंगा की ओर आकृष्ट हुआ और उतने में लाली भी उठकर उसके पास आई और मुस्कराती हुई बोल उठी-आ गये रंगलाल, इतनी जल्दी ! मुझे तो तुम्हारे इतनी जल्दी लौटने की उम्मीद न थी । और इसीलिए तो .....तुम सोचते होगे कि भाभी गई कहाँ ! क्या करती, मन जो नहीं लग रहा था ! औरत-औरत में परदा कैसा ! आई-मिली.....

लाली अपनी झोंक में बोलती जा रही थी; पर रंगा ने उसे और अधिक बोलने का अवसर न देकर बीच ही में रोका और जरा कुछ अपने सरस स्वर में बोल उठा-इतनी कैफियत तुमसे कौन माँग रहा है, भाभी ! जाना तो कि तुम मन बहला रही थीं । यह गुनाह नहीं ! खैर, चलो, हमलोग कहीं चलकर बैठे और लो, देखो, मैं क्या-क्या लाया हूँ ।

-मगर लाये कैसे रंगलाल ! यही तो बात है, तुम इतनी जल्दी आओगे, इसका मुझे गुमान तक न था ।.....कहाँ से पैसा मिला रंगलाल !  
किसने दिया पैसा ?

लाली अत्यंत उत्कृष्टि हो उठी ! उत्कृष्टि की बात भी थी ! कई दिनों के अनाहार के बाद, इतनी जल्दी, इतनी आसानी के साथ, कलकत्ता-जैसे शहर में खाने का प्रबंध जुट जाना लाली के लिए अवश्य विस्मयकर मालूम पड़ा । उसने एक ही साथ प्रश्नों की झड़ी लगा दी । रंगा किसका उत्तर दे, किसका नहीं ? मगर उसे तो अपना सारा हाल अपनी भाभी को सुनाना ही होगा ! वह तो स्वयं उत्कृष्टि है अपनी उपार्जित संपत्ति के बारे में बखान करने को । उसने सोच रखा है कि वह अपनी भाभी से सारी बातें एक के बाद एक, कहेगा, उसकी भाभी चकित होकर उसकी बातें सुनेगी, सुन सुनकर खुश होगी और उस खुशी में रंगा का भी हिस्सा रहेगा । पर यहाँ रात ही वे सब बातें मानो उलट-पलट गईं । अपनी भाभी को अनुपस्थिति ने सारी बातें गड़बड़ा दीं । मगर नहीं, रंगा तो अपनी भाभी से कहेगा ही । कैसे नहीं कहेगा ? फिर भी उसे तो सबसे पहले एक निरापद स्थान चुन लेना चाहिए, जहाँ वे दोनों एक साथ भोजन भी करते चलें और गप्पें भी चलती चलें ।

और रंगा, इस उद्देश को लेकर, लाली के साथ निरापद जगह की खोज में चल पड़ा !

और ईश्वर को धन्यवाद ! मुसाफिरखाने का एक कमरा सौभाग्य से उस समय खाली पड़ा हुआ था ! रंगा उस कमरे को पाकर उछल पड़ा और उसी उत्फुल्लता के साथ बोल उठा--ठीक है, भाभी, ठीक है, हमलोग बैठे और लो सुनो मेरी कहानी ! वहाँ

दोनों खुशी-खुशी वहाँ आकर बैठ गये ।

(तीस)

यों तो रंगा ने अपने जीवन-निर्वाह के लिए राह निकाल ली थी, उसके दिन मजे में कट रहे थे । तड़के वह नित्य-क्रिया से छुट्टी पाकर काम की खोज में निकल पड़ता । अब उसे अधिक दूर जाने की भी जरूरत नहीं

पड़ती, हवड़ा स्टेशन के बाहर वह बैठ जाता, अनेक यात्री उतरते, उनमें एक-न-एक ऐसा भी निकल पाता, जिसे रंगा की जरूरत महसूस होती और रंगा भी उसका भार अपने सिर पर लेकर उसकी निश्चित जगह पर पहुँचा देता। इस तरह दिन में उसे कई बार शहर में जाने की जरूरत पड़ती और इस तरह उसने कलकत्ता के अनेक स्ट्रीटों और गलियों को जान लिया। सब कुछ तो हुआ, फिर भी एक बात, जो रह-रहकर उसे परेशान कर रही थी-यह थी कि मजदूरी जैसे काम के लिए रंगा नहीं बनाया गया है, उसके लिए चाहे जितनी मिहनत-मुसक्कत का काम क्यों न हो, परवा नहीं-वह तो और कुछ करने के लिए घर को छोड़कर चलता बना है।

रंगा इन्हीं प्रश्नों को लेकर कई दिनों तक पड़ा रहा। अलवत्ता जो कुछ वह कमा कर बचा सका था उससे उन दोनों के काम चलते रहे। पर वह उतना न था कि उससे उनका दिन, विना कमाये हुए भी, चलता। जब लाली के पास कुछ भी पैसा न रह गया और उसने देखा कि रंगा भी काम करने से उदासीन हो गया है, तब वह अपनेको जब्त न रख सकी और यह समझकर कि खाने के समय में उसे कुछ खरीद कर लाना चाहिए, वह अपने-आपमें सिकुड़ कर कुछ क्षणों तक पड़ी रही; पर वह इस तरह पड़ी न रह सकी। उसे लगा कि शायद रंगा यह समझ रहा हो कि अभी खाने के लायक पैसे रहे होंगे भाभी के पास। इसलिए वह सकुचाई-सी होकर बोल उठी-क्यों रंगलाल, तबीयत तो तुम्हारी खराब नहीं हो गई है? कुछ जुगाड़ तो करना ही चाहिए.....

रंगा चौक पड़ा। उसे भाभी का मतलब समझते देर न लगी। फिर उसके लिए निस्तेज होकर पड़े रहना कठिन हो उठा; पर वह अपने को जप्त कर बोल उठा-क्या कहा, भाभी, जुगाड़ ?.....हाँ, जुगाड़ तो कुछ करना ही चाहिए ? पैसे इतने कम थे कि और कै दिन चलते।

रंगा इसके बाद और कुछ न बोल सका। वह गहरी चिन्ता में पड़ गया। उसके सामने उसकी अतीत स्मृति खिंच आई; पर वह अपने मन पर बल देकर उसपर अधिक देर तक अपने को टिकाये न रख सका। लाली उसके सामने थी, वह रंगा के चेहरे का चढ़ाव-उतार देख रही थी। रंगा के

लिए यह असह्य था । अपनी कमजोरी अपनी भाभी के सामने प्रेश करना उसके लिए असह्य था । इसलिए वह अपने को संभालते हुए बोल उठा-मैं अभी निकलता हूँ भाभी, कुछ परवा नहीं, तबीयत मेरी ठीक है, बहुत जल्द कुछ जुगाड़ लगाकर लौटा हूँ । कहो, तुम्हें ज्यादा भूख तो नहीं लग रही है?

लाली अपने-आपमें कट गई । उसे लगा कि जैसे रंगलाल ने उसके घाव को छेड़ दिया है । वह मर्माहत होकर लंबी साँस खींचती हुई बोल उठी मुझे बैठाकर जो तुम रख रहे हो, रंगलाल, यह तुम्हारा जुर्म है । मैं यह जुर्म और बद्राश्त नहीं कर सकती ! जानती हूँ कि तुम्हारी तबीयत अच्छी नहीं है । खाना तो चलना ही चाहिए-इस तरह और कै दिन तक चल सकते हैं । तुम बैठो, मैं ही आज मजदूरी करने को जाती हूँ । बोझा ढोना कौन-सा बड़ा काम है? घर पर भी तो ऐसे कितने काम करने पड़ते थे ! किसान की बहू-बेटी-ऐसा कौन-सा काम है, जिसे वह नहीं कर सकती ! और मैं तो खुद इन कामों को सदा से करती आ रही हूँ ।

लाली उठने-उठने को हुई, पर रंगा के लिए यह असह्य हो उठा । वह कैसे इसे बद्राश्त कर सकता था कि उसकी भाभी मजदूरी करने को निकले और उसके पैसे से वह अपना पेट भरे । उसने लाली की सारी बातें सुनी; वह जानता था कि लाली जो कुछ कहेगी, उसे पूरा भी कर दिखलायगी । अब रंगा अपने को समेटकर रख न सका, उसके अंतर को ज्यालामुखी फट निकली और वह कर्कश स्वर में बोल उठा-ऐसा नहीं हो सकता, भाभी ! हूँ, ऐसा कोई काम नहीं है, जिसे तुम नहीं कर सकती हो; मगर तुम्हें मेरी इज्जत पर पानी बहाने का कोई हक नहीं है ! तुम मेरे साथ आई हो तुम मेरे सिर-आँखों पर हो भाभी ! इस बात को तुम मानो या न मानो य मगर मैं इसे कैसे नहीं मानूँ? मानँगा-हजार बार मानूँगा, आज ही नहीं ताजिंदगी-जब तक तुम मेरा साथ देती रहोगी । इस तरह तुम मेरा अपमान नहीं कर सकती भाभी ! मैं तो खुद खटने लायक हूँ, यही कई दिनों तक मौज लेने के लिए पड़ा रह गया । जानता था कि कुछ बचे हुए पैसे हैं ही, खतम होने तक क्यों न जरा सुस्ता लें! पर अभी मालूम हुआ कि अब सुस्ताने का वक्त रह नहीं गया है । मैं जाने को तैयार हो ही रहा था कि तुम अपना रोना ले बैठों ! मैं सब-कुछ बद्राश्त

कर सकता हूँ; मगर यह मेरे बूते के बाहर को बात है । तुम्हें याद रहे-आइन्दा  
ऐसी बात कहकर तुम मुझे लज्जा में न डालोगी!

रंगा अपने-आपमें बोल गया और बातें खत्म होते-न-होते, वह तेजी  
के साथ बाहर निकल गया!

लाली विचित्र परिस्थिति में फंसी रह गई ! उसने रंगा की दर्द भरी  
बातें सुनी थी, और इससे अधिक वह रंगा को पहले से ही जानती थी, यह  
भी जानती थी कि रंगा अपनी भाभी को, अपनी जान से भी अधिक सुरक्षित  
रूप में रखना जानता है; फिर भी इतनी बातों को जानते हुए भी, अपने को  
वह स्थिर न रख सकी, उसके दिल का बांध टूट पड़ा और वह फूटफूट कर  
रो पड़ी! कबतक वह इस रूप में रोती रही, पता नहीं! पर रोते-रोते ही उसकी  
आँखें लग गई और आँसुओं के बीच में ही, वह अपनी अस्त-व्यस्त दशा में,  
जमीन पर पड़ गई ।

मगर दाई-तीन घंटे के बाद रंगा अपने अंगों में खाने की चीजों के  
साथ आ पहुँचा । उसने देखा कि लाली जमीन पर अस्तव्यस्त दशा में लेटी  
पड़ी है । उससे यह भी छिपा न रह सका कि उसके गाल आँसुओं के दाग से  
भरे पड़े हैं । रंगा कुछ क्षणों तक उसके चेहरे की ओर ताकता रहा, फिर उसने  
एक बगल में अपने अंगों को रखा और वह नियोष्ट होकर बैठ गया । आने  
के समय उसके मुंह पर जितनी उत्कुल्लता की छाप थी, वह क्षण-भर में  
झटका खाकर विलीन गई । उसने थकान का अपने में अनुभव किया और  
वह काफी शिथिल हो पड़ा ।

रंगा, मगर, अधिक क्षण तक बैठा न रह सका और न उसे अपनी  
भाभी को उठाने का ही कष्ट करना पड़ा ! पर लाली अपने से उठी भी नहीं ।  
अगर निकट से गये हुए एक बटोही के सिर से टीन की पेटी के गिरने को  
आवाज न हुई होती, तो शायद वह और कुछ देर तक सोई रह सकती थी;  
पर वह सोई न रह सकी । बक्स के गिरने की आवाज ने उसे चौंका दिया  
और जब वह चौंक कर इधर-उधर देखने लगी, तब उससे यह भी छिपा न  
रह सका कि उसके पास ही, थोड़ा हटकर, बैठा हुआ रंगा खिलखिला कर हँस  
रहा है । और वह इतनी जोर से हँस रहा है कि उसके पेट में बल पड़ रहे हैं;

मगर लाली सोच नहीं सकी कि रंगा इतना अधिक क्यों हँस रहा है। आखिर हँसने का तो कछु कारण भी चाहिए ! तो क्या वह अपनी भाभी के अस्तव्यस्त होकर सो रहने पर हँस रहा है? लाली सोचने लगी और सोचते-सोचते ही वह लज्जा से और गढ़ी जाने लगी; पर रंगा ने अपनी भाभी को संभाला और बोल उठा-ऐसा अहमक आदमी नहीं देखा था, भाभी, देखो तो उस आदमी को, जो अपनी पेटी और सामान को उठा रहा है-कितना मोटा है ! ऐसा आदमी भी एक मामूली-सा धक्का खाकर औंधे मँह गिर पड़े-किसी को यकीन नहीं हो सकता ! मगर यह सच है! देखो तो उस भलेमानस को ।

लाली उसकी ओर देखने लगी। रंगा और भी बल खाकर हँस पड़ा। लाली भी उस गिरनेवाले आदमी को देखकर अपने को रोक न सकी। वह मुस्कराते हुए बोली-जानते हों, रंगलाल, मामूली-सा धक्का कभी-कभी कैसा असर कर जाता है ! बेमौके का धक्के संभालना सबके बूते की बात नहीं!

लाली बोल तो गई; पर क्षणभर में ही वह जाने क्या सोचकर आप-से-आप सकुचा गई। शायद जो वह बोल गई थी, उसे ही खुद अच्छा न लगा। मगर रंगा पर उसकी बातों का ऐसा कुछ असर पड़ा हुआ न दीखा। जैसे उसका ध्यान इन बातों पर गया ही नहीं। वह जिस तरह हँस रहा था, हँसता ही रहा। लाली भी उस आदमी की ओर देखती रही। किस तरह से उसने अपनी गिरी हुई चीजों को उठाकर एक-एक कर पेटी में भरा, किस तरह उसने अपने बंडल को सरियाया और किस तरह उसने एक आदमी का सहारा पाकर उन चीजों को फिर से अपने सिर पर लिया। जब वह वहाँ से चलता बना, तब लाली का ध्यान रंगा पर गया और रंगा ने भी उस पर अपनी दृष्टि केंद्रित की। कुछ क्षण तक वातावरण सूखा-सूखा-सा ही रहा; पर रंगा ऐसा कब पसंद कर सकता था, बोला-देखो, भाभी, खाने का सामान यह मैं ले आया हूँ और इसके अलावा और दस आने पैसे भी!

और रंगा ने अपनी कमर से उन दस पाने पैसों को निकालकर भाभी के हाथ पर रख दिया। लाली कुछ क्षण तक उन पैसों की ओर देखती रही। उसके बाद उसने उन पैसों को मुस्कराते हुए अपने अंचल की खूट में

बाँध लिया और उसी मुस्कराहट के साथ बोल उठी-जानती हूँ रंगलाल, ये पैसे .....यह तुम और-यह मैं-कितना आदर पा रही हूँ तुमसे!

-आदर ! - रंगा खिलखिलाकर हंस पड़ा और हँसते हुए ही बोला अच्छा आदर पा रही हो, भाभी ! न खाने का ठिकाना, न रहने का ठिकाना फिर भी तुम आदर पा रही हो मुझसे ! खूब कही ! अच्छा, यह तो कहो, भाभी ! अगर ऐसा न कहो तो तुम्हारा कुछ बिगड़ जाय ? कहो तो सच-सच !

लाली के गाल और भी लाल हो उठे, उसकी भवें और भी खिंच आई और उसका चेहरा कुछ क्षण में ही तमतमा उठा । वह जरा गंभीर होकर बोल उठी-मैं यह नहीं मानती-हर बात तुम्हारी आँख मूँदकर मानती चलूँ....

ऐसी मैं नहीं हूँ ! और तुम मुझे सच-सच कहने को कहते हो ? अगर सच कहूँ तो कौन मेरी बातों को पतियाएगा ? तुम तो मेरी सारी बातें हँसी में उड़ा देना चाहते हो, जैसे उन बातों का कोई वजन न हो ! फिर भी सच कहने को कहते हो ? अगर मैं कहूँ कि मुझे कहने से तुम जो रोक रहे हो, वह तुम्हारा अन्याय है, तो शायद तुम बिगड़ भी सकते हो; मगर मैं तुमसे डरती नहीं । बिगड़ो तो तुम बिगड़ भी सकते हो; मगर सच तो यह है कि तुमने अपने ऊपर जो सारा बोझ मेरा लाद रखा है-यह मैं हर्गिज गवारा नहीं कर सकती ! अगर तुम ऐसा ही करते चलोगे, तो मैं तुम्हारे उपकार का बोझ किसी भी हालत में ढो नहीं सकूँगी ! मुझे भी तुम्हारे काम में उतना ही हाथ बटाने का हक है, जितना तुम अपने लिए महसूस कर रहे हो ! फिर अकेला तुम खटो मरो और मैं बैठी-बैठी तुम्हारी मिहनत के पैसे बटोरे रहूँ इतना बोझ, जानते हो, मैं उठाने में सक सकूँगी ? फिर तुम सच कहने से मेरा मँह बंद करना चाहते हो । क्या यह तुम्हारा अन्याय नहीं है, रंगलाल ! कह सकते हो- यह तुम्हारा अन्याय नहीं है ?

लाली बोलकर रंगा की ओर देखने लगी और रंगा ? रंगा के सामने उसकी भाभी ने जो बातें अभी कही थीं, अक्षर-अक्षर उसने सुना था और उन्हें वह महसूस भी कर रहा था; पर रंगा उतनी गंभीरता के भीतर प्रवेश करना नहीं चाहता था और न उसकी वैसी प्रवृत्ति थी कि किसी बात की तह तक पहुँचकर वह ठहरे । इसलिए रंगा के लिए यह स्वाभाविक था कि वह इन

बातों की तह तक पहुँचे ही नहीं और इसीलिए वह बोल उठा न्याय-अन्याय की बात मैं नहीं मानता, भाभी ! जो बात एक के लिए न्याय हो सकती है, वही दूसरों के लिए शायद न्याय नहीं भी हो सकती है! हमें इन पचड़ों में पड़ने की जरूरत नहीं ! इन पचड़ों से हमलोगों को ऊपर उठना होगा- इतना ऊपर उठना होगा कि जहाँ मैं रह सकूँ, तुम रह सको और हमलोगों की दुनिया रह सके! जिस दिन हमलोग इतनी दूर पहुँच जायँगे, उस दिन समझूँगा कि हमलोगों की यात्रा सफल हुई। खैर, अभी और बातों के लिए हमलोगों के पास समय की कमी नहीं है। मगर इस समय तो काफी भूख लगी हुई है, कुछ थका-सा भी महसूस कर रहा हूँ। अब तो कहीं बैठकर पेट-पूजा कर ही लेनी चाहिए। खोलो अंगोष्ठे को!

लाती कुछ न बोल सकी। लगा जैसे मंत्र-बल की तरह वह अंगोष्ठे को खोलकर चीजों को अपने सामने बिखेर रही है।

### (इकतीस)

रंगा के जीवन में मजदूरी के कामों से जो कटुता आ रही थी, वह दिन-दिन बढ़ती गई। उसने पाया कि इस मजदूरी से उसका उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता और उसने उसी समय यह भी महसूस किया कि मजदूरी के कामों से उसके मन पर स्वभावतः लघुता का भाव घर करता जा रहा है। वह नहीं चाहता कि उसकी ऊँची और बढ़ी हुई आकंक्षा को ठेस लगे! वह यह नहीं बर्द्धाश्त कर सकता कि उसके अंतर की विशालता गल-गलकर इतना क्षीण हो जाय कि उसका अस्तित्व ही लुप्त हो उठे! वह केवल पेट भरने के उद्देश्य से तो निकला नहीं है और न यही उसका उद्देश्य है कि लस्टम-पस्टम जिस तरह से हो सके-उसके दिन कटे! वह संसार को ऐसा नहीं समझता और न वह अपने जीवन को ही ऐसा भार समझता है कि वह उसे खंड-खंडकर विलीन कर दे ! उसकी कल्पना में संसार आनंदमय है और जीवन उस आनंद का उपभोक्ता! और, वह उपभोग्य वस्तु को पाना चाहता है, उसकी साधना

में अपने-आपको लगाना चाहता है; पर वह अभी तक उस साधन को प्राप्त नहीं कर सका है। इसलिए वह हंसते-बोलते हुए भी अपने को इतना अलग रख छोड़ना चाहता है कि जहाँ वह रहे और उसकी कल्पना भी रहे। मगर कल्पना के साथ वह रमने वाला रंगा सिर पर गटर रखकर एक जगह से दूसरी जगह पहुँचाना और बदले में कुछ पैसे लेकर लौटना-क्योंकर पसंद कर सकता था? फिर भी उसे तो अब तक वही काम करना पड़ा है, जिसे उसका मन पसंद नहीं करना चाहता !

आखिर, कैसे कर लेता है वह ?

और लाली ? लाली को निरूपाय कर छोड़ा है रंगा ने! लाली चाहती है कि रंगा का साथ हर हालत में देना जरूरी है। वह उसके लिए तैयार भी होती है, जिसके लिए उन दोनों में काफी बहस भी हुई है; मगर उस बहस में लाली को रंगा के सामने झुकना ही पड़ा है, उसे कभी गर्दन उठाने का अवकाश रंगा ने नहीं दिया! तो क्या रंगा चाहता है कि लाली की स्वतंत्रता पर बलात्कार किया जाय! नहीं, रंगा-जसा स्वतंत्र प्रकृति का व्यक्ति ऐसा कभी नहीं चाहेगा कि किसीकी स्वतंत्रता को इस तरह कुचला जाय ! फिर ऐसा क्यों होता है ? क्यों नहीं, लाली को काम करने का वह अवसर देना चाहता है ? क्यों वह खुद उसके लिए बाहर निकलता है और क्यों वह, बिना कुछ खाये-पिये, इस तरह काम के पीछे जुता रहता है? आखिर, लाली से वह क्या आशा रखता है और लाली क्यों इस बात को बद्धाश्त करती है?

लाली जानना चाहती है कि रंगा कहाँ है, क्या है और क्यों है ! वह जानने की कोशिश भी करती है कि जाने वह रंगा को कि क्यों रंगा वैसा है; पर उसकी कल्पना वहाँ तक जा नहीं पहुँचती है कि उसके सामने रंगा की उदार मूर्ति सामने आ खड़ी होती है और तभी लाली देखती है कि वह मूर्ति खिलखिलाकर हँस रही है और हँस रही है, जैसे हँसने के सिवा उस वातावरण में और कुछ है ही नहीं ! लाली की कल्पना अपने आपमें सिकुड़कर रह जाती है और उसके मँह से अनायास एक गहरी आह निकलकर वायु में विलीन हो जाती है! लाली इसी तरह चल रही है, वह सोचती है कि रंगा जो कुछ कर रहा है, वह ठीक कर रहा है ! जैसे वह अपना सारा भार रंगा पर डाल कर

निश्चिन्त हो चुकी है ! उसका संसार जैसे सिमट कर रंगा तक ही आकर सीमित हो गया है। जैसे उसके लिए और कुछ भी करणीय नहीं है।

मगर एक दिन जब रंगा खब तबकेतड़के उठकर शहर की ओर चल पड़ा और अगली रात तक जब वह लौटकर नहीं आया, तब लाली में कुछ चंचलता का भान हुआ और उसने महसूस किया कि अब उसके लिए यह असह्य है कि वह चुपचाप बैठी रहे! रंगा कभी तो इतनी रात तक शहर में ठहरा नहीं ! उसके लिए तीन-चार घंटे से अधिक एक जगह पर ठहरना कठिन हो उठता!

फिर क्यों वह अबतक नहीं आया लौटकर? लाली निश्चिन्त बैठी न रह सकी। उस दिन वह राह देखने के लिए हावड़ा पुल की ओर बढ़ चली, और बढ़ चली इस ख्याल से कि आगे कहीं उसे वह पा सके। मगर लाली जब पुल को पार कर हरीसन-रोड को मोड़ पर आ पहुँची, तब वह भौंचकी होकर रह गई ! इतनी भीड़ में वह अब किधर देखे अपने रंगा को! उसकी आँखें जैसे ओझल हो गई और उसमें इतना साहस भी नहीं रह गया कि वह भी दो डेंग आगे बढ़ सके! उसने यह भी महसूस किया कि वह अकेली जीवन नहीं चला सकती, अभी उसे एक सहारे की जरूरत है, जिसके बिना वह चल नहीं सकती। लाली आगे न बढ़ कर पीछे की ओर मुड़ी और पुल को पार कर अपनी जगह पर आ पहुँची; मगर उसके लौटने के पहले ही रंगा आ चुका था और जब उस रंगा ने अपनी भाभी को अपनी जगह पर नहीं पाया, तब वह वहीं कुछ आगे बढ़कर ढूँढ़ता रहा और ढूँढ़ते-ढूँढ़ते ही जब वह फिर अपनी जगह पर आया, तब उसने पाया कि उसकी भाभी वहाँ आकर अप्रत्याशित दृष्टि से भीड़ की ओर देख रही है। रंगा ने जैसे ही अपनी भाभी को देखा, वह बोल उठा-कहाँ गई थी भाभी ! मैं तो अभी तुम्हें ही खोज रहा था।

मुझे खोज रहे थे! बड़ी देर आये क्या ? किस रास्ते से आये ? मैं तो खुद तुम्हें ढूँढ़ते-ढूँढ़ते पुल के उस पार चली गई थी। खैर, आज क्यों इतनी देर लगाई.....

-देर ?-रंगा हँस पड़ा और हँसकर बोला-आज तो देर की बात ही थी भाभी ! तुम हैरान होगी कि मैं इधर कई दिनों से लगातार कहाँ जा रहा था और आज भी मैं कहाँ गया था ! खैर, अब तुम्हें इस तरह की परेशानी में मेरा इन्तजार न करना पड़ेगा भाभी ! मुझे एक मिल में नौकरी मिल गई है और रहने के लिए एक क्वाटर ! कल से काम पर जाना होगा । तुम क्वाटर में रहोगी और हमारा संसार वहाँ निर्विघ्न होकर चलता रहेगा । अब, मेरा ख्याल है कि यहाँ ठहरना ठीक नहीं । क्या कहती हो भाभी !

लाली कुछ क्षणों तक रंगा की बातें सुनती रही । उसने इतना तो जरूर जाना कि मिल में उसे काम मिल गया है और रहने के लिए एक क्वाटर भी; पर उसने यह नहीं जाना कि इसमें कौन-सी इतनी प्रसन्नता की बात हुई कि रंगा इतना खुश नजर आ रहा है । उसने अपने मन के भाव को छिपाते हुए पूछा - मगर मिलेगा वहाँ कितना ? यह तो तुमने कहा ही नहीं ।

-कितना मिलेगा ? -हाँ, यह भी तुम्हें जानना चाहिए भाभी ! अभी तो तीस रुपया मिलेगा; मगर बाबू का कहना है कि काम अच्छा करने पर इससे भी ज्यादा मिलेगा; अभी तो हमलोगों के लिए इतना ही काफी है । दोनों आदमी का काम मजे में चल जायगा । जानती हो भाभी, वह बाबू कौन था ?

लाली रंगा की बातों पर हँस पड़ी, बोली-सो तो तुमने कहा कहाँ ! कौन था वह बाबू ?

-तुम्हें याद होगा, सबसे पहले-पहल जब मैं काम की खोज में शहर गया था, बाबू की मजदूरी करनी पड़ी थी । उसने उस दिन मुझसे काम लेकर पैसा दिया और आज संयोग तो देखो कि उन्हीं से आज मिल में अचानक भेट हो गई, जब मैं वहाँ से निराश होकर लौटना चाहता था । उन्होंने मुझे पहचाना और खुद अपने पास बुलाकर कहा-क्या मिल में काम करोगे ? मैंने कहा-करूँगा क्यों नहीं बाबू ! मगर मिले भी तो ! इसपर वह हँस पड़े, उन्होंने पूछा-क्या अब मजदूरी तुम नहीं करते ? उससे तो तुम अच्छा कमा लेते होगे ! क्यों ? मैंने कहा-अच्छा क्या कमा लेता, बाबू ! कितनों का बोझ ढोना जो पड़ता था ! तब कहीं मुश्किल से कुछ पैसे इकट्ठे कर पाता था । नौकरी में वह

बात तो नहीं होगी। आपकी बड़ी मिहरबानी होगी, बाबू ! अगर आप मुझे वैसा मौका दे सकें !

इस पर उन्होंने अपनी खुशी जाहिर की और कहा-अच्छा, कल से काम पर आ जाओ। तुम्हारी बहाली मैंने कर ली और ३५५ नं. क्वार्टर खाली है, वह तुम्हारे रहने को दिया गया।

मैंने उनके प्रति सिर झुकाकर अपनी कृतज्ञता जतलाई। मैं वहीं बैठ गया।

मैंने, पाँच बजे, जब बाबू के लिए मोटर आ पहुँची और वह चलने को तैयार हुए, मैंने उनसे कहा—अगर वह क्वाटर दिखला दिया जाता तो मैं आज ही उसमें आ जाता और कल से काम पर भी हाजिर हो जाता।

-हाँ, ठीक है, बाबू ने मेरी ओर देखते हुए कहा-तो, खैर, आ जाओ, तुम भी कार पर।

और मैं भी उनकी मोटर पर जा बैठा। क्या कहूँ, भाभी, कार पर बैठने में कितना मजा आ रहा था ! उस समय, जानती हो, मैं क्या सोच रहा था ? सोच रहा था यह कि अगर मुझे एक कार होती, तो मैं भी कितने शौक से हवाखोरी को निकलता और अगर उस समय तुम्हें भी साथ लेता तो फिर क्या कहने ! क्या, भाभी, तुम्हें कभी कार पर बैठने की इच्छा होती है?

-इच्छा होने से क्या होता है, रंगलाल ! -भाभी ने हँसकर जवाब दिया; मगर क्या सभी इच्छाएँ कभी पूरी भी होती हैं ?

-पूरी और अधूरी की बात में नहीं कहता, भाभी, मैं तो जानना चाहता हूँ कि आखिर ऐसी इच्छा जगती भी है कभी ? -रंगा भाभी की ओर देखने लगा।

लाली जाने क्या कहा चाहती थी; मगर जाने क्यों, वह कुछ उत्तर में, बोल न सकी। लगा जैसे वह जो कुछ बोलने जा रही थी, वह लज्जा के मारे बोल न पाई।

रंगा थोड़ी देर तक भाभी की ओर देखता रहा, फिर वह बोल उठा—खैर, न बोलो भाभी, मैं तो समझ गया कि तुम क्यों नहीं कहा चाहती हो !

रंगा बोलकर आप-ही-आप खिलखिलाकर हँस पड़ा । लाली भी अपने को रोक न सकी । वह भी हँस पड़ी! कुछ क्षणों के लिए दोनों आनंद में आत्मविभोर हो रहे ।

उसके बाद, रंगा आप-ही-आप चौंक पड़ा और बोला-क्या विचार है भाभी, अभी चल चलोगी क्वाटर में । मगर अभी दूर चलना शायद तुम्हें अच्छा न लगे! अभी शायद दस बज रहे होंगे ! रात को एक निश्चित जगह छोड़कर जाना ठीक नहीं जंचता! चलो अभी तुम्हें शहर घुमा लाऊँ !

कल से तो हमलोग शहर से दूर ही रहेंगे, फिर ऐसा मौका कब हाथ लगेगा? आखिर, क्या सोच रही हो, चलोगी?

लाली कुछ क्षण चुप रहने के बाद बोल उठी-चलो!

रंगा उठ खड़ा हुआ, लाली भी उठी और दोनों शहर की ओर चल पड़े ! देहात की रहनेवाली लाली कलकत्ता-जैसे शहर को देखकर विस्मयाभिभूत हो उठी थी । एक ही साथ उसे इतनी चीजें देखने को मिलीं कि वह क्या देखे और क्या नहीं! वह प्रत्येक का रस ले-लेकर उपभोग करने में समर्थ न हो सकी । इतनी दर्शनीय चीजों को वह अपने में कहाँ स्थान दे! तरह-तरह की दूकानें, तरह-तरह की चीजें-जेवर-कपड़े, खिलौने, साबुन, फल-मेवे, आलीशान मकान, मोटर, बस, ट्राम, बिजली की रोशनी, पंखे, रेडियो, ग्रामोफोन कितनी चीजों के नाम गिनाए जाय । लाली जिस दूकान के सामने पहुंचती, वहाँ ठिठककर रह जाती और आँख फाड़-फाड़कर देखती रहती । उसका मन वहाँ की चीजों में चिपक जाता, उसकी उल्कंठा नाच उठती । उसे लगता कि दुनिया उपभोग के लिए है; पर इसका उपभोग सबको नसीब कहाँ ! और यह उपभोग तो उनके लिए है, जिनके पास पैसा है । पैसा ? उसे याद होता रंगा ने एक दिन उसे बतलाया था कि, पैसा क्या चीज है ? और उसी रंगा ने यह भी बतलाया कि वे पैसे किस तरह बटोरे जा सकते हैं ! और आखिर वे पैसे ही तो हैं, जिनके चलते आज वे दोनों इस तरह शहर की धूल उड़ा रहे हैं ! लाली की दृष्टि उन चीजों पर थी और उसका दिमाग इन बातों पर लगा था और बीच में रंगा खड़े-खड़े महसूस कर रहा था कि उसे अपनी भाभी को जरूर कुछ भेंट करनी चाहिए ! इतनी चीजों में से क्या अधिक उपयुक्त होगा

उसके लिए, रंगा सोचने लगा और इसी सिलसिले में उसे याद आया कि उसके पास इस समय कितने पैसे हैं; मगर उसके पास पैसे हैं कहाँ ? तभी उसे लगा कि उसने सारे पैसे तो अपनी भाभी को रखने दे दिये हैं। वह कुछ क्षणों के लिए हतप्रभ हो उठा। उसके अंतर ने पूछा-तब.....तब ?

और रंगा बोल उठा चलो भाभी, हमलोग आगे बढ़ें।

लाली का ध्यान जैसे टूट पड़ा। उसकी दृष्टि उन चीजों से हटकर रंगा की ओर फिरी और उसका दिमाग भी अपनी दिशा से हटकर दूसरी ओर को मुड़ा। तब लजाती हुई वह बोल उठी - और कहाँ तक चलोगे, रंगलाल ! अब तो देखो, दूकानें भी बंद हो रही हैं! हमलोग लौट चलें।

रंगा दो कदम आगे बढ़ चुका था, पर वह लाली का मतलब समझकर बोला-तो क्या लौट चलना ही अच्छा होगा, भाभी !

-नहीं तो अबतक चक्कर ही काटते रहोगे, भले आदमी !-लाली हँस पड़ी।

-क्यों, ज्यादा थक गई भाभी !

-तो क्या इरादा है, मोटर मँगवाओगे?

लाली बोलकर अपने-आप खिलखिलाकर हँस पड़ी। रंगा ने महसूस किया कि भाभी क्यों खिलखिलाकर हँस रही है। रंगा कुछ क्षणों तक रुककर कुछ सोचता रहा, उसके बाद उसने कहा-मोटर भी मँगवा सकता हूँ भाभी ! यह कौन-सी बात है? ज्यादा नहीं तो, हवड़ा-स्टेशन तक दो रुपये में, हमलोग मोटर पर बैठकर जा सकते हैं! मगर यह तो बतलाओ भाभी, तुम्हारे पास अब कितने पैसे बच रहे हैं? जरा देखो तो भाभी !

और रंगा उसके पास आकर खड़ा हो गया। लाली ने आँचल की खूँट खोली और रंगा ने गिनकर देखा कि उस समय दो रुपये दस आने बच रहे हैं।

रंगा ने उनमें से दो रुपये अपने हाथ में ले लिये और कहा -इन पैसों को बाँध रखो ठीक से, भाभी !

-मगर तुम दो रुपये लेकर क्या करोगे ?-लाली ने विस्मित होकर पूछा।

करूँगा क्या !-रंगा ने उमंग में भरकर कहा-क्या मोटर पर नहीं चलोगी, भाभी!

-मोटर पर !-लाली हँस पड़ी और मुँह बनाकर बोली-रहने दो मोटर! यह कोई शौक है! कभी चढ़ लूँगी, अभी इन दो रुपयों से बहुत-सा काम करना है। कल जब क्वाटर में चलकर रहोगे, तब क्या यह जरूरी नहीं होगा कि वहाँ के लिए कुछ चीज खरीदकर यहाँ से लिये चलो! मांग-मूगकर कैसे काम चलेगा? कुछ तो अपने पास रहना ही चाहिए!

लाली क्षण-भर चुप रहकर सोचती रही, उसके बाद बोल उठी-लाओ रुपये! तुम्हरे पास रहने न दूँगी!

रंगा हँस पड़ा और हँसकर ही बोला-नहीं, जब ये रुपये निकल गये हैं, तब जरूर खर्च होंगे! दोनों न भी हो, मगर एक तो खर्च होगा ही।

और कहना नहीं होगा कि वह रुपया खर्च हुआ-एक छोटी-सी सिंदूर की डिबिया खरीदकर भाभी को भेंट करने में। और दोनों लौट पड़े।

(बत्तीस)

### 355 नं. का क्वार्टर।

लाली को साथ लेकर रंगा, भोर को चलकर नौ बजे पहुँचा 355 नं. के क्वार्टर में अपने साथ एक छोटी-सी गठरी लेकर, जिसमें थे कुछ पहनने के कपड़े, खाने की कुछ चीजें और रात की खरीदी हुई भेंट में दी गई डिबिया। उन दोनों का पहुँचना था कि और-और क्वार्टरों के बच्चे, जवान, औरत और मर्दों की एक छोटी-सी भीड़ इकट्ठी हो गई। लाली अपने क्वार्टर के भीतर वाले दरवाजे पर, थक जाने के कारण, बैठ गई। उसके सामने रंगा ने छोटा-सा गद्दर रखा और वह खुद बरामदे पर खड़ा-खड़ा आगे का प्रोग्राम सोचने लगा। पर वह सोचकर कुछ निश्चय पर पहुँच न पाया था कि भीड़ में से एक अधेड़ पुरुष बोल उठा-कहाँ से आये हो, भैया! क्या नाम? कौन-सी जात? इसके पहले कहाँ काम करते थे?

रंगा के सामने एक ही साथ बहुत-से प्रश्न आये। रंगा इन प्रश्नों को सुनकर मुस्कुराया और बोल उठा-पहले पहल काम करने आया हूँ, भैया! गाँव से चला हूँ, विहार-सूबे में मकान ठहरा, मेरा नाम रंगलाल है, पर सभी रंगा कहकर पुकारते हैं।

-और जात तो बतलाया ही नहीं, भाई!

--जात क्या! -रंगा ने जरा उखड़े-उखड़े जैसा कहा-मजदूर हैं। मजदूरों को जो जात हुआ करती है, वही मेरी जात समझ लो। यों कहो तो हिन्दू हूँ।

-पानी-चानी चलता है, भैया ! आखिर, यह तो जानना ही चाहिए। जब तुम हमलोगों के बीच आ जुटे हो, तब हमारा सुख-दुख तुम्हें समझना चाहिए और तुम्हारा हमें। हमलोगों के परिवार के एक तुम भी अंग ठहरे! खैर, अच्छा है, तुम आ गये हो ! जिन चीजों की जरूरत हो, कहोगे, सब पूरा हो जायगा! हाँ, भैया घर कब छोड़े थे?

-घर ?-रंगा जरा रुका फिर कुछ सोचकर बोल उठा--यही चार-पाँच दिन हुए। टीशन पर ही ठहरा था। नौकरी की खोज की, कहीं लगी नहीं। उसके बाद कई मिलों में घूम गया, कहीं कोई खाली जगह नहीं! कल भगवान की दया से मुश्किल से इस मिल में जगह मिल गई और आज मैं आपके सामने हूँ। अब तो आपलोगों के बीच में रहना ठहरा, जिस तरह से निबाहिए, मुझे निबहना है ! परिवार में सब आदमी सब तरह के रहते हैं -कोई अच्छा रहता है और कोई बेजा भी; मगर परिवार का मुखिया सबको एक जैसा निबाहे लिये चलता है। हाँ, पानी चलने की पूछते थे न ? सो चलता है भैया! चलता है, मैथिल बाबा हमारे पुरोहित हाते हैं।

वह अधेड़ पड़ोसी रंगा की बातों से खुश हुआ। उसने समझा कि लड़का हुशियार है, बात करने का सलीका है। जरूर यह भले घर का लड़का है। चेहरा भी बतलाता है कि यह कुली-मजदूर नहीं। फिर भी मजदूर बनकर हमलोगों के बीच आ जुटा है। उसने खुशी में आँखें मीची और उसी हालत में उसने रंगा से कहा-ठीक कहते हो भैया ! आदमी निबाहे निबहता है। यों कोई बेजा भी रहेगा और कोई अच्छा भी, कोई अकड़बाज रहेगा और कोई

झुककर चलनेवाला; समाज में सभी की जगह है; मगर जगह-जगह में फर्क है! इनमें जो जितना ही झुककर चलेगा, वह उतना ही ऊँचा रहेगा । यही दस्तूर है। खैर, बात तो होंगी ही; मगर तुम्हें काम पर भी तो जाना होगा । क्या आज जाओगे या नहीं?

-जाऊंगा क्यों नहीं !-रंगा ने कहा-दस बजे तो जाना है। यहाँ से मिल पहुंचने में ज्यादा से ज्यादा पन्द्रह मिनट लगेगा और क्या ? बाकी वक्त में और सब काम! मगर आपने अपना कुछ परिचय तो नहीं दिया और आपके साथ जो ये सब हैं ?.....

वह अधेड़ हँस पड़ा और सिर हिलाकर बोला-मेरा परिचय तो मिल ही जायगा, भैया! और ये लोग? सब तुम्हारे पड़ोसी हैं! बाल-बच्चेदार आदमी ही यहाँ ज्यादातर हैं ! जानते हो, बरस-छः मास में कहीं घर जाने का मौका मिलता है। फिर बालबच्चे साथ कैसे नहीं रहें! देखना तो पड़ेगा ही और आखिर बाल-बच्चों के लिए ही तो इतना टंटा है, भैया ! यों अकेले के लिए क्या फिकर? कहीं किसी तरह पेट भर लेने से हुआ! तुमने अच्छा किया, जो मेहरिया को अपने साथ लाये ! देखता हूँ, जैसे तुम शांत हो, वैसे वह भी है। तभी तो दुनिया निबहती है और परदेश की बात पूछो, तो यहाँ झगड़े-कचकच के बीच रहकर कोई कैसा भी कमाने वाला क्यों न हो, कुछ जुटा नहीं पाता! यहाँ एक भीखा भाई है य उनकी मेहरिया उन्हें नाक में कील ठोके रहती है! न सोते कल न जगते कल! और सारा महल्ला उनसे परेशान! खैर, हाँ, तुम पूछ रहे थे इन-सब के बारे में न ?

उसके बाद उस आदमी ने बड़े विस्तार के साथ सभी का परिचय दिया और अपने बारे में भी वह काफी कह गया। रंगा ने समझा कि आदमी सीधा और सच्चा है, एक भी बात छिपाकर रखना नहीं जानता!

इस तरह दोनों ओर के परिचय को विधि पूरी होने के बाद चले गये।

रंगा भीतर की ओर मुड़ा और मुड़ते ही उसकी दृष्टि लाली पर गई और उसने अनुभव किया कि लाली सिर झुकाये पड़ी है। जैसे किसी उलझन को सुलझाने में तल्लीन हो। रंगा समझ नहीं सका कि वह कौन सी उलझन

होंगी। इसलिए वह जरा चिंतित हो पड़ा और उसी चिंतित में धीरे से उसने पुकारा-भाभी!

और लाली चौंक पड़ी रंगा की पुकार सुनकर ! वह उठी, कमरे के भीतर गई, फिर रंगा की ओर देखकर बोली - सुनो!

रंगा उसके पास पहुँच कर उत्सुक होकर बोल उठा-क्या कहती हो, भाभी !

लाली जरा गंभीर होकर क्षण भर रुकी रही, उसके बाद सिर उठाकर उसकी ओर ताकती हुई वह बोल उठी-देखो, भाभी कहकर मुझे न पुकारा करो।

-क्यों ?-रंगा आश्चर्यचकित होकर बोल उठा ।

- अब भी नहीं जानते ? पूछते हो क्यों ! - लाली का मँह लाल हो उठा और गंभीर होकर बोल उठी - भीड़ जुट गई, धीरे-धीरे इतने आदमी पहुँच गये और उन आदमियों ने अपने-अपने विचार से मेरा-तुम्हारा रिश्ता भी जोड़कर अपने-अपने मन में संतोष कर लिया, फिर तुम मुझे पुकारते हो-भाभी ! जानते हो, भाभी कहकर जो तुम मुझे पुकार रहे हो, इससे उनलोगों के बीच, हम दोनों को लेकर कौन-सा खयात पैदा हो सकता है? जरूर वे लोग समझेंगे कि अपनी भाभी को उड़ा लाया है। दोनों में सिट-पिट होगी, जवानी के दिन ठहरे,घर में हौसला पूरा होने को नहीं, ले आये परदेश ! लोग गिला करेंगे, तुम किस-किस का मँह पकड़ोगे ? मर्दों को तो जग-हँसाई की परवा नहीं होती, मगर तुम मेरी ओर देखो! वे औरतें मेरी ओर किस तरह घूर-घूर कर ताक रही थीं? तुम तो दिन में काम पर चले जाओगे, बच जाऊँगी मैं अकेली। वे औरतें आयगी ही, और यह जरूरी है कि तुम्हारे लेकर वे-सब चरचा भी चलायगी! तुम्हीं कहो, मैं कैसे कहूँगी कि मैं तुम्हारी भाभी हूँ, मुझे अपने देवर पर बड़ी ममता है और उस देवर को आराम पहुँचाने के लिए, मैं अपने पुरुष को छोड़कर, साथ-साथ आई हूँ ! क्या समझते हो तुम, इन बातों से वे संतुष्ट हो सकेंगी?

लाली बोलकर रंगा की ओर देखने लगी। रंगा ने इसके पहले इन बातों पर कभी खयाल भी नहीं किया था और न करने की उसे अबतक

जरूरत ही आई थी। मगर अब तो उसे इस ओर ध्यान देना अनिवार्य हो उठा। वह तो अब एक समाज में आ गया है न? और वह इस समाज के बीच नक्कू बनकर रहना कैसे पसंद करेगा? रंगा लाली की बातों से, कुछ क्षण के लिए बड़ी चिन्ता में पड़ गया। आखिर, क्या कहकर अपनी भाभी का परिचय देना उसके लिए उचित होगा? रंगा मन-ही-मन इसपर बहुत-कुछ सोच गया; पर कोई भी रिश्ता उसे संतोष न दे सका। वह घबरा उठा और उसी घबराहट में बोला-आखिर तुमने क्या सोचा है, भाभी !

-फिर वही भाभी ! -लाली बिगड़कर मँह बनाती हुई बोली- कहकर क्यों मेरी इज्जत उतारने को तुल पड़े हो तुम, कहो तो? क्या मेरा नाम नहीं है? नाम लेकर आज से पुकारा करो। समझो कि तुम्हारी भाभी मर चुकी और अब जो तुम्हारे सामने है, वह लाली है और रिश्ते में.....

-हाँ रिश्ते में ! - रंगा खिन्न और उदास होकर लाली की ओर देखने लगा।

-गबरू हो, गबरू ! - लाली बोलकर मुस्करा उठी, फिर गंभीर होकर बोली - कितने बेबकूफ हो रंगलाल ! इतना भी नहीं जानते कि कौन-सा रिश्ता हमलोगों को जिन्दा रख छोड़ेगा? अभी जब यह हाल है, तब तुम आगे कैसे चल सकोगे? क्या और भी खोलकर कहना पड़ेगा?

बस हो चुका, हो चुका, खोलने की जरूरत नहीं ! मगर.....

-मगर की जरूरत नहीं! -लाली दृढ़ स्वर में बोल उठी-तुम शायद यह सोच रहे होगे कि हमलोग पति-पत्नी तो हैं नहीं। उस रूप में रहना शायद नाजायज हो। मैं भी इसे नाजायज मानती हूँ; मगर दुनिया इसी रूप में जानकर संतुष्ट हो जाय, तो फिर और बखेड़ा खड़ा करने की जरूरत ही क्या? दिल से हमलोग देवर-भाभी का नाता ही पाले रहें और ऐसा रखना भी ठीक है। इससे हमलोग अपने-आपको बड़ी खूबी से बचा लेंगे। आज से ऐसा ही समझ लो और लोगों को भी समझने का मौका दो हमलोग क्या हैं।

- ठीक है, जब तुम्हें इसमें आपत्ति नहीं है, तब-रंगा बोल तो गया; पर प्रस्ताव उसे कुछ रुचा नहीं। वह सोचने लगा कि समाज कितना अंधा -

होता है ! यहाँ सच की गुजर नहीं। जो जितना ही झूठ पर पालिस चढ़ाये, उतना हो वह खरा समझा जाता है ! बलिहारी है ऐसे समाज को! क्या एक औरत और एक मर्द आपस में मित्र-मित्र के नाते नहीं रह सकते ? इस रूप में रहा जाय, तो क्या यह संभव नहीं है ?

रंगा इन्हीं बातों को सोचने में लगा था कि उतने में लाली बोल उठी-आपत्ति की बात नहीं है, रंगलाल ! बहुत-सी बातें ऐसी हैं, जिन्हें नहीं मानते हुए भी आदमी को मानने के लिए विवश होना पड़ता है। आज हमलोग उसी हालत में पहुँच गये हैं। एकबार की भूल जीवन-भर के लिए विष बन जाती है। तब फिर जान-बूझकर वैसी भूल की हो जाय क्यों? सावधान रहना, कभी भूलकर ऐसा न कह बैठना, जिसके लिए पीछे हमलोगों को सिर झुकाना पड़े।

इसपर रंगा ने अपनो सम्मति जनाई और लाली के इस परामर्श की गुरुता पर उसने अपनी प्रसन्नता प्रकट की। इसके बाद रंगा ने मिल में चलने को सोचकर गद्दर से धोती निकाली और बाहर नल पर नहाने को चल पड़ा।

रंगा जल्दी-जल्दी में थोड़ा-बहुत खाकर मिल की ओर दौड़ा। आज उसका पहला दिन था। इसलिए उसके लिए यह बहुत जरूरी था कि वह समय से कुछ पहले पहुँच जाय, ताकि उसे अच्छी तरह काम समझा दिया जाय। उससे जितना हो सका, तेजी से चल पड़ा और सीधे वह अपने परिचित बाबू के सामने जा पहुँचा। उस समय बाबू आवश्यक काम-काज में लगे थे। रंगा रुका रहा। उसके बाद ज्योंही बाबू ने गर्दन उठाई, त्योंही रंगा ने झुककर सलाम किया। बाबू को समझते देर न लगी। उसने घंटी का बटन दबाया। दबाते ही चपरासो आकर हाजिर हुआ। बाबू उससे फोरमैन को सलाम देने कहा थोड़ी देर के बाद फोरमैन ने आकर बाबू को सलाम किया। फिर उन दोनों के बीच रंगा को लेकर बातें हुई ! फोरमैन उसे अपने साथ हाजिरी बाबू के सामने ले जाकर उसको हाजिरी बनवाई। उसके बाद उसे अपने साथ लेकर मिल के भीतर वह चलता बना।

इधर रंगा के चले जाने के बाद, लाली बाहर का दरवाजा बंदकर बढ़ी देर तक बैठी रही। उसके मस्तिष्क में जैसे दो विरोधी बातें बड़ी तेजी के साथ टक्कर मारकर उसे विव्यल-बेचैन बना रही थीं। लाली उन बातों को जितना ही जोर से दबाना चाहती, उतना ही वह खुद जकड़ती जाती। वह समाधान नहीं पा रही थी कि किस तरह वह इन बातों से ऊपर उठे! जिन बातों की कभी उसने कल्पना तक न की थी, आज वे बातें अनायास ही उसके दृष्टि-पथ पर आती-जातीं! वह कब तक उन कल्पनाओं के साथ लड़ती रहे! उसमें इतनी शक्ति कहाँ कि वह अपने को दूसरी राह पर ले जाय। इन्हीं दुश्चिताओं के बीच उलझी रहने के समय, उसने सुना कि दरवाजे को कोई बाहर से खटखटा रहा है! वह उस खटखटाहट को सुनकर भी कैसे कान बंदकर पड़ी रहे! आज तो अभी-अभी वह इस कमरे में आई हुई है, अभी-अभी कुछ पड़ोसी उनलोगों से मिलकर लौट गये हैं! संभव है, इस समय, जबकि मिल में काम करनेवाले काम पर चले गये हैं, जरूर कोई-न-कोई औरत ही होगी! फिर-फिर? और तभी फिर से उसने बाहर की खटखटाहट सुनी। अब उससे एक क्षण के लिए भी रुकना कठिन हो उठा। वह उठी, दरवाजे तक आई, और उसे खोलकर एक ओर वह खड़ी होना ही चाहती थी कि उसने देखा, बाहर एक युवती खड़ी मुस्करा रही है। लाली सहमकर कुछ बोलना चाहती थी कि वह आगंतुका खुद ही बोल उठी तकलीफ दी बहन, माफ करना! क्या तुम अभी सो रही थीं?

--नहीं तो! -लाली बनावटी हँसकर बोल उठी-अभी कौन समय है सोने का! यों ही बैठी हुई थी। खैर, आओ न भीतर, तकलीफ ही देना है तो क्यों न वह तकलीफ खुलकर दी जाय! नहीं क्या?

लाली बोलकर अपने-आप हँस पड़ी, आगंतुका भी अपनी हँसी को रोक न सकी। लाली भीतर की ओर मुड़ चली, आगंतुका भी उसके पीछे-पीछे बरामदे पर आई। बैठाने का कोई सामान था नहीं, फिर भी पक्की सहन को अपने आँचल से झाड़कर उसकी ओर इशारा करते हुए लाली बोल उठी यहाँ क्यों न हमलोग बैठे!

-हाँ, ठीक तो है-कहकर वह आगंतुका भी बैठ गई।

आगंतुका युवती ने ही प्रसंग छेड़ा। वह लाली की ओर मुखातिब होकर बोली -मैं रसोई बना रही थी, तभी मालूम हुआ कि 355 नं. का क्वाटर भर गया है। एक पुरुष है, शायद बिहार से आया हुआ और उसकी मेहरिया है। मेहरिया का नाम सुना तो दिल में हुआ कि अच्छा हुआ, हमलोगों का एक नम्बर बढ़ा तो! क्या करती, जानती ही हो, काम करनेवाले को खिलाने-पिलाने भार औरत को ही उठाना पड़ता है। दिल में हुआ कि एक नजर पहले देख आऊँ नई आई हुई बहन को; मगर ऐसा न कर सकी। यही आध मिनट हुआ कि घर-गिरस्ती के काम से फुरसत मिली है। अपना खाना वैसे ही छोड़ दौड़ी आई तुम्हें देखने को! तुम अभी तो नहाई-धोई भी न होगी, क्यों?

-अभी कहाँ? यही कुछ देर पहले तो वह काम पर गये हैं। मैं सोच ही रही थी कि नल पर चलूँ। इतने में तुम आ गई। क्या तुम नहा-धो चुकीं?

-नहा-धो नहीं चुकी होती, तो रसोई कैसे बनाती?-युवती बोल उठी-यह बंगला मुलुक है बहन, यहाँ तो बगैर नहाये रसोई घर में घुसती नहीं! तुम्हारे तरफ तो मुझे नहीं मालूम, ऐसा रिवाज है या नहीं; मगर हमलोग पछाँह मुलुक के हैं न, वहाँ ऐसी कोई कैद नहीं है! फिर जिस मुलुक में जैसा रिवाज है, वैसा ही तो चलना चाहिए। तुम क्या बंगला मुलुक पहले-पहल आ रही हो?

-हाँ, पहले-पहल। घर पर कौन-कौन हैं?

-सब कोई हैं-माँ हैं, बाप हैं, दो भाई और तीन छोटी-छोटी बहन हैं और समुराल में सास है.....

-ओर देवर नहीं, ननद नहीं?

-भाई में अकेले जो ठहरे, न देवर, न ननद!

-तब तो तुम्हें खूब मानते होंगे, तुम्हारे पुरुख?

लाली हँस पड़ी, जैसे इस बात से वह कितनी खिल गई हो। और उसी हँसी को ओठों में लिये हुए बोल उठी-हाँ, मानते तो हैं! मानेंगे क्यों नहीं?

-किते दिन हुए शादी हुए बहन?

-ज्यादा दिन तो नहीं हुए, पारसाल गौना हुआ और इस साल इनके

साथ यहाँ आई ।

-तभी तो ! तभी तो !! - कहकर युवती खूब खिलखिलाकर हंस पड़ी और हँसते हुए बोली-तभी तो परदेश खुलकर खाने के लिए हैं।

-मानी ? - लाली ने अन्यमनस्क होकर पूछा ।

युवती फिर से हँस पड़ी, और हँसते हुए बोली-मानी नहीं समझा ? समझ जाओगी, जब कुछ दिन यहाँ रहोगी ! अभी तो आज आई ही हो ! कैसे समझोगी इतनी जल्दी !

लाली इन बातों का जवाब क्या दे ! वह कुछ बोली नहीं, सिर्फ मुस्करा कर रह गई । मगर लाली उसकी वेश-भूषा और बातचीत के ढंग से जान गई कि वह कितने पानी में है और उसकी थाह लेने के लिए, उसे यह आवश्यक बोध हुआ कि वह भी कुछ प्रश्न करे-वह भी कुछ उसके दिल को गुदगुदाय । मगर उसे प्रश्न करने का अवसर ही न आया । वह युवती खुद बोल उठी-तुम चाहे मँह से इसे कबूल करो या न करो; मगर मेरी भी एक दिन यही हालत थी बहिन ! मैं भी ठीक तुम्हारी तरह ससुराल में रहने भी न पाई कि हजरत मुझे यहाँ उड़ा लाये । तकदीर से इसी मिल में नौकरी मिल गई । रहने के लिए बस यहाँ का क्वाटर भी मिल गया । मैं और वह ! दूसरा था कौन ! उस वक्त उनको 37 रुपये मिलते थे । सिर्फ दो आदमी और सैंतीस रुपये ! वह मालिक, मैं मालिकन ! जमा-पूजी जो उन्हें मिलती, मुझे रखने को दे देते ! ओह, उनदिनों की बातें क्या कहँ, बहन ! जब वह चले जाते अपने काम पर, तब मुझे लगता कि जैसे दुनिया सूनी हो गई ! मैं आँख पसारे बैठी रहती । कब रात हैं-कब रात हैं, यही चिन्ता रहती ! जरा सा खटका सुनती, दिल धक से हो उठता । लगता कि जैसे मुझपर भूत सवार होकर मेरे कलेजे को कुतर रहा है ! मगर जब वह आ पहुँचते, फिर क्या कहना ! रात अपनी, वह अपने ! समझी, कुछ समझी, बहन !

और वह युवती लाली के कंधे को हाथों से झकझोरती हुई ठहाका मारकर हँस पड़ी ! लगा जैसे उसकी हँसी रुकती ही न हो ! बड़ी देर तक वह उसी तरह हँसती रही ।

मगर लाली उन बातों को सुनकर खुश न हो सकी, वह उदास हो गई। लगा कि जैसे वे बातें उसे बुरी तरह खल रही हैं, जिन्हें वह सुनना पसंद नहीं करती। फिर भी बलपूर्वक उसे सुनाया जा रहा है। मगर लाली ने अपने भाव को अपने भीतर में ही छिपा लिया और अपने मन पर जोर देकर उसकी ओर देखती हुई वह मुस्करा उठी।

कुछ क्षण तक वातावरण रंगीन रहा; पर लाली अपने को उस रूप में रखने को जैसे असमर्थ हो गई। उसके लिए उठने का बहाना भी सामने था। वह जैसे उससे मिलकर कितनी खुश हुई हो, ऐसा भाव दिखलाते हुए बोल उठी-तुमसे मिलकर बड़ी खुश हुई बहन! अब तो फिर इसी तरह का मौका आता ही रहेगा। अभी तुम्हें बुरा न लगे तो मुझे इजाजत दो, जरा नहा लूँ!

और लाली खुद बोलकर उठ गई। उस समय का वह रंगीन प्रसंग जहाँ-का-तहाँ रह गया।

(तैंतीस)

रंगा दिन-भर नये काम को पकड़ने की परेशानियों में उलझा रहा; वह धूम-धूमकर मशीनों को चलते देखता। देखता कि मशीन के किस पुर्जे के सहारे कौन-सा पुर्जा लगता है। फोरमैन ने उसे दो-तीन घंटे के लिए इजाजत दे रखी थी कि वह सारे मिल को एकबार अच्छी तरह से धूम-फिरकर देख ले। रंगा ने धूम-धामकर देखा कि किस तरह रुई धुनी जा रही है, धुनी हुई रुई को किस तरह पौनी बनाई जा रही है; फिर पौनी से सूत; सूत से आगे चलकर किस तरह करघों की मशीन भरी जाती है और उससे किस तरह तरह-तरह के कपड़े बनते जाते हैं! हर मशीन पर आदमी बैठे हैं य मशीनें अपनी गति में चल रही हैं, काम करनेवाले बड़ी मुश्तैदी से, और बड़ी हुशियारी के साथ, अपने-अपने कामों में लगे हुए हैं; जरा भी दूसरी ओर उनका ध्यान गया कि आफत आई! मजाल क्या कि उन्हें एक क्षण के लिए भी गफलत में रह जाना पड़े! फिर भी वे काम करनेवाले इतने अभ्यस्त हो चुके हैं कि एक ओर वे अपने हाथों को जितनी तेजी के साथ चला रहे हैं,

उतनी तेजी के साथ अपने साथियों के बीच हँसी मजाक की गप्पें भी चल रही हैं। रंगा उत्सुकता लिये बंधे हुए वक्त के भीतर, जहाँ तक वह घूमकर देख सकता था—देखता रहा और उन काम करनेवालों से कुछ पूछता भी चला! उसने उतने समय के भीतर यह भी महसूस किया कि मिल में निरे कुलियों की ही जरूरत नहीं रहती, एक-से-एक अच्छे-अच्छे दिमाग और इल्म के आदमी भी मशीनों पर काम करते हैं! इन बातों से रंगा को बड़ी खुशी हुई। उसकी कल्पना ने भी उसकी खुशी में योग दिया और तब उसने पाया कि वह आज जिस रूप में मिल में प्रवेश कर पाया है, पाँच साल के बाद वह किसी और ही रूप लेकर मिल से विदा ले रहा है! रंगा वास्तव में इतना खुश नजर आ रहा था कि लगता था, जैसे आज उसकी सारी बाँछे खिल उठी हों, जैसे वह अपनी साधना का मीठा फल उपलब्ध कर उसका उपभोग कर रहा हो।

और रंगा इसी रूप में अपने निश्चित समय पर वहाँ आकर हाजिर हो गया, जिस जगह पर फोरमैन ने उसे रहने का आदेश दे रखा था।

फोरमैन आया और रंगा को देखते ही उसने मुस्कराकर कहा—देख लिया कारखाना? कैसा लगा? शायद तुम पहले-पहल मिल के भीतर आये हो न?

हाँ, मैं पहले-पहल ही आया हूँ! - रंगा ने उत्तर में हँसते हुए कहा ताज्जुव लगा मुझे देखकर-राक्षस-जैसे ये मशीनें चल रही हैं, एक पल के लिए भी जैसे वे दम लेना नहीं चाहतीं! अजीब यह दुनिया है और अजीब है लोगों का दिमाग! अकल काम नहीं करती! आदमी तो जैसे इनके हाथ की कठपुतली बनकर रह गया है! सारा काम तो मशीनें खुद कर लेती हैं और मुझे तो लगता है, जैसे कुछ समय के बाद, इन मशीनों के सामने आदमी बेकार हो जायेंगे! नहीं फोरमैन साहब! क्या खयाल है आपका?

फोरमैन रुककर जरा कुछ देर सोचता रहा और उसके बाद वह बड़ी तेजी से बोल गया—बात तो कुछ ऐसी जरूर है! कब ये मशीनें आदमी की ताकत बेकाम कर देंगी, वह कहा नहीं जा सकता! मगर अभी इन-सब बातों को चरचा छोड़ दो। मुझे यह बतलाओ कि तुम्हें इनमें से कौन-सा काम दिया

जाय! इन कामों में कौन-सा काम तुम्हारे मन को ज्यादा रुचा! कोई भी काम पहले कुछ दिन तो सीखने में ही जायगा! इसके अलावा अगर उस प्रश्न के ही, कल-पुर्जे का भी ज्ञान पैदा कर सको, तो और भी उमदा! ओहदा बढ़ जायगा और उस ओहदे के साथ-साथ रूपये भी! फिर अगर एक जगह न भी रहने की इच्छा हो-कोई बात नहीं, हर जगह तुम्हारी पूछ रहेगी, हर मिल के डायरेक्टर तुम्हें अपने यहाँ बुलाकर काम देंगे!

-क्या ऐसा भी होता है। -रंगा अपनी उत्सुकता को रोक न सका, उसे लगा कि वह जैसे अपनी कल्पना को साकार रूप में सामने आती हुई देख रहा हो! और वह अधिक उत्पुल्लता को न रोककर फिर से बोल उठा-क्या ऐसा कोई कर पाया है, फोरमैन साहब!

-क्यों नहीं-फोरमैन ने खूब गंभीर होकर कहा-क्यों नहीं-एक नहीं, कितने मिशाल सामने हैं ! मेरे सिखलाये हुए में से ऐसे कितने निकले, जो अपने-अपने फन के एक्सपर्ट समझे गये। उनकी तनखाहें बढ़ीं, ओहदे बढ़े, उनमें से कुछ तो और भी ज्यादा तनखाह पर दूसरे मिलों में चले गये ! और, कुछ इसी मिल के एक्सपर्ट के रूप में काम कर रहे हैं! मगर मैं फोरमैन का फोरमैन ही रह गया! यहाँ तो बात यह है कि जो जितना दिमाग खटायगा, वह उतना ही आगे बढ़ेगा! खैर, मुझे जानना चाहिए कि तुम क्या करना ज्यादा अच्छा पसन्द करेगे, क्या तुम्हारा इरादा है कि तुम मजदूर ही बनकर यहाँ काम करो ?

रंगा समझ नहीं रहा था कि वह क्या कहे अपने पसंद के काम के बारे में, जब कि उसका दिमाग सही नहीं है, उसमें उथल-पुथल मचा हुआ है! जब उसने देखा कि वह अपने-आप कुछ भी निश्चय नहीं कर पाता, तब उसने उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा-आपही मेरे बारे में जो फैसला करेंगे, वही मेरे लिए ठीक होगा! मैं इन कामों से जानकारी नहीं रखता और न मुझे यही मालूम है कि कौन-सा काम मेरे लिए उम्दा और ज्यादा फायदामंद होगा! चाहे वह काम कितना ही खतरनाक और चाहे कितना ही कठोर क्यों न हो, एक बार तो उसमें मैं पिल ही पड़ूँगा। मुझे इस बात का भय नहीं है कि उसमें मेरी जान तक जा सकती है। मैं काम के

सामने अपनी जान की परवा नहीं करता ! मैं चाहता हूँ कि आगे बढ़ूँ, जहाँ तक मेरी ताकत मेरा साथ दे सके। मुझे रुक-रुककर चलना पसंद नहीं; रास्ता बनाना पड़े, यह मंजूर है; मगर मैं वैसी राह पर नहीं चलना चाहता, जहाँ मेरे दिमाग को खुराक मुअस्सर न हो!

-तो जो मैं कहता हूँ, करोगे? फोरमैन ने उत्साहपूर्ण शब्दों में पूछा।

-करूँगा क्यों नहीं! आप जरूर मेरे लाभ की बात बतलाएंगे।

इसका मुझे आपकी बातों और व्यवहारों से विश्वास हो गया है! ऐसे आदमी दूसरे को कभी धोखा नहीं दे सकते!

फोरमैन रंगा की बातों से बड़ा खुश हुआ और उन बातों पर अपनी सम्मति प्रकट करते हुए उसने कहा-रंगा, जो बात तुमने कही है, पक्की कही है! मैं तुम-जैसे नवयुवक को, जिसको जरा भी अपना होश है, मजदूरी करने की सलाह नहीं देना चाहता। वह तो शरीर की ताकत का काम ठहरा-कोई भी ताकत रखनेवाला उसे कर सकता है; पर शरीर का काम सब-कुछ नहीं है। दिमाग के काम की ही कदर होती है। देखा होगा तुमने-खेत में हल जोतनेवाला हलवाहा डेढ़-दो रुपये का समझा जाता है और एक वकील घंटे पीछे दस-बीस रुपये कमा लेता है। तभी तो दिमागी काम करनेवालों की इज्जत भी अलग होती है और वह हलवाहे का हलवाहा ही जनम-भर बना रहता है! शरीर और दिमाग में इतना फर्क है! और तुम्हें देखकर मुझे विश्वास होता है कि तुम्हें अगर अवसर दिया जाय, तो तुम कुछ बन सकते हो! बन सकने के बहुत-से गुण तुम्हारे पास छिपे पड़े हैं, जहाँ तुम्हें इशारा मिला कि वे गुण तुम्हारे सामने आये! ऐसी दशा में मैं चाहता यह हूँ कि तुम वीविंग डिपार्टमेंट की शुरुवात के काम को अपने हाथ में लो और जैसे-जैसे उसमें तुम्हें सफलता मिलती चले, वैसे-वैसे तुम आगे बढ़ते चलो! मगर सच तो यह है कि हर काम क्रष्ट-साध्य है। किसी बात की जानकारी के लिए उसकी तह तक जाने की जरूरत है। जितना ही तुम उस तह के भीतर प्रवेश करोगे, उतना ही तुम्हारे दिल को बल मिलेगा, उतनी ही तुममें उच्चता की भावना जगेगी। खैर, चलो, अब तुम्हारे काम का श्रीगणेश किया जाय।

और फोरमैन उसे साथ लेकर रुई-धुननेवाली एक मशीन के पास आया। उस मशीन पर काम करनेवाला काम कर रहा था। उसे मशीन पर से अलग होने को फोरमैन ने आज्ञा दी। वह अलग हटकर खड़ा हो गया। फोरमैन ने मशीन सँभाली और रंग से कहा-देखो इसकी चाल को। उसके बाद उसने उस मशीन के सम्बन्ध में जितनी जानकारी हासिल करनी चाहिए, रंग को समझाया। रंग ने खूब गौर से उसकी सारी बातें सुनीं और मशीन से काम लेने का ढंग सीखा। फिर उसने रंग से कहा - अब आओ तुम मशीन पर। रंग बैठा काम करने को। रंग को मशीन का सारा प्रोसेस मालूम हो गया, फिर भी उससे जो कुछ भूल हुई, फोरमैन ने उसका सुधार किया। इस तरह से रंग ने उसकी जानकारी हासिल की। फोरमैन को पूरे डेट घंटे लग गये, तब कहीं रंग उसपर काम करने के योग्य हो सका। मशीन चलने लगी अपनों गति में, रंग ताज्जुब के साथ मशीन चलाने लगा। जब मशीन चलने में कोई गड़बड़ी न रह गई, तब उसे पहले वाले मशीन-चालक के हाथ सौंपकर वह दूसरी जगह चलता बना।

छ: बजे मिल में घंटी बजी। उसके बाद दूसरे पिरियड के काम करनेवालों का दल आ पहुँचा। पहले दलवाले मशीन से हटे, फिर टिह्ही-दल की तरह करीब नौ सौ काम करनेवालों ने बिदाई ली। सभी अपने-अपने क्वार्टरों की ओर चल पड़े। रंग भी उनसब के बीच अपने क्वार्टर की ओर चल पड़ा।

वह रंग का पहला दिन था। वह काफी थक गया था। फिर भी उसे कुछ कम प्रसन्नता न थी। उसने एक मशीन पर काम करना बहुत-कुछ सीख लिया था। इसलिए वह प्रसन्न था और उसका प्रसन्न होना कोई आचर्यजनक नहीं।

रास्ते में उसने देखा कि एक छोटी-सी हाट लगी है और मिल से लौटने वाले मजदूर हाट करने के लिए चल पड़े हैं। रंग भी हाट गया; पर उसे लगा कि उसके पास पैसे तो हैं नहीं! फिर वह हाट में कुछ देर तक यों ही घूमता रहा। फिर उसे लाली की याद हो आई। वह विना क्षणभर ठहरे, अपने डेरे की ओर चल पड़ा। लाली इंतजार में बैठी थी। दरवाजा खुला हुआ था।

रंगा भीतर गया । उसने देखा कि लाली अकेले मन मारे बैठी हुई है । रंगा को देखते ही वह उत्फुल्ल होकर बोल उठी-आ गये, आ गये! कहो, काम करने में तबीयत लगती है ?

-तबीयत ! तबीयत क्यों नहीं लगेगी ?-रंगा ने बड़ी खुशी के साथ, हँस-हँस कर दिन-भर का सारा हाल अपनी भाभी से कह सुनाया । उसने लाली से यह भी कह डाला कि उसके लिए यहाँ काफी गुंजाइश है काम सीखने की । अगर उसे वह सीख सका, तो जरूर वह एक दिन ऊँचा उठ सकता है । उसने यह भी कह सुनाया कि उसे अपने आप पर काफी विश्वास है । अगर वह किसी दिन ऊपर उठ सका, तो वह जरूर अपनी दुनिया एक दिन हरी-भरी कर लेगा ।

रंगा की बातें और भी चलती; पर लाली ने आगे उसे चलने न दिया । शाम हो आई थी, पास-पड़ोस के घरों में चूल्हे जल चुके थे, चारों ओर रोशनी जल चुकी थी, लाली कब तक यों ही अंधेरे में पड़ी रहती ? इसलिए उसने अपने आँचल की खूँट से पैसे निकालकर उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा लो ये पैसे, जरूरी चीजें तो बाजार से लानी ही होंगी । कम-से-कम खाने की चीजों के अलावा दो-एक मिट्ठी के बरतन भी ले लेना । उनसे काम चल जायगा । जाओ, देर न करो । हाँ, खाने का क्या सामान लोगे ?

-जो तुम कहो-रंगा ने कहा । -मेरा खयाल है, आज कच्ची रसोई जरूर बनायी जाय । और कुछ ज्यादा नहीं तो खिचड़ी और चोखा तो जरूर ! देखो-यहाँ पहले से चूल्हे और कुछ कोयले भी रखे पड़े हैं । सिर्फ बाजार से चावल, दाल, नमक और मिर्चा और कुछ आलू-भंटा ले लेना, खाने के कुछ पत्तल भी, बैठे-बैठे रसोई बना लूँगी, क्यों ?

-रसोई बनाओगी, भाभी ! मिहनत जो करनी पड़ेगी ! आज बाजार से कुछ मँगाकर ही क्यों न खाया जाय ? कल से देखा जायगा ! -कल से क्यों, आज क्या हुआ है ? -लाली एक सफल गृहिणी की तरह बोली -जब रहने को घर और रसोई बनाने का सामान सामने धरा-धराया है, तब यों बाजार की चीजों पर क्यों काम चलाया जाय ? ला दो तुम सामान खरीद कर, मेरी मिहनत के लिए मत सोचो । तुम दिन-भर जान लड़ाकर मिहनत करो, और मैं बैठी-बैठी अंगड़ाइयाँ लूँ ! अच्छी रही मैं । इतनी खातिर रहने

दो! यह अच्छा नहीं लगता! मगर एक बात कहे रखती हूँ गिरह बाँध लो। देखो, तुम्हें अपनी जबान पर लगाम लगानी पड़ेगी। यों नहीं मानोगे तो तुम्हारे साथ जबर्दस्ती की जायगी। समझे ? मुझे यह पसंद नहीं ! जानते हो, दीवाल के भी कान होते हैं...

रंगा लाली की बातों से चकराया और भौचक्का-सा उसकी ओर देखने लगा। मगर लाली के ओठों पर हँसी आ गई और उसी हँसी के बीच से वह बोल उठी-इस तरह आँखें फाँड़-फाँड़ कर मेरी ओर क्यों धूर रहे हो? क्या निगल जाना चाहते हो मुझे? तुम अपनी भाभी को चाहो तो निगल सकते हो, मगर लाली को तुम नहीं निगल सकते! समझते हो, हजरत!

रंगा को अपनी भूल समझ में आ गई। वह खिलखिलाकर हँस पड़ा और हँसते-हँसते ही बोल उठा-खैर, अभी से लगाम लगा लूँगा भाभी! मगर वह रहेगी तो तुम्हारे हाथ ही न, जब ढोली करोगे-तभी सही ! रंगा उत्तर की प्रतीक्षा किये विना बाहर की ओर चल पड़ा।

### (चौंतीस)

रंगा को मिल में काम करते हुए तीन महीने बीत गये; पर उसने नहीं जाना कि वे दिन किस तरह उसकी आँखों से ओझल हो गये ! उन दिनों रंगा अपने निश्चित काम के पोछे इतना सजग और इतना डूबा हुआ रहा कि उसे आगे-पीछे देखने का ख्याल तक न रहा। मिल के छोटे करीन्दे से लेकर मैनेजिंग डाइरेक्टर तक उसके काम की प्रशंसा होने लगी; पर रंगा इतने में ही अपने को उलझाये न रख सका। वह तो अपनी गति में बढ़ना चाहता था और अपनी गति के साथ चलने में उसे अपने-आपके साथ काफी जूझनी पड़ती थी। वह जूझना जानता था, उसका हौसला जहाँ आग पर चलने को उसे उभारा करता, वहाँ वह अपने आपको लेकर क्यों बीच ही में पड़ा रह जाय !

पर लाली को यह हर्गिज पसंद नहीं। वह नहीं चाहती थी कि जान को हथेली पर लिये उसका रंगा खिलवाड़ करता चले ! और जब कभी लाली उसे देखकर कहती कि देखो, तुम कैसे दुबले हुए जा रहे हो, तब रंगा हँसकर कह देता-दुबला हुआ जा रहा हूँ ! नहीं तो, तुम तो यों ही कहा करती हो।

रंगा बोल तो जाता, पर उसे ख्याल हो आता कि लाली कुछ झूठ

कह नहीं रही है। खुद रंगा जानता है कि कामों की लगातार भीड़ में फंसकर वह काफी दुबला गया है। मगर वह अपनी भाभी के सामने अपनी पराजय कैसे स्वीकार करे! कुछ क्षणों के बाद वह अपने को छिपाकर, हँसने का उपक्रम करते हुए, कुछ बोलना चाहता है कि लाली फिर से बोल उठती है - मैं यों भी कह सकती थी; मगर मैं वैसा नहीं कर रही। तुम्हें अगर यकीन न हो तो कहो, मैं आईना लाये देती हूँ, क्यों न तुम अपने-आपको देख लो!

रंगा हँसकर कहता- खैर, आईना लाने की तकलीफ न उठाओ मैं तुम्हारी बातें माने लेता हूँ ! बस, अब तो खुश हुई?

-इसमें भला खुशी की कौन-सी बात हुई, रंगलाल !-लाली ने मुस्करा कर कहा-खुश तो तब हूँगी, जब तुम काम को कुछ कम और अपने बदन को कुछ ज्यादा देखा करोगे। जब बदन ही घुल जायगा, तब आखिर काम लेकर कोई चाटा करेगा! मुझे वैसा काम नहीं चाहिए, मैं तो.....

लाली की बात बीच में रोककर रंगा खिलखिला कर हँसते हुए बोल उठा-आगे बोलने की जरूरत नहीं, भाभी, रहने दो-रहने दो। जानता हूँ, तुम क्यों ऐसा कहा चाहती हो। जानता हूँ, तुम्हारी ममता मुझपर बहुत है। जानता हूँ, तुममें कितनी दया-माया है ! यह तुम्हारी ममता नहीं तो और क्या है ? मैं तो पाता हूँ कि जैसा मैं पहले था, वैसा अब भी हूँ ! कोई ज्यादा अंतर नहीं! फिर भी अगर कुछ अंतर आ भी जाय तो इससे होता-जाता क्या है? और अब तो पहले-जैसी बातें भी नहीं रह गई। मिहनत का काम तो जाता रहा। अब तो जो काम कर रहा हूँ, उसमें काफी अभ्यस्त हो चुका हूँ और यह ऐसा काम है, जिसमें दिमाग का ज्यादा और शरीर का बहुत कम योग रहता है !

लाली ने सारी बातें सुनीं; पर उसके दिल पर कुछ वैसा, उन बातों का असर न पड़ा। वह कुछ क्षण यों ही, जाने क्या-क्या सोचती रही; फिर वह बोल उठी-कैसा काम है और कितनी मिहनत करनी पड़ती है, उसे मैं क्या जानूँ ! मगर मुझे लगता है कि तुम काफी थके रहते हो और थकान की बूँदे हर घड़ी तुम्हारे बदन पर छाई रहती हैं ! चाहे तुम मुझसे जितना छिपाओ, मैं तुम्हें मना नहीं करती; मगर तुम भूल करते हो अपने को छिपाकर !

लाली कुछ देर तक रुकी रही; रंगा भी चुपचाप उसकी बातों पर

सोचता रहा; फिर लाली आप ही बोल उठी-और तुम ममता की बात कहते हो, रंगलाल ! ममता ? लाली हँसी और हँसते हुए ही बोली-होगी शायद, मुझे मालूम नहीं; मगर मैं अपने दुलारे देवर को कैसे घुलते हुए देखूँ !

रंगा स्वयं जानता है कि उसकी भाभी उसे कितना मानती है और उसने अभी-अभी अपनी भाभी की बातें भी सुनीं। रंगा का हृदय गदगद् हो उठा, वह अपनी भाभी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करे तो किस तरह? फिर भी उसके अंग-प्रत्यंग से मानो भाभी के प्रति कृतज्ञता का रस छलक उठा। पर रंगा इतना असमर्थ हो उठा कि उससे कुछ बोला न गया। लाली से यह बात छिपी न रह सकी। उसने चाहा कि अब यह प्रसंग यहाँ शेष हो, इसलिए वह उठकर खड़ी हुई। रंगा भी बाहर की ओर चल पड़ा।

मगर रंगा का पारिवारिक और कर्ममय जीवन जिस सुन्दरतापूर्वक और जिस अवाध गति से चल रहा था, उस गति से बिलकुल भिन्न वहाँ का वातावरण था। यों तो रंगा कार्यव्यस्त आदमी था। उसे अपने काम से इतना अवकाश कहाँ कि वह अपने पास-पड़ोस की बातों को देखे-सुने और सोचे-समझे ! फिर भी यह कैसे संभव हो सकता था कि जिस वातावरण में वह आकर तीन महीने बिता चुका है, उसका असर उसपर न आया हो, या उसकी ओर उसका ध्यान न गया हो?

रंगा जिस उलझन से अपनेको अलग रख छोड़ना चाहता था, आखिर वह उससे अपने को बचा न सका। उसके सामने आये दिन एक-न-एक समस्या आ खड़ी होती। वह नहीं चाहता कि अपने को इन समस्याओं के सुलझाने में डाले। वह भरसक प्रयत्न करता कि उसका दिमाग इन बातों से हटा रहे; पर जोर लगाने पर भी आपसे-आप उसका मन उन बातों के सुलझाने में लग जाता। वह चाहता कि उसे अपने महल्ले की गंदी बातों से अलग रहना चाहिए। वह जानता था कि कुलियों का जीवन कितना असंतोषप्रद, कितना विशक्त और कितना घृण्य है; पर उसके सामने उसके प्रतिकार का कोई उपाय नजर नहीं आता। वैसी हालत में घबराकर रंगा की उद्धिग्नता प्रकट हो उठती है। पर लाली से यह छिपी नहीं रहती, वह और भी अधिक चिंतित हो उठती है। उसे लगता है कि महल्ले की गंदी बातें उसे सुनाकर उसने बड़ा गुनाह किया है, जिन्हें न सुनाना ही अच्छा होता। तब वह

मन-ही मन संकल्प कर लेती कि आइंदा वह वैसा न करेगी। लाली समझती थी कि रंगा जिस प्रकृति का व्यक्ति है, उसके लिए यह संभव नहीं कि वह अपने को उलझन में डाले रखकर विलासिता को प्रश्रय दे, या वासना-जनित रस का उपभोक्ता बने! कर्मठ रंगा के लिए ऐसा वातावरण वास्तव में बड़ा कठोर ज़ँचा! फिर भी उसने मुंह खोलकर न तो अपनी भाभी से उन बातों को प्रकट किया और न लाली उन सारी बातों को समझते-बूझते हुए भी उन्हें रंगा के सामने प्रकाश कर सकी।

मगर रंगा का पारिवारिक जीवन आनंदमय था। उस जीवन को लाली से प्रेरणा मिली है, प्रणय मिला है, आण मिले हैं! रंगा समझ नहीं रहा कि उसके जीवन में इतनी उत्कृष्टता क्यों है? क्यों उसके रोम-रोम में सिहरन हो उठता है? क्यों उसके हृदय में रह-रहकर स्पंदन होता है? क्यों उसकी आँखों में मस्ती का आलम छाया रहता है? क्यों उसके आणों में हर समय प्यास बनी रहती है? रंगा इन प्रश्नों को लेकर परेशान रहता है। उसकी आँखों में नींद नहीं आती, उसकी आँखें अंधेरे में कुछ देखने की ओर उत्किञ्चित हो उठती हैं। पर उसे लगता है कि जिसे वह अपनी आँखों में भरना चाहता है, वह तो जैसे उसके सामने आ खड़ी हो गई है और हँसकर कहती है क्या देख रहे हो, मेरे देवर !

रंगा चौंक पड़ता है। उसे लगता है कि जैसे वह चोरी में पकड़ा गया हो। वह अपने-आप में कटकर रह जाता है, लजा जाता है और लजाते हुए बिलकुल दबी-जबान में वह कह कह बैठता है-कुछ तो नहीं, भाभी!

और इस तरह रंगा की तंद्रा उचट जाती है, उसके स्वप्नलोक की सुन्दरी तिरेहित हो जाती है। वह चौंक उठता है। वह आँखें खोल देता है और देखता है कि वहाँ तो चारों ओर एक-सा अन्धकार छाया हुआ है और उस अन्धकार में वह अपने बरामदे पर अकेला पड़ा-पड़ा लेटा हुआ है और उसकी भाभी-हाँ, उसकी भाभी भीतर कमरे में जमीन पर गाढ़-निद्रा में सोई हुई है, जिसकी साँस झीनी-झीनी वायु से छनकर उसके कान की झिल्लियों से टकरा-रकरा रही है। तब रंगा निश्चन्तता की साँस लेकर करबट बदल कर सो जाता है।

पर रंगा सो नहीं पाता । उसी समय पड़ोस के घर से जोर की चीख सुन पड़ती है । और वह चीख उसे सब्बेष्ट और कुछ चिन्तित कर छोड़ती है । वह उस चीख की ओर कान लगा देता है । उसे स्पष्ट मालूम होने लगता है कि वह एक औरत की चीख है, और उस चीख के साथ कुछ शोरगुल की आवाज भी सुन पड़ती है । उसे लगता है कि अवश्य कुछ वहाँ कोई घटना घटी है और वह सोचने लगता है कि वह घटना क्या है, क्यों है । पर वह उस घटना की तह को छू नहीं पाता । उसकी उल्कंठा सजग हो उठती है और वह चाहता है कि वह दौड़कर जा देखे कि औरत क्यों चीख रही है और क्यों वहाँ शोरगुल मचा हुआ है ! वह अपनेको क्षणभर में तैयार कर लेता है चलने के लिए और वह उठ खड़ा भी होता है । इसी समय भीतर से लाली चौंककर जग उठती है और शायद भयभीत होकर पुकार उठती है-रंगलाल ! और रंगा खड़े-खड़े हड्डबड़ाकर पूछ बैठता है-क्या है भाभी !

-कुछ सुन रहे हो ? भाभी उत्कंठित होकर पूछती है ।

-हाँ, सुन तो रहा हूँ । लगता है, कोई औरत चीख रही है और कुछ लोग शोरगुल मचा रहे हैं ।

लाली उठकर बाहर आती है और पाती है कि रंगा बरामदे के बाहर आँगन में खड़ा है । लाली उसके पास पहुँचकर बोल उठती है-हाँ, चीख तो औरत की ही है ! और उसके मुंह से अनायास ही एक सर्द आह निकल पड़ती है ।

लाली कुछ क्षण तक चुपचाप गंभीर मुद्दा में ज्यों-की-त्यों खड़ी रह जाती है । मगर रंगा घटनास्थल पर जाने को काफी चंचल हो उठता है, और इसीलिए वह बोल उठता है-तुम ठहरो भाभी, मैं जरा देख तो आऊँ कि बात क्या है, जाऊँ ?

-नहीं, जाने की जरूरत नहीं-लाली अनुशासन के स्वर में कहती रात को दूसरे के घर जाना और वैसे समय में जाना, जब कि वहाँ कुछ गड़बड़ मचा हो, ठीक नहीं ! मालम नहीं, होम करते हाथ जल जाय !

-होम करते हाथ जल जाय, इसे सोचकर क्या होम करना लोग छोड़ दे? क्या छोड़ देना तुम अच्छा समझोगी, भाभी !

लाली रंगा के तर्क में पड़ने को तैयार न थी, फिर भी कुछ क्षण तक वह उसके प्रश्न पर विचार करती रही, उसके बाद बोल उठी-यह मैं कैसे कहूँ कि लोग होम करना छोड़ दे; मगर मैं इतना जरूर कहूँगी कि अवसर और कुअवसर का ख्याल तो रखना ही होगा।

लाली बोलकर चुप हो गई। पर उसे अपनी बातें ही कुछ हल्की-सी जँची और इसलिए वह फिर से बोल उठी-दूसरों के घरेलू मामलों में पड़ने की जरूरत क्या? रात का वक्त, औरत-मर्द का झगड़ा, जहाँ भलों का वास नहीं, गिरे हुए औरत-मर्द, छिः, उनके बीच तुम क्यों पड़ने को उतावले रहो। दुनिया है, बाहर से इसे देखो, मगर इसके भीतर धुसने की कोशिश क्यों की जाय!

रंगा ने अपनी भाभी की एक-एक बात सुनी। उसने उसके प्रतीकार में कुछ कहा नहीं, वह उन बातों की गुरुता पर विचार करते हुए गंभीर होकर बोल उठा-अच्छा, न जाऊँगा, भाभी! मगर कुछ अन्दाज लगा सकती हो, आखिर बात क्या है।

-बात क्या है! - लाली बोलकर गंभीर भाव से सोचने लगी। वह दिन-भर अपने घर में पड़ी रहती है, उसके पास महल्ले की अनेक स्त्रियाँ आती-जाती हैं, उनसे बहुत तरह की बातें होती हैं, बहुतों को वह स्वयं जानने भी लग गई है। उसे कभी-कभी उन स्त्रियों के अनुरोध से उनके घर जाना भी पड़ता है और इस तरह उसे इस बात का अच्छी तरह निश्चय हो चुका है कि, उन स्त्रियों में कुछ तो ऐसी जरूर हैं जिनमें दोष कम और गुण अधिक हैं और अधिकांश में ऐसी हैं जिन्हें परिस्थिति, सहवास और बिगड़ी हुई आदतों ने इतना पीछे धकेल दिया है कि वे मनुष्य न रहकर पशु बन गई हैं। मगर उसे तो उन्हीं स्त्रियों के बीच रहना है, इसलिए वह रहती आ रही है अपने आपको अच्छी तरह सुरक्षित रखते हुए, जबकि उसे उसी समाज में रहने को बाध्य होना पड़ा है। वह क्षण-भर में ही बहुत-कुछ सोच गई। मगर सोचकर वह जिस निष्कर्ष पर आकर अटकी, उससे रंगा की ओर आँखें उठाकर देखना उसके लिए कठिन हो उठा! वह अन्तर्दृवन्द्व में इस तरह उलझ गई कि उसे अपने-आपका भी कुछ ध्यान न रह गया। उसी समय रंगा ने उससे कहा-हाँ, तो बात क्या है, भाभी !

लाली चौंकी । लगा, जैसे रंगा उसके भीतर प्रवेश कर चुका है । वह घबराई, पर प्रश्नकर्ता उसके पास खड़े-खड़े उसकी ओर देख रहा था । अब उसे चुप रहना कठिन हो चला । फिर भी वह क्षण-भर रुकी, फिर बोल उठी-कह नहीं सकती, इस घटना में किसका हाथ है; मगर सच तो यह है कि ये मजदूर जितनी तकलीफें उठाकर रुपया कमाते हैं, उसका वैसा व्यवहार नहीं कर सकते! वे तो जैसे अपनी हविस बुझाने के लिए ही कमाते हों । मगर ऐसी हविस कभी बुझनेवाली नहीं होती! फिर भी वे उसे बुझाना चाहते हैं चाहे जिस तरह बुझे-चाहे चोरी करनी पड़े, चाहे डाका डालना पड़े, चाहे जिस तरह से हो; मगर वे बुझाएँगे ही । देखते नहीं हो, हफ्ता लगा नहीं कि रुपये गायब, ऊपर से मोगल या पंजाबी का कर्ज, शराब पीना, नाच-मुजरे में रात काटना, औरतों से छेड़खानी करनी! वे दरअसल पशु हैं, पशु! कोई होगा इन्हीं पशुओं में, बेचारी औरत अपनेको कहाँ छिपाकर रखे! और ये मदुबे ! कोई गोरी या नमकीन जवान औरत उसके सामने से निकल जाये, उसकी बेहया आँखें धूरने लगती हैं.....

लाली बोलते-बोलते ज़ोश में आ गई और फिर उसी ज़ोश में कहती गई-उसके दिल पर साँप लोटने लगता है, उसका जाल बिछ जाता है उसे फंसाने को! औरत सूधी, बेचारी, गौ, मर्दों के कहे में आ जाती है और नतीजा जो हो जाता है, वह किसीसे छिपता नहीं । वही किस्सा यहाँ भी होगा । सुन लेना सुबह को ! जरूर यही बात होगी, गिरह बाँध रखो ।

लाली बोलकर बरामदे पर आ बैठी । रंगा ने अपनी भाभी के बचनों को कान खोलकर सुना, फिर रुककर कहा-समझ गया, भाभी, समझ गया; मगर यह तुम्हारा अन्याय है कि तुम मर्दों को दोषी तो बनाती हो, औरतों को नहीं । फिर सारा दोष मर्दों पर लादना तो अन्याय है भाभी!

-खैर, अन्याय ही रहने दो । अभी के लिए तुम्हारी बातें माने लेती हूँ; मगर आकर आराम करो ।

लाली के स्वर में ऐसी गंभीरता थी कि रंगा उसकी बात टाल न सका । वह आकर बिछावन पर लेटा, लाली भीतर की ओर चल पड़ी ।

## (पैंतीस)

मजदूरों की कालिनी छोटी-मोटी एक अलग दुनिया है । उस दुनिया के भीतर अन्दाज बारह सौ मजदूर और सौ मजदूरिने मिल में अपने औकात के मुताबिक काम करते हैं ! फिर उनके बाल-बच्चे, बीमार, बेकाम बूढ़े और उनकी आश्रिता वे औरतें जो काम करने के लायक रह नहीं गई हैं, अपने आश्रयदाता मजदूरों के सिर का बोझ बने अपनी जिन्दगी के लम्बे दिन बिता रहे हैं । काम में पशु जैसे जुते रहनेवाले वे मजदूर और मजदूरिने, काम से फुरसत पाते ही, आराम करने को कालिनी में रात और अपने-अपने क्वाटरों में आराम करते; मगर उनका आराम सीधे अपनी गुदड़ी पर लेटकर नहीं होता, उन्हें तो अपनी परेशानियों को भुलाने के लिए भट्टी की शरण लेनी पड़ती । वे अपनी शक्ति से अधिक शराब पीते, जो नहीं छूते, वे जरूर गाँजे की शरण लेते और जो गाँजे और शराब से परहेज रखनेवाले होते, वे ताड़ी, भंग, चरस । मतलब यह कि एक-न-एक की शरण में उन्हें जाना ही पड़ता । इनमें जो अपने को भले मानस में सुमार करते, वे सीधे भट्टी में न जा अपने घर पर ही बोतलें मँगवाते और वहीं अपने महाप्रसाद को, अपने बाल-बच्चों को चुस्की का मजा चखाने के लिए, बॉट-बूटकर खुद शौक से रस ले-लेकर चखते ! फिर भी इनमें दो चार जरूर ऐसे होते, जिन्हें इन चीजों से दिली नफरत होती और वे अपने आराम के समय को या तो भगवत-भजन में लगाते या और कोई अच्छे कामों में । और जिन्हें इन कामों में मन नहीं लगता, वे स्वयं अपने कोने में बैठकर खुद अपने करम को लेकर सोचा करते, अपने दिल की आग से जला करते और उसी जलन को लेकर रात काट देते । फिर काम की बारी आती और काम को लेकर ही सारा दिन अपने आपको वे भुलाने के प्रयत्न में तल्लीन हो जाते ।

मगर यह तो कालिनी की तस्वीर का एक पहलू है । इतने ही से पूरा चित्र समझा नहीं जा सकता, जबतक नशे में मदहोश मजदूरों की प्रेशाचिकता की रेखाओं पर दृष्टि न डाली जाय ! अगर अनजान आदमी भूले-भटके एक राते के लिए भी ऐसी कालिनी में चला जाय, तो उसे पता

लग जायगा कि वे मजदूर किस हद तक नीचे उतर आये हैं, कहना चाहिए कि किस हदतक नीचे उतरने को वे बाध्य किये गये हैं। फर्ज कीजिए, एक छोटा-सा मकान है, जिसकी लम्बाई बारह फीट और चौड़ाई नौ फीट है और बगमदा बारह फीट और पाँच फीट है, रसोई के लिए पाँच फीट और तीन फीटवाला एक छोटा-सा खपड़ल का घर आँगन की एक ओर और उस आँगन की लम्बाई बारह फीट और छः फीट (चौड़ाई)! बस, यही प्रत्येक मजदूर को अपने बसने की दुनिया समझिए! इसी में उसके खाने-पीने की चीजें रहेंगी, बासन-कपड़े रहेंगे, कोयला और कड़े रहेंगे, एकाध जानवर-बकरी या भेंड़ और मुसलमान रहा तो दो-एक मुर्गों के जोड़े भी चाहिए। ये तो रहेंगे और वही रहेंगे जहाँ वे खुद अपने बाल-बच्चों के साथ रहते हैं। गर्मी का दिन रहा तो आँगन में ये जानवर मजे में रह सकते हैं और परिवार के लोगों में से कोई आँगन में और कोई बरामदे पर सो ले सकते हैं; मगर जाड़े में तो वे आँगन या बरामदे पर सो नहीं सकते। लाचार होकर उन्हें एक ही कमरे में अपने बीवी-बच्चों के साथ सोना ही पड़ेगा। चारा क्या है? थकान मिटाने के लिए बोतल चढ़ाना अनिवार्य है, फिर बोतल की रंगीनी हवा में दिल की खुराक जुटानी ही चाहिए और दिल की तड़प मिटाने के लिए उन्हें सब-कुछ भूलना ही पड़ेगा। उनके बाल-बच्चों में कुछ ऐसे भी हैं, जिन्हें दुनिया की हवा लग चुकी है। हाँ, वे जान-बूझकर समझ बैठते हैं कि उनके साथ सोनेवाले वे बच्चे(बच्चों में लड़के-लड़कियाँ दोनों गिने जाय) आखिर कुछ तो जरूर अंदाज करते होंगे। मगर वे मजदूर, शायद इसीलिए तो नशे में ढूबे हुए हैं! आखिर अपने को भुलाने के लिए ही तो! अंधेरी रात, एक कमरा, छोटी-सी तंग जगह, होशदार लड़के-लड़कियाँ, बीवी और शौहर शौहर नशे में, बीवी-बच्चे नशे में! फिर परिणाम? परिणाम?

अब दूसरा रुख भी! ऊपर तो, खैर, उन भलेमानसों की बात हुई, जो बीवी-बच्चेवाले हैं; पर जो अकेला है, या वह जिसकी बीवी बेकाम पड़ गई है, शराब उसे चाहिए ही और उसके सामने, उसके अड़ोस-पड़ोस में जवान औरतें भी रहती आ रही हैं-हसीन और बदसूरत का कोई सवाल नहीं -- मगर वे जवान हैं, जरूर उनके शौहर भी हैं य मगर शौहर ऐसे हैं, जिन्हें

अपनी बीवियों पर दिन-भर का गुस्सा उतारना रह गया है। जानते हैं कि आखिर इन्हीं औरतों और बच्चों के बोझ ढोने को ही तो उन्हें मिल में इस तरह मशीन-जैसा खटना पड़ता है। मानो उनकी औरतें ही उन्हें मशीन की तरह खटने को मजबूर किये हुए हों। फिर खटपट-मारपीट, दंगा-फसाद वैसे घरों में एक शृंगार बन जाता है; मगर उन औरतों में कुछ तो जरूर ऐसी हैं, जिन्हें हया है, वे मार को वरदान समझकर सह लेती हैं ! आखिर उनके लिए चारा क्या है? वे समझती हैं कि जिनपर खाना और कपड़े देने का बोझ है, उन्हें मारने-पीटने का अधिकार कैसे नहीं हो ? मगर सब तो ऐसी नहीं होतीं! जरूर उनमें कुछ ऐसी भी हैं, जो समझती हैं कि वह शौहर कैसा, जो उनके लिए अच्छा खाना और अच्छे कपड़े जुटा नहीं सकता ! आखिर जवानी में किसी का ताव वे सहें क्यों! और वह जवानी उत्पात मचाने को तैयार हो जाती है। उधर वे शौकीन तबीयत के मजदूर, जिन्हें देह की खुराक चाहे जिस तरह से हो, मिटानी ही चाहिए, ऐसी औरतों पर अपने पसीने की कमाई न्यौछावर करने में जरा भी आगा-पीछा नहीं सोचते, और रात की निस्तब्धता उन दोनों को एक साथ मिलाने को मजबूर करती है! अगर वे दोनों अपने-अपने फन में होशियार रहे तो खुकिस्मती समझिए, नहीं तो फिर डड़े, लाठी, हसिया, हथौड़ा जो भी चल जाय, चाहे जो भी परिणाम इसका निकले, कौन परवा करता है ! आखिर, शौहर जो ठहरे ! वह कैसे बर्दाश्त करे कि उसकी बीवी किसी दूसरे का दिल साद करे और वह खुद तमाशा देखे! और जभी तो वह कालिनी रात को जैसे मुखर हो उठती है, जैसे वहाँ का वातावरण अपने-आपमें अदृहास कर उठता है! फिर इन स्त्री-पुरुषों में ऐसे भी हैं, जो वास्तव में पति और पत्नी नहीं हैं ! वे आकस्मिक रूप में, या एक दूसरे से सम्बन्धित होने के कारण, या एक-दूसरे के साथ पारस्परिक समझौता के फलस्वरूप, एक जगह पति-पत्नी के रूप में रहने को बाध्य हुए हैं, रह रहे हैं। मगर एक दिन उन दोनों के बीच जो आकर्षण उत्पन्न हुआ था और जिस आकर्षण की डोर पर वे दोनों एक जगह आ जुटे थे, वह डोर समय की दूरी के साथ खिंचे जाने के कारण पुरानी होकर टूट-फूट चलती है और वे दोनों एक दूसरे के लिए कलह का कारण हो रहे हैं ! फिर भी विवश हैं एक साथ

रहने को और रह भी रहे हैं। पर ताक में हैं अवसर की और जैसे ही वैसा अवसर आ पहुँचता है, युवती एक किनारा जा लगती है और युवक दूसरा किनारा ! फिर दोनों की दुनिया अलग अलग बसती है और इस तरह वे एक क्वार्टर को छोड़ दूसरे क्वार्टर को रंगीन कर छोड़ते हैं।

रंगा ऐसी ही कालिनी के एक क्वार्टर में अपनी भाभी लाली के साथ रह रहा है। मगर रंगा की दृष्टि में जहाँ उसका कर्तव्य प्रधान है और जिस कर्तव्य को वह अपने लिए सब-कुछ समझता है, वहाँ लाली की दृष्टि दूसरी ओर खिंच गई है। जब तक उसके सामने रंगा हाजिर रहता है, वह अपनेको उसी में डुबाए रखती है, उसका रोना-हँसना, खेलना-कूदना रंगा तक ही सीमित रहता है; पर रंगा के मिल में चले जाने और लौटने तक के भीतर वह अपने को अकेली रखना चाहती है, पर वैसा रख नहीं पाती। अड़ोस-पड़ोस की कुछ ऐसी औरतें उसके सामने आ जाती हैं, जो आत्म-स्तुति और पर-निंदा में कशल हैं। गपें चलती हैं-कौन कैसी हैं, किसके घर में क्या पकता है, किसके साथ किसका क्या सम्बन्ध है, किसकी नजर किसपर जा लड़ी है, कौन किसके लिए अपनी जान न्यौछावर किये बैठा है। मतलब यह कि उनके सामने जैसे गोप्य विषय कोई है ही नहीं। एक-एक बात को खोल खोलकर रखती जाती है और दूसरी अपनी तरफ से उसपर पालिश भी करती चलती है। इस तरह लाली का वह छोटा-सा क्वार्टर दिन-भर मुखर रहता है! वे औरतें समझती हैं कि लाली नई है--उम्र में भी, बुद्धि में भी, और वह अपनी आगन्तुका पड़ोसिनों की बातों में रस पाती है। इसलिए लाली उन सबकी और भी प्रिय पात्र बन गई है और जभी तो वे उसके सामने ऐसी-ऐसी बातें कर जाती हैं, जिन बातों से धरती माता खुद विद्युत बैचैन हो सकती हैं, फिर लाली कैसे नहीं हो! पर लाली उन बातों के सुनने के समय इतनी तन्मय हो जाती है कि उन औरतों को जरा भी संदेह नहीं रह जाता ! मगर लाली क्या ऐसी तन्मय हो जाती है उन बातों के सुनने में ?

और इसी कारण लाली को मजदूर कालिनी का जितना अनुभव है, उतना रंगा को नहीं है। जरूर रंगा इतना जानता है कि गरीबी जीवन का अभिशाप है, और इसी गरीबी में पलने और बढ़नेवाले मजदूर अगर अपने-आपको

नहीं कुछ समझ पाते हैं, तो यह उनका दोष नहीं-दोष उस परिस्थिति का है, जिसने उन्हें वैसा बनने को मजबूर किया है । रंगा ने देखा और समझा है कि वे मजदूर इतना शराब क्यों पीते हैं, क्यों उनके घर कलह की ऊँची आवाज उठती रहती है, क्यों वे रात-दिन अपनेको खटाकर भी जीवन के सच्चे सुख से वंचित रह जाते हैं! आखिर कौन-सा कारण है आखिर क्यों वे इतने पशु बन गये हैं ?

रंगा ने कालिनी के वातावरण को इसी रूप में देखा है और जब-जब उसने उसे देखने की इच्छा की है, तब-तब उसे वहीं आकर रुक जाना पड़ा है, जहाँ उन मजदूरों की गरीबी विहँसती हुई खड़ी दीख पड़ी है! रंगा वहाँ से अपनी ओर लौट आया है और अपने-आपसे वह पूछ बैठता है कि आखिर, इसका प्रतिकार कहाँ है! मगर लाली का अनुभव इससे बिलकुल भिन्न, इसके बिलकुल विरुद्ध है ! फिर दोनों एक दायरे में आकर किस तरह सोचें!

मगर रातवाली घटना का अंदाज, जैसा कि वह अपनी भाभी की बात से लगा सका था, सुबह उठते ही उसने पाया कि वह अंदाज बिलकुल सही है। बात यह थी कि बदरी ने बलात्कार किया था देहल की बहू के साथ। देहल का अंदाज था कि उसकी बहू के साथ बदरी की आँखें लड़ रही थीं और परिणाम यह हुआ कि बदरी पकड़ा जाकर बेतरह पीटा गया और बहू की नाक पर लोढ़ा इस तरह फेंका गया कि वह बेहोश होकर वहीं चित्त पड़ गई। और बदरी पकड़ा और पीटा जाकर बंधा पड़ा रहा ।

(छत्तीस)

उस दिन कालिनी में छह मेठ के घर एक छोटी-मोटी पंचायत बैठी थी। एक ओर अभियुक्त के रूप में बदरी था और दूसरी ओर देहल की बहू लाखो थी। दर्शकों में पुरुष कम और औरतें अधिक थीं और उनसे भी अधिक बच्चे थे ! पंचायत में छट्ठू मेठ बीच में बैठा था और उसके इर्द-गिर्द बीस-पचीस मजदूर और उन मजदूरों में एक ओर रंगा कुछ चिंतित-सा नजर आ रहा था । मगर सबसे अधिक इस जमात में छठू मेठ की स्त्री बतसिया थी- -काला जामून-सा रंग, मोटी सी नाक में बड़ी-सी रोल्डगोल्ड की नथ, जो

एक मैली-सी सूत में बंधी कानों से अटकाई गई थी। देह खासी मोटी और कद नाटी-सी। पंचायत में पंच गंभीर होकर घटना के विषय में सोच रहे थे। चारों ओर सन्नाटा था। मगर यह सन्नाटा भंग कैसे हो, कैसे बात शुरू की जाय, तभी एक ओर से आवाज आई -उन मर्दुओं को हया नहीं आती, जो अपनी औरतों को अपने काबू में रख नहीं सकते। जब उन्हें खाने को अन्न और पहनने को अच्छे कपड़े न मिले और आखिर औरत के भी तो दिल है, जब मर्दुएँ उनके दिल के धाव पर मरहम-पट्टी न करें, तब क्या बेचारी उस धाव को दूसरी जगह दिखाये भी नहीं! लोग कहेंगे कि लाखों गुनहगार हैं। क्या लाखों गुनहगार हैं? देखें, यह पंचायत क्या फैसला करती है? यह सच का सच और झूठ का झर अलग-अलग हो जायगा। यह पंचायत है; पंचायत में भगवान विराजते हैं! कहो, हम झूठ कह रहे हैं?

बड़े मौके पर पंचायत का उद्घाटन रानी बत्तीसी ने किया। मुखिया छठू मेठ मुस्कराया; पर वह मुस्कराहट क्षण-भर में ही उड़ गई। वह कुछ कठोर हो चला और उसी कठोरता को लिये हुए देहल की ओर देखकर वह बोल उठा-हाँ, जी देहल, पंचायत यह सुनना चाहती है कि यह घटना कैसे घटी! क्या अदावत तो तुम्हारे साथ बदरी की नहीं है?

-नहीं, मेठ जी! -देहल ने बड़ी सजिंदगी के साथ कहा-अदावत कैसी? बदरी हमारे घर आता-जाता था! एक साथ काम करनेवाला, कौन किसके घर नहीं जाता? बदरी आता, हुक्का-तमाकू चलती, कभी तो दोहमत हमने नहीं दी! लाखों उसके साथ हँसती-बोलती और कभी उसे ज्ञाश्ता-पानी भी कराती! बदरी अकेला, जब कभी होता, लाखों उसे अपने घर खाना खिलाती! उस बदरी का यह हाल है कि रात को जब मैं बरामदे पर सोया था, चुपके-चुपके आया और घर में घुसा। लाखों भीतर सोयी थी। मैं गहरी नींद में था। मगर नींद उचट गई। लगा जैसे भीतर काना-फूसी हो रही है। मैंने कान लगाकर सुना और जो कुछ सुना, उससे मैं अपने को रोक न सका। पास में सील और लोढ़ा पड़ा हुआ था, टटोलकर मैंने लोढ़ा उठाया, और आहिस्ते-आहिस्ते, पैर की आहट बचाकर, किवाड़ के पल्ले हटाये और लोढ़े को उनके बीच दे मारा! बदरिया भागना ही चाहता था कि लाखों चोट खाकर

चिल्ला उठी। मैंने बदरिया को पकड़ा, और वहीं उसकी छाती पर चढ़कर मुक्कों से उसकी काफी मरम्मत कर दी य मगर रंज था लाखो पर। जरूर उसने जान-बूझकर बदरिया को घर आने का इशारा किया होगा। नहीं तो बदरिया जैसे घर में घुसा था, वह जरूर हल्ला करती! मैं बदरिया को घर में छोड़, लाखो का झोंटा पकड़कर बाहर लाया और लगा उसपर चोट करने; मगर चोट तो उसे पहली बार ही ऐसी लगी थी कि वह बदहोश थी! आखिर वह गुस्सा बदरिया पर जा अटका। वह भागने का फिक्र कर रहा था कि फिर उसे पकड़ा, घसीट कर उसे बाहर लाया और जोर का हल्ला किया। नतीजा हुआ कि मंगरु, देवन, भूला भाई, सिरीनाथ अपने-अपने घर से आ लगे! ये सब भी यहाँ हाजिर हैं, पूछ देखिए लोगों से।

देहल बोलकर चुप हुआ। उसकी दृष्टि नीचे की ओर झुकी और पंचों ने उसकी बातों पर अपने-अपने तरीके से विचारना शुरू किया; मगर मेठ छट्ठू चुप न रहा, वह बोल उठा-बदरी, तुम क्या कहा चाहते हो, देहल ने जो कुछ तुम्हारे बारे में कहा है, ठीक है?

बदरी की ओर सभी की दृष्टि गई। वह सिर झुकाये पड़ा था; पर जब उसने समझा कि सबकी नजर उसी की ओर लगी हुई है, तब वह बोल उठा-पंच परमेसर हैं, हम झूठ नहीं कहा चाहते! देहल ने मुझे पकड़ा और मारा है। हम तो आप पंचों से इनसाफ चाहते हैं कि लाखो कहाँ तक गुनहगार है। उसका विचार भी आप पंचों के हाथ में है! असल बात तो यह है कि खुद देहल गुनहगार है, जब वह खुद अपनी औरत को छोड़कर इन दिनों दूसरे का घर आबाद करने को लगा है।....आप देहल से पूछिए कि जब मैं उसके घर गया था, तब क्या वह बरामदे पर सोया हुआ था? और यह भी पूछे कि क्या बाहरी फाटक भीतर से बंद था ?

देहल चौंका। उसने पाया कि बदरी उसे नीचे गिराये लिये जा रहा है। वह सतर्क होकर गरज उठा-सफेद झूठ, सफेद झूठ ! मैं जरूर बरामदे पर सोया था, जरूर फाटक भीतर से बंद था! फिर वह बदरी की ओर मुखातिब हुआ और कड़क कर बोला-देखो, मैं कहे रखता हूँ, तुम्हें आज जेल की हवा

जरूर खिलाता; मगर मेरी सराफत समझो कि मैंने पंचों की शरण ली। इस तरह मेरी इज्जत पर तुम पानी फेर नहीं सकते!

बदरी उत्तर में कुछ बोलना ही चाहता था कि लाखो अपनी जगह से व्यंग कसती हुई गरज उठी-तुम्हारी इज्जत भी है कि कोई उस पर पानी फेरेगा! सकुन्ती से लात खाई, उसने कान पकड़कर उठाया-बैठाया। रात को कपड़े लत्ते छिनकर, मुख में कालिख पोत घर की राह बताई! क्या भूल गये वह दिन! फिर जब उसी सकुन्ती पर जान दिये फिरते हो, तो यहाँ लाखो कोई तुम्हारी व्याहता बहू नहीं कि तुम मारो-पीटो, दूसरों का दरवाजा खटखटाते फिरो और लाखो आँखें खोलकर तमाशा देखा करे! लाखो तुम्हारी लौड़िया बनकर नहीं रहेगी उसका भी दिल है, उसका भी हौसला है, उसके दिल में भी रंज है, डाह है! जब तुम घर की खूबसूरत को छोड़ चुड़ैल सकुन्ती पर जान दिये फिरो तो लाखो.....

लाखो काफी रंज में आ गई थी। उसके दोनों नथुने फूल रहे थे, उसकी आँखें तबा की तरह लाल हो रही थीं। लाखो की बातें पंचों में बर्छी जैसी जा लगीं! देहल का हौसला प्रश्न हुआ-सा दीख पड़ा। पंचों के सामने उसकी बातें रहस्य के रूप में आई और स्वाभाविक कौतूहल को लिये हुए उनमें से एक बोल उठा-तो क्या तुम व्याहता नहीं हो देहल की?

-नहीं!-लाखो ने गर्दन जरा ऊपर की ओर उठाते हुए कहा ।

-तो क्या तुम दोनों स्त्री-पुरुष नहीं हो ?

-हार्गिज नहीं ।

-क्या बतला सकती हो कि वह सकुन्ती कौन है ?-पंचों में से दूसरा बोल उठा ।

-बतलाने की जरूरत नहीं। फर्ज करो कि सकुन्ती नाम की कोई एक औरत है और वह किसी की बहू है। उन पंचों में से रंगा बोल उठा। रंगा समझता था कि इस तरह बहुत से घरों का भंडाफोड़ हो जायगा! और होने पर सिवा झगड़े-टटे बढ़ने के और क्या नतीजा निकल सकता है। इसपर सरदार छट्ठू मेठ ने हाँसी भरी, कहा-ठीक कहा रंगा, इसकी खोजबीज क्यों की जाय कि सकुन्ती कौन है, किसकी जोरू है! मगर देहल से यह पूछना ही पड़ेगा कि लाखो की बात सच है! क्यों देहल?

इस पर रंगा ने अपनी जगह से कहा- -यह पूछना भी फिजुल है, पंचों को इतनी दूर बढ़ने की जरूरत क्या है ? यहाँ तो जब लाखों अपना दोष खुद कबूल कर ही रही है और जब बदरी भी उसे कबूल कर रहा है, तब फिर लंबी होड़ लगाने की जरूरत क्या रह गई?

-ठीक कहा रंगा भाई, ठीक कहा-एक स्वर से सब-के-सब बोल उठे। सरदार छट्टू ने भी अपना सिर हिलाकर रंगा की बातों का समर्थन किया।

कुछ क्षणों तक वातावरण शांत रहा। क्षण भर पहले पंचायत में सकुन्ती को लेकर जो चंचलता आ गई थी, वह दूर हुई; पर सभी चुप थे। अब आगे का उपसंहार कैसे किया जाय, सभी का ध्यान उसी ओर लगा था। सरदार ने भी अनुभव किया कि अब आखिरी फैसले पर पहुँचना ही चाहिए। इसलिए वह देहल की ओर मुखातिब हुआ और उसने रोब में कहा-देहल, अब यह पंचायत तुमसे जानना चाहती है कि मामला कुछ संगीन हो उठा है। अच्छा हो कि तुम इस मामले को उठा लो। सभी पंच यह समझ गये हैं कि इस मामले में कौन ज्यादा गुनहगार है। क्या तुम लाखों और बदरी को माफ नहीं कर सकते? -मगर मैं माफ नहीं कर सकती। -लाखों रोष में बोल उठी।

सभीका ध्यान लाखों की ओर गया। सरदार ने कुछ सहमकर उससे पूछा-आखिर तुम चाहती क्या हो, लाखों?

-जिस मर्दुबे ने मेरी इज्जत का खयाल नहीं रखा, जो मुझे छोड़कर दूसरे का घर आबाद करता है, जिस मर्दुबे ने मुझे बुरी तरह बेइज्जत किया है, यहाँ तक कि जिसने आज पंचों के बीच मुझे बोलने को मजबूर किया, मैं वैसे हिजड़े के साथ हरगिज रहना पसंद नहीं करती। लोग कहेंगे-जैसा कि देहल खुद कहता है, मेरी बदरी के साथ लाग-डाट है। मैं उनकी बात कुछ देर केलिए माने लेती हूँ। जब पर्दा-फाँस हो ही गया, तब फिर देहल मेरा होता कौन है? मैं बदरी के साथ रह लूँगा। अगर बदरी न भी मंजूर करेगा, तो फिर देख लूँगी अपना रास्ता खुद आप ही। अब मैं कुछ दूध की बच्ची नहीं रह गई।

-मगर, देहल, तुम क्या कहा चाहते हो? -सर्दार ने पूछा

-मैंने जानबूझकर लाखो को कभी कोई तकलीफ नहीं दी; फिर जब वह खुद रहने को मेरे साथ तैयार नहीं है, तब मैं भी यह बद्राश्त नहीं कर सकता कि कोई मेरे घर में इस तरह घुसकर पाप करे और मैं.....

-बड़े पुनात्मा (पुण्यात्मा) बने हैं। देखो चेहरा भला ! -लाखो रोष में बोलकर उठ पड़ी। उसका रोष जैसे थमता ही न था ! वह वहाँ ठहर न सकी। लोगों को भीड़ को फाँड़ती हुई वह बाहर की ओर निकल गई।

लाखो के जाते ही थोड़ी देर तक पंचायत में सन्नाटा छाया रहा। कौन बोले, क्या बोले-यह किसीको समझ में कुछ न आया। पर रंगा ने परिस्थिति को काबू में किया और वह बोल उठा-ऐसी हालत में, जब कि लाखो देहल के साथ रहने को रवादार नहीं है और लाखो के बिंगड़ने का कारण खुद देहल है, लाखो को अपनी इच्छा पर छोड़ देना ही बेहतर होगा। मजदूर-समाज इस बात के लिए काफी बदनाम है और ऐसी बदनामी आये दिन आया करती है! तो फिर क्यों उसकी इच्छा के विरुद्ध देहल उस पर ज्यादती करे ?

देहल ने रंगा की ओर एक बार रोषपूर्ण दृष्टि से देखा; पर मँह से वह कुछ नहीं बोल सका। दिन के नौ बज रहे थे, दस बजे मिल पहुँचना ही चाहिए --ऐसा विचारकर सरदार ने रंगा की बातों का समर्थन करते हुए कहा-ठीक है, यही बेहतर भी होगा। मैं भी ऐसा ही समझता हूँ। खैर, पंचायत अब बर्खास्त होती है लोगों की भीड़ छुट पड़ी। सभी अपने-अपने घर की ओर रवाना हुए।

रंगा उठकर अपनी जगह से दो कदम आगे बढ़ा था कि मेठ की बहू-बतीसी बोल उठी-रंगा, तुम बड़े समझदार हो भाई! आज तुमने सकुन्ती को बिलकुल बचा लिया! सकुन्ती को बात चलते-चलते जाने कहाँ तक जा पहुँचती और जाने कितने घरों में आग लग जाती! आखिर ये मरुबे, पसीना बहाकर रुपया कमायेंगे, शराब-कबाब और रंडियों में खर्च करेंगे-! यहाँ किस-किस घर का हिसाब लोगे। सभी के गले में एक-न-एक गुठली अटकी हुई है !

बतीसी खिलखिलाकर हँस पड़ी। रंगा उत्तर में कुछ बोला नहीं। वह अपने घर की ओर चल पड़ा।

घर रात ही लाली ने रंगा की ओर देखते हुए पूछा-क्या पंचायत उठ गई?

-हाँ

-क्या फैसला हुआ!

-फैसला क्या होता? -रंगा ने भौं चढ़ाकर कहा-देहल की ज्यादती थी, नाहक बदरी को मारा पीटा और नाहक बेगुनाह लाखो को भी।

-क्या लाखो बेगुनाह थी? -क्यों नहीं?

-और बदरी?

-बदरी को ही कैसे कहा जाय, जब लाखो कबूल करती है कि वह बदरी के साथ ही रहेगी? और चाहे बदरी उसे न भी रखे, पर वह देहल के साथ तो हर्गिज नहीं रहेगी। वह अपना रास्ता, वैसी हालत में, आप निकाल लेगी।

-और देहल ? क्या देहल ने लाखो का कहना कबूल किया?

-कबूल करे या न करे, इससे बनता-विगड़ता कुछ नहीं, जबकि लाखो उसकी व्याहता बहू नहीं है! अगर व्याहता भी होती तो आखिर क्या होता? जब लाखो खुद उसके साथ रहने को रवादार नहीं, तब बाँध-बूँधकर कैसे कोई रखे उसे बेचारा देहल करता क्या? औरतों को पिंजड़े में बन्द रखना क्या इतना आसान है।

लाली कुछ क्षण तक चुप रही; फिर वह मुस्कराती हुई बोल उठी अगर देहल की जगह पर कहीं तुम होते !

रंगा ने मतलब समझा, वह हँस पड़ा और हँसते हुए ही बोला-मैं दोनों में से किसी को भी नहीं पीटता; बल्कि उन दोनों को साष्टांग दंडवत कर कहता-प्रेमदेव की जय रहे ! आप दोनों मुक्त हैं। जहाँ इच्छा हो, चलकर अपना संसार बसा सकते हैं!

-क्या सचमुच? -सचमुच नहीं तो झूठ थोड़े ही कह रहा हूँ तुमसे?

-इतने उदार!

रंगा मुस्कराया, पर उसकी मुस्कराहट ओठों में ही विलीन हो गई। क्षण-मात्र में वह गंभीर हो चला और उसी गंभीरता को लिये बोल उठा-ऐसे

मौके पर उदार बनना बेजा नहीं है, भाभी! दिल का सौदा दिल से होता है, रुपये-पैसे या चिकनी-चुपड़ी बातों से नहीं। और जब दिल में किसी बात को लेकर गिरह पड़ गई, तब समझना चाहिए कि गिरह टूट जाने पर भी दाग ज़रूर रहेगा! वैसी हालत में बाँधकर रखा नहीं जा सकता कोई! आखिर आदमी-आदमी है, पशु नहीं य पशु बंधा हुआ रह सकता है, मगर आदमी नहीं!

-क्या आदमी बंधा नहीं रह सकता? -लाली मुस्कराई।

रंगा हँस पड़ा और हँसते-हँसते ही बोल उठा - यह तो मुझसे अधिक तुम्हीं बतला सकतो हो, भाभी !

रंगा की बातों पर लाली भी हँस पड़ी और हँसती हुई बोली-और क्या तुम नहीं कह सकते? जरा अपने दिल से पूछ कर कहो तो भला!

उसके बाद दोनों खिलखिलाकर हँस पड़े। रंगा का खाना खत्म हो चुका था। वह उठा और अपना हाफपैंट और सर्ट सँभालता हुआ बाहर की ओर चल पड़ा।

(सेंतीस)

मिल के मैनेजिंग डाइरेक्टर मिस्टर वर्मा के घर उनकी लड़की का विवाह था। इस अवसर पर मिल के कुशल कार्यकर्ताओं के साथ रंगा को भी, आवश्यक कार्य के लिए जाना पड़ा था। रंगा, इस कारण, शहर से अपने क्वार्टर में आ नहीं सकता। कार्य-बाहुल्य के कारण रात-दिन उसने अपने ऊपर सौंपे हुए कार्य-भार को बड़ी मुस्तैदी से संभाला। ऐसे अवसर पर रंगा ने हँस-हँसकर, खुलकर अपना जौहर दिखलाया। छोटे-बड़े सभी की दृष्टि उसकी ओर खिंची। अवश्य रंगा के लिए यह एक ऐसा सुयोग था, जिसमें व्यक्ति अपने को बहुत दूर तक आगे ले चल सकता है। रंगा ने इस सुयोग को अपना सौभाग्य समझा और अपने-आपको उसने एक क्षण के लिए भी झुकने न दिया। घर और बाहर-सभी जगह उसकी एक-जैसी पहुँच रही।

मिस्टर वर्मा और उनके परिवार और उनके मित्रों में शायद ही कोई ऐसा होगा, जिसे रंगा ने अपनी कार्य-कशुलता से मुग्ध न किया हो ।

विवाहोत्सव शेष हुआ । नवविवाहिता कन्या अपने पति की अनुगामिनी बनी । मित्रों और अतिथियों का दल अपने-अपने घर गया । कार्यकर्ताओं को सम्मानपूर्वक कुछ उपहार देकर अपने कामों पर लौट जाने का आदेश मिला । रंगा भी अपने मालिक से पुरस्कृत होकर अपनी कालिनी की ओर विदा हुआ ।

संध्या का समय, लोनी-लोनी हवा चल रही थी । रंगा उमंग में भरे, कपड़े और सौगात की एक छोटी-सी गठी संभाले, अपने रास्ते पर बढ़ रहा था । पाँच मील शहर से दूर कॉलनी । जिस गति में वह चल रहा था, उससे भी तेज गति में संध्या घनी होती जा रही थी । देखते-ही-देखते आकाश में दूज का चाँद निकला । देखते-ही-देखते बादलों से फटकर तारे निकले । देखते-ही-देखते संध्या रात में बदली । ऊपर दूज का चाँद, नीचे दूज की चाँदनी, रंगा अकेला, मस्ती में कुछ गुनगुनाता-सा बढ़ा जा रहा है, फिर मी रास्ता दो मील के करीब और तय करना बाकी रह गया है । उसके पाँव उसके दिल की गति से आगे उठ रहे हैं और उसका मस्तिष्क अपनी गति में रंगीन जाल बुनता जा रहा है । रास्ते पर चलनेवाले चल रहे हैं, रंगा किसी की खोज क्यों करे । रास्ता चलने के लिए है, कितने आते और कितने जाते हैं, कौन किसकी खोज रखता है । इस तरह उसका रास्ता कट रहा था, इस तरह वह अपने रास्ते को काट रहा था ।

मगर अचानक किसीने धोरे से पुकारा-कौन, रंगालाल हैं आप?

रंगा ठिठका-सा रहा कुछ क्षण । उसने जरा पीछे मुड़कर देखा । पुकारने वाली एक तरुणी-सी जान पड़ी । लंबी, पतला छरहरा-सा बदन, रंग साफ, देखने में, जैसा कि चाँदनी के प्रकाश में दीख पड़ा, कुछ बुरी नहीं । रंगा ने सोचकर देखा कि यह परिचित-सी तो जान नहीं पड़ रही हैं! फिर उसने मन-ही-मन सोचकर अपने-आपसे प्रश्न किया-आखिर हैं कौन यह पुकारने वाली! वह अकेला चलनेवाला आदमी, पीछे से लपकी-जैसी आने वाली तरुणी! वह अपने आप में चौंका, उसने आगे-पीछे मुड़कर देखा कि कोई आ

तो नहीं रहा है ! वह भौंचक-सा पुकारनेवाली की ओर टकटकी गड़ाए देखता रहा कुछ क्षणों तक; मगर वह उस हालत में रह नहीं सका । तरुणी आगे बढ़कर जरा हसने की चेष्टा करते हुए बोल उठी-घबराने की बात नहीं है! कोई आ नहीं रहा है । अगर आ भी जायगा, तो इससे क्या होता है? कोई पूछेगा तो कह दूंगी कि रंगालाल मेरे देवर हैं और मैं उनकी भाभी । क्यों? रंगा देवर-भाभी की बातें सुनकर और भी अपने-आप में गड़ गया । उसे लगा कि जैसे वह बुरी तरह पकड़ा गया है । जैसे उसके गुप्त रहस्य का उद्घाटन हो गया है, जैसे वह तरुणी जान गई है कि वह अपनी भाभी को भगा लाया है और उसे अपनी पत्नी के रूप में लोगों के बीच घोषित किया गया है ! रंगा का चेहरा उतने ही कुछ क्षणों के भीतर फीका पड़ गया; पर उसने अपने आपको गिरने न देकर सावधान किया और अपनी चंचलता को छिपाते हुए, अपने को अधिक संयत कर, वह बोल उठा-माफ करेंगी! मैं आपको पहचान न सका! क्या आप बता.....

तरुणी बीच ही मैं बात काटकर बोल उठी-इतना आदर मुझे न चाहिए देवरजी, मुझे पाप लगेगा । मैं तो आपकी लौंडी ठहरी । ‘आप’ कहकर मुझे न पुकारे तो अच्छा हो!

तरुणी कुछ देर तक रुकी रही । फिर उसने रंगा के हाथ से वह छोटी-सी गठरी अपने हाथ में लेकर हँसते हुए कहा-जान पड़ता है कि आप शहर से लौट रहे हैं कई दिनों के बाद ! कहिए-बड़े साहब की लड़की की शादी हो गई ।

-हाँ, हो गई; मैं वहीं से लौट रहा हूँ । - रंगा ने सिर झुकाकर बहुत ही संक्षेप में उत्तर दिया ।

- तब तो जरूर इस ठहरी में वहाँ से सौगात लाये होंगे? सौगात ही है न ! कहिए, क्या-क्या मिला ?.....तरुणी बोलकर हंस पड़ी, फिर बोली चले चलिए न ! रास्ता तय करना ही होगा, मजे में बातें भी होंगी और रास्ते भी कटेंगे ।

दोनों चलने लगे । रंगा को उसकी बातों से लग रहा था कि यह कोई साधारण स्त्री-सी नहीं दीख रही है ! उसे मालूम है कि वह शहर गया था, बड़े साहब की लड़की को शादी थी, कई दिनों पर वह लौट रहा है । गठरी में

सौगात है.....वह सोचने लगा कि इतनी चतुर स्त्री इसके पहले उसने कभी देखी नहीं है। उसे लगा कि अवश्य वह पहली स्त्री है, जिसे इतनी चतुर, इतनी बुद्धिमती उसने देखा हो! और जब उसे यह निश्चय हो गया कि वह चतुर और बुद्धिमती स्त्री के साथ चल रहा है, जिसने उसे अपना देवर बना लिया है, उसके बारे में उसे तो जानना ही चाहिए कि आखिर वह है कौन? रंगा जाने और कितनी दूर तक सोचता; मगर उसे सोचने का अवसर न देकर वह तरुणी बोल उठी-हाँ, तो आपने नहीं बतलाया कि सौगात में क्या-क्या मिला? आप सोचते होंगे कि कहीं कहीं हिस्सा बटाना न पड़े ! मत बाँटिये साहब, मैं यों लेती नहीं; मगर बता भी तो दीजिए! जरा तसल्ली तो हो जाय! यह तो जानती ही हूँ कि आप किस्मतवाले हैं। आपकी पहुँच खास दरबार तक है।

इसबार रंगा अपनेको जब्त न रख सका। उसने अपने-आपमें साहस बटोरा और जरा मुस्कराने का प्रयत्न करता हुआ बोल उठा-जान पड़ता है, आप मेरे बारे में काफी खोज-खबर रखती हैं। जब आप इतना जान गई हैं, तब फिर हिस्सा बँटाने की जरूरत नहीं रह गई। सौगात क्या मिला है, वह तो आपके हाथ में ही है। जब गठरी ढोने का भार आपने ऊपर ले रखा है, तब इतनी-सी और तकलीफ क्यों नहीं करतीं कि उसे खोलकर ही देख लें। रंगा चुप भी न हो पाया कि तरुणी खिलखिलाकर हँस पड़ी और हँसते-हँसते बोली-जभी तो जभी तो रंगलाल! यह तो तुम्हारी चतुराई की बात रही ! खैर, जब हिस्सा बटाने की बात है ही नहीं, सारी गठरी मेरी ही ठहरी, तब मैं देख लूँगी घर जाकर ! अब तो मेरा घर कुछ दूर भी नहीं है। देख रहे हो न, बाईं तरफ! ये जो क्वार्टर दीख रहे हैं, यहीं मैं रहती हूँ। चलो न देवर जी, मेरे साथ ! जैसा एक पखवारा बड़े दरबार में रहे, वैसी एक रात इस छोटे दरबार में ही सही! रात भर के लिए क्या होगा ? लाली समझ लेगी कि आज न सही, कल तो हजरत आयेंगे ही! क्यों, चजते हो?

रंगा क्या कहे! जिससे जान-न-पहचान, रास्ते-रास्ते की दो-चार बातें। तेज-तराक औरत, रात का वक्त, उसके घर जाना! रंगा अपने-आप में घबरा उठा। उसे लगा कि जैसे वह उस स्त्री के सामने गिरता जा रहा है! वह सोचने लगा कि आखिर है कौन यह ! जिसे मेरे घर की एक-एक बात मालूम

है; वह खुद लाली का नाम लेकर बोल चुकी है ! तो क्या वह लाली से मिल चुकी है ! मगर रंगा ने उन क्षणों में अपने आपको सँभाला और उत्तर के रूप में वह बोल उठा-चल सकता हूँ, मगर आप ज्यादा ठहरने के लिए मुझे विवश न करें! फिर इसके पहले यह कि, आपको मैं जान लूँ-अगर आप अपना परिचय मुझे दे सके तो मैं .....रंगा बोलकर नीचे को ओर देखने लगा। -परिचय ? -तरुणी हँसी-परिचय ? खैर, वह भी दूँगी! दूँगी कैसे नहीं मैं तो देख रही हूँ मेरी बातों पर काफी घबरा उठे हो! घबराने की बात भी है। जिसको कभी देखा नहीं, जिसके बारे में कभी तुमने सोचा तक नहीं, वह आज तुम्हारा रास्ता रोककर अपने घर की ओर ले चले, और जब ले चलने वाली औरत हो और चलनेवाला मर्द.....

तरुणी खिलखिलाकर हँस पड़ी। हँसी के मारे उससे आगे न बोला गया। रंगा फिर से घबरा उठा। उसे हो रहा था कि जैसे वह परास्त हुआ जा रहा है उस तरुणी के सामने वह सोच पा नहीं रहा है कि आखिर वह क्यों उसके आकर्षण में स्वयं खिंचा जा रहा है, क्यों वह तरुणी उसे अपनी ओर इस तरह खींचती जा रही है।

वह तरुणी आगे बढ़ चली, रंगा चुपचाप सिर झुकाये उसके पीछे-पीछे चलने लगा। तरुणी अपने क्वार्टर के पास जा पहुँची और अपने अंचल की खूट में बंधी कुंजी से अपने दरवाजे का ताला खोला, वह भीतर घुसी और घुसते ही बोल उठी-आओ रंगालाल, रुक क्यों गये भीतर आओ।

रंगा जैसे मंत्र बल की तरह भीतर पाकर ठिठका-सा खड़ा रहा।

तरुणी ने फिर भीतरवाले कमरे का ताला खोला, वह कमरे में गई और भीतर की स्वीच दबाकर सीतल पाटी उठा लाई और रंगा से कहा-आओ रंगालाल, थक गये होगे, जरा सुस्ता लो न ।

और उसने सीतलपाटी बरामदे पर बिछा दी।

रंगा जरा असमंजस में पड़ा कि उसे क्या करना चाहिए? वह नहीं चाहता था कि वह बैठे। इसलिए वह बोल उठा-बैठने की बैसी कोई जरूरत मैं नहीं महसूस करता। आपको मुझे आपके घर तक पहुँचाना था, इसलिए साथ-साथ चला आया।

-नहीं आते तो क्या मुझे रास्ते में कोई लूट लेता? -तरुणी की भवें नाच उठीं।

-नहीं, यह मेरा मतलब न था कहने का।

-खैर, धन्यवाद! जब तुमने मुझे मेरे घर तक पहुँचाने की तकलीफ ही उठाई, तब जरा कुछ देर के लिए और भी अगर तकलीफ उठाते, तो क्या वेजा होता?

-वेजा की बात मैं नहीं कह रहा.....

-तो! तो तुम्हारा मंशा यह है कि अकेले घर में जहाँ जवान औरत हो, वहाँ जवान मर्द जाकर न बैठे, न कुछ बातें करें-न कुछ हँसे-हँसाये.... क्यों?

तरुणी मुस्कराई। रंगा ने बिजली के प्रकाश में इस बार उसकी आकृति देखी और उसकी मुस्कुराहट भी! इसबार उसे लगा कि वह बड़ी सुंदरी है, शायद ऐसी मजदूरिनों में मिलना सम्भव नहीं। उसके ओठों पर मुस्कुराहट खेल रही है। रंगा अपलक दृष्टि से उस खेल को देखने लगा! पर तरुणी समझ रही थी कि रंगा उलझन में पड़कर उत्तर नहीं दे रहा है, इसलिए वह स्वयं बोली-सुनती हूँ तुम तो ऐसे कायर नहीं हो रंगलाल! क्या तुम्हारा खयाल है कि किसी स्त्री-पुरुष का एक साथ बैठना-उठना उचित नहीं?

-मैं ऐसा कुछ अनुचित नहीं समझता; मगर समाज तो है।

-ओह, समाज! -तरुणी की भवें जरा खिंच आई, गालों का रंग और भी गाढ़ा-सा दीख पड़ा, और वह झुंझलाहट-भरे शब्दों में बोल उठी-समाज? इस समाज के डर से शायद तुम घबरा रहे हो! ऐसे समाज से, जिसके आँखें नहीं, कान हैं, जो कानों से देखना और आँख से सुनना चाहता है? क्या तुम ऐसे समाज को पसन्द करते हो रंगलाल! ऐसे समाज की खोपड़ी पर कील ठोककर क्या तुम यह नहीं बतला सकते कि स्त्री और पुरुष हर हालत में स्त्री-पुरुष ही नहीं हैं - वे सबसे पहले मनुष्य हैं। फिर मनुष्य अपने समाज में बैठकर आनन्द उपलब्ध न करे तो कहाँ करे?

वह तरुणी रुकी, रंगा तब तक सीतलापाटी पर बैठ चुका था। तरुणी घड़ा लेकर बाहर गई और कुछ क्षणों के बाद लौटकर उसने कठौता

और लोटा भर पानी लाकर उसके सामने रखा। फिर रंगा के पाँव अपने हाथों से बल पूर्वक खींच, कठौते में रख, धोने लगी। रंगा मना करता रह गया; पर वह क्यों मानने लगी। बोली-ऐसे साधु देवर के पाँव अपने हाथों न धोऊँगी तो किसके धोऊँगी?

उसने पाँव धो-धाकर अपने अंचल से पोंछ डाला। फिर वह भीतर से स्टोव और स्प्रिट की कुप्पी लिये हुए बरामदे पर आई और बोली-घबराओ नहीं रंगलाल, तुरंत हो जाता है, जरा चाय-वाय पी लो! भाभी के घर आये हो, भाभी तुम्हें कैसे भूखे लौट जाने दे!

उसने स्टोव जलाकर और पानी को डेगची में भर कर उसपर चढ़ा दिया। फिर वह भीतर गई और पानदान लिये रंगा के पास बैठकर पान लगाने का आयोजन करने लगी।

रंगा अबतक उसका परिचय न पा सका था, इसलिए रह-रहकर उसे लगता था कि आज वह किस अशुभ क्षण में अपने घर की ओर विदा हुआ था! जाने कोई आ जाय, तो? आखिर, कौन है यह मायाविनी!

और मायाविनी समझ गई वह तरुणी पान के बीड़ों को तस्तरी पर सजाती हुई बोल उठी-तुम हैरान हो रहे हो, रंगलाल, आखिर यह औरत कौन है? हैरान होना कोई अचंभे की बात नहीं है। तुमने पहले मुझे कभी देखा नहीं, शायद मेरे बारे में तुमने कभी सोचा भी नहीं होगा कि ऐसी भी कोई औरत होगी, जो तुम्हें इस तरह प्रेरणा कर सकेगी। क्या सोच रहे हो, रंगलाल, है न यह बात ठीक?

रंगा सिर झुकाये उसकी बात सुनता रहा; पर उसने सिर उठाकर उसकी ओर देखने की जरा भी इच्छा प्रकट न की। युवती उससे अपने प्रश्नों के उत्तर पाना चाहती थी, इसलिए उसने रंगा की टुष्टी पकड़कर उसे ऊपर की ओर उठाते हुए हँसकर कहा-इतनी झेंप क्यों है रंगलाल? अगर तुम सिर उठाकर मेरी ओर एक बार ताक लोगे, तो क्या कुछ पाप हो जायगा? क्या तुम समझ रहे हो कि मैं तुम्हें देखते ही निगल जाऊँगी! ऐसी उमर, तुम इतने हड्डे-कटे, तन्दुरुस्त, जवानी से लहराता हुआ तुम्हारा बदन, ऐसा तो कोई मर्द मुझे देखने में अबतक न आया। तुम इतने अनोखे क्यों बने जा रहे हो?

बोलो, आखिर कुछ तो बोलो सही। यों गुमसुम रहना ठीक नहीं! कोई आकर इस तरह तुम्हें देख लेगा तो क्या कहेगा भला!

रंगा की उलझन सुलझने की बजाय और भी अधिक उलझ गई। उसके बोलने की चतुरता, खुलकर बातें करना, प्रेम संभाषण, प्रलोभन, दिल को गुदगुदाना, फिर-भय प्रदर्शन ! क्या है यह ? क्यों है ऐसी ? आखिर रंगा से वह चाहती क्या है ? मगर उसका इस तरह गुमसुम रहना भी तो ठीक नहीं है! रंगा चिन्ता की सीमा पर जा पहुँचा। उसने आखिर निश्चय किया कि अब वह ऐसा मौन साधे अपनेको रख नहीं सकेगा! वह कुछ कहेगा और जो कुछ कहेगा- चाहे वह कितना ही कठोर और कितना ही अप्रिय क्यों न हो-वह कहेगा। और ऐसा सोचते ही, विना कुछ हिचकिचाये, वह बोल उठा-इतनी रहस्यमयी नारी इसके पहले मुझे देखने में न आई थी। तुम्हारा आदर-यत्न पाकर मैं कुछ निश्चय नहीं कर पाता कि क्यों तुम्हारी मुझ पर इतनी कृपा हुई! मुझ जैसे अपरिचित व्यक्ति को अपने साथ लाना, अपने हाथों उसके पाँव धोना और उसके आतिथ्य के लिए तुम्हारा इस तरह का खटना-इतनी आत्मीयता क्यों बिखेर रखी है? मुझसे तुम क्या पाना चाहती हो? मेरे पास तुमने ऐसी कौन-सी चीज देखी.....कह सकती हो-कह सकती हो.....क्यों तुम्हारा इतना आकर्षण है!

युवती रंगा की बातें सुनकर फिर से खिलखिला उठी और उसी रूप में बोली-कहती हूँ-कहती हूँ-कहकर वह स्टोव के पास गई, गरम जल को उतारा, चाय डाली, फिर भीतर से दूध-चीनी और प्लेट-प्याले लाकर चाय तैयार करने में लग गई। चाय तैयार हो जाने पर वह हँसती हुई बोली- -क्या नाश्ते का इन्तजाम भी करूँ ? या तुम्हारे दिये सौगात से काम चल जायगा?

-मुझे तो ऐसी कोई जरूरत नहीं है-रंगा उसकी स्पष्टता पर अपनी प्रसन्नता प्रकट करते हुए बोल उठा-हाँ, तुम सौगात में से अपने लिए ले सकती हो। मुझे तो सिर्फ चाय ही चाहिए।

-खैर, तो चाय ही लो-कहकर उसने चाय का एक प्याला रंगा की ओर बढ़ा दिया।

रंगा ने प्याला सँभालते हुए, उसकी ओर मुखातिब होकर कहा-मगर सौगात तो तुम्हें खाना ही होगा! तुम्हारी तरफ ही गठरी पड़ी हुई है, खोलकर ले लो न!

-ले लूँगी; मगर इस वक्त नहीं ! अभी तो सिर्फ चाय ही चलने दो।

और उसने भी चाय का प्याला अपने हाथ में संभाला और एक चुस्की लेते हुए कहा-हाँ, तो तुम जिन बातों को जानने के लिए इतने उतावले और हैरान हो रहे हो, उन्हें क्यों न अब तुम्हारे सामने रख दिया जाय! तुममें कौन-सा आकर्षण है, मैं खुद नहीं कह सकती; मगर मैं पातो हूँ कि तुममें वह आकर्षण है। और गुण के बारे में ? वह तो शायद ऐसा कोई नहीं है, जो इसे न जानता हो! और शायद मैं उसी गुण को तुम से पाना चाहती हूँ, चाहती हूँ कि तुम मुझे कुछ दो ! औरतों को तो कुछ चाहिए ही; उसके बगैर वे कभी जी नहीं सकतीं।

-मगर मुझे आखिर पता भी हो कि वह कुछ क्या है ?

-वह कुछ ?-युवती फिर से हँसी-वह जो कुछ है, उसे मैं तुमसे पा लूँगी, तुम्हें इसके लिए फिक न करनी पड़ेगी ! मगर मँह से जरा कह भी तो डालो कि आखिर उसे तुम देने को तैयार हो !

-मगर कहने के पहले मुझे जान लेना चाहिए कि वह क्या है ?

-क्यों, अगर यों ही तुम मंजूर कर लो तो कोई हर्ज है ?.-शायद !

इस बार युवती ऐसी हँसी और इतनी देर तक हँसती रही कि उसके पेट में बल पड़ गये। वह हँसते-हँसते उसी सीतलपाटी पर, उसके सामने ही चित्त पड़ गई, उसके कपड़े अस्त-व्यस्त हो पड़े! रंगा हैरान था, आखिर इतनी हँसने की कौन-सी बात हुई ! वह घबराया, कुछ भयभीत हुआ और कुछ झेंपा भी।

मगर ज्यों हो उसकी हँसी रुकी, वह आपही बोल उठी-तुम बड़े सूधे हो रंगलाल ! वह सँभलकर बैठ गई।

रंगा घर जाने के लिए छटपटा उठा, उसके लिए क्षणभर का ठहरना कठिन हो चला, इसलिए वह अनुनय के स्वर में बोला-अब मुझे चलना ही चाहिए, चलूँ?

युवती क्षण मात्रमें गंभीर हो चली, कुछ क्षण तक रुकी भी रही,

उसके बाद बोल उठी-खैर, जा सकते हो । कहो तो आदमी साथ कर दूँ?

-आदमी ? नहीं । मुझे नहीं चाहिए ।

रंगा उठ खड़ा हुआ, युवती भी उठी और गठरी अपने स्थान से लाकर उसकी ओर बढ़ाते हुए बोली-सँभालो इसे ।

-मगर सौगात का हिस्सा लिया कहाँ तुमने ?

-हिस्सा ?-युवती हँसी-रहने दो अभी, मैं तुम्हारे घर बहुत जल्द आ रही हूँ, वहीं खा लूँगी !

- तो क्या मैं उम्मीद करूँ कि तुम आ रही हो ?

-जरूर ।

रंगा बाहर की ओर चल पड़ा, युवती भी बाहरी दरवाजे तक साथ आई । रंगा सोच रहा था कि जिसके साथ वह इतनी देर तक रहा, उसका परिचय आखिर मिला कहाँ । पूछने पर भी उसने अपना परिचय नहीं दिया-क्यों? क्यों वह देना नहीं चाहती ? क्या अब भी उससे पूछना चाहिए कि वह कौन है ? मगर वह सोचकर निश्चय पर पहुँच ही रहा था कि युवती स्वयं बोल उठी-इतना तंग किये जाने पर, अब तो शायद भूलकर भी तुम इधर न आओगे, रंगलाल ? कैसे मैं कहूँ कि तुम जब कभी यहाँ आया करो ?

-आजँगा क्यों नहीं ! इसी रास्ते से तो बराबर शहर आया-जाया करता हूँ । मगर एक बात है ।

-वह क्या ?

-क्या अब भी तुम अपना परिचय न दोगी ?

युवती हँसी, उसने रंगा के कंधे पर हाथ रखा और वह हंसते हुए बोली-जानोगे रंगलाल, जानोगे ? -वह कहते-कहते जरा रुकी, फिर आप ही बोल उठी-सकुन्ती का नाम तो तुम खुद जानते हो रंगलाल, जिसकी चर्चा उस दिन पंचायत में चली थी ! और तुमने ही तो उस दिन उस सकुन्ती को भी बाल-बाल बचा लिया था और इसीलिए तो उसके साथ एक छिपी हुई दुनिया भी अपनी जगह कायम रह गई !

-तो क्या तुम वहीं सकुन्ती हो ! -रंगा ने आश्चर्य से उसकी ओर टकटकी बाँधे हुए पूछा ।

-हाँ, वही सकुन्ती-लोग सकुन्ती ही कहते हैं, मगर माँ-बाप ने शौक से नाम रखा था शकुन्तला! शायद परी-जैसा रूप देखकर ! क्यों तुम टकटकी गढ़ाये देख रहे हो इस तरह ?

सकुन्ती क्षण भर रुकी। रंगा समझ नहीं रहा था कि जिस नाम के साथ पाप की एक अलग दुनिया बसी हुई है, क्या वह यही सकुन्ती है? मगर वह सकुन्ती तो मुस्करा रही है रंगा के सामने!

रंगा और अधिक क्षण तक रुका नहीं, वह बिना कुछ उस सकुन्ती से बोले ही तेजी से अंधकार की ओर बढ़ चला।

### (अङ्गतीस)

रंगा विक्षिप्त की तरह अपने रास्ते पर बढ़ चला। उसके दृष्टि-पथ पर सकुन्ती यानी शकुन्तला की तस्वीर आप-से-आप खिंच पाती। रंगा जितना ही अपने को जब्त करता, वह तस्वीर उतनी ही उसके सामने स्पष्टतर हो उठती। ऐसी अद्भुत शकुन्तला की कल्पना उसने कभी स्वप्न में भी न की थी। वह सोचता कि जो शकुन्तला इतनी सुन्दर है, इतने सुन्दर तरीके से बातें कर सकती है, इतनी श्रद्धा एक पर-पुरुष के प्रति रख सकती है, जो अपनी इतनी आत्मीयता के बल पर दृढ़ से दृढ़तर आदमी को अपनी ओर आकर्षित कर सकती है, वह दुराचारिणी हो, पर-पुरुषगामिनी हो, उसके साथ पाप की एक अलग दुनिया धूमती-फिरती-सी दीख पड़ती रही हो, आखिर वह शकुन्तला क्या है? क्यों वह वैसी है? क्यों वह उसे अपनी ओर खींच सकी? क्यों वह स्वयं कर्मठ व्यक्ति उसकी ओर बरबस खिंचा गया? रंगा के सामने आप-ही-आप ऐसे-ऐसे प्रश्न आते गये, जिनका उत्तर वह दूँड़े भी पा नहीं रहा था! और यही कारण था कि जिस स्वप्न-जाल को बिनता हुआ शहर से अपने डेरे को ओर चला था, वह उसी स्थान पर छिन्न-भिन्न हो गया, जहाँ पहले-पहल शकुन्तला ने उसे पुकारा था। आनन्द के साथ वितृष्णा का योग अवश्य रंगा के लिए असहनीय हो उठा और फलस्वरूप, वह मुझाया-सा अपनी भाभी लाली के सामने आ हाजिर हुआ।

लाली इन पन्द्रह दिनों के अवकाश को रंगा की अनुपस्थिति में तिल-तिल गिनकर के बिताया था। वह अपने डेरे में अकेली थी; उसके सामने कालिनी की लीला नृत्य किया करती। वह उसे देखकर भयभीत हो उठती, पर तुरत उसके सामने रंगा का रूप खिंच आता। वह संभल जाती, उसे साहस हो आता, और उस साहस को लेकर मजे में अपने दिन काट लेती। लाली को मालूम था कि बड़े साहब की लड़की की शादी हो चुकी है, आज सभी कार्यकर्ताओं को फुरसत भी मिल गई है। इसलिए लाली बड़े प्रेम से रसोई चुल्हे पर चढ़ाकर रंगा के आने का इंतजार कर रही थी; मगर ज्यों-ज्यों रात बढ़ती चली, त्यों-त्यों उसे लगा कि वह वहीं रोक लिया गया।

शायद आज नहीं आये तो कल आ जायेंगे। फिर भी वह इन्तजार करते-करते वहीं लेट गई, रोशनी ज्यों-की-त्यों जलती रही। दरवाजा ज्यों-का-त्यों खुला ही रहा। इसी बीच में रंगा अपने ऊँगन आ हाजिर हुआ। उसने गठरी बरामदे पर रख दी और ज्यों ही खड़ा होकर अपनी भाभी को वह पुकारना ही चाहता था कि लाली हड़बड़ाकर खुद उठ बैठी। उसकी दृष्टि रंगा की ओर गई और वह बोल उठी-आ गये रंगलाल! कब आये?

-हाँ, आ गया, भाभी! और अभी ताजा आकर खड़ा ही हुआ हूँ। रंगा मुस्कराया - मगर तुमने दरवाजा खुला ही क्यों रख छोड़ा था, भाभी! बत्ती जल रही, दरवाजा खुला, तुम बेखबर लेटी हुई ! यों दरवाजा खुले रख छोड़ना क्या ठीक था?

रंगा बरामदे पर पैर नीचे लटकाए बैठ गया। लाली क्षणभर रुकी हुई रही, फिर बोल उठी-ठीक-बेठीक मैं क्या जानूँ ! कुछ जान-बूझकर खुला दरवाजा छोड़ लेट थोड़े ही गई थी! तुम आज आओगे-यह मालूम हो गया था और यह भी मालूम हो गया था कि तुम वहाँ से शाम होने के पहले ही चल चुके हो! तुम्हरे जैसा चलने वाला आदमी क्या पाँच मील पाँच घंटे में चल सकता है? तुम्हीं बताओ-कितने बजे होंगे?

रंगा को लगा कि जैसे भाभी उसे देखकर ही समझ गई है कि वह जरूर सकुन्ती के घर ठहर कर आ रहा है - वह सकुन्ती जो अपने फन में उस्ताद है, जो जवानों को अपने जाल में फंसाकर अपना उल्लू सीधा किया

करती है, जिसकी घर-घर चरचा है ! रंगा के सामने ये बातें आते ही, वह अपने-आपमें काँप उठा । वह समझ नहीं सका कि दरवाजा खुला रख छोड़ने के अंतराल में जो व्यंग वह अपनी भाभी से कर गया, वह उसके लिए उचित नहीं हुआ । लाली उस व्यंग को समझ गई और वह इतना निडर होकर उसपर इतना गहरा वार करेगी-रंगा की समझ में ज्योंही बातें घुसीं, त्योंही उसकी देह और ललाट पर पसीने निकल आये ! लाली ताड़ गई, उसे लगा कि शायद रंगा के आचरण पर संदेह-सूचक प्रश्न करना उसके पक्ष में अन्याय हुआ । इसलिए वह अपनी बातों को दूसरा रूप देने के विचार से बोल उठी-खैर, तुम आ गये, खुशी की बात है ! मैं तुमसे वक्त का हिसाब तलव नहीं करती ! जानती हूँ, तुम्हें एक ही काम तो नहीं रहता, दुनिया भर की झांझटें सिर पर पाला करते हो ! और तुम्हारे यार-दोस्तों की भी तो कमी नहीं है....

लाली बोल कर उठी और पैर धोने के लिए जल का लोटा उसके सामने रखती हुई बोली-मँह-हाथ धो लो रंगलाल ! आज कई दिनों पर रसोई बनाई है, सुना कि तुम आ रहे हो, फिर कैसे नहीं बनाती ! शायद अब ठंडी भी हो चली होगी ! तब तक मैं तुम्हारे लिए परोसे लिये आ रही हूँ ।

रंगा का भय आपसे-आप जाता रहा । उसने लाली की सारी बातें सुनीं । उसे यह समझते देर न लगी कि उसीके चलते आज रसोई पकी है, अन्यथा लाली अपने लिए रसोई क्यों बनाने चली ! इसलिए वह अपनी भाभी के प्रति सदय दृष्टि निक्षेप करते हुए बोल उठा-जब तुमने मेरे लिए ही इतनी तकलीफ उठाई है भाभी, तो क्यों न खाना खा ही लिया जाय ! खैर, तुम परसो, मैं तबतक हाथ-पैर धो लेता हूँ !

रंगा पैर धोने लगा और लाली रसोई परोसने को चल दी । रंगा पैर-हाथ धोकर बरामदे पर पलथी गिराये बैठ गया । लाली थाली लिये हुए आई और उसके सामने रखते हुए बोली-तुम तो इन दिनों अच्छे-अच्छे माल चाभते रहे हो रंगलाल, आज तो तुम्हें यह रसोई भायेगी ही नहीं !

लाली वहीं बैठकर मुस्कराती हुई अंचल से हवा करने लगी । रंगा भी भाभी को बातों पर मुस्कराया और मुस्कराते हुए बोला-बेशक माल चाभा किया भाभी; मगर स्वाद के बारे में सच पूछो तो इस चावल-दाल में जो मुझे रस मिल रहा है, उस रस के वहाँ दर्शन कहाँ ! क्योंकि इन चीजों में तुम्हारा

हाथ है, और उन चीजों में दूसरों का !

-मगर मेरे हाथ में कौन-सा नगीना जड़ा है जो.....

-नगीना-बीच ही में रंगा बात काट कर बोल उठा-अनेक नगीने वालियों को देखा है, भाभी; मगर वे पराये की हैं, उनमें अपनापन कहाँ! यहाँ तो अपनी चीजों की बात हो रही है न ! अपनी चाहे जैसी बुरी हो, अपने लिए वही सुंदर होती है! क्या सुंदर नहीं होती भाभी? -होती हो, यह कुछ निश्चय नहीं है !

-निश्चय नहीं है, यह क्या कहती हो भाभी?

-ठीक जो कहती हूँ। मानना-न-मानना दूसरों की बात रही! ऐसा मानने को जी नहीं करता ।

-अपनी और ठीक नहीं हो? -जी करेगा किसी दिन, आज नहीं। --लाली क्षणभर के भीतर बहुत कुछ सोच गई, उसके बाद वह बोल उठी-देहल भी तो अपना ही था एक दिन लाखों का, आज क्यों लाखों बुरी, देहल बुरा! तुम्हारे सामने की तो बात ठहरी ! तुम भी उन पंचों में एक थे! यहाँ अगर अपनी अच्छी ही बनी रहती, तो लाखों का रोना ही क्या था? क्यों आज वह बदरी के पास चली गई ? क्यों देहल सकुन्ती के पीछे परेशान है?

सकुन्ती की बात कान में रात ही रंगा चौंका। ग्रास मँह में था, चौंकते ही वह सरका, उसने पीने के लिए लोटा उठाया। लाली मुस्कराती हुई बोल उठी-कोई नाम ले रहा है रंगलाल, नहीं तो खाने के समय इस तरह से तुम नहीं सरकते! अंदाज करो तो कौन नाम ले रहा होगा?

रंगा को लगा, जैसे वह दुहरे बंधन में अपनेको बंधा हुआ पा रहा है, और वह बंधन कुछ ऐसा है कि जिसे काटकर वह आसानी के साथ निकल नहीं सकता! जो बात प्रकट होते-होते आप छिप गई थी, जिसकी ओर लाली का ध्यान तक न गया था; मगर जिस बात के लिए वह खुद छिपाने का प्रयत्न करना चाहता, रंगा उसे प्रकट कर देने के लिए विवश हो गया और वह अपनी भाभी के उत्तर में बड़े सरल भाव से बोल गया--नाम और कौन लेगा, भाभी, सकुन्ती को छोड़कर!

- लाली चौंकी, जैसे अंधेरे में साँप का भ्रम पाकर लोग चौंक पड़ता है। जैसे उसे अपने कान पर विश्वास ही न होता हो। इसलिए लाली आश्चर्य में विभोर होकर बड़ी तेजी के साथ बोली - क्या तुम सकुन्ती को जानते हो?

-जानता कैसे नहीं भाभी! -सकुन्ती को! -रंगा हँसा, फिर बोला-अभी तो उसीके यहाँ से आ रहा हूँ न! क्या करता, रास्ते में उससे भेंट हो गई, वह मुझे पहले से पहचानती थी। इसलिए वह मुझे अपने घर ले गई, और अभी-अभी तो उसके घर चाय-पानी करके दौड़े-दौड़े आ रहा हूँ।

-अच्छा, सकुन्ती के घर मेहमानदारी भी रही!

लाली अपने को रोकते-रोकते अपनी बात इस तरह कह गई, जैसे वह एक मामूली-सी बात हो! लाली मुस्करा रही थी; पर उस मुस्कान में उसके दिल का धाव छिपा था, जिसे वह बड़ी मुश्किल से दबाये हुए थी। फिर भी वह दबाये रख नहीं सकी ! वह उठकर रसोईघर की ओर दौड़ पड़ी। रंगा ने समझा कि परोसन लाने के लिए उसकी भाभी को दौड़ना पड़ा। मगर वह तो भरपेट खा चुका था। उसे तो बिल्कुल परोसन चाहिए ही नहीं। इसलिए वह बोल उठा-मैं तो भर पेट खा चुका, भाभी ! किसी चीज की जरूरत नहीं, माफ करो!

और रंगा थाल से उठकर मँह धोने लगा। इतने में लाली बड़ी मुश्किल से, जैसे अपने पर बड़ी बेरहमी कर रही हो, बोल उठी-सचमुच कुछ नहीं चाहिए?

रंगा हँसा और हँसते हुए बोला-अब तो मेरा हाथ-मँह भी धोया जा चुका, भाभी!

लाली रसोईघर में ही पड़ी रही, जैसे वह खुद खाने के लिए बैठ गई हो, रंगा ने भी ठीक यही सोचा। इसलिए वह बोल उठा- -मैं सोता हूँ, भाभी, तुम खा-पीकर निबट लो। और उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही रंगा बरामदे पर लेट गया।

सकुन्ती के बारे में जैसा कि लाली जान सकी थी, उससे किसी भी स्त्री को दुख होना ही चाहिए था, जबकि उसका प्रिय उस जैसी स्त्री के घर मेहमानदारी करे! और लाली तो रंगा को एक कर्मठ व्यक्ति के रूप में सदा से जानती आ रही है। जब इस तरह का व्यक्ति भी ऐसी कुलटा में आ जाय,

तब मनस्ताप की सीमा ही नहीं रह जाती। ठीक लाली भी इसी सीमा पर पहुँच चुकी थी। उसकी आशा चूर-चूर हो गई। उसका आत्मबल गल-गलकर छिन्न-भिन्न हो गया। लाली बड़ी देर तक रसोईघर में गुम-सुम पड़ी रही। उस दिन जिस अरमान से उसने रसोई बनाई थी, उसे वह ग्रहण तक न कर सकी! जब उसने देखा कि रंगा गहरी नींद में खराटे भर रहा है, तब वह वहाँ से उठी। उसने बाहर वाला दरवाजा बंद किया, बत्ती बुझाई और वह अपनी जगह पर चुपचाप आकर लेट रही।

(उनचालीस)

सबेरा हुआ, रंगा अपने प्रातः कृत्य से निवट कर बाहर चला गया। लाली अपने कामों में लग गई।

नौ बजे धूम-धामकर रंगा लौट आया। उसके बाद नहा-धोकर खाने को बैठा। लाली नित्य की तरह उसे खिलाने को बैठ गई; पर वह जिस तरह खाने के बक्त लाली को चहकते हुए पाता था, वैसा कुछ उसे दीख न पड़ा। उसने अवश्य यह अनुमान किया कि लाली का मन खुश नहीं है। पर वह उस तह तक पहुँच न सका, जहाँ वह देख पाता कि उसकी भाभी लाली क्यों इतनी नाराज हो उठी है! रंगा, जैसे-तैसे हो सका, खाना खा-पीकर तैयार हो अपने काम में चल पड़ा।

उस दिन मिल के कामों से छुट्टी पाते ही रंगा की बुलाहट मनेजर के यहाँ हुई। रंगा उनसे जा मिला, बड़ी देर तक उनके साथ बातें चलती रहीं। बातें शेष होते ही मनेजर साहब उठे, रंगा भी उठ खड़ा हुआ और अपना अभिवादन जतलाकर वह अपने डेरे की ओर चल पड़ा।

कालिनी के पास रात ही उसकी बदरी से भेट हो गई। बदरी हाट से कुछ सामान खरीदे अपने डेरे की ओर आ रहा था। बदरी ने ही पहले-पहल रंगा को देखा और उसीने पुकारकर रंगा का ध्यान अपनी ओर खींचा। रंगा आगे था और बदरी पीछे। रंगा रुका, बदरी उसके पास आ पहुँचा और उससे कहा-कई दिनों से तुम्हारी मैं खोज कर रहा था रंगा। पीछे

जाकर मालम हआ कि तुम बड़े साहब के घर शादी पर गये हुए हो। और क्या हालचाल है। कब आये वहाँ से?

-कल रात को वहाँ से आया बदरी। और सब मजे का हाल चाल है न ? हाँ, तुम खोज कर रहे थे? क्यों, खैरियत तो है!

-हाँ, खोज कर रहा था; पर ऐसी कुछ बात न थी, यों ही दिल चाहता था कि तुम से मिलूँ। और कुछ बात नहीं थी। चलो न मेरे डेरे होकर। वहीं नाश्ता-पानी भो हो। और अभी करना ही क्या है?

रंगा को बदरी के साथ मिलते ही लाखों की याद हो आई; मगर रंगा ने जान-बूझकर अपने मन के प्रश्न को मन ही में रोक लिया। फिर भी जब बदरी ने अपने घर ले चलने की बात उठाई, तब रंगा उसका प्रतिवाद भी न कर सका और वह बदरी के साथ उसके डेरे पर जाकर हाजिर हुआ।

रंगा को प्रश्न करने की आवश्यकता ही न रही। उसने आँगन में पहुँचते ही पाया कि लाखों जैसे उन्हीं लोगों के आने का इन्तजार ही कर रही हो। ज्योंही लाखों की दृष्टि रंगा की ओर गई, त्योंही वह मुस्कराई और मुस्कराहट लिये हुए बोली-अच्छा रहा आज, रंगा को ले आये!

और झट से आँगन में पड़ी खाट पर दरी बिछाते हुए लाखों ने कहा आओ, रंगा, बैठो न, खड़े क्यों हो रहे!

बदरी ने सामान एक ओर रख दिया और वह भी रंगा के पास, खाट के एक किनारे पर बैठ गया। लाखों कुछ आवश्यक कामों में लग गई। रंगा शांत होकर खाट पर बैठा था; पर उसके मस्तिष्क में जोर की आँधी उठी थी! उसका ध्यान कभी सकुन्ती की ओर जाता; कभी लाली और कभी लाखों की ओर। वह अपने मन में इन तीनों को अपने स्केल पर तौल रहा था कि कौन कितना भारी है और कौन कितना हल्का! इन्हींको लेकर वह अपने भीतर काफी परेशान था, और परेशानियों की निशानियाँ उसके चेहरे पर भी उत्तर आई थीं। इधर बदरी भी चुपचाप बैठा था। उसे मिल नहीं रहा था ऐसा कोई विषय, जिसपर वह रंगा के साथ बातें करता। वह इन्तजार में पड़ा था कि लाखों आवे और उस धूमिल वातावरण को ताजा करे। वह अवसर आया, जब लाखों अपने काम से निवट कर कमरे से बाहर आई। उसने

चौंककर देखा कि दोनों सजन गुम-शुम बैठे हैं। वह बोल उठी-बदरी, तुम भी अजीब आदमी हो! अब तक ज्यों-के-त्यों बैठे ही रह गये! जरा पैर हाथ भी तो धुलाते! ले आये रंगा को तो उसकी कुछ खातिरदारी भी तो होनी चाहिए! -मगर इन्तजाम भी कुछ करोगी खातिरदारी का, या यों ही हाथ-पैर धुलाऊँ.....!

इस पर लाखो मुस्कराई और रंगा की ओर मुखातिब होकर बोली-सुनते हो रंगा, इनकी बात ! इन्तजाम मैं करूँ? इन्तजाम करना मर्दों का काम है, या औरतों का?

-औरतों का! -रंगा हँस पड़ा और हँसते हुए ही बोला-मर्द कमाना भर जानते हैं। बैल की तरह जोत लो; मगर इन्तजाम करना तो औरतों के हाथ की चीज है, खास कर घर-गिरस्ती का इन्तजाम! यहाँ तो औरतों का ही राज रहता है।

-तो तुम्हारा मतलब यह है कि घर राज है और घरनी उस राज की रानी? -लाखो ने रंगा की बातों के समर्थन में ही प्रश्न किया ।

-जरूर ।

-और घरवाला? -

-घरवाला कहो चाहे पूरा परिवार कहो, वे सब उस राज की रिआया होते हैं ! -रंगा मुस्कराया ।

-नहीं, गलत-बदरी बोला-यह गलत कहा रंगा । घरवाले को रिआया होना ठीक नहीं, कम-से-कम उसे राजा न बनाओ तो मंत्री तो जरूर ही होने दो!

मंत्री हो सकता है; मगर मंत्री का गुन भी तो होना चाहिए उसमें? -लाखो बोल कर जोर से हँस पड़ी-रंगा, शायद तुम समझ नहीं रहे हो और समझोगे कैसे ? मैंने जो नयी दुनिया बसाई है, उसमें तुम पहले पहल ही कदम रख रहे हो! यह जो देख रहे हो बदरीजी महाराज को, समझे थे साक्षात् बदरीजी महाराज हों, पहाड़ की गुफा में रहनेवाले ! न देश की खबर, न दुनिया की! कमाना भर जानते हैं, न खाने का शौक, न रहने की फिक्र, एक दम भोलानाथ ! मगर मैं धीरे-धीरे आदमी बना रही हूँ अब!

लाखो बदरी की ओर देखकर हँस पड़ी और हँसती हुई बोली-शायद तुम्हें रस नहीं आ रहा है रंगा ! तुम थके-मांदे आये हो । उठो, पहले हाथ-पैर धोलो । मैं अभी भीतर से आई ।

इस बार बदरी और रंगा पैर धोने को उठे । रंगा ने एक बार आँगन की ओर दृष्टि डाली और पाया कि सब चीजें यथास्थान करीने से रखी हुई हैं । बिलकुल साफ, कहीं भी गंदगी का नाम नहीं । जैसे एक निपुण हाथ को सँचारी हुई हो । उसे ऐसी स्वच्छता देखकर बाद आया कि जरूर यह हाथ लाखो का है, उसे गंदगी पसंद नहीं ।

इतने में लाखो एक छोटी-सी टेबिल उठा लाई और उसे खाट के पास रखा; ऊपर से एक साफ और काम किया हुआ टेबिल-क्लाथ उसपर डाला । फिर वह भीतर गई और कुछ ही देर के बाद दो रकाबियों में नाश्ता और दो शीशे के ग्लास में चाय लाकर टेबिल पर रखते हुए बोली-अच्छा तो, आप लोग जलपान करें, और मैं आपलोगों के लिए पान बनाती हूँ ।

रंगा और बदरी दोनों जलपान करने लगे और लाखो वहीं जमीन पर बैठकर पान बनाने लगी ।

रंगा की दृष्टि कभी टेबिल-क्लाथ के काम पर, कभी ज्ञाश्ता और चाय पर, कभी लाखो की आकृति पर और कभी उसके पान सजाने के ढंग पर जाती । उसकी दृष्टि इन चीजों पर इतनी तेजी के साथ आ-जा रही थी कि लाखो से यह छिपी रह न सकी । वह पान बनाते-बनाते ही बोली-रंगा, तुम चुप क्यों हो रहे? क्या ज्ञाश्ता अच्छा नहीं बना?

-रंगा अपने-आपमें चौंक उठा और उसी रूप में बोल उठा-ज्ञाश्ता और तुम्हारे हाथ का, अच्छा न हो, क्या कह रही हो लाखो?

-ठीक है, ऐसा तो कहोगे ही-लाखो मुस्कराई-मैं ऐसी क्या हूँ, जिसके हाथ से नाश्ता अच्छा होना ही चाहिए ?

रंगा भी मुस्कराया और मुस्कराते हुए ही बोला-क्या नहीं हो तुम लाखो ! .....वह जरा रुका, फिर बोल उठा-देख रहा हूँ, यह जो टेबुलक्लाथ है, उसका काम जरूर तुम्हारे हाथ का है । कितना नफीस है । देख रहा हूँ, तुम्हारा नाश्ता और चाय, इतना उम्दा बहुत कम औरतें बनाना जानती हैं,

और तुम जो पान सजा रही हो, उसमें भी तुम्हारे हाथ को सफाई निखर रही है.....

-और यह क्यों नहीं कहते कि लाखो खुद भी तो काफी खबसूरत है।

लाखों की आँखें नाच उठीं। रंगा की आँखें भी उनसे टकराई। उसके ओठों पर मुस्कराहट दौड़ी और वह बोल उठा-जिनके हाथों से इतनी चीजें सुन्दर बन गई, स्वयं वह तो जरूर खबसूरत होगी ही, लाखो ! यह तो मानी हुई बात है!

इस पर लाखो खिलखिला कर हँस पड़ी, रंगा भी खिलखिला उठा, अवश्य बदरी भी अपनेको हँसने से रोक न सका! तीनों की हँसी से संध्या का वातावरण मुखरित हो उठा।

हँसी का दौर खत्म होते ही लाखो जरा गंभीर बन बैठी। इधर उन दोनों का जलपान करना शेष हो चुका था। लाखो ने उसी गंभीर मुद्रा के बीड़ों को रेकावी में भरकर टेबिल पर रख दिया और वह बोल उठी-क्या सिगरेट भी ढूँ रंगा?

-बस, इतना ही काफी है, लाखो। सिगरेट मैं नहीं पीता! बदरी को दे सकती हूँ।

-बदरी के लिए मुझे फिकर नहीं है ।

-क्यों, बदरी तो पीता है न ?

-बदरी क्या नहीं पीते?-लाखो अपनी गति में बोली-इन्हें सिगरेट चाहिए, गाँजा चाहिए, भंग चाहिए, चरस-चंदू चाहिए और भरी-की-भरी शराब की बोतलें चाहिए! सबमें आप उस्ताद हैं! देख ही रहे हो इनका चेहरा!

जवानी में यह हाल है, तो आगे भगवान जाने ! आँखें धूँसी हुई, छाती झुकी हुई, गालों की हड्डियाँ बाहर निकली हुई, ताकत का नाम नहीं! देखा न उस दिन, देहल इनसे मजबूत थोड़े ही दीखता है ! मगर इनकी सिर्फी बोल गई, जब तड़ातड़ लगने लगे इन पर! चूँ तक नहीं किया ! ऐसे हैं तुम्हारे बदरी जी महाराज !

लाखो बदरी के बारे में इतना साफ बोल गई, जैसे वह उसके कितने निकट का व्यक्ति है ! मगर बदरी चुपचाप लाखों की बातें सुनता रहा, जैसे

‘ लाखो जो कुछ कह रही है, वह एक-एक अक्षर सच है ! प्रतिवाद करना तो बदरी जैसे जानता ही नहीं हो । अवश्य रंगा के लिए बदरी और लाखो एक समस्या बन गई । दोनों में बिलकुल साम्य नहीं, दोनों जैसे दो विरुद्ध सीमा पर हों ! रंगा सोचकर पा नहीं रहा था कि ऐसे अवसर पर उसे क्या कहना चाहिए ! मगर लाखो तो उसकी ओर देख रही है ! रंगा के लिए चुप रहना असह्य हो उठा, वह बोला-मगर बदरी भाई तो अब तुम्हारे हाथ में है ! लाखो !

-हाथ में हैं ! -लाखो बोली-कैसे न कहोगे हाथ में हैं । पूछो न अपने बदरी भाई से । मेरी कौन-सी बातें रहती हैं इनके पास ! ...अब भी छिपे-छिपे ठर्रा चलता है कर्ज लेकर । मैं मना करती हूँ, मनौती मानती हूँ, महाराज शपथ खाते हैं, कान पर हाथ रखते हैं, नफरत और तोबा करते हैं मगर कैदिन तक ? मुश्किल से तीन-चार दिन काट लेते हैं । सिर पर कर्ज चढ़ा रहता है, उसकी फिकर इन्हें क्यों हों, मुझे रखनी पड़ती है । हफ्ता मिला नहीं कि पैसे मोगलों की जेब में ! तुम्हीं कहो रंगा, ऐसे घर-गिरस्ती कैसे चल सकती है !

लाखो बोलकर कुछ क्षण तक रुकी रही । रंगा के सामने एक कठिन समस्या थी, जिसका वह समाधान पा नहीं रहा था और बदरी जैसे जड़ की तरह सिर झुकाये खाट पर पड़ा था । वातावरण गम्भीर, किसी ओर से कोई शब्द नहीं । मगर लाखो ने ही निस्तब्धता भंग की । वह फिर से बोली मैं चाहती तो देहल के पास खुशी से रह सकती थी; मगर बदरी के लिए मैंने अपनी इज्जत पर पानी फेर दिया । समझा कि आज नहीं तो कल बदरी आदमी बनेंगे । इनकी हालतों पर रहम हो आया ! ममता एक बुरी बला होती है, रंगा और उसी ममता ने मुझे आज कहीं का न रखा ! तुम भी समझते होगे कि लाखो कैसी है; मैं है चाहे न कहो, दिल तो कहता ही होगा । मगर जिस खयाल से मैंने इन्हें अपने हाथ में लेना चाहा और लिया भी, वह पूरा होने को नजर नहीं आता । मैं हताश हुई, दूसरा कोई उपाय मुझे सूझा नहीं ! मैंने समझा-तुम इन्हें संभाल सकते हो, और तुम पर मेरा विश्वास हो चला है; इसीलिए मैंने इन्हें कह रखा था तुम्हारी खोज के लिए । मालूम हुआ कि तुम बड़े साहब के घर गये हो । मैं तुम्हारे घर इन दिनों कई बार हो आई हूँ । मैंने लाली से भी कह रखा था तुम्हें एक बार मेरे यहाँ भेजे देने को । आज मुझे अजहद खुशी है कि मेरी पुकार तुमने सुन ली ! जिस लिए मैं तुम्हारी खोज

कर रही थी, वह अब तुम्हारे सामने है।

लाखो बोलकर चुप हो गई। रंगा ने देखा कि लाखो बिलकुल निर्विकार ढंग से बोल कर चुप हो रही है। उसने यह भी लक्ष्य किया कि उसकी आँखें आँसुओं से तर हैं और वह बड़ी मुश्किल से उन आँसुओं को संभाले हुए है! रंगा उसकी बातों पर कुछ क्षण तक विचार करता रहा। लाखो के प्रति रंगा के जो कुछ अपने भाव थे, वे आप-से-आप उसके मस्तिष्क से उतर गये। उसने लाखो पर दूसरी दृष्टि डाली और पाया कि आँसुओं में डूबी हुई जो लाखो उसके सामने बैठी है, वह कितनी ममतामयी, कितनी करुणामयी और कितनी भव्य है। रंगा का भीतर श्रद्धा से परिपूर्ण हो उठा और उसी रूप में वह लाखो की ओर निहारते हुए बोला-हताश होने की बात नहीं, लाखो। जरूर आज बदरी भाई रास्ते पर नहीं आ रहा है, दुख हो सकता है; मगर मुझे तो उम्मीद बंधती है कि जिस घर में तुम् जैसी स्त्री रहे, वहाँ बदरी वैसा नहीं रह सकता! जरूर बदरी ने अबतक तुम्हें नहीं समझा है, लाखो! मगर एक दिन बदरी समझेगा कि लाखो क्या है और उस दिन तुम देखोगी कि बदरी आप-से-आप आदमी बन गया है। बदरी को बनाने के लिए तुम्हारी ही जरूरत है, जरूर आज से मेरा भी इस ओर ध्यान रहेगा। मगर मैं ध्यान कहाँ तक रख सकता हूँ? जानती ही हो, मिल का काम कैसा होता है? यहाँ फुरसत ही कहाँ रहती है। और बातों को देखा जाय।

-मगर तुम्हें बदरी का भार तो उठाना ही होगा, रंगा!-लाखो सँभल कर बोल उठी-यहाँ और ऐसा कौन है, जिसे दूसरों की फिकर हो? सभी अपने-अपने को लेकर ही पड़े हुए हैं। एक तुम हो, जिसे मैं पाती हूँ कि वह आदमी है और वह दूसरे को भी आदमी बना सकता है।

रंगा गंभीर होकर कुछ क्षण तक चुप रहा, फिर बोल उठा- -खैर, मैं बदरी की खोज-खबर रखूँगा।

रंगा ने देखा कि बात करते-करते काफी वक्त निकल गये, वह उठा और लाखो की ओर देखते हुए बोल उठा-अब तो मुझे जाने की इजाजत दो, लाखो!

लाखो भी उठ खड़ी हुई। रंगा दरवाजे को ओर बढ़ा। लाखो भी उसे पहुँचाने को लालटेन लिये बाहर आई और रंगा ज्योंही बाहर होकर पैर आगे

बढ़ाना ही चाहता था कि लाखो बोली-क्या फिर से तुम्हें बुलाने की जरूरत तो न पड़ेगी, रंगा?

-नहीं-नहीं, मैं आया करूंगा, लाखो!-रंगा मुस्कराते हुआ बोला और अपनी राह पर चलता बना।

### (चालीस)

इधर लगातार कई दिनों तक रंगा अपने घर में चुपचाप पड़ा, अनेक डिजाइनों को सामने रख, उनका मूर्त रूप देने की साधना में व्यस्त है। मिल के मैनेजिंग डाइरेक्टर ने उसे ऐसा अवसर दे रखा है। रंगा उन डिजाइनों की लेकर अपने बंद कमरे में पड़ा-पड़ा सोचा करता है। वह चाहता है कि ऐसी कोई नई डिजाइने इजाद को जायें, जो बाजार में अभी तक आ नहीं पाई हैं। मैनेजिंग डाइरेक्टर ने कुछ डिजाइन विलायत के किसी बड़े आर्टिस्ट से ऊँची कीमत पर बनवाकर मँगवाई हैं। डाइरेक्टर ने रंगा में वह प्रतिभा देखी है, देखी है उन्होंने रंगा की बयन-कला-निपुणता और उन्हें विश्वास हो चला है कि रंगा इन डिजाइनों को साकार रूप दे सकता है, यदि इसे अवसर दिया जाय। और उसी अवसर को पकड़ने के लिए, बड़ी आशा और विश्वास के बल पर, रंगा अपनी साधना में लगा हुआ है।

रंगा का छोटा-सा घर एक प्रयोगात्मा बन रहा है। डिजाइनों को व्यवहार में लानेवाली छोटी-सी हैंड मशीनें अपने घर पर ला रखी हैं। रंगा अविश्रांत रूप से रात-दिन उन्हीं मशीनों के साथ अपना प्रयोग कर रहा है। उसकी चंचलता दूर हो गई है, वह बड़ी गंभीर मुद्रा में पड़े-पड़े नई डिजाइनों पर सोचा करता है। उसे न तो खाने-पीने की चिन्ता रह गई है और न घूमने-फिरने और गर्पें करने का प्रलोभन ही होता है। वह तो साधना में निमग्न है और निमग्न है इसलिए कि, वह अपने स्वप्नलोक को धराधाम पर उतारना चाहता है। उस स्वप्नलोक में वह पाता है कि वह एक बड़ा धनपति और एक बड़ा आर्टिस्ट बन गया है! अपने धन को वह अपने गाँव की जमीन पर खर्च करना चाहता है, जहाँ वह एक दिन निःस्व की जिंदगी बिता चुका

हूँ, जहाँ वह अनुभव कर सका है कि धन ही सब कुछ है, जहाँ उसने देखा है कि रूपए के अभाव में गाँववाले किस कदर आदमी से पशु बन गये हैं और अब भी वह महसूस कर रहा है कि मजदूरों की दुनिया अर्थाभाव और अपव्यय के कारण कितना नरक हो उठी है।

रंगा नरक को स्वर्ग में परिणत करना चाहता है, रंगा का यही स्वप्न है, रंगा की यही उच्चाकांक्षा है !

और रंगा को आज वह अवसर प्राप्त है, वह अपने अवसर के सदुपयोग में लीन है, वह अपनी साधना में निमग्न है।

और रंगा का अविश्वास परिश्रम, अवाधि निमग्नता और अटल विश्वास उसके चर्म-चक्षुओं को आवृत्त कर, उसकी अन्तर्दृष्टि को इतनी पैनी, इतनी तीक्ष्ण बना रहा है कि वह अपने धागों के खेल को ही अपना सुखमय संसार माने बैठा है। वह नहीं जानता कि दीवार के उस पार कहाँ क्या हो रहा है। जानना चाहता कि उसकी आदरणीया भाभी कहाँ बैठी हुई और वह नहीं क्या सोच रही है। वह नहीं जानना चाहता कि सकुन्ती और लाखो भी उसके क्षितिज पर धूमकेतु-जैसी उदित हो गई हैं। आज वह सब कुछ भूले है, यहाँ तक कि वह अपने-आपको भी भूलकर अपनी अकांक्षा को सफल करने के लिए बेचैन-विह्वल हो पड़ा हैं।

मगर लाली इन दिनों काफी परेशान है, उसकी परेशानी इसलिए और ज्यादा बढ़ गई है कि वह रंगा से बातें कर नहीं पाती। उसे होता है, जैसे रंगा अपना कोप प्रकट करने के लिए ही इस तरह की साधना का स्वांग लिये चुपचाप पड़ा रहता है। लाली को होता है, जैसे उसने रंगा के साथ कितना बड़ा अपराध किया है! उसे स्मरण हो पाता है कि वह सकुन्ती को लेकर रंगा से कई बार झगड़ चुकी है। सकुन्ती को वह जहाँ तक जान सकी है, जानती है कि उसके संसर्ग में आनेवाला पुरुष अछूता बच नहीं पाता! सकुन्ती का रूप सुग-मरीचिका है। जो अपनी प्यास जतलाने के लिए आया उसके पास, वह चक्कर काटा किया, वह मरीचिका उसे जान लेकर ही छोड़ने वाली! ऐसी मोहिनी सकुन्ती की दृष्टि रंगा पर पड़ चुकी है, रंगा ने उसके घर जाकर उसका आतिथ्य ग्रहण किया है, रंगा ने उसकी प्रेम चर्चा सुनी है, रंगा उसके

रूप-विभ्रम में पड़ चुका है। लाली के लिए यह असह्य है। लाली यह नहीं चाहती कि उसके रंग पर शनि की दृष्टि पड़े। लाली यह कभी बर्दास्त नहीं कर सकती कि रंग के यौवन-सुलभ मन की चंचलता को लेकर कोई खिलवाड़ करे। वह जानती है कि जवानी एक नशा है, एक बड़ी पिछलन है। एक बार पाँव पिछला कि खंदक में जा गिरा। वहाँ से अपनेको संभालना और सँभल कर उठना शायद थोड़े से भाग्यवानों के लिए ही संभव हो सकता है, सब के लिए नहीं।

लाली चुपचाप अकेली इसी तरह से बैठी-बैठी सोचा करती है ! रंग ने मना कर दिया है कि जबतक उसका काम सफल नहीं हो जाता, जब तक वह सफल होकर काम पर नहीं चला जाता, तब तक कोई उसके घर आ नहीं सकता, तब तक उसे सब तरह को शान्ति चाहिए ही। हाँ, उसने अब भी भाभी को इतनी इजाजत जरूर दे रखी है कि वह अपने आपमें स्वतन्त्र है।

अपने घर-गृहस्थी के कामों से फुरसत पाते ही वह, अगर चाहे तो, अपने पड़ोसियों के घरों में धूम-फिर सकती है! मगर मानिनी भाभी उसकी दी हुई स्वतन्त्रता का उपयोग करना नहीं चाहती। वह भी जैसे एकान्त साधना में ही निमग्न है; वह भी चुपचाप, बिना कुछ एक शब्द किये, निर्विकार भाव से बैठी रहती है। कितना कठिन मान है भाभी का!

मगर उसकी संलग्नता में एक दिन व्याघात पड़ा! संध्या का समय था, काफी झुटपुटा हो चुका था, पड़ोस के घरों में बत्तियाँ जल चुकी थीं, चारों ओर कोयले के धुओं से वातावरण और भी धूमिल हो चुका था। उसी समय बाहर के दरवाजे को किसीने खटखटाया। लाली चौकी और खटखटाहट फिर से न हो, वह लपकी आई दरवाजे के पास और बोलो-कौन है? खोलकर देख लो न !

-भूत नहीं, आदमी हूँ,

लाली को वह आवाज अपरिचित-सी जान पड़ी। उसने दरवाजा खोल दिया। उसने देखा कि एक अपरिचित स्त्री उसकी ओर निहार रही है! लाली कुछ क्षण तक उधेड़बुन में पड़ी रही कि उससे क्या कहे वह....पर वह आगंतुका स्वयं मुस्कराते हुए बोल उठी-आँख फॉड़कर क्या देख रही हो लाली, पहचान रही हो मुझे? रंग की बहू लाली!

-रंगा की बहू लाली ! -लाली की भवें जरा खिंच पाई। कौन है यह  
अभद्र नारी-लाली का अंतःकरण बोला उठा; पर उसने अपने को संयत किया  
और खिंची हुई बोली-हाँ, मैं ही हूँ लाली! आप 'उनसे' मिलना चाहती हैं?

-हाँ, चाहती तो यही हूँ। -

-मगर उनसे मुलाकात हो न सकेगी।

-क्यों, आये नहीं हैं?

-नहीं। आगंतुका आप-ही-आप हँस पड़ी। उसका हँसना लाली को  
अच्छा नहीं लगा। लाली जरा विमन होकर बोल उठी- क्या काम था उनसे।  
अगर मुझे मालूम हो तो मैं उनसे कह दूँ। मगर आप का नाम.....

-खैर, उसकी जरूरत नहीं है; जब वह खुद नहीं हैं, तब जाने ही दो  
उस बात को! व्यर्थ मेरे आने की बात उनसे तुम क्यों कहो!

आगंतुक बोलकर मुस्कराई, फिर कुछ क्षण तक रुककर बोली-आओ  
बैठो, मैं अब तुम्हें धेरे न रहूँगी, चलती हूँ ! बातें तो बहुत थीं, तुमसे भी बातें  
करती, मगर आज नही.....

-क्यों-क्यों, चलिए न उस पेड़ के नीचे, वहाँ-वहाँ.....बाहर काफी  
ठंडी हवा बह रही है।

-क्यों तुम्हारे घर घुसने से जमीन छूत जाती? क्या वहाँ हवा नहीं  
आ रही?

-आप बुरा मान गई! हाँ, कसूर हुआ मुझसे, आपको कहा नहीं  
बैठने को! माफी चाहती हूँ ! मगर आप अपना नाम तो बतलातीं नहीं?

-नाम? -आगंतुका रुकी और हँसकर बोली--नाम जानने के लिए  
देखती हूँ, विकल हो रही हो। क्या बात है? क्या खूबसूरत स्त्रियों को देखकर  
तुम्हें भय तो नहीं होता? स्त्री स्त्रियों से डरा करे - यह अनोखी बात तो आज  
ही देखने को मिल रही है !

लाली आगंतुका की बातों से मर्माहत-सी हो उठी। वह क्या कहे  
आगंतुका से, जिससे उसकी जान-पहचान तक नहीं है? लाली कुछ क्षण सिर  
झुकाये पड़ी रही! उसके बाद वह अपने में साहस बटोरकर बोल उठी बात तो  
ऐसी नहीं है। फिर भी ऐसी ही हो, तो कुछ अचरज की नहीं कही जा सकती!  
मगर मैंने आपसे मांफी माँगी है, और आपसे उसकी मुझे पूरी उम्मीद है !

“हाँ, आप मुझसे बात करना चाहती थीं न! मगर इस तरह खड़े-खड़े बातें करना क्या ठीक होगा ! जहाँ इच्छा हो, चलिए आँगन में ही सही.....

-रहने दो आँगन, मैं ज्यादा रुक़ूंगी भी नहीं। चलो पेड़ के नीचे ही। और आगंतुका आगे बढ़ी। लाली ने भी उसका अनुसरण किया। पर जी का हृदय धकधक कर रहा था। दोनों पेड़ की छाया में जा बैठी।

आगंतुका बोली-मैंने रंगलाल से वादा किया था कि एक दिन तुम्हारे यहाँ आऊँगी ! उसने खुद मेरे यहाँ आने की बात कही थी, इसलिए मैं उसका इन्तजार भी करती रही; मगर वह नहीं आया। लाचार होकर, अपने वादे को पूरा करने के लिए मैंने ही तुम्हारे यहाँ आना उचित समझा। मगर उससे भेंट न हुई.....

-मगर आप तो मुझसे भी कुछ कहना चाहती थीं न ? - लाली ने प्रश्न किया।

-हाँ, तुमसे भी बात करना चाहती थी, लाली! - आगंतुका बोलकर कुछ क्षण के लिए रुकी रही, फिर आप-ही-आप बोली-रंगलाल पर, सुनती हूँ तुम बहुत नाराज हो और इसलिए हो कि उसने एक दिन मेरे घर मेहमानदारी की थी; वह भी अपने मन से नहीं, मेरे बहुत अनुरोध करने पर !

लाली सुनकर स्तंभित हो उठी। उसे तभी याद हो पाया कि रंगा ने एक दिन कहा था, जब वह शहर से लोटा आ रहा था, एक औरत के घर मेहमानदारी की है और वह है-सकुन्ती !

और सकुन्ती का नाम याद आते ही लाली का चेहरा तमतमा उठा, उसकी साँस साधारण गति से तीव्र हो उठी और वह रोष में आकर बोल उठी-हाँ, अब मुझे पता चला कि आप कौन हैं! इतना घुमा-फिराकर नाम बतलाना, ब्रेशक आप-जैसी औरतें ही जानती हैं! ओह, जाना.....सकुन्ती हैं आप ?

-हाँ, मैं सकुन्ती हूँ और वह सकुन्ती, जिसके बारे में तुम काफी जान चुकी हो!

-मैं ही क्यों, दुनिया जानती है कि सकुन्ती क्या है।

-क्या है सकुन्ती, जरा सुनू भी ?-सकुन्ती खिलखिलाकर हँस पड़ी ।

सकुन्ती का खिलखिलाकर हँसना बारूद पर आग का काम कर गया । लाली की स्त्रियोचित इष्ट्याग्नि भड़क उठी और वह उसके पास से उठकर खड़ी होते हुए बोली-जाने कितने मर्दों से यारी की; मगर प्यास न बुझी ।

अब चली हैं नये शिकार की खोज में! बेहर्याई की भी हद होती है । औरतों में शर्म न रही, तो वे औरतें कैसी? पशु भी ऐसे नहीं होते!

लाली इतनी रोष में आ गई थी कि उससे और अधिक बोला न गया । उसको साँस इतनी तेज चल रही थी, लगता था कि जैसे साँप फुफकार मार रहा है ! मगर सकुन्ती शांत बैठी थी, जैसे वह जड़ हो रही हो ! लाली चुप रही जरूर; मगर उसका रोष थमा नहीं, वह फिर से उबल पड़ा और उसके मँह से निकल पड़ी-मैं कहे रखती हूँ, भल कर मेरे यहाँ शिकार की खोज में न निकलना ! कहीं दूसरे दिन तुम्हें फिर से यहाँ देखा, तो खैर नहीं ! जान दे दूँगी चाहे जान ले लूँगी, दो में एक ही हो सकता है; चाहे तुम जीती रहो, चाहे मैं जीती रहूँ !

लाली रोष के उफान में वहाँ एक पल के लिए भी ठहर न सकी, वह बड़ी तेजी के साथ अपने डेरे की ओर लौट चली ।

सकुन्ती स्थिर और अपलक दृष्टि से लाली की ओर देखती रही और लाली ने जब अपने आँगन में पहुँच दरवाजा बंद कर लिया, तब वह अपनी जगह से उठी और अपने पथ पर चल पड़ी ।

लाली अपने आँगन में पहुँचकर भी अबतक शांत न हो सकी, वह काफी हाँफ रही थी, उसका रोष अब भी उबल रहा था, उसकी आँखें आग उगल रही थी, वह देख भी नहीं रही थी कि कहाँ क्या हो रहा है ! मगर यह क्या? रंगा भीतरी दरवाजे के पल्ले धड़ाम से खोल, लाली की ओर क्यों लपक पड़ा । लाली ने रंगा को देखा, उसे देखते ही जैसे वह सन्न हो रही । उसे लगा, रंगा जान गया है और जान गया है यह कि सकुन्ती के साथ लाली ने असभ्य व्यवहार किया है, उसने जली-कटी सुनाई है ! लाली को काटो तो खून नहीं । उसे लगा कि जैसे उसके पैर की जमीन हिल रही है, जैसे आकाश

के तारे उसकी ओर आँखें फॉइंकर व्यंग की हँसी हँस रहे हैं ! मगर भगवान को धन्यवाद ! लाली को उस अवस्था में अधिक क्षण तक रहना न पड़ा । रंगा खुश था-इतना खुश कि वह झपटकर भाभी के गले में अपनी बाँहें डाल आनंद में अभिभूत होकर बोल उठा-साधना सफल हुई भाभी, -सफल हुई ! भाग्य-देवता प्रसन्न हुए । ले लिया-ले लिया भाभी !

लाली रंगा की टुट्टी डुलाते हुए बड़े आनंद और आदर से बोली सचमुच ! क्या सचमुच, मेरे रंगलाल !

-सचमुच ! क्या अब भी संदेह हो सकता है भाभी ! क्या कह रही हो ?

-भगवान सबकी सुनते हैं, रंगलाल ! क्या तुम्हें उनपर विश्वास नहीं है ?

-विश्वास ? पहले न था भाभी ! मगर मैं अब पाता हूँ कि जरूर भगवान हैं ! नहीं तो नहीं तो- -क्या तुम्हें विश्वास है, मुझ सा आदमी ऐसा काम और इतनी जल्दी कर सकता है ?

-उनपर तो विश्वास करना ही चाहिए, रंगलाल !

रंगा इतना उत्कुल्ल था कि वह अपने सुसमाचार को लेकर उसी समय मैनेजिंग डाइरेक्टर के बंगले पर जाने को तैयार हो उठा और अपनी भाभी से वहाँ जाने का समाचार कह सुनाया । लाली क्या कहे ? कैसे वह बहते हुए प्रवाह को रोके ! फिर भी रात का विचार कर वह बोली-खूब तड़के उठकर जाओ न, रंगलाल !

-तड़के ! -रंगा हँस पड़ा-पगली भाभी ! ऐसा भी हो सकता है, मैं जाऊँगा और अभी जाऊँगा ।

और रंगा ने मिल की दी गई साइकिल उठाई और बाहर की ओर तीव्र गति से चल पड़ा ।

(इकतालीस)

उस दिन सकुन्ती लाली से चोट खाकर लौट तो आई; पर वह अपने को स्थिर न कर सकी । रह-रहकर लाली के वे शब्द चिकूँटी की तरह उसके

सीने में चुभ रहे थे। शायद सकुन्ती के जीवन में यह पहला अवसर था कि उसके मैंह पर कोई उसके आचरण के संबंध में ऐसी साफ बातें कह सके। और तभी तो सकुन्ती और भी लाली को लेकर परेशान थी। आखिर लाली किस तरह की नारी है, कितना उसमें तेज है, कितनी उसमें उफान है रंगा के लिए और अपने रंगा को किस तरह वह अपने सिकंजे में कसे चाहती है-सकुन्ती इन्हीं बातों को लेकर सोचती और घंटों सोचती। मगर सकुन्ती यों खुलनेवाली स्त्री नहीं, भले ही उसके नाम के साथ ऐसा कलंक है, जिसे वह अपने से दूर नहीं कर सकती और न करना चाहती है सकुन्ती जानती है कि वह कलंक कुछ मिथ्या नहीं है और न कुछ ऐसा है, भूल से या अनजान में लग गया है! जो जान-बूझकर किया गया है, जिसके करने में उसकी आत्मा ने उसका साथ दिया है, उसे वह क्यों कर बुरा कहे क्यों उसे अपने से दूर करने के लिए वह विष्वल-बैचैन बनी रहे! इसीलिए तो सकुन्ती इस मामले में निदृंद्ध है! गुप्त या प्रकट बोलनेवाले बोल ही जाते हैं य मगर सकुन्ती उस पर ध्यान भी नहीं देना चाहती। मगर लाली..... लाली ने उसके मुंह पर उसके संबंध में जो कुछ उसे सुना पाया, सकुन्ती के लिए वही एक गाँठ हो रही है और वह उसी गाँठ को सामने रखकर सोच रही है-क्या लाली का कहना सच है ?

और इधर लाली भी सकुन्ती को भुला नहीं पाती है! रंगा आज अपनी शोध में सफल हुआ है, संभवतः रंगा के जीवन का ही नया परिच्छेद प्रारंभ होने जा रहा है, इससे लाली में उत्फुल्लता का आना कोई आचर्यजनक न था। मगर इतनी उत्फुल्लता को साथ लेकर भी लाली जहाँ अपने रंगीन स्वप्नों को साकार रूप में परिणत करने को लगी है, वहाँ सकुन्ती की आकृति भी उसकी आँखों के सामने झूलती रहे; पर सभी बातें क्या चाहने से ही पूरी हो जाती हैं! और इस अवस्था में लाली का रोष तीव्र से तीव्रतर हो उठता है। वह अपनेको संभाल नहीं सकती और उसे भुलाने को वह उठकर अपने आँगन में टहलने लगती है ! लाली कोशिश करती है कि उसके दिमाग से सकुन्ती का नामो निशान पुछ जाय; पर जितना ही वह चाहती है कि वह

अलग हो, उतना ही वह नाम और भी साकार हो उठता है ! खाली ऐसी अवस्था में झुंझला उठती है और जब उसकी झुंझलाहट उसकी सीमा से बाहर होने को होती है, लाली फूट-फूट कर रो पड़ती है और रोते-रोते ही वह अपनी कुलदेवी माँ जगदंबा से प्रार्थना करती है कि वह उसे सकुन्ती डाइन से बचाये और रंगा पर फिर से कभी उसकी छाया न पड़े ।

और लाली इतने से ही संतुष्ट न हो सकी । उसने अपनी आराध्या देवी के सामने मनौती मानी है कि उसका रंगा उसका होकर ही रहे, सकुन्ती का जादू उसपर असर न डाल सके ।

इतना उपचार करने पर लाली का जी कुछ शान्त हो सका है; पर वह बहुत उद्धिग्न होकर प्रतीक्षा कर रही है रंगा के लौट आने की । वह चाहती है कि रंगा जितना जल्द हो, लौट आये । आखिर उसने जो बहुत-कुछ कहने को सोच रखा है, उसे कहे बगैर कैसे वह शान्त रह सकती है !

मगर अधिक-से-अधिक प्रतीक्षा किये जाने पर भी जब रंगा उस रात वापस न आ सका, तब लाली ने मन मारकर, दरवाजे को बन्द किया और स्विच दबाकर वह सो रही । सोने के समय भी उसके मस्तिष्क से सकुन्ती की छाया दूर न हो सकी; पर अधिक रात हो जाने के कारण बरबस नींद ने उसे सहारा दिया और वह अचेत होकर सो रही ।

दूसरे दिन, तड़के लाली बिछावन से उठ बैठी और नित्य-नैतिक कामों में लग गई ! सबेरे, अन्य दिन की तरह, महल्ले की बहुत-सी स्त्रियाँ और बच्चे घूमने-फिरने को लाली के यहाँ आये । लाली अपने घर के कामों में लगी रही और आने वालों के साथ घुलमिलकर बातें भी करती चली । लाली ने प्रसंग में आकर, रंगा की सफलता की बात भी कह सुनाई और यह भी कहा कि अब से, भगवान की कृपा हुई तो, काम में उसे तरक्की भी मिलेगी ! इन बातों को सुनकर, पता नहीं, उन स्त्रियों को खुशी हुई या रंज; पर इतना जरूर हुआ कि उन स्त्रियों के सामने लाली बहुत ऊँची उठ गई । और, भीतर चाहे जो हो, बाहर से उन स्त्रियों ने लाली के सौभाग्य की बड़ी प्रशंसा की ।

मगर ज्यों-ज्यों दिन बढ़ता गया, लाली की बेचैनी भी बढ़ती गई। रंगा कहाँ है? रात को गये-गये अबतक वह आया क्यों नहीं? इतनी कौन-सी बातें हैं, जिनके सुनाने में उसे इतने लम्बे वक्त लग सकते हैं! कहीं सकुन्ती ने अपनी माया तो नहीं फैलाई? आखिर सकुन्ती क्यों रंगा के पीछे पड़ी हुई है। आखिर वह चाहती क्या है। ये ही प्रश्न बार-बार लाली के मनमें उठते और अपनी शक्ति भर लाली इन प्रश्नों का उत्तर अपने आपसे ढूढ़ निकालती! मगर इस तरह से उसके सामने की उलझनें और भी सख्त हो उठती। लाली ऐसी अवस्था में पहुँचकर आखिर क्या करे! देखते-देखते ही आठ-नौ-दस सभी बज गये। मजदूर मिल की ओर भागे; पर रंगा का अबतक भी पता नहीं! लाली ने नहा-धोकर रसोई बनाई; मगर खानेवाले हो जब न! आखिर, बारह बजे तक लाली आसरा देखती रही; फिर भी रंगा के आने की आहट उसे न लगी! अब वह क्या करे? रंगा क्यों नहीं समझ रहा है कि उसकी भाभी लाली को उसकी अनुपस्थिति से कितनी बेकली है! क्या रंगा नहीं जानता कि उसकी भाभी उसे न पाकर कितनी उद्धिग्न हो उठती है। लाली स्वभावतः ऐसी बातें सोचकर मान कर बैठी, और जिस हालत में वह बैठी हुई थी, वहाँ से वह बड़बड़ाती हुई उठी और बाहर के दरवाजे को बन्द करती हुई, बिना अन्न-जल ग्रहण किये ही जमीन पर आकर लेट रही। लाली अधिक गुस्से में आकर इतना ही करती पा रही है। इससे अधिक वह और कुछ कर भी क्या सकती है!

मगर भूखी हुई लाली को नींद आये तो कहाँ से! बड़ी मुश्किल से, करवटें बदलते रहने के बाद एक-दो बार पलकें लगी जरूर; मगर जब-जब लगी, तब-तब वह जरा-सी भी आहट पाकर चौंक उठी! उसे लगता कि जैसे रंगा हँसता हुआ कह रहा है-आ गया भाभी-मैं आ गया! मगर रंगा है कहाँ? और ऐसी हालत में लाली और भी झुँझलाकर, और भी अधिक जोर से आँखें मींच कर, सोने का उपक्रम करती!

और आखिर, एक बार बाहर दरवाजे खटखटाने के शब्द लाली के कानों पड़े! इस बार वह हड़बड़ाकर उठ बैठी और अपने मान को भूलकर, फुर्ती से दरवाजा खोलकर देखा कि खटखटाने वाली लाखो हैं और वह लाखो

उसके सामने मुस्कराकर कह रही है क्यों, दीदी, इतनी आँखें फाँड़कर मेरी तरफ क्यों देख रही हो? लाली जैसे आसमान से गिरी; मगर तुरत उसने अपने को सँभाला और बलजोरी अपने ओठों पर मुस्कराहट लिये बोल उठी - फाँड़कर क्यों नहीं देखूँगी, लाखो बहन ! तुम जो इत्ते दिनों पर आओगी, इसका कभी गुमान तक न था मुझे! आओ, भीतर चलो ।

लाखो भीतर आई । लाली भीतर से दरवाजा बन्द कर उसे अपने साथ लिवा लाई ! दोनों बरामदे पर की डाली हुई चटाई पर बैठ गई । लाखो लाली से उम्र और अकल में काफी आगे है । इसीलिए लाखो ने जब पाया कि लाली का चेहरा ज्यादा गिरा हुआ है, तब उसे लगा कि जरूर लाली और रंगा में कुछ कहा-सुनी हो गई है, या इसी तरह की और कोई बात जरूर हुई है । इसलिए उससे पूछे विना न रहा गया और उसने हँसते-हँसते पूछ डाला-सच-सच कहो, लाली, इतना चेहरा क्यों गिरा हुआ है? क्या अपने प्रभुजी से झगड़ा तो नहीं ठान बैठी हो । क्या बात है? जरा कहो भी तो ।

लाखों की बातें सुनकर लाली भीतर-ही-भीतर चौंक उठी; पर तुरन्त अपने को सावधान किया और मुस्कराते हुई उसने कहा-क्या खूब अटकल भिड़ाई, लाखो बहन ! झगड़ा ठान बैठूँ और उनसे?

और लाली ठहाके मारकर हँस पड़ी! लाखो ने भी उसकी हँसी में अपना थोड़ा-सा योग दिया; पर लाखो यों पिंड छोड़ने वाली न थी, बोली-चाहे जो कहो, हँसो या बातें बनाओ, लाली, मगर यह कभी झूठ नहीं हो सकता कि तुम नाराज नहीं हो! आखिर, तुम्हारी सूरत गवाही दे रही है, क्यों यह भी झूठ है ? कहो तो.....

- सारी बातें झूठ हैं और न सच! - लाली जरा मानिनो के रूप में बोली-बात यह है कि कल रात के निकले हुए हजरत अबतक नहीं आये हैं। पता नहीं, रात कहाँ रहे और अबतक क्या कर रहे हैं !

-तो क्या इन दिनों मिल नहीं जाते हैं ?

-मिल जाते क्यों नहीं; मगर रात को तो बड़े साहब से मिलने गये थे। क्या कर रहे हैं, मुझे कुछ पता नहीं ! तब से जाने कहाँ - सुना है, लाली

बहन, रंगा भाई कुछ नई चीज दिमाग से निकालने में लगे हैं। क्या ठीक है? क्या इसी बाबत में तो नहीं गये थे बड़े साहब के पास!

- हाँ, तभी तो वह गये हैं! -लाली ने अपनी गर्दन को ऊपर की ओर उठाते हुए कहा-यों बड़े साहब से मिलना थोड़े ही हँसी-खेल की बात है! जिस काम में लगे हुए थे, वह पूरा हो गया है और पूरा होते ही वह चल पड़े हैं। पता नहीं, क्या हो?

- होगा क्या? - लाखो खुश होकर बोल उठी-रंगा भाई, सच पूछो, तो ऐसे विरले ही मिलते हैं ! मैं तो उनकी बातों से बेहद खुश होती हूँ। कितना सूधा, कितना सरल आदमी है। बड़े भाग से ऐसे आदमी मिलते हैं, लाली! यों जो कहो, तुम तकदीर की बहुत बड़ी हो, बहन! जब्ती तो ऐसे तुम्हारे देवता मिले। ऐसे क्या सभी के नसीब होते हैं?

लाखो बोलकर चुप हो गई और चुप होते ही उसके मँह से एक सर्द आह निकल गई ! लाली को यद्यपि लाखो की बातों से गर्व होना चाहिए था, तथापि उसकी हरकतों से ऐसा कुछ दीख न पड़ा। फिर भी इतना जरूर लाखो ने अंदाज लगाया कि लाली इन बातों से खुश ही हुई, कुछ नाखुश नहीं! मगर बात यह नहीं थी। लाली तो भीतर-ही-भीतर काँप रही थी कि रंगा को अपना बनाने के योग्य उसके भाग्य हैं कहाँ? और इसीलिए लाली ने भी अपने मँह को दूसरी ओर बड़ी सतर्कता से धुमा लिया था, ताकि लाखो उसके मँह से कढ़ी हुई आह को महसूस न कर सके! और इसे छिपाने में सचमुच ही वह कामयाब भी हुई।

कुछ क्षणों तक दोनों चुप ही रहीं। जाने दोनों अपने-अपने तरीके से क्या सोच रही थीं। इसी बीच में लाखो बोल उठी-तब तो रंगा भाई अबसे उमदा क्वार्टर में चले जायेंगे, लाली बहन! फिर तो तुमसे भी मिलना हम-जैसे लोगों के लिए मुहाल हो जायगा!

-मुहाल तो तुम यों ही हो, लाखो दीदी! इत्ते दिनों पर ही तुम कब आई हो यहाँ ? यों चाहे जो कह लो, चाहे वह दूसरी जगह जा बसें, मगर मैं तो चाहूँगी कि तुमसे मेरी भेट होती रहे! पहले तो मैं यहाँ से उन्हें दूसरी जगह जाने ही न दूँगी। यहाँ जैसा भी है, एक समाज तो बस गया है, दूसरी जग

नये सिरे से दुनिया बसानी पड़ेगी । कौन कैसा निकले, इसका क्या ठिकाना ! मर्दों की आँखें.....

लाली की बातें खत्म भी न होने पाई थीं कि लाखों ठहाका मारकर हँस पड़ी, और हँसते-हँसते ही बोली- -क्या मर्दों की आँखों से तुम्हें भी भय लगता है, लाली !

-आखिर किसको नहीं लगता !-लाली के गालों पर तेजी से लालिमा दौड़ गई, बोली-मगर मेरे कहने का मतलब यह नहीं था । मैं तो कहना चाहती थी कि कहीं उन्हीं की नजर किसी खूबसूरत.....

लाखों गंभीर हुई और गंभीरता लिये हुए ही बोली-इतना बड़ा जुर्म तुम्हें उनपर न लाना चाहिए लाली ! तुम उनकी व्याहता होकर उन्हें न पहचान सकी-तुम्हारी अक्ल पर मुझे तरस आता है ! मुझे यों तो रंगा भाई के बीच बहुत कम आने का मौका लगा है; मगर मैं जोर देकर कह सकती हूँ कि उनकी आँखें ऐसी बेहया नहीं हैं ! न सभी मर्द एक-जैसे होते हैं और न सभी औरतें एक-जैसी होती हैं । अच्छा और बेजा हर जगह रहेगा और हर जगह अपनी अच्छाई और बुराई के लिए उसका आदर और मलामत होती आई है और होगी ।

लाली लाखों की बातों से खम खा गई । उसे इस बात का ख्याल तक न था कि लाखों-जैसी औरतों की रंगा के प्रति इतनी इज्जत होगी ! वह लाखों को जानती है और यह भी जानती है कि लाखों के दामन में भी दाग लगे हुए हैं, वह सिर ऊँचा उठा कर बाते नहीं कर सकती; मगर ऐसी लाखों के हृदय में भी रंगा के प्रति एक मीठा स्नेह है, जिस रंगा के लिए लाली के हृदय में कुछ शंका घर कर गई है ! लाली चाहती थी कि वह लाखों से सकुन्ती की बातें सुने और उसे कुछ इस संबंध में अपनी भी सुनाए; मगर वह किन जुबान से सकुन्ती की चर्चा उसके सामने करे ! वह तो खुद लाखों के सामने गुनहगार के रूप में बैठी पड़ी है ! उसे तो खुद भय लग रहा है कि कहीं लाखों उसके बारे में यह जान न ले कि असल क्या है-लाली कौन है और रंगा कौन ? क्या लाली रंगा की व्याहता है ? लाली की आकृति आप-से-आप

धूमिल पड़ गई; मगर लाखों खुद अपनी बात से दुखी हो रही थी, और उसने जब पाया कि लाली अपने-आपमें उसकी बातों से खिन्च हो पड़ी, तब वह अपने को संभालते हुए और मुस्कराहट को लेकर बोल उठी-तुम्हारा डरना कोई बेजा नहीं है, लाली बहन ! इत्ती-सी बात के लिए तुम दुख मान गई ! क्या दुख मान गई, बहन !

-नहीं तो, लाखो बहन !

और दोनों की दृष्टि इतने ही क्षण में एक दूसरे पर जा लगी और लगते ही दोनों खिलखिलाकर हँस पड़ीं।

लाखो ने देखा कि लाली ने अबतक खाना भी नहीं खाया है और शायद रंगा के आने के पहले वह खाना खायगी भी नहीं। इसलिए उसने चाहा कि इसे धूमने के लिए अपने साथ, अपने घर पर लिवा ले जाना चाहिए, जहाँ इसे खिलाया भी जाय और इसका दिल भी बहले। ऐसा सोचकर उसने लाली के सामने अपना प्रस्ताव रखा और वह उठकर खड़ी हुई। लाचार होकर लाली को भी उठना ही पड़ा।

### (वयालीस)

लाखो लाली को अपनेघर लिवा ले आई, सो उसने अच्छा ही किया। उसने इतनी चतुराई से लाली के मन को बहलाते हुए उसे इस तरह आवभगत में उलझाकर खिलाया-पिलाया कि उसे यह भी खयाल न रहा कि वह कहाँ है और रंगा कहाँ! वास्तव में लाखो ऐसी चतुर भी थी और लाली के साथ उसे इन दिनों कुछ अधिक घनिष्ठता भी बढ़ चली थी। फिर भी लाली को जहाँ तक बन्द रहना चाहिए था, सदा वह उतना उससे बन्द ही रही। फिर भी उन दोनों के मिलने-जुलने में कभी कोर-कसर न आई।

उस दिन बात-ही-बात में शाम हो आई; पर लाली को इसका जरा भी पता न चला। लाखो उसे अपने साथ लिवा लाई थी, इसलिए उसने भी कहना उचित नहीं समझा और लाली के साथ जिस तरह वह बातों में लगी थी, उसी तरह लगी रही; पर वह अधिक समय तक लगी न रह सकी।

हो गया था, मिल में काम करनेवाले अब आने ही वाले थे और आने वाले के लिए कुछ नाश्ता-पानी का इंतजाम भी उसे कर छोड़ना था। लाखो ऐसा कुछ सोच ही रही थी कि बदरी अपने साथियों के साथ आ पहुँचा और ज्योंही उसने अपने आँगन में पाँव रखा, त्योंही उसकी दृष्टि लाली पर गई और लाली ने उसे देखते ही अपने सिर पर की रखी साड़ी को आगे की ओर खींचते हुए लाखो से कहा-अब तो मुझे जाने की इजाजत दो, दीदी! और वह उठ खड़ी हुई। बदरी अपनी जगह पर ज्यों-का-त्यों खड़ा ही रह गया। लाखो ने उसकी ओर देखते हुए कहा-क्यों लजाकर इस तरह खड़े हो, आओ न! सोच रहे हो कि यह कौन है? क्या इसे नहीं पहचानते?

बदरी ने लाली को इसके पहले नहीं देखा था, इसलिए वह बोल उठा-इन्हें कभी तो देखा नहीं; मगर ये तो उठी जा रही हैं!

-देखोगे कैसे ! आज तो बड़ी मुश्किल से इन्हें पकड़ लाई हूँ। यह हैं रंगा की घरवाली।

-रंगा की घरवाली ! -बदरी बोला-जभी तो-जभी तो! मगर लाखो, सुना है कि रंगा की चारों ओर इन दिनों काफी इज्जत हो रही है। हमी लोगों के बीच रहनेवाला रंगा इतना जल्दी तरक्की पा जायगा - कभी खयाल भी न किया था। आज तो मैनेजर साहब बोल रहे थे कि अबसे रंगा की तनखाह दो सौ महीने की हो जायगी! और सुना है कि तीन हजार रुपए उसे इनाम में मिले हैं मिल की तरफ से, और रहने के लिए बाबू-कालिनी का बंगला! खैर, हमलोगों के लिए इससे बढ़कर और क्या खुशी की बात हो सकती है। लाली ने बदरी के मँह से इन बातों को सुना, उसके पाँव ज्यों-के-त्यों वहीं बँध गये। उससे न एक कदम आगे बढ़ा गया और एक कदम पीछे ! लाखो लाली के सौभाग्य की सूचना पाकर खिल उठी और उसी खुशी में बोल उठी-आज लाली बहन की खुशी को देखकर जी चाहता है कि इनकी लौंडी बनकर रहूँ; मगर ऐसे मेरे भाग्य कहाँ ? रंगा ने इन्हीं कुछ दिनों में जो तरक्की की, वह तो उसके लिए उचित ही था। एक तुम हो, जिसे अपनी मौज से ही पुर्सत नहीं! रात-दिन हाय-हाय करके काम किये जाओ; मगर पैसों के दरसन दुरलभ। ऊपर से करज का भार अलग! फिर क्योंकर रंगा की बराबरी में आओ!

लाखो बदरी पर मन-ही-मन झुँझला उठी; मगर उसके दिल में बदरी के प्रति कम दर्द न था। वह फिर से बोली-अगर अब भी कुछ सबक सीख सको, तो समझूँगी कि रात का भटका सुबह को मिल गया! जरूर रंगा से कह-सुनकर तुम्हारी तरकी हो सकती है! रंगा से ऐसा करना कोई कठिन नहीं। वह तुम्हें दिल से मानता है। अगर उसके सामने तुम दिल खोलकर काम में लग जागो और जो कुछ तुम में बुराइयाँ घर कर गई हैं, उन्हें तुम तोड़ सको तो फिर बेड़ा पार है! हो तुम तैयार?

-तैयार मैं कब नहीं हूँ, लाखो! क्यों तुम नयी बहू के सामने मेरी फजीहत कर रही हो! क्या मुझे इस बात पर खेद नहीं है?

-खेद ! -लाखो हँस पड़ी और हँसती हुई ही बोली-अच्छी बात है। जब तुम्हें खेद का अनुभव हो चला है, तब मुझे यकीन है कि तुम रास्ते पर आ जाओगे।

इतने में लाखो की दृष्टि लाली पर गई। वह तभी से उसी जगह खड़ी थी! बदरी ने उसकी कठिनाई का अनुभव किया और लाखो से कहा-जाओ, तुम बहू को उनके घर पहुंचा आओ! शाम ज्यादा हो गई है, घर पर अंधेरा छाया हुआ होगा।

लाखो तैयार हुई और बोली-चलो, लाली बहन, तुम्हें पहुंचा आऊँ।

-क्यों, मैं अकेली नहीं जा सकती ? -लाली मुस्कराते हुई बोली।

-जा सकती क्यों नहीं; मगर मुझे तो हुकुम की तामीली करनी ही चाहिए। सुन ही चुकी हो तुम।

-खैर, चलो।

और दोनों वहाँ से बाहर की ओर चल पड़ी।

लाखो जब पहुंचाकर वापस हो चली, तब लाली अपने घर के कामों में लग गई। सचमुच लाली को इतनी खुशी हो रही थी कि लगता था, जैसे उसके रोम-रोम विहस रहे हों। वह बड़ी उत्सुकता और उत्कंठा लिये रंगा का इंतजार करने लगी। उसने दिन को रंगा से जो मान करने की बात सोच रखी थी, उसपर फिर से विचार करने लगी कि ऐसा करना उसके लिए उचित होगा या नहीं। और, आखिर, उसने यह निश्चय कर लिया कि ऐसे रंगा के लिए, जो अबतक बाहर-बाहर भागता रहा है, इतनी बड़ी सफलता की चर्चा

उससे न की गई, मान कर बैठना ही उचित होगा ।

मगर लाली जब ऐसा सोचती हुई नहाये हुए गोले कपड़े बदन से उतार, साफ धुली हुई साड़ी पहनकर, अपने लंबे क्रेशों को, खड़ी-खड़ी झाड़ने में लगी हुई थी, तब रंगा साइकिल को दरवाजे पर रख, हँसता हुआ आँगन में आकर बोल उठा - लाली !

और लाली चौकन्नी हुई, 'लाली' शब्द उसके कानों में गूंज उठा । उसने सिर धुमाकर देखा कि रंगा सामने खड़ा होकर मुस्करा रहा है! लाली अस्तव्यस्त हो पड़ी, उसने मान करने की जो बात अभी-अभी सोच रखी थी, वह जहाँ-की-तहाँ रह गई । उसे इसका सुध भी न रहा कि कुछ क्षण पहले वह क्या सोच रही थी! वह हड्डबड़ाकर बोल उठी - आ गये देवता, आखिर ध्यान टूटा भी तो!

लाली बोलकर कुछ क्षण रुकी रही; रुकी रही इसलिए कि शायद उसके सामने कोई गूढ़ समस्या आ खड़ी हो चुकी थी; मगर वह ऐसी नहीं थी, जिसे वह टाल दे सके! इसलिए वह जरा गंभीर होकर, जल्दी में बोल गई -क्या आजकल के देवता भी मान-अपमान की बातें नहीं समझते? क्या देवता का बड़प्पन इसी में है कि वह दूसरों को अपमानित करे?

--अपमानित? - रंगा चौंका और चौंककर बोल उठा-क्या कह रही जरा समझाकर कहो तो जानूँ! कौन-सी अपमान की बात हुई!

लाली कुछ क्षण तक सिर झुकाये खड़ी रही, रंगा उसकी ओर टकटकी बाँधे देखता रहा । उसके बाद लाली ने आँखें उठाई और रंगा की ओर देखती हुई बोली-गाढ़े दिनों में जो तुम्हारे लिए भाभी बनी रही, आज जबकि अच्छे दिन आ पहुंचे हैं, वह मात्र लाली रह गई! तुम समझते हो, मैं औरत हूँ और औरतें.....

रंगा समझ गया । इसीलिए भाभी की बातें पूरी होने के पहले ही वह बोल उठा-माफ करो, माफ करो, लाली! ऐसी कुछ बात न थी और न मैंने ऐसा कुछ तुम्हारा अपमान करने के विचार से ही कहा ।

रंगा बोलकर अपनी भाभी की ओर झपटा और उसके कंधे पर अपनी दोनों बाहें डालकर बोला-वाकई तुम्हें मेरी बातों से चोट आई, भाभी! सच कहो, वाकई तुमने दुख माना !

-माना था, मेरे देवर!-भाभी ने रंगा का दाँया हाथ अपने हाथ में लेते हुए कहा-मगर अब नहीं! मानती हूँ कि नाम से ही पुकारना ऐसी जगह के लिए ठीक है, फिर भी मुझे लगता है कि इस तरह तुम मुझसे बहुत दूर हटते जा रहे हो। ऐसी हालत में मैं बिकल होकर चाहने लगती हूँ कि तुम मुझसे जरा भी बिलग न हाओ। मैं तो चाहूँगी, कि चाहे लोग जो भी कुछ कहे, तुम मुझे भाभी कहकर ही पुकारो। अपनापन खोकर आदमी कबतक अपने को बचाये रख सकता है! आदमी जीने की तरह जीना चाहता है, वैसा जीना किस काम का जिसमें मरने का अंदेसा बराबर बना रहे? इस तरह से तो मौत ही अच्छी! क्या तुम सोच रहे हो रंगलाल! क्या कुछ कहना चाहते हो?

रंगा निर्विकार भाव से अपनी भाभी की बातें सुनता रहा। वह देख रहा है कि आज उसकी भाभी अधिक-अधिक निखर उठी है, उसकी बातों में आज उसे बेहद मिठास का अनुभव हो रहा है, वह पा रहा है कि सुखद रात्रि का वह कर-स्पर्श उसे स्वप्नलोक की ओर बरबस खींचे लिये जा रहा है! रंगा को अपनी सफलता पर जितनी प्रसन्नता मिलनी चाहिए थी, उससे कहीं अधिक वह इस समय अनुभव कर रहा है, जब उसकी भाभी निश्चल और निर्द्धन होकर उसके सामने खड़ी है! रंगा विमुग्ध हुआ और विमुग्ध होकर ही बोल उठा-अबतक अपनापन को जिस तरह ढोये जा रही हो, भाभी, वह क्या इस संसार की चीज हो सकती है! हमें तो इस संसार में रहना है और संसार वालों के बीच ही रहना है! इसलिए लाचारी थी कि हमलोग बाहर से भिज़ हो चले थे; पर उस समय भी अंतर में कोई भिन्नता न आ पाई थी! अब, जब कि तुम उस बाहरी आवरण को भी दूर फेंकना चाहती हो, तो मेरे लिए कहने को और रह क्या जाता है! अब तो दुनिया चाहे जो समझा करे! क्यों न हमलोग, इस अभिन्न मिलन के लिए, भगवान को धन्यवाद दें! अवश्य भगवान ने ऐसा अवसर देकर हमलोगों के लिए आगे बढ़ने की राह साफ कर दी है! अवश्य हमें जीने की तरह जीने का अधिकार है, भाभी, और वह अधिकार, अगर तुम चाहो तो, हमलोगों के हाथों है!

रंगा बोलकर चुप हुआ। लाली की दृष्टि रंगा के मुँह पर जा पड़ी और रंगा ने देखा कि भाभी की प्रसन्न-प्रफुल्ल आँखें विहस उठी हैं। रंगा से

न रहा गया । वह जोर से उसे अपने आलिंगन-प्राश में आबद्ध कर चूमना ही चाहता था कि बाहर से कार की आवाज सुन पड़ी । लाली बरबस अपने बंधन को ढीला करते हुए बोल उठी-उह, छोड़ दो छोड़ दो । देखो, कौन आया है !

रंगा ने हठात् उसे छोड़ दिया और अव्यवस्थित होकर वह बाहर की ओर लपका, लाली तुरत दरवाजे का आड़ में आकर खड़ी हो गई । रंगा ने दरवाजा खोलते ही देखा कि कार पर एक स्त्री बैठी हुई है ! रंगा को देखते ही बैठनेवाली वह स्त्री बोल उठी-अभी मुझे मालूम हुआ है रंगालाल ! तुम्हें बधाई देने आई हूँ । मेरी लाख-लाख बधाई स्वीकार करो । सुना है, तुम्हरे रहने को बंगला नं. फाइब सी. मिला है ! अच्छा है, कम-से-कम अब तो हमलोग बराबर मिल सकेंगे । कब आते हो वहाँ ?

रंगा मुस्कराया और मुस्कराते हुए ही बोल उठा-अभी तो कुछ ठीक नहीं किया है कि कब आना चाहिए या नहीं !

-आना चाहिए या नहीं-अभी यह भी सवाल है ! क्यों, देखती हूँ इस जगह से ज्यादा मुहब्बत हो गई है ! मगर जब तुम्हें ऐसा मौका मिला है, तब क्यों न उससे लाभ उठाया जाय ! क्या लाभ उठाना बेजा होगा ?

-बेजा की बात मैं नहीं सोच रहा । मुझे क्या है, हम दो प्राणी हैं । यहीं क्या तकलीफ थी रहने में ! रही रहा हूँ यहाँ । जानता हूँ कि सोसायटी कुछ ऐसी अच्छी नहीं है । मगर उससे मेरी हानि ही क्या थी ? हाँ, यहाँ के रहनेवाले भाइयों का कुछ मुझसे उपकार ही हो रहा था, फिर क्यों उन्हें उस उपकार से बचित किया जाय ?

रंगा की सरल और निष्कपट बातें सुनकर आगंतुका खिलखिलाकर हँस पड़ी और हँसते हुए ही बोली-खैर, उपकार की बातें तो मैं भी जानती हूँ रंगालाल और इसे कौन नहीं पसन्द करेगा ! पर तुम क्या समझ रहे हो कि वहाँ से इन लोगों का उपकार तुम न कर सकोगे ?

इस बार आगंतुका ने लाइट के लिए स्विच दबाई, रंगा ने कार की तेज रोशनी में देखा कि आगंतुका लक-दक के कपड़ों में लैश है और उसके ओठों पर अब भी मुस्कराहट खेल रही है !

वह आगंतुका और कोई नहीं, सकुन्ती उर्फ शकुन्तला थी !

और वह शकुन्तला उसी मुस्कराहट को लिये हुए बोली-चलो न रंगलाल, कुछ क्षण के लिए मेरे साथ! कल शाम को बड़ी तेज चाल में साइकिल दौड़ाये जा रहे थे। मैंने कई बार पुकारा भी; मगर तुम क्यों सुनने लगे। ज्यादा नहीं, एकाध घटे में तुम्हें यहाँ पहुँचवा दूँगी।

और शकुन्तला ने बायें हाथ से सोफर वाली सीट के पास का दरवाजा खोल दिया। रंगा कुछ बोलने को तैयार भी न हो पाया था कि वह फिर बोल उठी-खड़े क्यों हो रंगलाल! इतनी देर के लिए मेरी ओर से तुम माँफी माँग लेना लाली से ! रात यों कुछ ज्यादा भी तो नहीं बीत पाई है।

रंगा उत्तर में कुछ बोले विना ही सोफर की बगलवाली सीट पर जा बैठ। बैठते ही कार स्टार्ट हुई और तेज चाल में चल पड़ी।

लाली दरवाजे की आड़ से आगे बढ़ते ही जमीन पर चारों खाने चित्त पड़ गई। उसकी आँखों से अवाध गति से आँसू बह चले।

### (तैतालीस)

जिस सकुन्ती के नाममात्र से लाली का खून खौल उठता था, वही सकुन्ती इतनी ढीठ बनकर, उसके घर आवे और उसके देखते-ही-देखते, उसके रंगा पर मोहनी माया डाल उड़ाकर ले जाय, लाली के लिए इससे बढ़कर संताप की और कौन-सी बात हो सकती है! लाली सकुन्ती की एकएक बात खूब अच्छी तरह, कान खोलकर सुन चुकी है-वह यह भी सुन चुकी है कि रंगा को नये क्वार्टर में ले चलने की वह कैसी-कैसी बातें बना गई। और रंगा, इतना समझदार होकर भी, उसकी बातों पर क्यों इस तरह फिसल जाता है ? क्यों नहीं वह रंगा उस सकुन्ती को डॉट देता है कि उसके बीच वह आया न करे! रंगा खुद जानता है, जिस सकुन्ती की बदनामी और बदचलनी की चर्चा से कालिनी का वातावरण धूमिल हो उठा है, उस सकुन्ती के पीछे दीवाना बनकर उसका चलना कितना कष्टकर हो सकता है! रंगा क्या यह नहीं जानता कि इससे उसकी बदनामी तो फैलेगी ही, साथ ही वह

जो भी कमायगा, सभी सकुन्ती हड़प लेगी? क्या सकुन्ती इतनी खूबसूरत है कि उसके सामने लाली का कुछ मूल्य नहीं!

लाली इन्हीं प्रश्नों को लेकर, जमीन पर विक्षिप्त-सी पड़ी हुई, जाने कितनी बार और कितनी तरह से सोचती रही; पर उसके सामने कोई भी संतोषजनक उत्तर न आ सका। और उमंगों में भरी हुई लाली के लिए वह कैसा दुखद क्षण था, जब रंगा अपनी भाभी को हृदय खोलकर, अपने आलिंगनप्राश में आबद्ध करते हुए अपने स्नेह-स्पर्श की छाप छोड़ना चाहता था, जिसके लिए लाली-जैसी प्रेममयी युवती कदाचित् बरसों से साधना करती आ रही हो! सिद्धि के समय जिस तरह प्रायः विघ्न-बाधाएँ उपस्थित हो जाती हैं, ठीक उसी तरह स्नेह-दान के अवसर पर राक्षसी का विघ्न उपस्थित करना सचमुच लाली के लिए कितना कष्टकर हो उठा होगा, वह लाली के सिवा और कौन अनुभव कर सकता है! यों तो स्त्रियाँ स्वयं ही ईर्ष्यालु हुआ करती हैं, पर इतनी दूर की ईर्ष्या, जिसकी कल्पना तक नहीं की जा सकती, लाली को यदि विक्षिप्त बना छोड़े, तो इसमें आश्चर्य ही क्या!

और लाली सचमुच विक्षिप्त-सी हो उठी है ! उसे न तो अपने कपड़े लत्ते का ठौर-ठिकाना रह गया है और न यही ज्ञान है कि वह कहाँ है, किस रूप में है, क्या कर रही है! ममताहीन सकुन्ती, काश, यह जान पाती-जान पाती कि लाली का हृदय कितना भावप्रवण है-कितना कोमल है ! और उस हृदय पर कैसी-कैसी बन-बीत रही है !

मगर लाली इस रूप में डेढ़-दो घंटे से अधिक न रह सकी । रंगा लौट आया; पता नहीं, वह कब आया, कैसे आया; पर जब उसने पाया कि लाली विक्षिप्त दशा में बरामदे की सहन पर लेटी पड़ी है, दरवाजा ज्यों-का-त्यों खुला है-यहाँ तक कि साइकिल दरवाजे के बाहर ज्यों-की-त्यों पड़ी हुई है और लैंप एक ओर ज्यों-की-त्यों जल रहो है - तब उसे अपने-आप पर अफसोस हुआ और अफसोस हुआ इसलिए कि सकुन्ती के साथ इस तरह उसे, लाली को छोड़कर, न चला जाना चाहिए था! मगर अफसोस करने का वह मौका था ही कहाँ! उसे तो अपनी भाभी को जगाकर, सचेत कर उठाना जो था। पता नहीं-भूखी-प्यासी ही सो पड़ी हो। इससे यह आवश्यक हो उठा उसके

लिए कि वह अपनी भाभी को जगाये और उससे अनुरोध करे कि थोड़ा अन्न-जल ग्रहण वह कर सके ! मगर भाभी को जगाने की हिम्मत उसमें आई कहाँ से ! वह तो स्वयं अभियुक्त बना हुआ उसके सामने आकर उपस्थित हुआ है ! रंगा को सकुन्ती से मालूम हो चुका है कि लाली सकुन्ती को बुरी नजर से देखा करती है । उसे यह भी मालूम है कि लाली ने उस सकुन्ती को एक दिन दिल खोलकर अपमानित किया है । और वही सकुन्ती, दुस्साहस से झड़कीले कपड़ों में लैश हो, मोटर चलाते हुए आकर उसे ले भागी है । अब रंगा क्या करे ? यद्यपि वह जानता है कि चाहे सकुन्ती के नाम के पीछे पाप की दुनिया छिपी हुई क्यों न हो, फिर भी रंगा को अबतक वह ऐसी दीख न पड़ी-और जब-जब उसने उसे देखा है, तब-तब पाया है कि सकुन्ती अनेक सौभाग्यवती सती स्त्रियों से बहुत ऊँची उठी हुई है । फिर वह उस सकुन्ती को, अपनी बुद्धि और विवेक के विरुद्ध, किस तरह बुरा कहे ! किस तरह उसे कहे कि वह उसकी छाया के सामने और कभी न पड़ने पाय ? क्या रंगा ऐसा कर सकेगा ? क्या रंगा अपनी भाभी को खुश करने के लिए इतना कर सकेगा ?

रंगा लाली के पास खड़े-खड़े, पता नहीं, कितनी देर तक, इन सारी बातों को सोच गया; पर इतनी बातों का समाधान तुरत वह कर ही कैसे सकता ! वह तो केवल सोच रहा था कि भाभी को जगाया जाय या नहीं, या इसी तरह पड़े रहने दिया जाय !

और आखिर, बड़ी देर बाद रंगा इस निश्चय पर पहुँचा कि भाभी को अभी जगाया जाय और जगाकर वह अपनी भाभी से साफ-साफ कहे कि वह अब तक सच्चा, निष्कलंक है, और आगे भी उसके सामने वह खरा सोना ही निकलेगा ! रंगा ने ऐसा सोचा और उसे जगाने के पहले, उसने उसके खुले अधखुले बदन को कपड़ों से ढंका और जब उसने पाया कि अब उसका कोई भी अंग खुला बाकी नहीं रह गया तब उसने, उसके सामने बैठकर, ‘भाभी-भाभी’ कहकर जगाना शुरू किया । लाली चौंकी, सजग हुई, उसने आँखें खोली और सामने रंगा को पाकर लज्जा से सिकुड़कर हड़बड़कर उठ बैठी । फिर अपने को संभालकर बोल उठी-कब आये रंगलाल !

रंगा तुरत कुछ बोल न सका; मगर लाली जरा रुककर फिर देखी, मैं यों ही सो पड़ी थी, दरवाजा ज्यों-का-त्यों खुला रह गया.....

-दरवाजा खुला रह गया तो रह गया-रंगा हँसते हुए जरा व्यंग के स्वर में बोल उठा-तुम जो खुद खुली हुई लेटी थीं! तुम खुद जानती हो कि यह कैसा महल्ला है, किस तरह के आदमी यहाँ बसते हैं।

-जानती हूँ-लाली जरा गम्भीर होकर तुनककर बोली-जानती हूँ कि दरवाजा बन्द करना और न करना एक जैसा है, जबकि बन्द दरवाजा रहते हुए भी आनेवाले आ ही जाते हैं ! और खुली देह को कहते हो-मेरा खुला रहना और बन्द रहना एक जैसा है, जब तुम्हें इसकी परवा नहीं कि तुम्हारी भाभी की देख-रेख करनेवाला तुम्हें छोड़ कर और दूसरा नहीं है और तुम यों ही सैर-सपाटे किया करो और तुम्हें इसकी भी जरा खोज-खबर न रहे, तब मैं अपने लिए कहाँ तक रोऊँ ! कौन सुनता है रोना!

लाली की आँखें छलछला आई, फिर भी उसने प्रयत्न किया कि अपने आँसुओं को आँखों में ही रोक रखे; पर वह रोक न सकी। रंगा से यह छिपा न रह सका, उसने अपनी धोती की खूँट से उसके आँसू पोंछते हुए कहा -भाभी, इतनी थोड़ी-सी बात के लिए जब तुम्हारी यह हालत है, तब तुम आगे के कठिन रास्ते को कैसे तय कर सकोगी ? जानता हूँ कि तुम्हें सकुन्ती के साथ मेरा जाना इतना अखरा, जिसे तुम बद्राशत न कर सकी और कोप के मारे बुरी तरह अचेत होकर जमीन पर पड़ गई। तुम्हें याद रखना चाहिए कि तुम्हारा देवर रंगा, चाहे अपने-आपमें जैसा रहा हो, इतना छिठोरा कभी नहीं निकल सकता! और जिस दिन तुम्हें सचमुच यह विश्वास हो जायगा, उस दिन, सच कहता हूँ भाभी, तुम रंगा को अपने सामने इस रूप में न पा सकोगी। आदमी अगर अपने-आपमें इतना सच्चा हो कि उसपर किसी दूसरे की छाप न पड़ सके, तो उसके लिए ऐसी कोई जगह नहीं, जहाँ वह नहीं जा सकता हो। आत्म-बल चाहिए और जहाँ आत्म-बल है वहाँ किसी तरह का खतरा आ नहीं सकता! और सच तो यह है कि, मैं कहीं भी जाने से भय नहीं खाता, भाभी ! तुम्हें क्योंकर ऐसा विश्वास हो आया कि मैं सकुन्ती के साथ

धूमने-फिरने को उतावला बना रहता हूँ। सच बताओ, भाभी, तुमने ऐसा विश्वास किया क्यों कर?

लाली सिर झुकाए कुछ क्षण तक रंगा की बातें सुनती रही। रंगा ने बहुत थोड़े में अपने दिल को अपनी भाभी के सामने खुली किताब की तरह रख दिया। लाली देखती है उस दिल को, जो अब तक उतना ही साफ और उतना ही सख्त है, जैसा उसने पहले पाया था। लाली को अपने-आप पर ही रंज हो आया। वह सोचने लगी कि रंगा के सामने वह खुद कितनी छोटी हो गई है! लाली चुप न रह सकी, वह बोल उठी- जरूर मुझे आज बेहद दुख हुआ था, रंगलाल! मैं जरूर यह चाहती रही कि तुम यों सकुन्ती या सकुन्ती-जैसी दूसरी औरतों के साथ मत चला-फिरा करो ! जरूर मेरे मन में यह पाप सदा उठता रहा था कि तुम अपने को ऐसी राक्षसी से बचा नहीं सकोगे, और जरूर मुझे ऐसी औरतों से चिढ़ होती है, जो दूसरों को इस तरह फाँसे फिरती है! आज दिन भर मैं इन्हीं बातों पर सोचती रही; मगर अपने को जब मैं संभाल न सकी, तब लाखों ने मेरे मन को बहलाया और मैं उसीके घर सारा दिन बिता आई। शाम को नहा-धोने के बाद अचानक तुम आये, तुम्हें पाकर मैं अपने सारे विषाद को भूल गई और तुम्हारी बातें सुनकर, और तुम्हारे खिले हुए चेहरे को देखकर, सच कहती हूँ, अपनेको कुछ कम बड़भागी नहीं समझा और जब तुमसे मैं कुछ पाने को हुई, तब फिर वही राक्षसी अचानक आ धमकी! अब तुम्हीं कहो, मुझ पर कैसी बीती होगी! आखिर मैं औरत हूँ, मुझे भी भूख लगती है- -प्यास लगती है, मैं भी दिल रखती हूँ, मैं भी दो बातें किसीको कहा चाहती हूँ-किसीसे दो मीठी बातें मैं भी सुनना चाहती हूँ। तुम्हीं बताओ, मेरी गलती कहाँ है ?

लाली बोलते-बोलते काफी सँभल गई, पर उसका स्वर उत्तरोत्तर तेज होता गया। जो कुछ क्षण पहले बड़ी मर्माहत हो पड़ी थी, वही फिर से उज्ज्वल प्रसन्न दीख पड़ी। रंगा ने इस बार लाली को समझा और समझा कि वह कहाँ है और कहाँ उसकी भूल है।

मगर रंगा इस प्रसंग को यहीं रोकना चाहता था, इसलिए वह प्रसंग को बदलकर किसी दूसरे पथ पर ले जाने को तैयार हुआ। उसने सबसे पहले

यह जानना चाहा कि उसने खाना खाया है या नहीं ! और यह जानने के लिए वह बोल उठा-खैर, बातें तो पीछे भी हो लेंगी; अभी तो मुझे काफी भूख लगी है, भाभी! क्या यों ही सो रहूँ, या कुछ खिलाने का भी इन्तजाम करोगी?

लाली चौंकी ! यह क्या रंगलाल अब तक भूखा है ? वह मुस्कराकर बोल उठी-क्या देवी शकुन्तला ने तुम्हें भोजन नहीं कराया ?

-कराना तो चाहती थी-रंगा हँसा-मगर मैं जो नहीं चाह रहा था ! कह दिया, खाना घर पर खा लिया था और इस तरह वहाँ से कन्नी कटाकर सिर्फ खाने के लिए ही यहाँ दौड़ पड़ा हूँ !

-सिर्फ खाने के लिए ! मतलब ?

-और खाने के सिवा यहाँ और दूसरा काम ही क्या है भाभी !

-और दूसरी जगह और कुछ करते हो क्या ?

-कर सकता था; मगर अब तो बातों में न फंसाओ, भाभी ! क्या कुछ तैयार भी है या नहीं ?

-तैयार क्या होता ?-लाली उदास होकर बोली-दिन का खाना यों ही बेकार गया ! शाम को बनाना ही चाहती थी कि देवता ही गायब !

-तो फिर ?

फिर क्या ! बनने में लगती है कित्ती देर ? लेटो थोड़ा-सा, मैं तैयार किये लेती हूँ ! क्या खाओगे ?

-क्या खाऊंगा ? और तुम क्या खाना चाहती हो ?

-मैं ? -लाली जाने क्यों अपने आपमें मुस्कराई-समझती हूँ, तुम्हें कैसी भूख है !

-भूख कैसी है, भाभी ! -रंगा हँसते हुए बोला-देखो न पेट पर हाथ रखकर, तुम्हें खुद पता लग जायगा कि मैं कितना भूखा हूँ।

-खैर, बोलो भी !

-तुम जो चाहो, बनाओ । मगर ऐसी चीज बनाओ जो तुरत तैयार हो जाय ! लो, मैं स्टोव जलाये देता हूँ ।

रंगा उठा और स्टोव को बरामदे पर लाकर जलाने लगा । उधर लाली भी भीतर से सामान निकाल लाई और दोनों कचौड़ियाँ बनाने में लग गये ।

बहुत दिनों पर दोनों को एक साथ रसोई बनाने का अवसर मिला था। इसलिए दोनों काफी खुश थे और उसी खुशी में, लगे हाथ, कचौड़ियाँ, और कुछ तरकारियाँ बनाई। उसके बाद चाय भी। और दोनों, उस दिन, साथ ही बैठ गये खाने को! इस तरह से रात का अधिक भाग निकल गया; पर आज तो इन दोनों के सामने जैसे स्वर्ग उतर चुका था! खाने-पीने के बाद, दोनों की चारपाईयाँ बरामदे पर पड़ी; दोनों अपने-अपने बिछावन पर लेटे और लेटे-लेटे ही, जाने कबतक, और जाने क्या-क्या बातें होती रहीं! इतना खुलकर, और इतना साफ तौर से लाली इधर बहुत दिनों तक बातें न कर सकी थी। आज उसने पाया कि रंगा अपने काम में सफल होकर, और अपने अधिकारियों से पुरस्कृत और सम्मानित होने की सूचना पाकर भी उतना ही निर्विकार है, उतना ही निष्क्रिय और उतना ही सच्चा है, जितना कि उसने उसे बचपन से देख पाया है!

दूसरे दिन, खा-पी लेने के बाद जब रंगा ने बाहर जाने के लिए साइकिल उठाई, तब लाली ने उसे पान देते हुए पूछा-नये बंगले पर कब चलोगे, रंगलाल!

-कब चलूँगा-रंगा जरा रुका, फिर हंसकर बोल उठा-जब तुम चलना चाहो भाभी!

-तो क्यों नहीं, कल ही चला जाय! कल सावन की पूनो है न ! बड़ा अच्छा दिन है !

-ठीक है, वही होगा, भाभी! -कहता हुआ रंगा साइकिल पर चढ़कर अपने काम पर चलता बना।

(चौवालीस)

सावन की पूनो आई, उस दिन मिल बंद रहा और उसी दिन रंगा अपने नये बंगले में आने का आयोजन किया। जिस दिन से कँलिनी में यह पता लगा कि रंगा तरक्की पाकर नये बंगले में जा रहा है, उस दिन से उन मजदूरों के बीच बड़ी चंचलता दीख पड़ी। बात यह थी कि रंगा ने कँलिनी में ऐसे वातावरण की सृष्टि कर रखी थी जिसमें अन्याय, अत्याचार, व्यभिचार

और जुएःशराबवाजियाँ बहुत-कुछ कम हो चली थीं ! यों बिगड़े दिल मजदूर लुक-छिपकर इनमें से कुछ-न-कुछ कर ही बैठते थे और ऐसे बिगड़े दिल आदमियों के लिए रंगा खुद ही खराब था । फिर भी जब उन लोगों ने पाया कि अब से रंगा उन्हें छोड़कर दूसरी जगह जा रहा है, तब उनके दिलों से भी एक बार उसके लिए आह कढ़ ही गई । फिर वैसे व्यक्तियों के लिए क्या कहा जाय, जो वास्तव में रंगा के सदाचरण से लाभ उठा चुके थे । सच तो यह है कि उन लोगों में से क्या बच्चे, क्या बूढ़े और क्या स्त्रियाँ सभी ने काफी आरजू-मिन्नतें की और रंगा उन मिन्नतों से काफी प्रभावित भी हुआ; पर लाली न जाने क्यों, बंगले पर जाने के लिए अधिक उत्सुक दीख पड़ी और इतनी उत्सुक दीख पड़ी कि रंगा को वहाँ जाने के लिए तैयार होना ही पड़ा । उस दिन रक्षाबंधन का दिन था ! रंगा ने रक्षा बंधनों के साथ बच्चों के बीच घूम-घामकर मिठाइयाँ बाटी और अपने से बड़ों का आशीर्वाद और शुभाकांक्षा लेकर वह अपनो यात्रा की तैयारी में लगा । उधर लाली के घर मुहल्ले की ओरतें आई और उन औरतों के बीच लाली, विदा लेते समय, फूट-फूटकर रोती रही ! वर्षों से एक जगह रहने के बाद इस जोड़े ने सभी के दिलों में जो मुहब्बत पैदा कर ली थी, उसीका परिणाम था कि उस दिन कोई ऐसा बाकी न बचा, जिसे उन दोनों के जाने का रंज न हुआ हो ।

आखिर सभी को रुलाकर वे दोनों नये बँगले की ओर चल पड़े । लाली ने नये बंगले में आकर देखा कि बँगले में टेबिल-कुर्सियाँ, पलंग, आरामकुर्सियाँ और अलमारियाँ करीने से अपनी-अपनी जगह पर सजी हुई हैं । ड्राइंगरूम अलग, सोने के कमरे अलग, बाथरूम, भंडार घर, रसोईघर, पैखाना, पानी के नल, बिजली की बत्तियाँ, टेलीफोन आदि चीजों से लैश हैं! लाली ने अपने जीवन में ये सब चीजें पहले-पहल ही देखी थीं । इसलिए यह स्वाभाविक था कि उसे कुतूहल हो और उसी कुतूहल में लाली न तो कुछ प्रसन्नता ही व्यक्त कर पाती थी और न उदासीनता ही! सचमुच उसकी गति ऐसी हो रही थी, जैसी अनायास पाये हुए धन के बीच किसी जन्म के कंगाल की होती है! मगर रंगा जैसा पहले था, वैसा अब भी जैसा दीख रहा था । लगा उसके लिए कोई नई बात न हो! फिर भी वह वहाँ आकर कुछ कमियाँ महसूस कर रहा था! वह बहुत बार बड़े-बड़े साहबों की कोठियों में आ चुका

था और इस तरह वह जानता था कि बंगले को सजाने के लिए और कौन-कौन चीजों की जरूरत रह गई है। वह कई बार एक कमरे से दूसरे कमरे में घूम गया और इस तरह उसने पाया कि लगे हाथ उन कमियों को क्यों न पूरा कर लिया जाय। वह इन बातों को लेकर सोच ही रहा था कि फोन की घंटी बज उठी। रंगा दौड़ा हुआ फोन पर आया। लाली भी कुतूहल लिये वहाँ आ पहुँची। रंगा ने रिसीवर उठाया और हल्लो कहकर बातें करनी शुरू की। मैनेजिंग डाइरेक्टर पूछ रहे थे और रंगा जवाब दे रहा था और लाली उत्सुकता लिये पूछ रही थी रंगा से-कौन बोल रहा है, क्या बोल रहा है। इसी बीच में बातें खत्म हो गई। रंगा ने रिसीवर अपनी जगह रखते हुए, हँसकर लाली से कहा-बड़े साहब अपनी कोठी से हमलोगों के आने का समाचार पूछ रहे थे। मैंने अभी उनकी कार मँगवाई है।

-कार! -आश्चर्य से लाली ने पूछा-कार मँगवाकर क्या करोगे?

-करुंगा क्या?-हँसकर लाली की ठुङ्गी ऊपर उठाते हुए रंगा ने कहा-अपनी भाभी को लेकर शहर जाऊँगा, उसे हवा खिलाऊँगा और उसके लिये कुछ जरूरी कपड़े-लत्ते खरीद लाऊँगा। क्यों, भाभी, कहो तो, तुम्हारे लिए क्या-क्या चाहिए? मेरा खयाल है कि अब तुम्हें उस रूप में रहना पसंद न आयगा। खुद मुझे ही पसन्द नहीं आता। अखिर, अपनी इज्जत की रक्षा तो हर हालत में करनी ही पड़ेगी ही। चलो न भाभी! तैयार होकर रहो, तुम्हें खुद अपनी चीजें अपने मन से पसंद करनी चाहिए।

लाली रंगा की बातें सुनकर सन्न हो रही। उसे उम्मीद न थी कि रंगा जहाँ साधारण तरीके से रहना पसन्द करता आया है, वहाँ वह इतनी जल्द नये रूप में बदलने को इस तरह तैयार हो जायगा। मगर रंगा तो चलने को तैयार हो बैठा है और उसने कार भी मँगवा पठाई है! लाली क्षणभर सोचती रही, उसके बाद वह जरा सख्त होकर बोल उठी-तुम जा सकते हो, रंगलाल। मैं नहीं जाऊँगी।

-क्यों न जाओगी, भाभी! - रंगा ने हँसते हुए सरल भाव से पूछा जाने में कौन-सी आपत्ति है, जरा सुनूँ भी!

-उफ, नहीं जाऊँगी, कह तो दिया! - लाली गंभीर होकर रुखाई से बोली और कुछ क्षणतक चुप ही रही। रंगा भी कुछ सोच रहा था, मगर वह

कुछ बोलना ही चाहता था कि लाली फिर से बोल उठी-सुनो, मेरे लिए कपड़े लत्ते खरीदने की जरूरत नहीं, कपड़े काफी पड़े हुए हैं! जब वे कपड़े फट-फटा जाएंगे, तब मुझे चाहिए। इज्जत की रक्षा गुण से होती है, कुछ कपड़ों से नहीं।

लाली बोलकर, बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये ही, दूसरे कमरे की ओर चली गई।

रंगा कुछ क्षण तक वस्तु-स्थिति पर विचार करता रहा। उसे लाली की बातें उखड़ी-उखड़ी-सी मालूम पड़ीं। वह कुछ चंचल-सा दीख पड़ा। वह स्थिर होकर बैठा न रह सका, उठा और बाहर वाले बरामदे पर चक्कर काटने लगा।

रंगा ने कुछ क्षण पहले अपनी कमियों को दूरी करने के जो मंसूबे बाँध रखे थे, उनमें ठोकर लगी और वह सोचने लगा कि आखिर गँवार औरत के साथ सोसाइटी के भद्र व्यक्तियों के बीच कैसे रहा जा सकता है।

रंगा अपने आप में धूमिल हो चला, उसकी आकृति, उतने ही क्षणों में उत्तर गई। लगा जैसे किसी कठिन समस्या के समाधान करने में वह तन्मय हो उठा हो।

और ठीक ऐसे ही अवसर पर एक खूबसूरत-सी कार दरवाजे पर आ लगी और सोफर ने उतरकर रंगा को सलाम बजाया।

रंगा अब भी गंभीर बना रहा, जरा भी उसमें चंचलता दीख न पड़ी। फिर भी सोफर उसके सामने खड़ा था, उसे कुछ जबाब भी देना चाहिए रंगा ने सोचा और सोचते ही वह बोल उठा-कार वापस ले जाओ, साहब को सलाम कह देना। सोफर सलाम बजाकर कार की ओर मुड़ना ही चाहता था कि लाली झपटी हुई बाहर आई और रंगा के पास आकर बोली—नहीं, वापस नहीं ले जाना होगा, कार जब यहाँ आई है, तब उसका उपयोग तो होना ही चाहिए।

रंगा ने तिर्छी नजर से लाली की ओर देखा-देखा कि वह तो तैयार होकर ही आई है। रंगा चिन्ता में पड़ा; पर लाली ने उसे उस रूप में रहने न दिया। वह बोल उठी-हर बात में लड़कपन न करो। जानते हो, जब बड़े

साहब की कार आ ही पहुँची है, तब न चलना क्या ठीक होगा? न चलना चाहते थे, तो कार को, चलने के पहले फोन करके, रुकवा दिया क्यों नहीं। खैर, आओ तैयार होकर।

रंगा बिना कुछ प्रतिवाद किये भीतर की ओर गया, लाली भी साथ-साथ गई। उसने कपड़ों के बक्स से रंगा के लिए चुनकर कपड़े निकाले और उसकी ओर बढ़ाते हुए बोली-लो, बैठ जाओ कुर्सी पर, पहनो यह हाफ पैन्ट। पैंट पर यह कमीज अच्छी फबेगी, इसे ही पहले पहनो, बाद को पैंट पहनना। मेरी ओर इस तरह से न धूरो! साहब बनना चाहते हो, तो पूरे तौर से बनो! पैर बढ़ाओ इधर। तब तक मैं तुम्हें मोजे पहना दूँ।

लाली मैं जाने कहाँ की इतनी तत्परता आ गई कि रंगा उसे देखकर भौंचक-सा हो उठा! कुछ क्षण पहले जिसके संबंध में वह यहाँ तक बोल गया कि गँवारू-गवाँर औरत के साथ भद्र-समाज के बीच रहा नहीं जा सकता, वैसी औरत, कुछ ही क्षणों के बाद इतनी फारवर्ड निकलेगी, रंगा क्यास ही किस तरह कर सकता था !

आखिर, रंगा तैयार हुआ, लाली ने बक्स से पहले ही नोट ले रखे थे। फिर भी जब चलने को तैयार होकर रंगा बढ़ाना ही चाहता था कि लाली बोल उठी-चीजें खरीदने को चल तो रहे हो; मगर वहाँ क्या रूपयों की भी जरूरत पड़ेगी? ते लिये हैं न!

-लिये कहाँ से।

-फिर चल रहे थे कैसे?

रंगा कमरे की ओर मुड़ने को हुआ; पर लाली बीच ही मैं खिलखिलाकर हँस पड़ी और हँसते हुए ही बोल उठी-तो ये नोट के बंडल, संभाल रखो।

-रहने दो तुम अपने पास ही, भाभी ! -रंगा बोलकर आगे की ओर बढ़ चला।

मगर लाली जहाँ-की-तहाँ खड़ी हो रही और जोर से बोल उठी - सुनो भी!

रंगा रुका और पीछे की ओर मुड़कर देखा कि लाली अपनी जगह पर खड़ी है। रंगा उसकी ओर बढ़ चला और बोला-क्या है?

-है क्या?-लाली गंभीर होकर बोल उठी-भाभी-भाभी कहकर क्यों

जान खाये जा रहे हो! चल रहे हो बाहर, कहाँ-कहाँ, किस-किसके बीच जाना है। और तुम्हारी आदत है बिगड़ी हुई! लोग सुनेगा तो क्या कहेगा-है तुम्हें कुछ खयाल? आखिर, इसी दुनिया में तो रहना है। आखिर समझते भी हो कुछ!

-समझ गया, समझ गया-रंगा बोला और आगे की ओर चल पड़ा।

लाली के बाहर निकलते ही रंगा ने दरवाजे को बंद किया और ताले जड़कर कार की ओर बढ़ा। लाली भी आई और दोनों पीछे की सीट पर जा बैठे! सोफर अपनी सीट पर आ बैठा और गाड़ी चल पड़ी।

गाड़ी कुछ दूर निकलने हो पाई थी कि पीछे से एक छोटी-सी कार बराबर में आई और रंगा को देखकर उसकी बैठने वाली ने सोफर से पूछा-बाजार ही चल रहे हो न?

-हाँ, बाजार ही।

-अच्छा, मिल लूँगी वहीं, अभी बढ़ती हूँ।

और वह मोटर ज्यों ही आगे की ओर सर्र से बढ़ गई, त्यों ही लाली ने रंगा की ओर मुखातिब होकर पूछा-कौन थीं वह?

रंगा लाली के पूछने का उद्देश्य समझ गया। वह हँस पड़ा और हँसते हुए ही बोला-देखती चलो न, अभी तो कितनों से मिलना है।

लाली सुनकर कुछ क्षण तक रुकी, फिर बोल उठी-क्या मैं उनका नाम जान सकती हूँ?

-क्यों नहीं,-रंगा बोलकर कुछ क्षण रुका, फिर हँसकर बोल उठा मगर क्या तुमने उन्हें कहीं कभी देखा नहीं है?

-देखा ही होता, तो फिर तुम्हें मैं क्यों तकलीफ देती?

-क्यों बनती हो इस तरह-रंगा मुस्कराते हुए बोला-जिनके साथ तुम काफी झगड़ चुकी हो एक दिन और जिसके नाम से तुम्हें जानी दुश्मनी है, क्या उसका नाम फिर से तुम्हें बतलाना होगा?

-क्या कह रहे हो, क्या कह रहे हो? -आश्चर्य रंगा की ओर देखते हुए लाली बोल उठी-क्या यही हैं तुम्हारी देवी शकुन्तला? -क्या मैं तुमसे झूठ थोड़े ही कह रहा?

रंगा बोलकर लाली की ओर देखने लगा ! उसे लगा कि जैसे लाली को अब भी आश्चर्य हो रहा है कि वह सकुन्ती नहीं है ! रंगा ने उसकी ओर से मँह फेर लिया, रास्ते में इसके बाद, इन दोनों के बीच और बातें न हो सकी ।

कार बात-की-बात में, कालिज स्क्वायर की मोड़ पर आ पहुंची । रंगा ने कार को रोकने का इशारा किया । कार सड़क की बगल में आ रुकी, रंगा ने दरवाजा खोला और उतर पड़ा, उसके बाद लाली को अपने हाथ का सहारा देकर नीचे उतारा ।

रंगा ने पैट की जेब से मनीबेग निकाल कर दो रुपए निकाले और सोफर की भेंट कर कहा-कार वापस ले जाओ, इधर से टैक्सी पर चल दूँगा ।

सोफर ने हँसते हुए रुपए हाथ में लिये और एक लंबा-सा सलाम कर गाड़ी स्टार्ट कर दी ।

रंगा लाली को लिये हुए कपड़ों की दूकानों की ओर चल पड़ा ।

चार-पाँच दूकानों को टपने के बाद पीछे से रंगा को किसीने आवाज दी । रंगा रुका और पीछे की ओर मुड़कर देखने लगा । देखा कि शकुन्तला हँसती हुई उसकी ओर आ रही है !

शकुन्तला के आते ही लाली की आकृति धूमिल पड़ गई; मगर चतुर शकुन्तला की आँखों से वह छिपा न रह सका । शकुन्तला हँसती हुई लाली का हाथ पकड़कर बोली-एक दिन तुम मेरी छाया से भागती थी लाली !

मगर एक दिन आज है जब तुम भागने की कोशिश करके भी मुझसे भाग न सकोगी । चलो, दूकान में, आज तो मैं उस दिन का तुमसे बुरा तरह बदला चुकाऊँगी !

लाली अपने-आपमें कटकर रह गई । मगर रंगा ने परिस्थिति को संभाला और वह हँसकर बोल उठा-ऐसा बदला न चुकाना, नहीं तो लाली रो देगी !

-रो देगी-ऐसा कहकर तुम मेरी बहन को चिढ़ा नहीं सकते. शकुन्तला लाली की ओर से बोल उठी-चाहे तुम जो कहो, मगर लाली के बारे में मैं तो यह जरूर कहूँगी कि यह दिल का साफ है ! और आखिर, इसमें दोष ही क्या

भला? मुझे उस दिन बहुत कुछ भला-बुरा सुना गई; मगर मैंने जरा भी बुरा नहीं माना! जो बातें सच्ची हैं, वे हर हालत में सच्ची रहेंगी और उन्हें सुनने के लिए सुनने वालों को तैयार रहना चाहिए! मगर यह वक्त नहीं है बातें करने का; अब तो खुलकर किसी दिन बातें हो लेंगी। अभी तो चलो-जहरलाल पन्नालाल की दूकान पर और मैं अपने पसंद की चीजें लाली बहन को दिलवाऊँ।

और शकुन्तला आगे बढ़ी। लाली विना कुछ मीन-मेख किये उसकी ओर बढ़ चली। रंगा भी उन दोनों के पीछे-पीछे चल पड़ा।

शकुन्तला ने बहुत-सी साड़ियाँ निकलवाई। लाली चुपचाप देखती रही। पर जब शकुन्तला ने कुछ चुने हुए कपड़ों को हाथ में लेकर लाली से पसंद कराना चाहा, तब लाली अपने को जब्त न कर सकी, वह बोल उठी अगर आप माफ करें, तो मैं कुछ कहूँ।

-हाँ-हाँ, कहो, लाली, माफ की कौन-सी बात !.-शकुन्तला बोली। -मुझे ये कपड़े बिलकुल पसंद नहीं ! मैं तो खादी ही लेना पसंद करूँगी और यह भी चाहूँगी कि मेरे घर पर अब से जो भी कपड़े लिये जायें, वे खादी के ही हों!

शकुन्तला हँसी, रंगा ने लाली के हृदय को पढ़ा और वे दोनों मन-ही-मन बड़े खुश हुए। उसके बाद शकुन्तला बोली-अच्छी बात है! खादी में भी तो अब इतनी और ऐसी अच्छी डिजाइन निकली हैं कि देखते ही बनती हैं !

उसके बाद उसने दूकानदार से कहा-सुनिये साहब, उम्दा-से-उम्दा साड़ियाँ दिखलाइए; मगर हों वे सभी खादी की-अलबत्ता कॉटन नहीं, रेशम की हों।

और दूकानदार ने एक-से-एक उम्दा रेशमी साड़ियाँ उनके सामने इकट्ठी कर दी।

### (पैंतालीस)

उस दिन मार्केटिंग करने के बाद शकुन अपनी कार पर लाली और रंगा को लेकर रवाना हुई। लाली के लिए शकुन का सहवास चाहे जैसा

अप्रीतिकर रहा हो; पर शकुन ने अपनी ओर से लाली के साथ घुल मिलकर बातें करने में जरा भी कोर-कसर न आने दी और जिसका परिणाम यह हुआ कि लाली चाहे सकुन्ती को अब तक जैसा जानती आ रही थी, उसमें चाहे अंतर न भी आया हो; पर इतना अवश्य उसने महसूस किया कि शकुन-जैसी स्त्रियाँ बहुत कम देखने में आती हैं-चाहे रूप में, गुण में, चातुरी में, या हास-परिहास में, शकुन किसी तुलना में नहीं आ सकती; फिर भी लाली की समझ में नहीं आ रहा कि ऐसी स्त्री के साथ किस तरह और क्यों कलंक-कालिमा जड़ित है! क्यों नहीं, वह अपने को सदाचारिणी के रूप में बदल पाती है।

लाली को अनिच्छा से ही शकुन के सहवास में आना पड़ा है, और ऐसी परिस्थिति में आकर, वह अपनी रक्षा आप करने में एक तरह से निरुपाय अपने को पाती रही; फिर भी उसने अपने मन में संतोष यह जानकर कर लिया कि जहर खाने में खतरा है - कुछ साथ रखने में नहीं।

मगर उस दिन, जब कि वह वापस आ रही थी तब उसे, अपनी इच्छा के विरुद्ध ही, वह भी करना पड़ा, जिसके लिए वह बिलकुल तैयार न थी। बात यह हुई कि जब शकुन अपनी कार ड्राइव करते हुए अपने बंगले के पास आ पहुँची, उसने कार रोक दी और लाली से अनुरोध किया कि कुछ क्षण के लिए वह उसके घर पर उतर कर उसे पवित्र करे! शकुन्ती का अनुरोध, लाली में उतनी सामर्थ्य कहाँ कि वह टाल सके! लाचार उसे उतरना पड़ा। शकुन बड़े आदर से उसे लिवा ले गई अपने ड्राइंग रूम में। उसने बतियों और पंखों के लिए स्वीच दबा दी-फिर उसे एक सोफे पर बिठलाकर और यह कहते हुए कि कुछ क्षणों के लिए वह बाहर से आ रही है-वह निकली और कार पर बैठकर रंगा को पहुंचाने के लिए चल पड़ी ! इधर लाली अकेली, सारे खुले हुए कमरे, न किसी के आने की आहट, वह चौंकी पर वह स्थिर होकर बैठी न रह सकी ! वह धूम-धूमकर ड्राइंगरूम की सजावट देखती रही और इस तरह देखते-ही-देखते वह बगल वाले कमरे में जाने के लिए भी अपने को रोक न सकी, जहाँ उसने देखा कि बड़ी-बड़ी नंगी तस्वीरें दीवारों में टंगी पड़ी हैं-ऐसी तस्वीरें जिन्हें बहुत कम आदमी आँखें

खोलकर देखना पसंद करेंगे। इतना ही नहीं, बड़ी लम्बी-चौड़ी पलंग पर काफी मोटे गडे पड़े हुए, उपर से दूध-सी धुली चादर डाली हुई और उस पलंग के चारों ओर की दीवारों में आदमकद के आईने जड़े उसे लगा कि जैसे साक्षात् वह कामदेव का प्रमोद-गृह हो! उसकी दृष्टि जिधर घूम जाती, उसकी आकृति अनेक रूपों में उसे दीख पड़ती। उसे अब तक अपने को इतना खुलकर देखने का कभी अवसर न हाथ लगा था। पर आज जब कि वह अपने को अनेक रूपों में पा रही है, तब उसे लगा कि वह भी कुछ कम सुन्दर नहीं है, और स्वभावतः उसकी प्रकृति विलास की ओर अग्रसर हुई। उसे जान पड़ा कि जैसे उसके अंग-प्रत्यंग में बिजली का करेंट छू गया है ! लग रहा है जैसे उसमें अलसता घर कर रही है, लग रहा है जैसे उसकी आँखों में न जाने कैसा नशा घर करता जा रहा है। लाली खड़ी न रह सकी, वह पलंग पर बैठ गई; मगर बैठते ही उसकी इच्छा हुई कि वह जरा लेट जाय और वास्तव में वह अपनी दोनों बाहें ऊपर की ओर फैलाकर चित्त हो बिछावन पर लेट गई।

वे कुछ क्षण किस तरह लाली के बीच से निकल गये, उसे इसका ख्याल तक न रहा। मगर शकुन ने जब अपने कमरे में पहुँचकर लाली-लाली कहकर पुकारा तब लाली धड़फड़ाकर बिछावन से उठी और लजाती हुई ड्राइंग-रूम में आकर बोल उठी-क्या उन्हें पहुँचा आई?

-हाँ, पहुँचा आई-शकुन हँसती हुई बोली-मगर घबारने की बात नहीं लाली, तुम्हें मैं यहाँ रोके न रखूँगी। जानती हूँ कि आज तुमलोग नये घर में आये हो, नई-नई चीजें ली गई हैं, और दिल में नई उमंगें भी होंगी! मैं अभी तुम्हारे कमरे को अपने हाथों सजा भी आई हूँ; अब तुम्हें सजाना बाकी रह गया है, जिसके लिए मैं तुम्हें यहाँ अब तक रोके हुए हूँ। क्यों, घबरा तो नहीं रही हो?

-नहीं तो! -कहकर लाली कुछ क्षण तक रुकी रही, फिर बोल उठी आप मेरे लिए इतनी तकलीफ क्यों उठायगी? आपने कहा और मैं उतर गई यहाँ.....

-सो तो ठीक किया लाली!.-शकुन उसका हाथ पकड़े हुए अपने सोने वाले कमरे में ले गई; जहाँ से वह कुछ क्षण पहले खुद निकल आई थी।

शकुन ने स्वीच दबाई और पंखे भी खोल दिये उसके बाद लाली को पलंग पर बिठाते हुए बोली-तुमसे मुझे बहुत कुछ कहना था लाली और इसीलिए मैंने जान-बूझकर अभी तुम्हें तकलीफ दी है! अब जब कि तुम्हें हमलोगों के बीच रहना ही है, तब क्यों नहीं अपने मन को साफ कर रहा जाय ! क्या खयाल है तुम्हारा ?

लाली की दृष्टि दूसरी ओर लगी थी, और मस्तिष्क दूसरी ओर । वह शकुन की बातों पर क्या कहे ! जिस शकुन के प्रति बरसों से उसको धारणा एक रूप में बंधी थी, जिसके साथ उसके दिल का कोई मेल नहीं, लाली ऐसी अवस्था में पहुँचकर अगर गूँगी बन बैठे, तो उसका कुसूर क्या ? मगर शकुन्तला तो काफी चतुर है, वह क्यों कर उसे बन्दिनी के रूप में, उसकी इच्छा के विरुद्ध, रोके रख सकती है ! इसलिए शकुन स्वयं बोल उठी-आज मैं अपने को खोलकर तुम्हारे सामने रखूँगी ही लाली, मैं जैसी भी रही हूँ, मैं नहीं चाहती कि तुम्हें अपना रूप विकृत करके दिखलाऊँ । और इससे कुछ लाभ भी तो न होगा ! न तुम्हें संतोष होगा और न मुझे तृप्ति मिलेगी । मगर बातें तो पीछे होंगी, पहले मैं तुम्हें सजाऊँ क्यों नहीं ।

शकुन बोलकर उठ पड़ी और पास की रखी हुई शीशे की श्रृंगार-टेबिल को दराज से तेल, स्नो, पाउडर, कंधी-ब्रस आदि चीजें निकालकर लाली के सामने रखती हुई बोली-अब सजाने दो लाली, मुझे अपने सरीके से !

और ऐसा कहकर उसने लाली का जूँड़ा खोल दिया । लाली लजाकर रह गई; पर उसके सामने जैसे वह पंगु हो गई हो ! उससे कुछ करते न बना शकुन ने जैसा चाहा और जिस रूप में चाहा, उसे सजाने में लग गई ।

और ठीक उसी समय शकुन ने अपनी कहानी भी शुरू कर दी । शकुन्तला अपने साथ लाली के नये कपड़े लिये आई थी, जिन्हें ड्राइंगरूम में ही उसने छोड़ रखा था ! केश-विन्यास हो जाने के बाद शकुन उन्हें उठा लाई और खुद उन्हें पहनाने में लग गई ! ऐसा करने के समय, लाली को एक तरह से नग्न हो जाना पड़ा, जिसके लिए उसने बड़ी आपत्ति जनाई । पर शकुन की चतुराई के सामने वह अवश ही रही । जैसा उसने चाहा, लाली को सुसज्जित करके ही दम लिया । जब लाली सज-सजाकर तैयार हुई, तब शकुन ने उसके

गालों को चूमते हुए कहा-अब देख लो, लाली, अपने को आईने में! कौन न कहेगा कि लाली अप्सरा नहीं है!

और लाली भी अपने को रोक न सकी, उसकी आँखें अचानक सामने के आईने की ओर गई और उसने आश्चर्य से देखा कि वह तो लाली नहीं है, जो है वहाँ, वह तो अप्सरा ही हो सकती है, लाली नहीं!

मगर शकुन ने अपनी कहानी जिस रूप में उससे कह सुनाई, लाली ने कुछ तो उसे सुना और कुछ न भी सुन पाया। वह तो स्वयं अपने से बहुत दूर निकल आई थी, जहाँ से उसे अपनी जगह पर लौट जाना संभव नहीं था! शकुन तो ऐसा चाहती ही थी, उसने इसीलिए तो उसे अपने यहाँ रोक रखा था, ताकि वह स्वयं महसूस कर सके कि वातावरण किस तरह मनुष्य के मस्तिष्क पर अपना प्रभाव-विस्तार करता है! शकुन ने उसे स्वयं अपना उदाहरण आप बनाकर उसके सामने पेश करना चाहा था और वह अपने उद्देश्य में बहुत कुछ सफल भी रही। जो लाली कुछ क्षण पहले तक अपनी देह पर मक्खी तक न बैठने देना चाहती थी, वह शकुन्तला जैसी उपेक्षिता रमणी की ओर आकर्षित हो उठे - इससे बढ़कर शकुन्तला के लिए सफलता की बात और दूसरी हो ही क्या सकती है! और इसीलिए तो वह शकुन्तला काफी खुश थी! आखिर अपनी विजय पर किसे नहीं प्रसन्नता उपलब्ध होती है!

उस दिन शकुन ने खाने-पीने का आग्रह न किया लाली से; मगर उसने जरूर जायकेदार सर्वत का एक ग्लास उसके भेंट किया और लाली ने सहर्ष उसे स्वीकृत भी किया।

उसके बाद लाली अपने बंगले पर पहुँचा दी गई, शकुन खुद से उसे अपनी कार पर पहुँचाने आई। लाली को जब कार से उतारकर वह मुड़ने को हुई, तब उसने उसके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की और बड़े अनुनय में बोली-बहन, एक दिन तुम्हें मैंने बड़ा अपमानित किया था, आज तुमने उसका बदला मुझे दूसरे रूप में चुकाया। क्या मैं इसे कभी भूल सकूँगी?

-अच्छा-अच्छा, रहने भी दो, लाली, बहुत हो चुका-कहती हुई शकुन्तला अपने घर को ओर चल पड़ी।

लाली ने जैसे ही रंगा के कमरे में प्रवेश किया, रंगा विस्मित होकर बोल उठा-तुम हो भाभी! वाकई, तुम हो भाभी!

और भाभी ने ओठों पर मुस्कराहट और आँखों में मदिरा लिये उत्तर में उसके कंधे पर हाथ रखकर कहा-हाँ, मैं ही रंगलाल! क्यों!

• • •

आनंद और उल्लास के बीच कई महीने निकल गए। पर ये दिन लाली के लिए स्वप्न मात्र रहे। रंगा जिस तरह अपने अनुसंधान-कार्य में लगा था, उसी तरह लगा रहा। अलबत्ता संध्या और रात के कुछ घंटे क्लब, आपेरा, डीनर और सिनेमा में बीतते। जरूर ऐसे वक्त में भी उसे अपना ख्याल भी रहता; पर लाचारी थी और इसलिए कि वह ऐसी सोसाइटी में आ मिला था, जहाँ उसे बचने की आशा कम थी और बिगड़ने की ज्यादा! रंगा अबतक जिस गति में अपने शोध का काम कर रहा था, उसी गति के साथ वह बढ़ना चाहता था! उसने जो डिजाइनें ईजाद को थीं, मिल की ओर से वे रजिस्टर्ड होने को भेज दी गई थीं और इधर मैनेजिंग डाइरेक्टर ने उसे इजाजत दे रखी थी कि इस काम में वह लगा रहे और इसके लिए जो भी खर्च होंगे, कंपनी उन्हें अपने सिर उठायगी। यों रंगा की तरक्की काफी हो चुकी थी, ऊपर से तीन हजार का इनाम भी मिला था। मगर रंगा इतने से ही खुश न था। वह चाहता था कि इस काम में हृद-से-हृद जहाँ तक वह बढ़ सकता है, उसे बढ़ना चाहिए। वह मिलों में कम जाता, उसका काम या तो उसके बंगले पर ही होता, या मिल की लेबोरेटरी में।

एक दिन रंगा को मिस्टर वर्मा ने अपनी कोठी में बुलवाया और इस संबंध में अनेक तरह की बातें की। उन्होंने प्रसंग में यह भी कहा कि अगर इस काम को लेकर कुछ दिनों के लिए वह बंबई के आपेरा-मिल्स की लेबोरेटरी में सीखना चाहे, तो मिल की ओर से वह भेजा जा सकता है, बशर्ते जो भी वह ईजाद कर पायगा, उस पर मिल का अधिकार स्वीकार करना होगा, अलबत्ता वह इसके लिए और भी पुरस्कृत किया जायगा। रंगा ने बड़ी उत्सुकता से अपनी सम्मति जनाई और जल्द-से-जल्द वह वहाँ जाने की तैयारियों में भी लग गया।

मगर जब रंगा ने बंबई जाने की बात अपनी भाभी से कह सुनाई और उसने चाहा कि वह भी उसका साथ दे, तब लाली जरा अप्रस्तुत-सी दीखी। सच तो यह है कि नये बंगले के ऐशो-इसरत में लाली यहाँ तक डूब चुकी थी कि उसे दूसरी जगह पसंद ही नहीं आती थी। साथ ही, वह जानती थी कि रंगा-जैसे कार्य-व्यस्त आदमी के साथ बंबई-जैसे शहर में जाकर वह न तो आराम ही पा सकती है और न आनंद ही। वह तो तीन सौ महीने को ही अपने लिए बहुत अधिक समझ रही थी और इसीलिए तो उसने रंगा से भी कह डाला कि रात-दिन कमरे में कैद रहकर पैसे कमाने की चिन्ता करना मूर्खता है! यों तीन सौ क्या कुछ कम है! जब तीस मिलते थे, दिन मजे के कट जाते थे, फिर मन की शांति के लिए संतोष चाहिए! मगर रंगा ठीक इस विचार के प्रतिकूल चलनेवाला व्यक्ति था। वह नहीं चाहता था कि रास्ते में चलते-चलते रुक जाय। जहाँ तक उसकी शक्ति है वह रास्ते पर बढ़ेगा ही। मगर रंगा खुश न दिखा। उसके सामने एक समस्या थी और वह यह कि अकेली उसकी भाभी रह कैसे सकेगी और इसी विचार को लेकर वह कुछ दिनों तक सोचता रह गया; पर इस संबंध में उसने लाली से राय लेना उचित न समझा।

मगर इन दिनों रंगा अपनी भाभी से बहुत कम बातें करता है, शायद लाली भी उसकी छाया से भागती-सी रहती है। इस तरह एक साथ रहते हुए उन दोनों में एक ऐसे व्यवधान की सृष्टि हो गई, जिसके लिए वे दोनों अलग-अलग तो सोचते जरूर; पर इसका अंत कैसे हो-वहाँ तक ये दोनों पहुँच नहीं पाते। शकुन को इसका पता लग चुका है, वह यह भी जान चुकी है कि इस मनोमालिन्य का परिणाम यह होगा कि रंगा पंगु हो जायेगे और वह उसे इस रूप में देखना कभी गवारा नहीं कर सकती। मगर शकुन लाली के घर बहुत कम जाती है और इसीलिए कि लाली को उसका आना-जाना पसंद नहीं। लाख यत्न करने पर भी लाली की धारणा, जो शकुन के प्रति बंध चुकी थी, बदल न सकी। मगर रंगा पर शकुन का वैसा ही प्रभाव है और इसीलिए जब कभी रंगा अधिक उद्धिष्ठ हो पड़ता है, तब शकुन उसमें जीवन भरती है। यही कारण है कि रंगा ऐसे अवसर पर अवश्य शकुन की ओर चल पड़ता है।

और रंगा जब अधिक उद्धिग्न हो चुका, तब वह एक संध्या को शकुन के घर जा पहुँचा। शकुन बड़े चाव ले मिली, कुशल-समाचार पूछे कि वे दोनों घुल मिलकर घंटों बातचीत करते रहे। इसी प्रसंग में उसने अपनी कठिनाइयाँ कह सुनाई और यह भी कह दिया कि चाहे जो भी हो, वह बंबई जायगा ही। शकुन ने भी उसकी हिम्मत बँधाई और उससे खुलकर कह दिया कि उसे चल ही देना चाहिए। लाली कुछ बच्ची नहीं है, वह ठीक-ठिकाने से यहाँ रह लेगी, ऐसी कुछ डरने की बात भी तो नहीं है। वह क्यों सिर्फ उसे जोगने के लिए इस तरह अपनी जिंदगी बर्बाद करे। आखिर, निश्चय हुआ कि वह कल की बंबई मेल से यात्रा कर दे। इसके बाद इधर-उधर की और भी बात होती रहीं। अंत में रंगा शकुन से उत्साह पाकर अपने बंगले पर लौट आया।

दूसरे दिन तड़के उठकर वह मिस्टर वर्मा से मिलने को चल पड़ा। उन्होंने जब सुना कि रंगा आज की ट्रेन से ही रवाना होने को है, खुलकर अपनी प्रसन्नता प्रकट की और अपनी ओर से खर्च के लिए पाँच सौ के नोट भेट किये। रंगा खुशी-खुशी वापस लौट आया।

उस दिन रंगा नहा-धोकर जब दिन का खाना खाने को बैठा, लाली भी वहीं बैठकर उसे पंखा झल रही थी। इधर रंगा बहुत कम अपनी भाभी से बातें करता आ रहा था; पर आज उसे लगा कि वह अपनी भाभी से खुलकर अपनी यात्रा की बातें करे। ऐसा सोचकर वह बोलने-बोलने को हुआ; पर किस तरह बातें शुरू की जाय, उसकी समझ में कुछ न आया। आखिर उसने तय किया कि जब उसकी भाभी खा-पीकर खुद तैयार हो जायगी, तब वह इस संबंध में उससे बातें करेगा और अंत में यही निश्चय कर उसने अपना भोजन शेष किया।

रंगा भोजन करने के बाद विछावन पर आकर लेट रहा, लाली उसके सामने पान की तस्तरी रखकर आप भोजन करने चली गई। रंगा लेटे-लेटे बड़ी देर तक तरह-तरह की बातें सोचता रहा। आखिर विछावन से उठ बैठा और कपड़ों की आलमारी से कपड़े और आवश्यक सामान निकाल-निकालकर अपने सूटक्रेश में भरने लगा।

लाली पाँव दबाये हुए उस कमरे में जाने कब से आकर खड़ी-खड़ी

तमाशा देख रही थी; पर रंगा का रुख दूसरी ओर था। इसलिए उसकी नजर लाली पर न पड़ी और न उसे यही अन्दाज लगा कि कोई वहाँ आकर पीछे से देख रहा है। मगर जैसे ही सूटकेस में ताले जड़कर रंगा दूसरी ओर को मुड़ा, उसने पाया कि लाली चुपचाप, जाने कबसे, आकर देख रही है ! रंगा इस बार चुप न रह सका, बोला-दो बजे बम्बई मेल छूटती है, भाभी ! आज वहाँ के लिए यात्रा करना जरूरी हो गया है !

जा रहे हो ! आज ? -लाली ने अपने दिल को थामकर पूछा ।

-हाँ, आज ही जाना है-संक्षेप में रंगा ने उत्तर में कहा ।

-मगर इतनी जल्दी जाने को कैसे तैयार हुए ? तुमने कहा तो नहीं !

-कहा था कैसे नहीं ? क्या तुम इतनी जल्दी भूल गई ?

-भूल न जाती तो क्या करती ? तुमने फिर से कभी चर्चा भी तो नहीं चलाई और शायद यह भी जरूरी न समझा गया कि आखिर कुछ सलाह-मशवरा तो कर लिया जाय ।

- रंगा क्षणभर सोचता रहा, लाली भी बोलकर चुप हो रही, कुछ क्षण तक वहाँ का वातावरण बड़ा धूमिल हो उठा, फिर अचानक रंगा बोल उठा -नहीं मैंने चर्चा की, यह ठीक है; मगर अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है भाभी ! तुम चाहो तो मैं नहीं भी जा सकता हूँ। आखिर मुझे तो तुम्हारी सुविधाएँ देखनी होंगी !

रंगा चुप हो रहा, मगर लाली भी चुप ही रही। शायद वह कुछ अधिक चिन्ता में डूबी हुई थी। हठात् रंगा ने पूछा-तो क्या कहती हो भाभी ?

-तुम आगे बढ़ना चाहो और मैं तुम्हें रोकने की कोशिश करूँ-इतनी मैं बेवकूफ नहीं हूँ, संलाल ! तुम जा सकते हो, मैं मजे में यहाँ रह लूँगी ।

-भय तो नहीं होगा यहाँ ? कहो तो, आदमी का इंतजाम कर दिया जा सकता है, जो यहाँ आकर रहे ।

-आदमी ? -लाली दर्द के साथ बोली-जरूरत नहीं आदमी की ! मुझे कोई डर नहीं है ।

-खैर, अच्छी बात है ! फिर भी कभी ऐसी जरूरत महसूस हो तो फोन कर देना, मिस्टर वर्मा आदमी का इन्तजाम कर देंगे ।

लाली चुपचाप रंगा की बातें सुनती रही; पर उत्तर में उसने कुछ न कहा। रंगा बिछावन पर आकर लेट गया। और कुछ क्षणों के बाद उसे नींद हो आई।

लाली अपने कमरे में चली गई। पर वह बड़ी खिन्न थी, जाने कौन सी चिन्ता में डूबी पड़ी रही।

कोई दो बजे के करीब कार दरवाजे पर आ लगी। लाली ने कार की आवाज सुनी, वह अपने कमरे से निकली और रंगा के कमरे में आकर देखा कि वह उसी तरह नींद में पड़ा है। लाली की दृष्टि घड़ी की ओर गई। उसने सोचा कि अब रंगा को जगा ही देना चाहिए। स्टेशन पहुंचने में आखिर वक्त तो लगेंगे ही।

और ऐसा समझकर लाली रंगा के पायताने बैठ गई और उसने अपना हाथ रंगा के पाँव पर रखा। रंगा चौंक उठा। उसने आँखें खोलीं, उसकी दृष्टि पायताने की ओर गई। उसने देखा कि भाभी का हाथ उसके पाँव पर पड़ा हुआ है। लाली ने उसे जगा हुआ जानकर कहा-अब तो जाने का वक्त हो गया है, रंगलाल! कार भी दरवाजे पर आ लगी है।

रंगा उठ बैठा और बाथ रूम में जाकर मुँह-हाथ धो आया। लाली अपने कमरे में आकर पान सजाने को बैठ गई।

रंगा ने कपड़े पहने और अपने कमरे से निकलकर भाभी के कमरे में पहुंचकर कहा-चलता हूँ, भाभी, आशीर्वाद दो कि मैं सकुशल लौट आऊँ। और इतना कहकर रंगा ने लाली के पैर छूये। भाभी ने उसे उठाकर आशीर्वाद देते हुए उसका मुँह चूम लिया। फिर उसके हाथ में नोट का एक बंडल और पान के डिब्बे देते हुए बोली-भगवान करे, तुम सफल होकर लौट आओ।

रंगा कमरे से बाहर निकला, कार के पास आया और सोफर से कहा कमरे से बेडिंग और सूटकेस ले आओ। सोफर भीतर गया और सामान लाकर कार पर रखा और अपनी सीट पर बैठकर गाड़ी स्टार्ट की।

गाड़ी चल पड़ी, लाली बरामदे पर से अपलक दृष्टि से देखती रही। जब गाड़ी आँखों के आङ्गल हो गई, तब वह अपने कमरे में आ बिछावन पर पड़ रही।

रंगा स्टेशन पहुंचा और सेकंड क्लास का टिकट खरीद कर गाड़ी में जा बैठा। गाड़ी छूटने में अधिक देरें थीं; मगर इसी बीच उसने देखा कि

शकुन कुली के सिर एक छोटा-सा सूटकेश और बेडिंग रखाये उस कमरे में आई और रंगा को देखते ही बोली-मुझे जरा देर हो गई आने में रंगलाल। मैं तो सोचती थी कि शायद अब गाड़ी न पा सकूँगी। सामान मेरा रखवाओ।

-क्या तुम भी कहीं जा रही हो, शकुन? -आश्चर्य में भरकर रंगा ने पूछा -हाँ, मैं भी जा रही हूँ। -शकुन ने धीमी आवाज में कहा।

-कहाँ तक साथ दोगी? -उत्साह से भरकर रंगा ने पूछा...

-जहाँ तक दे सकूँ। -सिर झुकाकर मुस्कराते हुए शकुन ने उत्तर में कहा। शकुन डिल्ले में आई और उसी समय गाड़ी ने सीटी दी। रंगा समझ नहीं सका कि शकुन इतना जल्द कैसे बाहर जाने को तैयार हो गई। वह विस्मय-विमुग्ध होकर शकुन की ओर ही देखता रह गया।

### (छालीस)

लाली और रंगा के बीच मनोमालिन्य की जो दीवार खड़ी हो चली थी, वह जमकर इतनी ऊँची और मजबूत बन गई उस समय, जब लाली को यह पता चल गया कि बंबई ले जाने में शकुन का जबर्दस्त हाथ है। लाली को एक तो यों ही उसकी शक्ति-सूरत और व्यवहार से नफरत हो चली थी, वह चाहती थी और सिर्फ चाहती ही न थी कि रंगा उसके बीच आये-जाये। बल्कि उसकी ऐसी कोशिश भी रही कि उसका रंगा यों लुक-छिपकर उससे मिलने को न जाया करे। मगर रंगा पर लाली का वैसा कुछ असर न हुआ, उल्टे रंगा शकुन से मिलने को बेचैन जैसा रहने लगा। लाली के लिए उस का यह व्यवहार असह्य हो उठा; मगर मजबूरी थी कि वह उसे रोके रहे। और इसीलिए उसने उससे बातें तक करना छाड़ डाला। फिर भी वह अपने रास्ते पर बढ़ता ही चला और अंत में यह भी हुआ कि वह बंबई के लिए चल ही पड़ा।

ऐसी हालत में, जब कि लाली ने रंगा के लिए अपना घर-वार छोड़ा, अपने पति को भी छोड़कर, अपने उपर कलंक की चादर डाल लेने में आगा-पीछा न सोचा, उसके लिए ऐसी घटना कितनी दुखद हो सकती है, रंगा ने एक बार भी विचार न किया। लाली करे तो फिर क्या करे! यद्यपि रंगा ने

जो कुछ कमाकर बचा पाया था, लाली ने उसे संभालकर रखा और पाई-पाई तक उसके हाथों ही खर्च होता रहा, रंगा ने कभी उसका हिसाब तक न तलब किया अपनी भाभी से और वे सभी बचे हुए रूपये लाली के पास ही धरे हैं, उसके लिए यह कम संतोष की बात न थी, तथापि रूपयों से दिल के घाव नहीं सूखते, और यहाँ रंगा की भूल थी। रंगा ने इन रूपयों का अधिकारी अपनी भाभी को ही बना छोड़ा था और इतना ही वह उसके लिए काफी समझे बैठा था। बात भी सच थी, रंगा इससे बढ़कर और अपनी भाभी के लिए कर भी क्या सकता था! अपनी ओर से रंगा ने काफी जान-बूझकर उसे खुश रखने की बराबर कोशिश रखी; मगर जहाँ उसका निजी स्वार्थ था, वहाँ वह लाली से स्वतंत्र रहा और इसीलिए उसने शकुन से मिलने में न तो किसी तरह का संकोच किया और न लाली की आपत्ति ही सहन कर सका।

और जब कुछ दिनों के बाद, अपने मिलने-जुलनेवालों से लाली को यह पता चल गया कि शकुन भी उसके साथ बंबई गई हुई है, तब तो वह जैसे आकाश से पाताल में जा गिरी। रंगा पर जैसा कुछ उसका विश्वास बच रहा था, वह छिन-भिन्न हो गया। उसने अपने को पाया कि वह सब तरह से असर्मर्थ है; उसे अपने घर की याद हो आई, याद आया उसका पति, जिसके साथ उसके यौवन का वसंत खिलने-खिलने को हो आया था। उसने उस गरीबी में रहकर अपने पति से जो मिठास पाया था, उसकी स्मृति उसकी आँखों पर खिंच आई। उसने अपने सतीत्व की रक्षा के लिए एक दिन तहसीलदार को जिस तरह अपदस्थ किया था, वह घटना उसके सामने चित्रित हो उठी। उसने महसूस किया कि उससे ऐसी भूल हो पाई है, जिसका प्रायश्चित संभव नहीं! वह घर को किस तरह लौट जाय? कौन उस पर हमदर्दी का हाथ बढ़ाकर उसे अपनेघर में लेगा? वह कहाँ है। कौन है उसके जीवन को सरस बनाकर ले जानेवाला? कौन उद्धार करेगा उसे इस पतन के गर्त से, जहाँ चारों ओर के व्यभिचार, अनाचार और कुत्सा की हवा से वह व्यथित हो उठी है! ऐसी जिंदगी से लाभ ही क्या! और ये रूपये? आखिर इन्हीं रूपयों के लिए तो उसे इस राह पर बढ़ने को वाध्य होना पड़ा था एक दिन! इन्हीं रूपयों के मोह ने ही तो उसकी आँखों में पट्टी बाँध रखी थी। एक दिन ये ही रूपये आनंद और शांति के उपादान समझे जाते थे; मगर अब?

आज ?-आह, मानव प्रकृति की कैसी विडम्बना है यह! लाली इससे आगे और कुछ न सोच सकी, वह अपने बिछावन पर गिर पड़ी, पता नहीं, कब तक वह रोती-विलखती रही! पर कौन उसके दुखों पर आँसू बहानेवाला था वहाँ, उसे अकेली अपने आपको छोड़कर!

लाली के सामने अंधकार का जो बादल मढ़ा आया था और जिसके बीच कुछ दिनों तक वह अपने-आपको घुट-घुटकर डाले रही, वह बादल एक दिन अनायास ही फट पड़ा, जब उसके सामने एक हँसता हुआ सौम्यमूर्ति युवक आ पहुंचा। वह था मिस्टर सक्सेना-मिल का असिस्टेंट इंजिनियर। मिस्टर सक्सेना का बंगला उसी महल्ले में था, जहाँ रंगा का था। वह विपलीक था; पर नौकर-चाकर-दास-दासियों की कमी न थी उसके यहाँ। वह रंगा की उपस्थिति में कई बार उसके बंगले पर आ चुका था और रंगा भी कई बार उसके बंगले पर जा चुका था। उसके अलावा रंगा अपनी भाभी के साथ क्लबों और पार्टीयों में उसके साथ जा चुका था और इस तरह लाली के साथ उसकी कुछ बातचीत भी होती रही थी। मगर अब वही मिस्टर सक्सेना, यह जानते हुए भी कि रंगा बंबई गया है, लाली के घर आया। लाली ने बड़े आदर-सत्कार से उसे बैठाया, उसे चाय पिलाई, पान खिलाये। मिस्टर सक्सेना ने उससे उसकी तकलीफें पूछी और अपनी सहानुभूति दिखलाते हुए यहाँ तक कह डाला कि अगर उन्हें यहाँ रहने-सहने में तकलीफें हों, तो वे खुशी से उनके बंगले पर जाकर रह सकती हैं! वहाँ उन्हें वह किसी तरह की तकलीफ न आने देगा। इसपर लाली भीतर ही भीतर बड़ी खुश हुई और इस कृपा के लिए उनका उपकार मानते हुए वह बोल उठो-आपकी कृपा रहनी चाहिए। पर अभी तो ऐसी कोई तकलीफ नहीं है और कभी आई, तो उस दिन खबर कर दूँगी। उस दिन मिस्टर सक्सेना खुश होकर चलता बना; पर उसका आना-जाना उस दिन से अनवरत चलता रहा।

लाली को जीवन में एक आधार मिला! ढूबने वाले को आधार चाहिए, भले ही वह आधार उसे आगे चलकर धोखा दे दे; मगर उस क्षण के लिए तो वह आधार भगवान का वरदान ही समझा जाता है। और लाली के लिए ठीक वही बात रही।

अब से छुट्टी के समय मिस्टर सक्सेना अपनी मोटर ड्राइव करते हुए लाली के घर पहुँचता। लाली उसे बिठाती और मिठाई-चाय-पान आदि से उसका सल्कार करती। मिस्टर सक्सेना उसे अपने साथ कभी क्लब में ले जाता, कभी सिनेमा देखने को जा पहुँचता। इस तरह उन दोनों में इतनी दूर तक अभिन्नता जा पहुँची कि लाली खुद उसके घर कभी-कभी जाती और जब कभी एकाध दिन मिस्टर सक्सेना गैर हाजिर हो जाता, तब वह अपने आप में कुछ कमी महसूस करती। उस दिन उसे बेचैनी का अनुभव होता और बुरी तरह से उस दिन उसकी रात कटती।

मगर एक दिन मिस्टर सक्सेना बड़ी रात को उसके घर आया। बंगला खुला हुआ था, बत्तियाँ जल रही थीं, लाली अपने कमरे में पलंग पर लेटी-लेटी करबट बदल रही थी। उसी समय बंगले में घुसते ही मिस्टर सक्सेना ने पुकारा-मिसेज लाली!

वह ड्राइंग रूम में ठिका रहा; मगर लाली अपने कमरे से बोल उठी -कौन मिस्टर सक्सेना?

और उत्तर पाते ही वह उठकर अपने दरवाजे के बाहर आई और बोली इतनी रात को कैसे आये मिस्टर सक्सेना! कहीं रास्ता तो नहीं भूल पड़े?

-आज शाम को जरूरी काम से एक दोस्त से मिलने को शहर चला गया था। लौटते समय सोचा कि आपसे मिलता चलूँ और इसीलिए चला आया। क्यों, आपको मेरे आने से कोई तकलीफ तो नहीं हुई?

-तकलीफ! - लाली हँसी - हाँ, हुई तो! -

-तो चला जाऊँ! माफ करें, मैंने सोने में खलल डाली। - इतना कहकर मिस्टर सक्सेना मुड़ने को हुआ कि लाली उसके पास आ पहुँची और उसका हाथ पकड़ते हुए बोली-यों ही आप नहीं जा सकते। जब आपने सोने में खलल डाली ही, तो क्यों न कुछ देर ठहरकर और खलल डालिए।

मिस्टर सक्सेना ज्यों-का-त्यों खड़ा रहा; मगर लाली ने उसे उस रूप में और अधिक ठहरने न दिया। बोली-आइए और जरा तशरीफ रखिए। मैं यों बाँधकर थोड़े ही रखूँगी।

और इतना कहकर लाली ने उसे एक सुन्दर सोफे पर बिठाया; फिर पंखे की स्थीच दबाकर वह भी बगल के सोफे पर आ बैठी।

मिस्टर सक्सेना यों भूलकर लाली के घर नहीं आया था। उसके आने का कोई खास उद्देश्य था य मगर वह बात चलाये तो कैसे? मिस्टर सक्सेना कुछ देर तक इसी पर सोचता रहा, फिर कुछ निश्चय कर बोल उठा-मिस्टर रंगलाल ने क्या इधर कोई खत भी भेजा है?

-नहीं तो-लाली उसको ओर मुखातिब होकर बोली-हजरत ऐसे नहीं हैं, जिन्हें खत लिखने को छुट्टी मिले!

-यह तो सरासर जुर्म है-गंभीर होकर सक्सेना ने कहा-परदेश में जाकर यों घरवाले को भूल बैठे, यह तो ऐसे ही आदमी से संभव हो सकता है! क्या आपने इस बारे में उन्हें कुछ खरी-खोटी नहीं सुनाई?

-मैं क्यों सुनाने लगी-लाली ने कुछ अन्यमनस्क होकर कहा-जब उन्हें किसी की परवाह नहीं, तब दूसरे को क्या गरज पड़ी है कि उन्हें खरी-खोटी सुनावे। दिन कट ही जाते हैं-कट हो जायेंगे।

-मगर! -मिस्टर सक्सेना व्यंग की हँसी हँस पड़ा, उससे आगे न बोला गया।

-मगर क्या? -लाली ने उत्सुक होकर उसकी ओर आँखें उठाकर देखते हुए पूछा। -मतलब यह है कि.....हाँ, कह रहा था - दिन तो कटकर ही रहेंगे मगर जिस तरह से कटना चाहिए, उस तरह से न कटा, तो जिंदगी का आखिर लुत्फ ही क्या!

-लुत्फ! -लाली सोचने लगी और कुछ क्षण के बाद एक सर्द आह छोड़कर बोली-लुत्फ, यह तो तकदीर की बात है मिस्टर सक्सेना! जिस पर अपना बस नहीं, उसे लेकर कितना सोचा जाय और ऐसा सोचने से लाभ ही क्या?

मिस्टर सक्सेना कुछ क्षण तक चुप साधे रहा, उसके बाद बोल उठा सभी बातें लाभ के लिए नहीं हुआ करतीं मिसेज लाली! आप भूलती हैं। तकदीर पर बैठे रहने से कुछ होता-हवाता नहीं-आप यकीन मानिये। यह वैज्ञानिक जमाना है, इस वक्त साइंस के सामने न तो कोई जाति है और न कोई धर्म। सभी अपने रास्ते पर बढ़ना चाहते हैं, पाबंदियाँ किसी को पसंद

नहीं। आजादी का जमाना है, क्या आप आजादी को पसन्द नहीं करती?

-किसी हद तक!

-आखिर वह हद कहाँ तक है?

-जितनी दूर तक दिल उसे कबूल करे!

मिस्टर सक्सेना को कुछ सहारा मिला। उसे कुछ आशा भी बंध आई, और वह कुछ उत्कूल होकर बोल उठा- तो मैं आपसे कुछ अर्ज करूँ -क्यों नहीं।

-तो क्या आप मेरे साथ रहना पसंद करेंगी?

लाली भीतर-ही-भीतर चमक उठी, उसकी छाती धक-से हो उठी; मगर उसने अपने-आप को जब्त कर लिया और अपने आप को सँभालती हुई वह मुस्कराहट लिये बोल उठी-मैं तो आपके साथ हूँ ही, फिर पसंद की कौन-सी बात रही!

-वाकई-वाकई आप सच कह रही हैं ?

-क्या मैं झूठ कह रही हूँ? मगर मिस्टर सक्सेना को लाली की बातों पर विश्वास न हुआ। इतना जल्द उनके प्रस्ताव का समर्थन एक युवती सहसा कर सकेगी - मिस्टर सक्सेना को यकीन न हुआ। वह फिर से उत्कृष्ट होकर, उसकी ओर झुककर, बोल उठा-मेरा कहना शायद और कुछ था। जहाँ आप नहीं पहुंच रही हैं!

लाली ने मिस्टर सक्सेना की ओर मदभरी आँखों से देखा और मुस्कराते हुई बोल उठी-जब आपको लग रहा है कि मैं वहाँ तक पहुंच नहीं आ रही, तब क्यों न आप खोलकर ही अपनी बात मेरे सामने रखें? कहिए, साफ-साफ जो कुछ आप कहा चाहते हों।

-तो आप सुनेंगी ?

-आखिर सुनने के लिए ही तो कह रही हूँ!

बात यह है कि अभी जो आप मेरा साथ दे रही है, यह साथ दूसरी तरह का है! मैं तो चाहूँगा कि आप रंगा को भूल जायें, जिन्हें आपकी तकलीफों का खयाल नहीं, जिन्हें मिसेज शकुन के साथ बंबई की सैर पसंद है। क्या आपके लिए यह फर्ज नहीं कि आप अपनी आजादी से काम लें और

मैं तो ओहदे में, इज्जत में, धन में मिस्टर रंगालाल से किसी तरह घटकर नहीं! वहाँ आपको पूरी आजादी रहेगी, धन और इज्जत आपके कदमों पर न्यौछावर होगी!

मिस्टर सक्सेना ने लपककर लाली का हाथ अपने हाथों में लेते हुए फिर से कहा-क्या सोच रही हो, डार्लिंग! बोलो, दिल को शाद करो।

लाली का सारा शरीर कँप उठा, उसकी ललाट पर पसीने की बूंद निकल आई। पंखा तेज रफ्तार में चलते हुए भी उसे हो रहा था कि उसे और भी हवा चाहिए। उसने धीरे से अपना हाथ खींच लिया और कुछ सहमते हुए वह बोल उठी-इस विषय पर सोच लेने का मौका दीजिए मिस्टर सक्सेना। अभी मैं ज्यादा बैठ नहीं सकती। मैं इसका जवाब बहुत जल्द दूंगी आपको। क्या कुछ हर्ज है, मौका देने में?

-नहीं तो-नहीं तो, डार्लिंग! मगर कब तक मैं जवाब पाने की उम्मीद करूँ?

लाली मिस्टर सक्सेना की बातों पर ठहाका मारकर हंस पड़ी और हँसती-हँसती ही बोली-आप बहुत जल्दबाज आदमी हैं, मिस्टर सक्सेना! आपको मेरी बातों पर यकीन होना चाहिए। क्या आप समझ रहे हैं कि यह बात सिर्फ दो-एक दिन के लिए है?

मिस्टर सक्सेना कुछ लज्जित हुआ, लाली उठने-उठने को तैयार थी, मिस्टर सक्सेना ने और ठहरना उचित न समझा और उठते हुए कहा-वो क्या आप सिनेमा में चलेंगी! रीगल में आजकल बड़ी अच्छी फिल्म चल रही है! क्या मैं कल आजँ आपको ले चलने?

-हाँ, हाँ, क्यों नहीं।

और दोनों उठ पड़े। मिस्टर सक्सेना कमरे से बाहर हुआ। लाली ने बाहर वाले दरवाजे को बंद किया और बत्तियों और पंख की स्वीचें दबाई, फिर अपने कमरे में आकर बत्तियाँ बुझा दी और पंखा खोल कर बिछावन पर लेट रही।

लाली को एक रहस्यमयी रमणी के रूप में समझते हुए मिस्टर सक्सेना अपनी कार पर बैठकर अपने बंगले की ओर चल पड़ा।

और लाली बिछावन पर, उस अंधकारमय कमरे में लेटी हुई सोचने  
लगी कि मिस्टर सक्सेना क्या है और रंगा क्या है? दोनों में क्या अंतर है!  
कौन ग्राह्य है, और कौन त्याज्य !

### (संतालीस)

रंगा ने अपने जीवन में यात्रा बहुत कम ही की थी, इसलिए बंबई-जैसे सुदूर प्रान्त की यात्रा उसके लिए कठिकर हो सकती थी; पर शकुन का अचानक उसका साथ हो जाना उसके लिए इतना आनन्दप्रद रहा कि उसने एक क्षण के लिए भी महसूस नहीं किया कि वह सुदूर प्रदेश को आ पहुँचा है, जहाँ अपना कहाने वाले व्यक्ति का सर्वथा अभाव है। मगर रंगा की समझ में यह न आया कि क्यों उसके साथ आने को तैयार हुई। अगर वह आना चाहती थी, तो क्यों नहीं उसने पहले साफ कह दिया वह भी उसका साथ देगी। आखिर, शकुन ने ऐसा किया क्यों? वह आखिर रंगा से क्या चाहती है, क्यों वह छाया-सी रंगा के साथ साथ घूमना चाहती है, आखिर रंगा पर उसकी कृपा या मोह क्यों है ?

रंगा ने इसके पहले बहुत कम, मगर बंबई-प्रवास में बहुत अधिक इस विषय पर सोचा है, और जब-जब उसने सोचा है, तब-तब शकुन उसके लिए और भी रहस्यमयी नारी हो उठी है। आखिर शकुन क्या है? वह इतनी रहस्यमयी क्यों हैं? क्यों उसका पीछा कर रही है वह? क्यों वह लाली से प्रताङ्गित होकर भी रंगा को छोड़ना नहीं चाहती? ये सब बातें ऐसी थीं, जिन्हें रंगा उठते-बैठते, सोते-जागते भूल नहीं पाता था। शकुन जानती थी और उसे लगता था कि रंगा के लिए वह वास्तव में एक रहस्य बन गई है और वह रहस्य रंगा को अशांत-उद्ध्रभान्त किये रहता है। तो क्या शकुन उसके पथ का कंटक है? क्या वह रंगा के पथ को रोकने के लिए ही उसका साथ दे रही है? शकुन इन विषयों पर काफी सोच चुकी है-अब भी सोच रही है और उस दिन भी उसने सोचा था, जब वह साथ देने को तैयार होकर ट्रेन पकड़ने को सब कुछ छोड़कर चल पड़ी थी। शकुन चाहती है कि वह अपने को पूरी तरह

खोलकर रंगा के सामने रख दे । रंगा ने अबतक शकुन का जो चित्र अपनी आँखों देखा है या उस चित्र के संबंध में लोगों से जैसा कुछ सुना है, शकुन चाहती है कि रंगा अधूरा चित्र को ही देखकर न रह जाय और उसीको देखकर वह अपनी धारणा न बना ले । शकुन ने वह चित्र एक दिन लाली को भी दिखाना चाहा था और उसने कोशिश भी की थी कि वह पूरी-की पूरी तस्वीर देख ले । मगर लाली की दृष्टि इतनी सजीव न निकली कि वह चित्र का मूल्य ठीक-ठीक आँक सके । फल बुरा हो रहा, शकुन उसको आँखों से और भी गिर पड़ी और इतनी दूर गिर पड़ी कि लाली के सामने उसका मूल्य उतना ही आँका जा सकता है, जितना कोढ़ से लुंज हुए व्यक्ति का होता है । तो क्या शकुन अपना चित्र रंगा के सामने पेश न करे?

शकुन रंगा के साथ रह रही है, सिर्फ कुछ घंटों के लिए जब कि रंगा प्रयोगशाला में जाया करता है, उससे अलग रहती है । रहने के लिए दोनों का एक ही कमरा है, मगर इतना साथ-साथ रहकर भी रंगा अपने को बचाये लिये चल रहा है । शकुन चतुर है, काम करने में जरा उसे आलस्य नहीं, खाना खुद पका लिया करती है, कपड़े खुद फींच लिया करती है, बिछावन खुद से

बिछा लेती है, यहाँ तक कि रंगा को प्रयोगशाला जाने के लिए खुद से तैयार कर भिजवाती है । रंगा को लगता है कि शकुन उसके लिए सब कुछ है । ममतामयी है, वह स्नेहमयी है, वह सेवा करना जानती है । वह सदा प्रफुल्ल रहती है और दूसरों को भी प्रफुल्ल रखना जानती है । रंगा कृतज्ञ है उसका और वह कृतज्ञ रहना चाहता है । वह ऐसी सेवामयी, ममतामयी शकुन को किस बल पर, किस बिना पर, राक्षसी कहने का साहस करे! फिर लाली की आँखों में शकुन क्यों बुरा है? क्यों लाली सदैव चाहती रही है कि वह (रंगा) उसकी छाया से अलग रहे?

रंगा निरंतर इन प्रश्नों पर सोचता रहा है । मगर उसने भी खुलकर किसी दिन शकुन से इन प्रश्नों का उत्तर पाने की कोशिश नहीं की । शकुन अपने को दिखलाना चाहती है, रंगा भी उसको देखना चाहता है; मगर न तो शकुन को ऐसा अवसर हाथ आता है और न रंगा को देखने का! फिर भी दोनों साथ-साथ रहते हैं-बिलकुल पास- बिलकुल करीब-एक कमरे में शायद

एक ही बिछावन पर-शायद एक ही फूट के फासले पर और अवकाश को भी तो कभी नहीं-रंगा को प्रयोगाला के लिए सिर्फ चार घंटे निर्धारित हैं ! फिर तो सारा दिन, सारी रात उसकी अपनी है। आखिर अवसर क्यों नहीं है? और अचानक वह अवसर भी एक दिन आ ही पहुंचा, जिसका शायद शकुन ने भी कभी अनुमान नहीं किया था। मगर वह अवसर आया दिन पर बड़ी दुखद घटना लेकर ।

उस दिन अचानक गहरी रात के समय शकुन अपनी छाती की भयंकर पीड़ा से छटपटा उठी। उसने चाहा कि वह चुपचाप अपने को सँभाले चले, रंगा को अपनी पीड़ा की सूचना तक न दे मगर उसका दर्द बढ़ता ही गया और वह यहाँ तक बढ़ा कि उसके लिए अब निच्छेष्ट पड़ी रहना कठिन हो उठा। शकुन को बीच-बीच में ऐसा दर्द उठा करता था, जिसके लिए उसने दवा-दारू मी करवाई और सदा संयमनियम का पालन भी वह करती रही। पर वह दर्द जब से दूर हुआ नहीं, कभी-कभी वह उखड़ता रहा और इतनी जोर से उखड़ता रहा कि अगर आदमी न लगा रहे, तो उसकी मौत तक हो जा सकती थी। उस रात को भी ऐसा ही दर्द उखड़ पड़ा और जब वह सब तरह से निरुपाय हो गई, तब उसे वाध्य होकर रंगा को जगाना पड़ा! रंगा उठा और उसने अंधकार में ही जैसा कुछ अनुभव किया, वह स्थिर न रह सका। वह उठ खड़ा हुआ। उसने लाइट की स्वीच दवाई और पाया कि शकुन मुर्ग बिस्मिल-जैसी छटपटा रही है। वह चिह्नित उठा और घबराकर बोल उठा-शकुन, बात क्या है ?

-बात !.-शकुन ने बड़ी कठिनाई से रुक-रुककर कहा-पंखा खोल दो, मुझे हवा चाहिए-हवा चाहिए।

रंगा ने पंखा खोल दिया और जितनी तेज रफ्तार में उसे चलना चाहिए, उतनी रफ्तार तक उसे चलने दिया।

रंगा उसके पास बैठ गया। शकुन उसी तरह बिछावन पर छटपटाती रही! रंगा ने घबराकर पूछा-क्या डाक्टर को बुलवाऊँ शकुन?

-नहीं-शकुन बड़ी कठिनता से बोली-कोई लाभ न होगा। इधर आओ।

रंगा आगे बढ़ा ।

-देखो, ब्लाऊज का बटन खोल दो-खोल दो रंगलाल । खड़े क्यों हो?

रंगा सकुचाया; मगर शकुन समझ गई । उसने देखा कि रंगा ज्यों जड़ बने नीचे की ओर ताक रहा है । शकुन ने रंगा की ओर ताका, फिर वह बोल उठी-खोलते क्यों नहीं रंगलाल, लजाने की कोई बात नहीं! तुम्हारे सिवा मेरा यहाँ और है कौन? खोल दो, छाती फटी जाती है, मुझे हवा चाहिए-और हवा चाहिए । उफ, जान निकली जा रही है!

रंगा ने परिस्थिति का अनुभव कर अपने मन को कड़ा किया, फिर उसने ब्लाऊज के बटन खोले, फिर भीतर की कंचुकी खोली और देखा कि सारा बदन पसीना से तर हो उठा है । रंगा ने परिस्थिति की गुरुता पर विचार कर कुछ साहस से काम लिया, कहा-क्या निकाल दूँ.....इन्हें, शकुन?

-हाँ, निकाल दो ! बिलकुल निकाल दो ।

रंगा ने ब्लॉज और कंचुकी देह से हटा दी; मगर वह साड़ी के अंचल को उसकी छाती पर रखना चाहता ही था कि शकुन ने कहा-इसकी कोई जरूरत नहीं रंगलाल! देखो, तुमसे जितना जोर से हो सके, सीने को दबाये रहो-जितना जोर से दबा सकोगे, उतना ही मुझे आराम मिलेगा । रंगलाल, सोचते क्या हो ? कह जो रही हूँ, पाप नहीं लगेगा । डरो नहीं, शौक से नहीं कह रही हूँ-वेश्या नहीं हूँ-पतिता नहीं हूँ, घबराओ मत!

रंगा सोच नहीं पा रहा था कि उसे क्या करना चाहिए । इतना उलंग शरीर कभी कहीं देख नहीं पाया था उसने ! आज वह क्या देख रहा है औँखें फाड़कर और वह क्या करने जा रहा है-रंगा सोचकर कुछ भी नहीं पा रहा । उधर शकुन दर्द से बेचौन हुई जा रही है । आखिर रंगा को तैयार होना पड़ा; मगर उसने आहिस्ते से सीने पर हाथ रखा लजाते हुए, शकुन ने उसके दोनों हाथों को पकड़ लिया और पकड़े हुए ही उसने, जहाँ दर्द अधिक था, कहा देखो, इस जगह दबाओ-जितना जोर लगा सको लगाओ, घबराने की बात नहीं! देखो, कुछ ही देर में अच्छी हुई जा रही हूँ।

रंगा ने उसके सीने को अपनी सारी शक्ति लगाकर इतनी जोर से दबाया कि उतना जोर साधारण आदमी शायद ही बर्दाश्त कर सकता! इससे रंगा को विश्वास हो चला कि दबाना ऐसी हालत में कितना जरूरी था ।

आपद्वशा में ही तो उसे ऐसा करना पड़ रहा है ! रंगा ने अपनी ओर से उसकी सेवा करने में उस रात को कुछ उठा नहीं रखा उसने देखा कि इस तरह दबाने से उसकी छटपटाहट धीरे-धीरे दूर होती जा रही है। उसे अब पूर्ण विश्वास हो चला कि जरूर इस तरह उसे शांति मिल रही है। अब रंगा को जरा भी झेंप न रही। शकुन उलंग पड़ी हुई है, रंगा जोर से दबा रहा है। न उसके मन में कुछ स्फुरण है और न कोई भावना ही। वह जैसे निर्विकार चित्त से सेवा में लगा हुआ है, जो ऐसे अवसर पर करना उसके लिए अनिवार्य हो उठा था।

कोई घंटे भर के बाद शकुन को थोड़ी शांति मिली; पर रंगा अपनी सारी शक्ति लगाने के कारण पसीने-पसीने हो रहा था। शकुन को उसे देखकर लगा कि जैसे रंगा थककर अवश हो पड़ा है, उसे आराम करने का अवसर मिलना चाहिए। इसलिए शकुन बोल उठी-लाइट आफ कर दो, रंगलाल !

रंगा ने बायाँ हाथ बढ़ाकर स्वीच दबा दी। कमरा अंधकार से भर गया। तब शकुन ने कहा-अब लेट जाओ रंगलाल, तुम थक चुके हो। थक चुके हो न रंगलाल !

-नहीं, ऐसा कुछ तो थका नहीं हूँ! मगर जान पड़ता है कि आराम है तुम्हें। क्या और दबा दूँ?

-हाँ, बहुत आराम है; मगर अब दबाने की जरूरत नहीं! हाँ, तुम लेट जाओ, यहीं, इसी जगह, मेरी छाती पर सिर रखकर। कुछ तो भार मिलेगा-हाँ, इस तरह भी बहुत-कुछ आराम ही मिलेगा मुझे।

रंगा उसी जगह लेट गया; पर जरा हटकर, सिर तकिए पर रखे हुए। शकुन ने टटोलकर उसके सिर को अपनी छाती की ओर खींचते हुए कहा-यहीं सिर रहने दो रंगलाल ! क्यों, तुम्हें झेप हो रही लाचार रंगा ने वैसा ही किया!

शकुन को पूरे दो घंटे के बाद शांति मिली; पर रंगा को अब भी नोंद नहीं आई। जाने शरीर की नश्वरता पर वह कितना कुछ सोचता रहा।

जब शकुन पूरे होश में आई तब उसने पुकारा-रंगलाल-ओ रंगलाल ! सो गये क्या ?

-नहीं तो ! -रंगा ने चौंककर उत्तर में कहा ।

शकुन ने अपना हाथ उसकी छाती पर डाल दिया और कहा-सच कहो रंगलाल, क्या सोच रहे थे अभी ।

-कुछ तो नहीं ! -रंगाने रुककर कहा-हाँ, यह जरूर महसूस कर रहा था कि अकेली तुम्हे आज क्या गत होती । मनुष्य का यह जीवन ! शकुन, यह जीवन कितना कष्टकर है । ओह, तुम्हारी पीड़ा ।

-ठीक कह रहे हो रंगलाल ! शकुन सँभलकर बोली-मगर इतना भी तो किसी ने नहीं कहा था रंगलाल ! दर्द कुछ आज ही नहीं उठा था । बरसों से मैं इसे भुगत रही हूँ ! और इसीलिए तो मैं बदनाम हूँ ! लोग तो उपरी बातें ही जानते हैं ।

शकुन कुछ क्षण रुकी, फिर आप-ही-आप पूछ बैठी हाँ, रंगलाल, सच-सच कहो, तुमने मेरे बारे में कभी सोचा है? यों तो तुम जान ही चुके हो कि मैं पतिता हूँ-व्यभिचारिणी हूँ-चाहे जो कह लो तुमने ऐसा तो जाने कितनों के मुंह से सुना होगा !

रंगा क्या जवाब दे! उसने जरूर सुना है कि शकुन पतिता है व्यभिचारिणी है; पर वह शकुन को क्या जवाब दे!

रंगा सोच ही रहा था कि वह फिर से बोल उठी-हाँ, चुप क्यों हो रहे रंगलाल ! मैं बुरा नहीं मानूँगी ! और मैंने कभी बुरा भी नहीं माना है । जिस किसी ने कहा है प्रत्यक्ष या परोक्ष, मैंने जवाब में साफ कहा है मैं जैसी हूँ-हूँ ! इसमें बुरा मैं क्यों मानने लगी ! मगर मैं वही बात तुमसे सनुना चाहती हूँ । बोलो, मैं जो पूछ रही हूँ ।

-सुना मैंने जरूर था-रंगा लजाते हुए बोला-मगर मुझे यकीन नहीं होता कि तुम-जैसी स्त्री कैसे बुरी हो सकती है ।

-यही तो बात है-शकुन धीरे-धीरे कहने लगी-मगर भूलते हो रंगलाल, तुम्हें संसार का ज्ञान बहुत थोड़ा है, तुम मनुष्य का चरित्र बहुत कम जान सके हो; फिर स्त्रियों का चरित्र लोगों ने जितना दुर्गम बताया है, उसे तुम इतनी कच्ची उमर में कैसे जान सकोगे? मगर मैं खुद कह रही हूँ, मैं किसी

हद तक वैसी जरूर हूँ, जरूर मुझे परिस्थिति ने वैसा होने को मजबूर किया है! तुम खुद समझ सकते हो कि जान-बूझकर कोई आग में नहीं कूदता! मगर जब किसी की जान पर बन पाती है, तब वह यह नहीं सोचता कि आग में कूदकर उसकी जान बच सकती है या नहीं! मेरे पक्ष में भी ठीक ऐसा ही समझ लो!

शकुन कुछ देर तक चुप रही, उसके बाद फिर से कहने लगी—और यह दर्द उसी पाप का परिणाम है! मैंने जान-बूझकर कभी व्यभिचार नहीं किया; मगर व्यभिचार से भी बढ़कर मुझे करना पड़ा है! चौंको मत रंगलाल! आज सारी बातें तुम्हें सुनाकर ही रहँगी! तुमसे छिपाकर मैं कुछ नहीं रखना चाहती! और तुमसे छिपा ही क्या रहा? जिन अंगों को लोग पर्दे में रखते हैं, जिन अंगों के स्पर्श मात्र से स्त्रियाँ पतिता बन जाती हैं, आज परिस्थिति की विवशता से मैंने खोलकर उन्हें उपभोग करने का तुम्हें अवसर दिया-आनंद-उपभोग के लिए नहीं-दुख में पड़कर, फिर तुमसे छिपाने की कौन-सी बात शेष रह गई है! तुम्हें जानकर अचरज होगा, शायद तुम्हें घृणा भी होगी कि मैंने एक सख्त की हत्या की है और उसी का फल अब तक भुगत रही हूँ और शायद आगे भी भुगतती रहूँ। बुरे काम का फल बुरा भोगना पड़ता है।

हत्या का नाम सुनकर रंगा सचमुच चौंककर उठ बैठा। शकुन हँस पड़ी, फिर उसने हाथ बढ़ाकर रंगा को अपने पर लिटा लिया और कहने लगी हाँ, हत्या उसकी की है, जिसने मुझे वैधव्य की यंत्रणा में डालकर मेरा सतीत्व नष्ट करना चाहा था! क्या इसे तुम अपराध कहोगे, रंगलाल!

-तो क्या तुम्हारी शादी हो चुकी थी?

-वाह, तुम कितने भोले हो रंगलाल, शादी ही नहीं होती, तो मैं विधवा कैसे बनती! -शकुन हँस पड़ी और हँसते हुए फिर से कहने लगी आज से सात साल पहले की बात है, जब मैं चौदह वर्ष की थी। उसी साल मैंने मैट्रिक की परीक्षा पास की थी, मैंने अपनी पसन्द के युवक के साथ विवाह किया था। शायद तुम उन्हें जानते भी होगे! तुम्हारे वे जर्मींदार थे, उन्हीं की जर्मींदारी में तुम्हारा मकान है! जानते हो अपने जर्मींदार को? बता सकोगे, उनका क्या नाम है?

-नाम -रंगा सोचने लगा और सोचकर बोला-बाबू उमानाथ... !  
-हाँ, जानते हो, ठीक ही कहा। उन्हीं के इकलौते लड़के से शादी हुई थी।

-तो?-रंगा ने उत्सुक होकर पूछा।  
-मगर एक दूसरे जमींदार के पुत्र ने उनकी हत्या कर दी! -क्यों, दुश्मनी थी?

-दुश्मनी न थी; मगर मेरे लिए ही दुश्मनी उसे करनी पड़ी! वह चाहता था कि मेरी शादी उसी के साथ हो। मेरे पिताजी की भी राय थी कि मेरो वहीं शादी हो; मगर मैंने साफ कह दिया उनसे कि मैं हर्गिज उससे शादी नहीं कर सकती! बस, यहीं से दुश्मनी शुरू हुई! उसने मेरे अहंकार को चूर्ण करने की ठानी और शादी का सिंदूर भी न धुलने पाया था कि बड़ी चालाकी से उन पर विष प्रयोग किया गया! और वे सदा के लिए मेरा सिंदूर धोकर चलते बने!

रंगा ने आह भरी, पर वह आह शकुन से छिपी न रह सकी! शकुन ने उसके हाथ को अपने हाथ पर रखते हुए कहा-दुख न मानो रंगलाल, इतना ही होकर रहता तो कोई दुख न था! उसने मुझ पर जाल फेंकी। मेरे पिता जी सूधे थे, पुराने ख्याल के व्यक्ति थे, वे उसकी चाल भाँप न सके। मैं कोशिश करके भी बच न सकी, मेरी आह खुलकर कढ़ने भी न पाई थी कि मैं उस बहेलिया की शिकार बनी ! मैंने भी सोचा कि ठीक ही है, अपनी अस्मत पर खेलकर मैं भी बदला लेकर ही रहूँगी। मैंने जरा भी आनाकानी न की। वह मुझे कलकत्ते ले आया और जहाँ अभी रह रही हूँ, उसीमें आकर वह भी रहने लगा! क्या तुम उँघ रहे हो रंगलाल? कहो तो यहीं खतम करूँ अपनी राम-कहानी।

रंगा बोल उठा-ऐसी बातें सुनकर भी नींद आ सकती है, शकुन! तुम्हारी बहादुरी की जितनी तारीफ की जाय, थोड़ी है ! किस्से-कहानियों में सुना करता था कि प्राचीन भारत की स्त्रियों ने अपनी सतीत्व-रक्षा के लिए जान को कभी परवा न की! आज मैं अपनी ऊँखों देख रहा हूँ कि वैसी देवी मेरे सामने है!

-देवी!..-शकुन हंसी - ऐसा न बनाओ, रंगलाल! मैंने उसकी हत्या की और हत्या करने के लिए मुझे अपनी अस्मत तक खोनी पड़ी; मगर मुझे उसके लिए रंज नहीं है। मैंने अपने वैधव्य का बदला लिया है---बदला कहना तो अन्याय होगा-वैधव्य-यंत्रणा के सामने तो मृत्यु ही कहीं अच्छी! मैंने उसे घुला-घुलाकर नहीं मारा; मगर मैं तो रोज घुल-घुलकर मर रही हूँ ! हिन्दू-विधवा दिन में लाख बार मरती-जीती है! ऐसे जीवन-मृत्यु के दुख को विधवा के सिवा और कौन अनुभव कर सकता है!

शकुन कुछ देर चुप रही, उसने फिर अपने को संभाला और संभलकर आगे कहने लगी-लोग मुझे पतिता कहते हैं, वे जानते हैं कि व्यभिचार मेरा व्यवसाय है! मैं सुन लेती हूँ, मैं उसका प्रतिवाद नहीं करना चाहती! जानती हूँ कि न मुझे अब पिता ही अपने घर में शरण दे सकते हैं और न ससुर ही! वे जानते हैं कि मैं लुट चुकी हूँ, मैं उस दुष्ट से भगाई जा चुकी हूँ! अब मेरे लिए जैसा कलकत्ता, वैसा बंबई!

रंगा अबतक शकुन की सारी बातें कान खोलकर सुनता रहा; पर उसकी समझ में नहीं आया कि, लाखों ने उस शकुन के बारे में कैसे देहल से कहा था! क्या ऐसी शकुन देहल-जैसे एक मजदूर को अंकसायिनी हो सकती है? रंगा कुछ क्षणतक इसी बात को सोचता रहा। अंत में उससे रहा न गया, उसने पूछा-मगर शकुन, यह समझ में नहीं आता कि तुम्हें लोग पतिता कैसे कहते हैं? क्या देहल जैसा एक मजदूर.....

शकुन खिलखिलाकर हँस पड़ी और हँसते हुए हो बोली-देहल! अच्छी याद दिलाई रंगलाल ! बात यह है कि मुझे मजदूर-कँलिनी में रहते हुए छः साल हो चुके हैं! उन दिनों मुझे यह व्यसन था कि मैं उनके घरों में जाया करती और बिलकुल साधारण रूप में जाती, ताकि मजदूर-स्त्रियों को मेरे साथ बैठने-उठने में डिझक न रहे! औरत औरतों के साथ न रहे, तो कहाँ रहे! मैं जाती और उन लोगों के साथ बातें कर मन बहलाती और जब तब उन लोगों को कुछ मदद भी करती! देहल छैल चिकनियाँ बना हुआ मुझे देखकर सिसकारियाँ मारता और कुछ अश्लील भाव-भंगियाँ करता! मैं ताड़ गई कि वह मुझपर लटू बना हुआ है। मुझे एक दिन दिल्लगी सूझी। मैंने उसकी थाह लेनी चाही, और अवसर पाकर मैंने उससे कहा-क्या तुम

मुझे पसंद करते हो? उसने कहा-हाँ, बहुत। मैंने पूछा-कुछ रुपये-उपये हैं भी या यों ही! उसने बताया कि है क्यों नहीं-पूरे पचास हैं! मैंने कहा-तब मेरे यहाँ आ सकते हो, मगर रुपये लेकर! वह पहुँचा, मैंने पहले दिन सभी रुपये धरवा लिये। फिर दूसरे दिन पहुँचा; तीसरे दिन पहुँचा। उसने एक से कहा, फिर दूसरे से! इस तरह एक दिन वह आठ-नौ आदमियों के साथ आया! मैंने सभी से रुपये ऐंठ लिये और सभी के कपड़े खुलवाकर अलग रखवाये, और उन लोगों को एक अलग कमरे में। उसके बाद दरवान को बुलाकर कहा - देखो, उस कमरे में जितने हैं-एक-एक को बाहर लाओ। उसने वैसा ही किया! मैंने गिन-गिनकर लातें मारी, थूक चटवाया, शपथ खिलवाई और उन्हें नंगे ही घर को रवाना किया। अब समझ गये होगे, रंगलाल! बात यह है कि वे मजदूर कभी सुधरने वाले नहीं! उनकी नैतिक शक्ति इतनी चौपट हो गई है कि पशु उनसे कहीं अच्छे! मगर उनका क्या दोष दिया जाय! जानते हो, गरीबी अभिशाप है! दिन भर सिर तोड़ मेहनत करने के बाद उन्हें नशा पीना पड़ता है और उस हालत में उनसे जो भी न बन पड़े, थोड़ा है!

रंगा को नींद आ गई थी। शकुन ने एक बार पुकारकर देखा; पर कोई जवाब न मिला। वह भी नींद लाने के उपक्रम में लग गई।

### (अड़तालीस)

रंगा तड़के उठ बैठा, उसने देखा कि पंखा उसी तेज रफ्तार में अब भी चल रहा है और शकुन उसी तरह अनावृत अवस्था में अचेत पड़ी हुई है। उसके घुंघराले केश उसके मुँह पर, हवा के झोंके खाकर अठखेलियाँ कर रहे हैं। रंगा उस अनावृत अवस्था में शकुन की ओर और अधिक क्षण तक न देख सका। उसने उसकी छाती पर धीरे से साड़ी का अंचल डाल दिया और स्वयं उठकर, नित्य-कृत्य के लिए, बाथ-रूम की ओर चल पड़ा।

रंगा नहा-धोकर जब कमरे में आकर दीवार के आईने की ओर रुख किए कंधी कर रहा था, तब शकुन जग उठी। उसने आँखें खोली, सामने

रंगा को कंधी करते हुए देखा और उठकर बैठते हुए बोली-इत्ती धूप निकल गई। मैं सोई ही रह गई, रंगलाल! क्या बजे होंगे?

-ज्यादा नहीं, सात बजकर सत्ताइस मिनट! - बड़ी की ओर देखते हुए रंगा ने कहा-क्या तबीयत अब ठीक है?

-हाँ, बिलकुल ठीक है।- शकुन बोली-मगर रात की तकलीफों के लिए तुम्हारा बहुत-बहुत अहसानमंद हूँ भाई! अगर तुमने उतनी तकलीफ न की होती, तो पता नहीं कि मैं जीती रह सकती या मर गई होती! ओह, जान निकली जा रही थी!

-वाकई, तुम्हें बड़ी तकलीफ थी शकुन ! सच पूछो तो मैं खुद घबरा गया था! ऐसा दर्द तो मुझे देखने में नहीं आया कभी! क्या डाक्टरों की राय ली है कभी, शकुन!

-राय ! .-शकुन उसकी ओर देखते हुए बोली-तुम समझ सकते हो रंगलाल, क्या जान-बूझकर ऐसे दर्द को ढोना कोई पसंद कर सकता है। राय एक नहीं, सौ बार तो होगी। मगर वे खुद एक राय पर कभी नहीं आये! दवाएं भी बहुत की, मगर जड़ से वह दूर नहीं हुआ!

रंगा कुछ क्षण तक गंभीर मुद्रा में सोचता रहा, उसके बाद बोल उठा तब तो इसे जिंदगी भर ढोये लिये चलना है, शकुन ! यह तो बड़ी बुरी बात है।

- ढोना ही पड़ेगा, रंगलाल, कैसे नहीं ढोऊँगी! आखिर भोगना ही पड़ेगा। दूसरा चारा ही क्या है! आखिर, मनुष्य की शक्ति ही कितनी!

शकुन की बेबसी की हालत सुनकर रंगा का हृदय भर आया, उसके प्रति सहानुभूति की सरिता उसके अंतप्रदेश में उमड़ आई और वह मन-ही-मन सोचने लगा-शकुन-जैसी दुखियारी नारी और कौन होगी, जिसके पास सब कुछ रहते हुए भी कुछ नहीं है! उसके लिए कितनी बेबसी है! कितना कठोर अभिशप है भगवान का !

शकुन उठकर बाहर की ओर चली गई थी, रंगा वहीं कुर्सी पर आये हुए अखबारों को देख रहा था; मगर उसका ध्यान समाचारों पर न जमा वह तो और ही सोच रहा था।

शकुन धंटे भर में बाथ-रूम से निकली, उसके खुले हुए क्षेश पीछे

को ओर लटक रहे थे, साफ धुली हुई धोती पहने हुए थी ! वह रंगा के पास आकर बोली-क्या पकाऊँ रंगलाल, क्या खाओगे ?

-देखो, कुछ पकाने की जरूरत नहीं है शकुन ! मैं जानता हूँ कि, तुम्हें बराबर तकलीफ रहती है, जिसे तुम मुझसे छिपाती रही हो ! यह मैं पसंद नहीं करता ! होटल से ही खाना मँगवा लिया जाया करेगा !

शकुन रंगा की बातें सुनकर हँस पड़ी और हँसते हुए बोली-होटल का खाना खाकर जी सकोगे रंगलाल ! एकाध दिन भले ही खा सकते हो, इसे मैं भी बुरा नहीं समझती; मगर जबतक मैं तुम्हारे साथ हूँ, तुम मुझे इतना भी अवसर न दो, तो मेरे साथ रहने का तुम्हें लाभ ही क्या रहा ! और आखिर, इस शरीर से भी तो कुछ काम लेना ही चाहिए ! यों इतनी खूबसूरत देह और कौन काम आयगी, रंगलाल !

रंगा अंतिम वाक्य सुनकर और भी दुखी हो उठा ! सोचने लगा शकुन को कितनी आंतरिक पीड़ा है ! कौन कहता है कि वह पतिता है व्यभिचारिणी है ! जीवन के अरमानों को किस तरह अंतर में पचाये बैठी है यह नारी !

रंगा कुछ क्षण तक जाने क्या-क्या सोचता रहा, अंत में कुर्सी से उठते हुए बोला-खैर, अभी के लिए तो इजाजत दो, शकुन, मैं होटल में इत्तिला दिये आता हूँ, खाना यही मँगवा लिया जाता है !

और रंगा इतना कहकर कुर्ता पहनते हुए बाहर की ओर चल पड़ा । शकुन रंगा का अधूरा ‘पुलोवर’ निकालकर बीनने में लग गई । कोई पौन घंटे के बाद रंगा ट्रे में खाने का बहुत-सा सामान होटल के बैरा से लिवा लाया । शकुन ने रंगा को भोजन कराया, रंगा कपड़े पहनकर प्रयोगशाला के लिए चल पड़ा ।

उस दिन प्रयोगशाला में रंगा का जी न लगा ! रात भर पंखे की हवा में पड़े रहने के कारण उसे थकान महसूस हो रही थी । वह वहाँ स्थिर न रह सका, कोई दो घंटे के बाद वह अपने डेरे की ओर चल पड़ा । उसने आकर देखा कि शकुन ‘पुलोवर’ बीनने में लगी हुई है ! शकुन ने उसे असमय लौटे हुए देखकर विस्मित होकर पूछा-क्यों, आज इतनी जल्द कैसे आ गये रंगलाल ?

-चला आया शकुन, तबीयत थकी-सी मालूम देती है। मैं आराम करना चाहता हूँ।

शकुन ने बिछावन बिछा दी और आप कुर्सी पर आकर बोली-लेट रहो रंगलाल कुछ देर तक! रात को तुम्हें बड़ी मिहनत करनी पड़ी! मैं भी सोच रही थी कि आज तुम्हें न जाना चाहिए था; मगर जब तुम जाने को तैयार हो ही गये, तब मैंने तुम्हें रोका भी नहीं।

रंगा लेट रहा। वह अब भी रात की घटना पर ही मन-ही-मन सोच रहा था। वह यह भी सोच रहा था कि, शकुन उसकी जर्मांदार है और वह खुद उसकी रियाया! मगर शकुन के लिए न वह रियाया है और न वह खुद उसकी जर्मांदार! इसी बात को लेकर रंगा बहुत दूर तक सोच गया; पर उसके मन में सहसा यह कुतूहल पैदा हुआ कि आखिर शकुन ने कैसे यह जाना कि वह उसीकी जर्मांदारी का रहनेवाला है! और उसका यह कुतूहल यहाँ तक बढ़ा कि उसे उससे पूछे विना न रहा गया।

इस प्रश्न को लेकर शकुन बड़ी देर तक हँसती रही, उसके बाद रंगा की ओर देखती हुई बोली-बहुत दिनों के बाद आज तुम्हें ऐसा पूछने का अवसर हाथ लगा है, रंगलाल! मैं तो चाहती थी कि यह तुम पर कभी प्रकट ही न करूँ। मगर अब जब कि तुम जानने को इतना उत्कृष्ट हो ही चुके हो, मैं भी सुनाये देती हूँ, सुनो!

शकुन कुछ क्षण चुप रहकर बोली - तुम्हारे घर के पास नारायणपुर नाम का एक गाँव है न? - शकुन ने प्रश्न किया फिर वह बोलती चली-वहीं मेरी एक बचपन की सहेली रहती है, ठाकुर शुकदेव नारायण के घर! उससे मेरा पत्र व्यवहार अबतक जारी है। वह तुम्हें जानती है और उस दिन से जानती है, जब कि तुमने अपने गांव में मेरी रैयतों को भड़काया था। तुमने मेरे तहसीलदार को एक किसी औरत से लातें भी लगवाई थीं। क्या इतना सच है?

रंगा अपने-आपमें काँप उठा और काँप उठा इसलिए कि कहीं शकुन यह भी जानती हो कि वह औरत और कोई नहीं, स्वयं लाली है, जो उसकी व्याहता नहीं! मगर शकुन मुस्कराहट लिये उसकी ओर देख रही थी,

इसलिए कहीं पकड़ा न जाय, वह फुर्ती से बोल उठा-सच का अंश बहुत कम, मगर मिलावट ज्यादा है! सच तो यह है कि मैंने तहसीलदार को लातें नहीं लगवाई। खुद वह अपने आचरण के कारण लात खाते-खाते बच गया! और दूसरी बात यह है कि मैंने रैयतों को नहीं भड़काया; बल्कि उसी आचरण के चलते लोग बागी बन गये। अलबत्ता, उसमें मेरा भी हाथ था!

-खैर, यही सही! -शकुन ने रंगा की बात मान ली और वह आगे कहती चली-उस मुकदमें में बड़ी परोशनियाँ रहीं; मगर तहसीलदार खेले हुए शिकारी थे, मौके पर उनको अकल बड़ी पैनी निकलती है! लोग उनकी बातों में आ गये और जो तुम्हारी तरफ के गवाह थे, वे-सब-के-सब अदालत में जाकर मुकर गये! यह कुछ साधारण मुकदमा न था! उन्हें जेल की हवा खानी पड़ती; मगर वह दूध के धोये-से बेदाग बच निकले!

रंगा ने कान खोलकर सारी बातें सुनीं, उसे ताज्जुब हो रहा था कि शकुन एक-एक बात की खोज-खबर रखती है। वह कुछ बोलना ही चाहता था कि शकुन खुद बोल उठी-मझे इसके लिए रंज नहीं है, रंगलाल ! गँववालों ने तुम्हारा साथ न दिया, यह उनकी अपनी पराजय थी! दिहात के आदमी सूधे होते हैं, उनकी दृष्टि ज्यादा दूर तक नहीं पहुंच पाती! मैं तो तहसीलदार को जानती हूँ ! जैसा मालिक वैसा नौकर ! अगर मेरा कुछ बस चलता, तो मैं खुद उसे अपने करमों का फल चखाती; मगर मैं तो नाम की जर्मिंदार रहीं।

-क्यों, क्या तुम्हारा जर्मिंदारी पर अधिकार नहीं है?

-अधिकार.- शकुन रुकी कुछ क्षण, फिर बोली-यही तो मैं खुद कहा चाहती थी ! मेरे ससुर खुद ऐयास हैं, कभी घर पर नहीं रहते! बूढ़े हुए, मगर उनकी हवस न गई! लखनऊ में पड़े रहते हैं, और इधर इन दुष्ट तहसीलदारों की मौज है! कोई देखनेवाला नहीं! मैं तो उनके लिए मर ही चुकी हूँ!

-तो क्या, और नहीं हैं उनके?

-नहीं हैं !

-तो फिर उनके मरने के बाद आप तो जर्मिंदारी संभाल सकती हैं?

शकुन आप-ही-आप खिलखिलाकर हँस पड़ी और कुर्सी से उछलकर, रंगा के गालों पर मीठी चपत लगाते हुए बोली-मैं 'तुम' से 'आप' कैसे बन

गई भलेमानस ! क्या तुम सपना तो नहीं रहे कि तुम मेरी रियाया हो और  
मैं तुम्हारी जर्मांदार ?

रंगा लजा-सा रहा और लजाते हुए ही बोला-तो क्या यह अन्याय  
है? अगर मैं ‘आप’ बोल गया तो.....

-चुप रहो-शकुन ने उसके मुँह को अपनी उँगलियों से दबाते हुए,  
जरा रुखाई से कहा-रियाया और जर्मांदार का नाता जोड़ बैठे! हर्गिज तुम से  
ऐसी बातें मैं नहीं सुनना चाहती! क्या अब भी कहोगे ? कान पर हाथ रखो!

रंगा हँस पड़ा और हँसते ही बोल उठा-खैर, अब न कहूँगा ।

शकुन कुछ क्षणों के लिए गंभीर बन गई; रंगा भी उसकी ओर  
देखकर जड़-सा हो रहा । उतने ही क्षणों में वहाँ का वातावरण बढ़ा धूमिल हो  
चला! इधर रंगा परेशान था, कहीं वह लाली की चर्चा उसके मँह से न सुन  
सके । वह मन-ही-मन. शिव-शिव कर रहा था कि कहीं शकुन ऐसी चर्चा न  
छेड़ दे! उसे ऐसा लगा कि अगर शकुन लाली को ठीक तौर पर जान गई हो  
तो उसका रंगा मूल्य उसकी नजरों में कितना गिर गया होगा! रंगा इन्हीं  
चिन्ताओं में अभिभूत हो उठा; मगर भगवान को धन्यवाद, शकुन ने अपनी  
गंभीरता भंग की और जरा तरल होकर बोल उठी - मुझे तुम्हारी मदद की  
जरूरत महसूस हो रही है रंगलाल! मुझे तुम्हारी ताकत और अक्ल पर भरोसा  
है! मैं ऐसी मदद तुमसे लेना न चाहती, मगर देख रही हूँ कि तुम्हारी मदद के  
बिना मेरा मकसद पूरा होता-सा नहीं दीखता! लगे हाथ मैं इस संबंध में  
तुम्हारी राय क्यों न ले लूँ! मगर सच कहो, तुम मेरी मदद कर सकते हो?

रंगा को दम में दम मिला, जो रंगा खुद शकुन के सामने गिरफतार  
हो रहा था, शकुन खुद उससे मदद चाह रही है! वह उत्कंठित होकर बोल  
उठा-जरूर-जरूर करूँगा मदद! मगर क्यों, मैं जान सकता हूँ कि वह मदद  
किस तरह की होगी ?

शकुन क्षणभर रुकी रही, फिर बोली-जब तुम तैयार हो मदद करने  
को जिसपर मुझे खुद यकीन है, तब मुझे उन बातों को तुम्हारे सामने रखने  
में कोई इतराज नहीं और इतराज ही क्यों न हो, मैं कुछ न्याय को छोड़कर  
अन्याय के पथ पर बढ़ना नहीं चाहती!.....बात यह है कि जर्मांदारी मैं

अपने हाथ में लेना चाहती हूँ, मुझे खुद पता है कि मेरी रियाया काफी कष्ट भुगत रही है, मेरे जालिम तहसीलदार और अमले रेत से तेल निकालना चाहते हैं! और दूसरी ओर मेरे ससुर, बहुत संभव है कि मुझे अंगूठा दिखाकर, सारी जर्मांदारी द्रस्टी के हाथों सौंप दें। तुम जानते हो कि लोगों को जितनी अपनी चीजों पर ममता रहती है, उतनी दूसरों की चीजों पर नहीं। और वे द्रस्टी के मेम्बरान गुलछरें उड़ाएंगे, मेरे धन पर। रियाया तबाह और बर्बाद होगी उनकी फिकर द्रस्टी को क्यों होने लगी! इसीलिए मैं चाहती हूँ कि जर्मांदारी अपने हाथ में लूँ और उसे चलाकर दुनिया को दिखला दूँ कि किस तरह भूखे को अन्न और नंगे को कपड़े मुहैय्या हो सकते हैं! रियाया बागी तब होती है, जब वह पूरी मिहनत-मसक्कत करने पर भी दाने-दाने को तरसती रह जाती है, उसपर ये जर्मांदार सितम वरपा करते हैं! आखिर किसी बात की एक हद होती है। ऐसी हालत में वह बागी न बने तो वह और क्या करे। मैं तुमसे चाहती हूँ कि तुम मेरे लिए गवाह ठीक कर दो! मैं अपने हक के लिए अपने ससुर से मुकदमे तक लड़ने को तैयार हूँ। जानती हूँ कि वे सीधे तरीके से मुझे जर्मांदारी पर अधिकार होने न देंगे और न उनके अमले-मुसाहिब ऐसा करने को उन्हें सलाह ही देंगे। तुम जानते हो कि मैं उनके लिए परित्यक्ता हो चुकी हूँ, हिंदू-लॉ इसपर मुझे अधिकार से बचित कर सकती है! मगर आज सारी लॉ गवाहों पर मुनहसर करती हैं। फिर भी अगर अधिक-से-अधिक गवाह मेरी ओर से गुजर जाय तो मामला साफ है। मेरे पास लड़ने को काफी रुपये हैं उनकी चिन्ता मुझे नहीं है। मैं तो अपना अधिकार चाहती हूँ और वह भी एक किसी खास उद्देश्य से चाहती हूँ। यों मेरे जीवन-निर्वाह के लिए मुझे परवा नहीं। तुममें वैसी स्पिरिट है-मैं काफी जान चुकी हूँ तुम्हें। इसीलिए मैं तुम्हारी छाया-जैसी तुम्हारे साथ-साथ चलती हूँ! बोलो, तैयार हो रंगलाल! कहो, क्या कहते हो?

रंगा कुछ क्षण तक सोचता रहा. मानो किसी गंभीर समस्या के सुलझाने में डूब गया हो! फिर वह उठ बैठा और बड़े तपाक में बोल उठा-जरुर साथ दूँगा शकुन, जब चाहो, मैं तुम्हारा साथ दूँगा, न्याय का पक्ष-ग्रहण करने के लिए मैं जान की भी परवा नहीं करता!

-क्या सचमुच साथ दोगे, रंगलाल ! -उल्कंठित होकर शकुन बोल उठी और उसके मैंह की ओर आँखें फाड़कर देखने लगी ।

-क्यों, इसमें भी तुम्हें कोई संदेह है ? -दृढ़ता के स्वर में रंगा ने प्रश्न के रूप में कहा ।

शकुन गद्गद होकर कुछ बोलने ही जा रही थी कि इसी समय बाहर से किसीने रंगा को पुकारा और वह तेजी के साथ उठकर बाहर की ओर चल पड़ा । शकुन उल्कंठित होकर उसके आने की प्रतीक्षा करने लगी ।

रंगा कुछ क्षण के बाद बाहर से लौट आया अपने हाथ में तार लिये ! उसने तार के लिफाफे को फाड़ते हुए कागज निकालकर शकुन की ओर बड़ा दिया । शकुन ने उसे पड़ा और वह आश्चर्य भरे स्वर में बोल उठो-मिल में स्ट्राइक चल रही है, तुम्हारी सख्त जरूरत है वहाँ । मैं सोचती हूँ कि आज को ही मेल ट्रेन से रवाना हो जाना चाहिए ।

-हड़ताल ! यह क्या कह रही शकुन !

-लिखा तो ऐसा ही है ! और इसमें ताज्जुब ही क्या ? गरीबों को कौन नहीं लूटता ? ये मिलवाले भी जमींदारों से क्या कुछ कम होते हैं, रंगलाल ! दूसरों के खून पर महल बनाने वाले हैं ये महापुरुष !

रंगा के लिए यह एक अप्रत्याशित घटना थी । वह गंभीर भाव से सिर झुकाकर कुछ क्षण सोचता रहा । उसे शकुन की बात कुछ रुची नहीं । उसे लगा, शकुन का हृदय धनी वर्ग से विमुख हो उठा हो ! पर, उसी समय शकुन की दृष्टि उसके मुंह पर पड़ी और वह बोल उठी-क्यों, तुमने आखिर क्या निश्चय किया रंगलाल !

-निश्चय ?-रंगा ने कहा -निश्चय मुझे क्या करना है शकुन ! बुलाहट है तो मुझे जाना ही पड़ेगा । मगर तुम क्या कहती हो, शकुन !

-मैं और कह भी क्या सकती हूँ ! जाना ही उचित होगा । जितना जल्द चला जाय, उतना ही अच्छा ।

(उनचास)

दूसरे दिन दस बजे रात को बम्बई मेल हवड़ा स्टेशन पर आ लगी । शकुन और रंगा उस ट्रेन से उतरे । रंगा ने सामान कुलियों से उठवाया और

प्लेटफार्म से बाहर निकलकर एक टैक्सी ठीक की, सामान लादा गया, फिर दोनों उसपर बैठ गये और टैक्सी गंतव्य पथ की ओर चल पड़ी। लम्बी यात्रा की थकान से रास्ते पर सरपट चलती हुई टैक्सी पर बैठे रंगा की आँखें ठंडी हवा पाकर झँप गईं। पर शकुन ज्यों-की-त्यों सजग होकर बैठी उत्कंठित होकर रास्ते पर की गाड़ियों, बसों और पैदल यात्रियों की ओर देख रही थी। इतने में उसने चितरंजन एवेन्यु को मोड़ लेते हुए देखा कि एक सुंदर-सी कार विरुद्ध पथ को, उसकी टैक्सी से सटे हुए, निकल गई। शकुन को लगा कि उस पर के बैठने वाले उसके परिचित हैं, कार भी परिचित है। मगर इतनी रात को कहाँ जा रही है वह कार? वह उसे देखकर अवाक् हो रही! उससे यह छिपा न रहा कि वे कौन थे! वह मन-ही बोल उठी-यह बात है लाली, इसी बूते पर तुम मुझसे नफरत कर रही हो!

शकुन का मन प्रतिहिंसा से भर उठा। उसने चाहा कि वह रंगा को उठाकर लाली के बारे में कहे; पर उसने रंगा को नींद से सचेत करना उचित न समझा। टैक्सी अपनी गति में चलती रही, और तब तक चलती रही, जब तक उसने सोफर से यह नहीं कहा कि बस, ठहर जाओ। टैक्सी उसके दरवाजे पर आ लगी। रंगा हड्डबड़ाकर उठ बैठा और आँखें मींचते हुए उसने कहा-क्या आ गये शकुन?

-हाँ, आ गये, उतरो न!

शकुन उतर पड़ी; पर रंगा ने देखा कि यह तो शकुन का बंगला है, इसलिए वह बोल उठा-मुझे अपने बंगले पर ही जाने दो। - क्यों यहाँ रहोगे तो तकलीफ होगी? -फिर हँसकर शकुन बोली मिलने को पागल हो उठे हो? क्यों, रंगा अपने-आपमें झेंपा। शकुन चाहती थी कि उसे वहाँ रोक लिया जाय, अपने बंगले पर जाने से उसे आनन्द के स्थान पर विषाद ही मिलेगा; पर रंगा खुद उतरने को तैयार हुआ। शकुन ने सोचा कि शायद उसकी बातों पर ही वह उतरने को तैयार हो रहा है, अन्यथा तैयार न होता। इसलिए वह बोल उठी-नहीं, तुम अपने बंगले पर ही जाओ, रंगलाल! वहीं जाना तुम्हारे लिए ठीक होगा।

रंगा बैठा ही रहा, सोफर ने गाड़ी स्टार्ट कर दी; मगर जब रंगा अपने बंगले पर पहुँचा, तब उसने पाया कि उसके दरवाजे पर तो ताला जड़ा हुआ है! रंगा कुछ क्षणों तक उधेड़बुन में पड़े दरवाजे के पास खड़ा रहा, फिर टैक्सी आकर बोल उठा-चलो, उसी बंगले पर!

शकुन अपने बंगले का दरवाजा खोलकर ड्राइंग रूम के रखे कोचों और आराम कुर्सियों को झाड़-पोछ रही थी, इतने में रंगा भी आ पहुँचा और पहुँचते ही बोल उठा-आज यहीं रहँगा शकुन! दरवाजा तो बंद दिखा। पता नहीं, लाली कहाँ चली गई है।

-कहाँ गई है? -शकुन अनजान जैसी बोल उठी-गई होंगी कहीं। उन्हें तो तुमने खबर तक न दी, वह कैसे दरवाजा खोले पड़ी रहतीं! अकेली बेचारी क्या करतीं, कहीं सिनेमा-उनेमा में चली गई हों!

-रंगा ने अपना सामान उतरवाया और सोफर को टैक्सी का किराया चुकाकर भीतर आया। शकुन ने खाने की चीजें वर्दमान स्टेशन पर ही ले रखी थीं, उन्हींसे उन दोनों ने क्षुधा तृप्त की।

उस दिन रंगा को उसके यहाँ ही रुक जाना पड़ा। शकुन के सोनेवाले कमरे में इसके पहले वह कभी नहीं जा सका था। शकुन ने उसे उसी कमरे में बुलाया। उसने प्रकाश में देखा कि वहाँ तो ब्रेशकीमती आदमकद नंगी तस्वीरें दीवारें से लटक रही हैं। रंगा की दृष्टि उस ओर जाते ही उसके मन की गति चंचल हो उठी! शकुन से यह छिपा न रह सका, वह मुस्कराती हुई बोल उठी-क्यों, क्या देख रहे हो, रंगलाल, आँखें फाड़कर? रंगा ने लजाते हुए कहा-यहाँ मैं सो न सकूँगा,

-क्यों, क्या बात है? -मुस्कराती हुई शकुन ने पूछा।

-इतनी गंदी तस्वीरें! तुम्हें ऐसी वाहियात चीजें कैसे पसन्द आती हैं शकुन! मेरी समझ में नहीं आता कि एक स्त्री होकर स्त्रियों का नग्न रूप देखना पसन्द कर सकती है!

शकुन खिलखिलाकर हँस पड़ी और हँसते हुए ही बोली-क्यों तुम्हें ये पसन्द नहीं हैं?

-पसन्द! -आश्चर्य से रंगा बोला।

इसबार शकुन गंभीर होकर बोली-इसीसे तुम उसका पता लगा सकते हो, रंगलाल, जिसका यह मकान था, जिसने ये चीजें हजारों के दाम पर खरीद कर मँगाई थीं! सच तो यह है कि देखने की अपनी आँखें चाहिए! इन्हें देखकर जहाँ कामियों के हृदय में काम-ज्वाला भड़क उठती है, वहाँ ज्ञानियों को सृष्टि और सृष्टिकर्ता की कला-निपुणता का ज्ञान होता है! चीज एक ही रहती है; पर अपनी-अपनी जगह देखनेवालों के लिए वह भिन्न हो जाती है।

तुम अगर इसी दृष्टिकोण से इन पर विचार करो, तो तुम्हें ये तस्वीरें सृष्टिकर्ता की याद दिलायगी, इनसे कुछ तुम्हें वितृष्णा का बोध न उत्पन्न होगा।

रंगा ने इन रहस्यभरी बातों को कुछ समझा और कुछ नहीं समझा। वह तो बेहद नींद में चूर हो रहा था, इसलिए वह वहीं बिछावन पर लेट पड़ा शकुन दूसरे कमरे में आकर सो रही।

रंगा तड़के उठा और अपने बंगले की ओर चल पड़ा। उसने शकुन से मिलकर जाने का इन्तजार भी सहन नहीं कर पाया।

उसने अपने बंगले पर जाकर पाया कि बाहर वाला दरवाजा खुला हुआ है। वह सीधे डाइंग रूम में पहुँचा, वहाँ कुछ क्षण ठिठककर सोचता रहा, फिर उसने धीरे से वह लाली के कमरे की ओर बढ़ चला। देखा कि लाली सुन्दर वस्त्रों से ढकी प्रगाढ़ निद्रा में अचेत लेटी पड़ी है। रंगा उसे इस रूप में कुछ क्षणों तक देखता रहा; पर वह वहाँ ठहर न सका और न उसने उसे जगाने को ही सोचा। वह धीरे से पैरों की आहट बचा बाहर निकला और बाथरूम को ओर चल पड़ा।

रंगा नित्यक्रिया से अवकाश पाकर अपने कमरे में आया। उसने कपड़े बदले, केश सँवारे; फिर वह बाहर निकल कर कुछ देर तक बरामदे पर टहलता रहा; पर लाली तब भी न उठी। रंगा ने बिना उससे मिले ही साइकिल ली साहब से मिलने को चल पड़ा।

उस समय, जब कि रंगा साहब के बंगले पर जा पहुँचा, मिस्टर वर्मा आराम कुर्सी पर लेटे-लेटे ही चाय-पान कर रहे थे। उनके सामने की टेबिल

पर ताजे अखबार पढ़े थे। रंगा ने अपने आने की इत्तिला भेजी, मिस्टर वर्मा ने उसे अपने कमरे में बुलाया और रंगा को अभिवादन करते हुए देखकर खुशी में बोल उठे-आ गये रंगलाल! कब आये? यहाँ का समाचार तो तुम्हें मिल चुका होगा?

रंगा उनके सामनेवाली कुर्सी पर बैठते हुए बोला-हाँ, समाचार तो तार से ही मिला; मगर समझ में नहीं आता कि जिस बात का कभी संदेह तक न उठा, वह बात कैसे हो गई! आखिर, स्ट्राइक हुई किस बात पर?

-खैर, इसीलिए तो तुम्हें बुलाने की जरूरत महसूस की गई! मिस्टर वर्मा ने अलार्मबेल पर उंगली रखते हुए कहा- चाय मगवाऊँ? तुम बड़े दुबले दीख रहे हो रंगलाल!

अलार्म बेल को आवाज पर भीतर से बैरा आकर खड़ा हो गया। मिस्टर वर्मा ने उसे चाय और टोस्ट लाने को कहकर रंगा की ओर दृष्टि डाली।

और रंगा ने उनके जवाब में कहा-बंबई की आवहवा उतनी अच्छी मुझे नहीं जँची; संभव है, उसका असर मुझपर आ गया हो।

मिस्टर वर्मा ने स्ट्राइक किस तरह हुई, क्यों हुई, इसमें किसका हाथ अधिक है और इसे भंग करने को कौन-सी तदबीर काम में लाई जा रही है, और ऐसे अवसर पर क्यों उसकी जरूरत महसूस हुई-ये सारी बातें ब्यौरे के साथ रंगा से कह सुनाई। रंगा का चाय-पान शेष हुआ, पास के रखे अखबारों की खास हेडिंग भी उसने पढ़ डाली; फिर भी मिस्टर वर्मा की बातें तब तक जारी रहीं। रंगा ने महसूस किया कि स्ट्राइक के कारण मिस्टर वर्मा काफी चिंतित और परेशान दीख रहे हैं! रंगा उनकी सारी बातें चुपचाप सुनता रहा। अंत में मिस्टर वर्मा बोले-आखिर, कैसे यह झगड़ा शांत होगा, रंगलाल! तुम पर, जानता हूँ, मजदूरों की काफी श्रद्धा है और मिल के अधिकारियों का स्वेह भी तुमपर उतना ही है। तुम चाहो तो आज स्ट्राइक बंद हो सकती है। क्यों, क्या विचार है? क्यों तुम इतने परेशान दीख रहे हो रंगलाल!

रंगा सचमुच स्ट्राइक की बातें सुनकर परेशान हो उठा था। वह जानता था कि ये मिल-मजदूर इतनी दूर तक नहीं बढ़ सकते थे। जरूर ऐसी

कोई गंभीर स्थिति उत्पन्न हो गई है, जिसे मिस्टर वर्मा साफ-साफ नहीं बतला रहे हैं! मगर, रंगा का भी वो कर्तव्य है! मिल के अधिकारियों की उस पर असीम कृपा है-रंगा इसे महसूस कर रहा है और इसीलिए उसे लगा कि मिल पर से विपत्ति का बादल जरूर हट जाना चाहिए। और ऐसा सोचकर उसने हिम्मत बंधाते हुए मिस्टर वर्मा से कहा-घबराने की बात नहीं, मैं जब पहुँच गया हूँ, तब यकीन मानिये कि जितना जल्द हो सकेगा, इन मुसीबतों से हमलोग नजात पाएंगे ही। मैं अपनी ओर से इसे दूर करने की एक भी कोशिश उठा न रखूँगा! यों भगवान मालिक हैं! मुझे इजाजत हो तो मैं अभी जाऊँ। मुझे अभी उन मजदूरों के बीच चक्कर लगाना है, खासकर उनके बीच जो इस काम के अगुआ बने हुए हैं, उनसे मिलना है। आप इतमीनान रखिए, मैं कुछ बातें करके खुद रात तक आ पहुँचता हूँ।

.-शावास, रंगलाल, शावास! -मिस्टर वर्मा ने उसकी पीठ थपथपाते हुए कहा-अगर तुम बंबई न चले गये होते, ता ऐसी बातें घटती ही नहीं! खैर, कंपनी तुम्हारी शुक्रगुजार रहेगी और तुम्हें पूरी तरक्की दी जायगी लग जाओ अभी से, क्यों?

रंगा जाने को उठ खड़ा हुआ। मिस्टर वर्मा ने उसे एक कार मंगवा और दी और कहा-इसे तुम अपनी कस्टडी में रख लो रंगलाल ! धूमने-फिरने को आखिर जरूरत तो पड़ेगी ही।

रंगा ने अभिवादन जतलाया, मिस्टर वर्मा उसे साथ लेकर दरवाजे तक आये। फिर उसे कार पर बिदा करते हुए कहा-तुम्हें कामयाबी हासिल हो, रंगलाल !

और रंगा ने सिर झुकाकर कहा-देखिए, भगवान क्या करते हैं।

कार रंगा को लेकर अपने गंतव्य पथ पर बढ़ चली।

रंगा रास्तेभर सोचता आ रहा था कि परिस्थिति को किस तरह व्रश में किया जा सकता है। उसे विश्वास था कि वह अपने काम में सफल होगा और मिस्टर वर्मा ने भी तो उसे कहा था कि मजदूर उसे बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। रंगा ने भी सोचकर देखा कि उसकी विजय निश्चित है। वह अपने काम में अब तक सफल होता आया है। उसे अपने-आप पर भी

विश्वास है अच्छी तरह और इसलिए वह अपने आपमें बड़ा उत्कंठित हो उठा। वह ऐसा सोच ही रहा था कि उसकी कार मजदूर-कालिनी के निकट आ गई; पर रंगा को सहसा खयाल हो आया कि इस रूप में मजदूरों के साथ उसका मिलना ठीक नहीं, इसलिए वह सोफर से बोल उठा-कार यहीं रोक दो।

कार रुक गई, रंगा वहाँ से पैदल ही चलने को तैयार होकर बोला-कार वापस ले जाओ, साहब से कह देना कि कार की मुझे जरूरत नहीं। और वह अपने गंतव्य पथ पर बढ़ चला।

उसने कोलिनी के भीतर आकर देखा कि बरगद की छाया में मजदूरों का बहुत बड़ा दल बैठा हुआ है। रंगा उस ओर ही चल पड़ा।

बरगद के निकट आते ही बहुतों की नजर रंगा पर जा पड़ी और उनमें से कितने ही जोर से चिल्ला उठे-आह, देखो उधर, रंगा भैया आ रहे हैं! सबकी दृष्टि रंगा की ओर जा लगी। इतने में रंगा भी वहाँ आ पहुँचा। उसने एक स्वर में सुना-आओ, रंगा भाई, अच्छे वक्त पर आये। जिस दिन से हमलोगों के बीच से तुम चलते बने, उसी दिन से समझ लो, हमलोगों पर मुसीबतें आ टूटी। जब तुम यहाँ थे, तब हमलोगों ने तुम्हें न पहचाना। तुमने रास्ते पर हमलोगों को लाने की बहुत-बहुत कोशिश की; मगर हम अंधे उस वक्त तुम्हें न पहचान सके। कहो भाई, अच्छे हो न? तुम्हारी मेहरिया मजे में हैं तो?

रंगा उन मजदूरों के आदर सूचक संबोधन सुनकर आनंद से पुलकित हो उठा और उसी रूप में वह बोल उठा-सब तुमलोगों की कृपा है! कहो, कैसे बैठे हो इस तरह?

-हमें तो डडे मार-मारकर बैठा दिया गया भाई-उनमें से एक बोल उठा-आज दस दिन हुए। जो कुछ पास में थे, वे निपट चुके। अब तो हमलोग दाने-दाने को मुहताज हो रहे हैं! कोई हमलोगों से पूछने को रवादार नहीं। इस तरह बैठे-बैठे कब तक चलेंगे भाई!

-आखिर तुम लोगों ने ऐसा किया ही क्यों! हड़ताल करने के पहले तुम्हें सोच लेना चाहिए था! आखिर यह हड़ताल हुआ कैसे? -रंगा ने सहानुभूति - भरे शब्दों में पूछा।

-हड्डताल हो नहीं तो क्या हो! -बदरी सामने आकर बोल उठा करीब पाँच सौ आदमी एक साथ काम से निकाल दिये गये; न कभी इस बात को जनाया ही और न उन निकलने वालों की कोई गलती ही रही ! ऐसी हालत में तुम्हीं कहो, हड्डताल न किया जाय, तो क्या किया जाय! तुम्हें शायद कानपुर-मिल का पता होगा । लगातार तीन महीने तक हड्डताल चलता रहा । जहाँ भी तो यही बात हुई थी! न कभी एक पैसा तनखाह में बढ़ाना, न कभी दो मीठी बातें तक करना! जानवर जैसा खटे जाओ-खटे जाओ! इतना ही सिर्फ होता तो कोई बात न थी । तनखाह में भी कटौती हो गई और काम भी आठ घंटे के बजाय नौ घंटे लिये जाने का एलान निकला । एक ही साथ इतना जुर्म! आखिर लोग कहाँ तक बद्रश्त करें! रोज पाँच-पांच सौ के जर्थे निकलते हैं! मिल-हाते में धारा 144 लगा दी गई है! दो सौ पुलिस संगीन बंदूक लिये पहरा दे रही हैं! रोज गिरफतारियाँ होती हैं, रोज जानवर जैसे पीटे जा रहे हैं! कितने तो अस्पताल में पड़े हुए हैं और उनमें पचीस के करीब तो दम भी तोड़ चुके! तुम्हीं कहो - इसमें हमलोगों का क्या कुसूर है!

रंगा दर्दभरी बातें सुनकर परिस्थिति की गंभीरता पर मन-ही-मन विचार करने लगा । उसने मिस्टर वर्मा की सफाई सुन ली थी और अभी उनलोगों का बयान सुन चुका है ! कुछ क्षणों पहले रंगा का जो रुख था, वह क्षण भर में जाता रहा । वह मजदूरों को समझा-बुझाकर काम में लगाना चाहता था और इस तरह वह अधिकारियों से भी सम्मानित होने और इधर मजदूरों से भी स्नेह पाने का जो स्वप्न देख रहा था, वह स्वप्न भी उसका जाता रहा! अब वह करे तो क्या करे! कैसे कहे उन पीड़ित और संत्रस्त मजदूरों से काम पर जाने को, जब कि अधिकारियों ने एक साथ ही उनपर इतने सारे हमले कर दिये हैं! रंगा इन बातों पर बड़ी देर तक सोचता रहा । अंत में, वह सहानुभति के स्वर में बोल उठा-इन बातों से मुझे काफी दुख है कि मिलवालों ने तुम लोगों पर जुल्म ढाहा है! मैं ऐसी हालत में तुमलोगों से कैसे कहूँ कि हड्डताल बंद करो और काम में लग जाओ! इधर पेट का सवाल भी बड़ा जबर्दस्त है! हजार-हजार लोगों की खुराक पहुँचाना साधारण आदमी का काम नहीं है । मरता क्या नहीं करता-माल मशहूर है ! मगर आखिर कोई

राह तो निकालनी ही चाहिए भाई ! आखिर तुमलोगों ने क्या सोच रखा है--क्या मैं जान सकता हूँ?

-सोच क्या रखेगे भाई ! सर्दार छड़ू, बोल उठा-यह कैसे होगा कि-हमारे वे पांच सौ भाई, जो काम से बे-सबब निकाल दिये गये, भूख से जान दें और हमलोग मिल में काम करके अपने पेट भरें! मरेंगे तो एक साथ ही मरेंगे और जियेंगे तो एक साथ ही ! जब सभी का करम एक साथ बंध चुका है, सब कैसे उनलोगों को छोड़ दिया जाय ! आज उन पाँच सौ को निकाल बाहर किया गया और कल दूसरे पाँच सौ को निकाल बाहर करेंगे-ऐसी हरकत रहो तो तुम्हीं कहो रंगा, आखिर हमलोग जायँ कहाँ ! हमें तो खाना चाहिए, कपड़ा चाहिए, बीमारी में दवा-दारू और मरने पर कफन ! और हमें कुछ न चाहिए, चाहे जानवरों-जैसा ही वे हमसे काम लें। काम करने मे हम जी चुरावें, तो मेरी गर्दन उतार दें- वह मंजूर है-हम चू तक न करेंगे ! मगर करें भी तो कुछ हमारे साथ दया का वेबहार ! मिल में लाठियाँ चली, बंदूकें चली, कितने घायल होकर मौत की घड़ियाँ गिन रहे हैं और कितने तो मौत के घाट उतर चुके ! आखिर उनके बाल-बच्चों के लिए भी तो कुछ करना ही पड़ेगा । बस, हमारी इतनी-सी ही माँग है; न इससे ज्यादा न इससे कम । दिल चाहे तो करो सुलह; नहीं तो यहाँ जान देने को हमलोग बैठे ही हैं ! यों भी मरना है और वों भी मरना है ।

-बात तो सोलह आने सच कही, सर्दारजी-भीड़ में से एक बोल उठा-मरना तो है ही, फिर कायर की मौत क्यों मरा जाय ! हमें तो अपना अधिकार चाहिए । हमें राजा बनना नहीं है, बाबू बनना नहीं है; हमारे लिए महल-अटारी की जरूरत नहीं; शौक-मौज से हमें क्या लेना-देना ! मगर हमारा पेट काटोगे, तो यह हमारे बद्रश्त के बाहर की बात होगी ! इतने दिनों तक हमलोग जुदा-जुदा थे-अपनी नींद से सोना और अपनी नींद से हमें ठगा, लूटा, हमारी बहू-बेटियों की जागना । उस वक्त जिसने जैसा चाहा, इज्जत ली, हमारे बीमार बच्चे दवा-दारू के बिना कुत्तों की मौत मरे, हमने जवान तक न खोली; मगर अब हम सब जाग चुके हैं, हमारी अपनी एक कमिटी है और वह कमिटी हमें जीने का रास्ता बताती है और बताती है कि मिलजुल

कर रहो, आपस में एका करो! आज उसी एका का नतीजा है यह ! हमलोग मरने को तैयार बेटे हैं, तब भी जबान पर आह नहीं आती ! रंगा,- तुम जाकर कहो साहब से ! तुम हमारे अपने हो, तुमने तरक्की पाई है ! हमलोगों का सिर उँचा किया है-इसका हमें गर्व है। मगर तुम भी मेरे खिलाफ आवाज उठाओगे, तो हम समझेंगे कि हमारे बीच एक काला पहाड़ पैदा हो गया । और हम संतोष करके चुप हो जायेंगे । क्या बुरा मान गये रंगा भाई?

-बुरा मानने की इसमें कौन-सी बात है, भाई देहल !-रंगा गंभीर होकर बोल उठा-बात तो ठीक है ! तुमको मुझपर विश्वास है और मैं उस विश्वास पर चोट पहुँचाऊँ, तो मैं जरूर कालापहाड़ ही समझा जाऊँगा ! मगर, मेरा इरादा इतना जरूर है कि तुमलोग अपने अधिकार को बचाते हुए इस झगड़े को मिटा दो । इसमें दोनों का नुकसान है । बड़े आदमी अपनी नुकसान सह सकते हैं; मगर जिन्हें पेट के लिए खटना है, वे तो हर हालत में घाटे में ही रहेंगे ! मैं चाहता हूँ कि तुम्हें तुम्हारा अधिकार मिले और मुझसे जहाँ तक हो सकेगा, मैं तुमलोगों की मांगों को प्रेश करूँगा । और मेरी कोशिश रहेगी कि तुम्हारी माँगें वे मंजूर करें ! इसके सिवा मैं कर भी क्या सकता हूँ ।

-तुम सब कर सकते हो रंगा, सब कर सकते हो-बदरी ने गंभीर भाव से कहा-कौन नहीं जानता कि बड़े साहब तुम्हें दिल से चाहते हैं । उन्होंने तुम्हें तरक्की दी है, काम सीखने का तुम्हें मौका दिया है ! मगर हमारी माँग के लिए तुम्हें तो हमलोगों की ओर से कोशिश करनी ही चाहिए -कोशिश करनी ही होगी ।

- हाँ, कोशिश करूँगा, कहे रखता हूँ-रंगा दर्प में आकर बोल उठा-और जहाँ तक हो सकेगा मुझसे, मैं मदद करने को भी तैयार रहूँगा ।

रंगा इतना कहकर उठ खड़ा हुआ और उठते हुए ही कहा-अभी तो मुझे इजाजत मिलनी चाहिए । मैं फिर तुमलोगों से बहुत जल्द मिलूँगा ।

रंगा चल पड़ा, बदरी भी साथ देने को वहाँ से निकल बाहर हुआ दोनों ने चलते-चलते कुछ दूर तक बाते की, रंगा ने लाखों के कुशल समाचार पूछे । बदरी ने जवाब में हँसकर कहा-सब अच्छा है, चलो न, उससे मुलाकात करते जाओ ! बहुत दिनों पर तो तुम आज इधर आये हो ।

-अच्छा, फिर कभी कर लूँगा, बदरी, अभी तो जाने ही दो। क्या तुम दोनों नहीं आ सकते एक दिन मेरे यहाँ?

-आएँगे क्यों नहीं, रंगा भाई !

-तो, आना जरूर-और इतना कहकर रंगा अपने पथ पर चल पड़ा।

### (पचास)

रंगा अपने बंगले पर आया, लाली उस समय रसोईघर में थी, उसने जैसे ही रंगा को ड्राइंगरूम में आते देखा, वैसे ही वह झपट कर रसोई घर से आई और मुस्कराती हुई बोल उठी-चोर-जैसे तुम आये और चोर-जैसे ही निकल गये! आखिर तुमने मुझे जगाया नहीं क्यों? मैं उठी, बाथरूम में गई, देखा कि तुम्हारी धोती गीली पड़ी हुई है! मैं सोच में पड़ गई, फिर मैं तुम्हारे कमरे में आई, देखा, तुम्हारी चीजें खुली-छितराई पड़ी हुई हैं। मैं देखकर सन्न रह गई। मुझे लगा कि तुम मुझसे चिढ़े हुए हो और चिढ़कर ही तुम मुझे सोते हुए छोड़कर बाहर निकल गये। मैं तभी से घबराई-घबराई सोच रही थी, आखिर रंगलाल ने ऐसा क्यों किया क्यों? मेरा क्या कसूर था? अलबत्ता कल मैं सिनेमा चली गई थी! कई दिनों से तबीयत उखड़ी-उखड़ी-सी रही। इसीलिए.....

लाली एक साँस में सारी बातें बोल गई! रंगा ने लाली के पाँव छुए और मुस्कराते हुए कहा-वाकई तुम बेखबर सोई थी भाभी; इसलिए तुम्हें तकलीफ न दी। सोचा कि साहब के यहाँ से मैं तुरत लौटकर आ ही जाऊँगा। तबतक भाभी जरा चक्कर में पड़ी रहें! मुझे दिल्लगी को सुझ आई और मुझे ऐसा करना पड़ा! क्या सचमुच तुम बुरा माने बैठी थीं, भाभी, सचमच तुमने बुरा माना क्या?

-तुम्हें तो सरात सदा से पसंद है, रंगलाल! -लाली ने हँसकर सिर झुकाये हुए कहा-इसमें तुम्हारा क्या दोष? मगर तुम इतनी जल्दी आओगे -यह तो यकीन न था। कल ही तो मिस्टर सक्सेना बोल रहे थे कि संभव है रंगा बुलाया जाय! और तुम कल ही यहाँ हाजिर! तुम्हें तो मालूम ही हुआ का रंग-ढंग कितना खराब हो रहा है और ये मजदूर.....

रंगा लाली का मतलब समझ गया, इसलिए उसने तुरत बात काटकर पूछा-मजदूरों की बात क्या कह रही हो, भाभी?

-कह क्या रही हूँ! -लाली कुछ क्षण रुककर कहने लगी हुल्लड़ मचाने वाले ये मजदूर जमीन-आसमान को एक किये हुए हैं! इनको बदमासी तो देखो भला, मिल में एक तो खुद काम नहीं करते, उनमें से जो कोई काम करने को मिल के हाते में जाना भी चाहता है, तो उसपर बलजोरी वे रोक लगाते हैं। कंपनी अपना घाटा कैसे बर्दाश्त कर सकती है! उन हुल्लड़ों पर लाठियाँ चलानी ही पड़ती हैं! आखिर सरकार के राज में इतना हो-हल्ला कबतक चल सकता है! पुलीस संगीन बंदूक लिये पहरा दे रही है!

रंगा भाभी की बातों को कान खोलकर सुनता रहा, उसके बाद उसके ओठों पर हँसी आ गई और उसी हँसी में वह बोल उठा - ये सब बातें तुमसे कही किसने भाभी? क्या मिस्टर सक्सेना ने तुमसे ऐसी बातें कही हैं?

लाली रंगा का व्यंग समझ गई, वह भीतर से झल्ला उठी, उसकी भवें तन उठी और झल्लाहट लिये हुए ही बोल उठी - किसीने भी कही हो मगर ये बातें क्या झूठी हैं ? मिस्टर सक्सेना तो उन लोगों को समझाकर हार गये; उलटे उनपर तो खुद उन हुल्लड़बाजों ने रोड़े भी चलाये ! तुम्हीं समझो, आखिर मिस्टर सक्सेना का इसमें क्या दोष था !

रंगा मन-ही-मन कुछ देर तक सोचता रहा। लाली के मुँह से मिस्टर सक्सेना की बातें सुनकर और उसका पक्ष-समर्थन करते हुए पाकर वह भीतर-ही-भीतर चिढ़ उठा; पर उसने अपने मन का भाव छिपा लिया और सहज भाव से उसने कहा - किसका दोष है और किसका नहीं - यह सुनने के लिए मैं अभी तैयार नहीं हूँ; मुझे तो खाना चाहिए सबसे पहले, पेट के सामने ये बातें मुझे नहीं सुहाती!

लाली झोंप-सी गई, उसे याद हो आया कि वह तो अभी-अभी तरकारी चुल्हे पर चढ़ा आई थी। उसे लगा कि जैसे उसकी तरकारी जल रही हो। इसलिए वह वहाँ से उठकर रसोई घर की ओर यह कहते हुए भागी कि लो, मैं अभी-अभी तुम्हें खाना खिला देती हूँ।

रंगा कुछ देर तक रुका रहा; पर वह रुका न रह सका। दूसरे कमरे में टेलीफोन की घंटी बज रही थी। रंगा उस ओर दौड़ पड़ा और उसने

रिसीवर उठाकर पूछा-कौन हैं?

-शकुन-फोन में रंगा ने सुना।

कहाँ से बोल रही हो?

-मेडिकल कालिज-हास्पिटल से।

उसके बाद करीब पाँच मिनट तक फोन पर उन दोनों में बातें होती रहीं। उसके बाद रिसीवर अपनी जगह रखकर रंगा आराम कुर्सी पर आकर सीधे लेट गया।

इधर रसोई तैयार हो चुकने पर लाली दौड़ी हुई आई और रंगा से बोली-खाना तैयार हो चुका है। क्या यहाँ दे जाऊँ?

-हाँ, यहाँ लेती आओ।

लाली रसोई घर गई और खाने का सारा सामान एक ट्रे पर रखकर रंगा के पास की टेबिल पर रख गई। रंगा आरामकुर्सी से उठा और खाने को बैठ गया।

लाली भी वहाँ आकर बैठी और अपने-आप बहुत-सी बातें कहती रहीं; मगर रंगा ने खुलकर उत्साह से उन बातों में भाग न लिया। सच तो यह कि रंगा खुद उखड़ा-उखड़ा था, उसके दिमाग में बहुत-सी बातें इकट्ठी हो गई थीं, इसलिए उसे जितना खाना चाहिए, उतना भी उससे खाया न गया। वह भोजन से उठा, मुँह-हाथ धोया और अपने कमरे में पलंग पर आकर लेट गया।

लाली रशोई घर में खाने को चली गई।

मगर जैसे ही बह खा-पीकर निश्चित हो डाइंग रूम में आई, उसने पाया कि एक कार उसके बंगले की ओर आ रही है। लाली उसी ओर को देखती रही।

रंगा ने अपने कमरे से ही देखा कि कार दरवाजे पर आ लगी है, वह पलंग से उठा, उसने कपड़े बदले और तैयार होकर बाहर निकल पड़ा! उसे तैयार हो निकलते देखकर लाली ने पूछा-कहाँ जा रहे हो, संगताल!

-हास्पिटल।

-क्यों, क्या बात है? कुछ तो आराम कर लेते।

-आराम पीछे कर लूंगा, अभी तो जरूरी काम से जा रहा हूँ।

वहाँ इतना कहकर रंगा कार की ओर चल पड़ा।

लाली कुछ क्षण तक वहाँ खड़ी-खड़ी रंगा की ओर देखती रही; जब कार चल पड़ी, तब वह अपने कमरे में आ पलंग पर लेटकर सोचने लगी।

रंगा हॉस्पिटल जा पहुँचा, शकुन उसके आने का इंतजार कर रही थी। उसे देखते ही वह कमरे से बाहर आई, रंगा उसके पास आकर बोल उठा क्या बात है शकुन!

-क्या बात है! -शकुन बोली-अब तो तुम खुद ही आ गये हो, अपनी आँखों देख लो न, इन अभागों की क्या गत हो रही है!

शकुन उसे अपने साथ लेकर उस वार्ड में गई, जहाँ घाव खाये हुए मजदूर बिछावन पर लेटे पड़े थे। रंगा ने वहाँ जाकर जो दृश्य देखा, उससे वह स्तंभित हो रहा ! कतारों में बिछावन पड़े हुए थे। कोई कराह रहा था, कोई चिल्ला रहा, कोई छटपटा रहा! किसीके सिर पर पट्टियाँ बंधी थीं, किसीकी बाँहों पर ! उनमें बहुत-से ऐसे थे, जिन्हें रंगा पहचानता था, जिनके साथ वह काम कर चुका था। रंगा प्रत्येक से मिला, प्रत्येक से सहानुभति-पूर्ण बातें की। पर रंगा तो खुद उनके दुखों से दुखी था, उसे हो रहा था कि उन्हें किस तरह सांत्वना दी जाय। ऐसी बुरी गत उसने कभी अपनी आँखों न देखी थी। इसलिए यह स्वाभाविक था कि वह खुद नरवस हो उठे! शकुन भी उसके साथ-साथ धूम रही थी। जब रंगा ने वहाँ की हालत देख ली, तब एक सर्द आह छोड़ता हुआ बोल उठा-वाकई ये पूँजीपति इन अभागों को - बकरियों से अधिक नहीं समझते !

-अभी तो तुम्हें और भी नजारे देखना बाकी हैं, रंगलाल ! पोस्टमार्टम रूम में चलो, तब तुम्हें और भी पता चलेगा कि कैसे-कैसे दृश्य इस पर्दे पर देखे जा सकते हैं। और ऐसा कहकर शकुन रंगा का हाथ अपने हाथ में लेकर पोस्टमार्टम रूम की ओर चली पड़ी।

उस दिन भी दो ऐसे अभागे मृत्यु की घड़ियों से गुजर रहे थे, जिनकी ओर रंगा की आँखें देखना न सहन कर सकीं। उस समय डाक्टर निराश होकर लौट रहे थे, शकुन ने उनसे पूछा-कैसी हालत है?

-हालत ! -डाक्टर रुके, फिर बोल उठे-बस, आखिरी घड़ियाँ हैं ! क्यों, आपका आदमी है ?

.-शकुन ने गर्दन हिला दी, डाक्टर सौरी (खेद है) कहकर चल पड़े ।

-शकुन ने कुछ सोचकर कहा-अब तुम जा सकते हो, रंगलाल !

-और तुम ?

-मैं पीछे से आउँगी । खैर, चलो, तुम्हें दरवाजे तक पहुंचा आऊँ ।

संध्या हो आई थी, रंगा को प्यास मालूम पड़ रही थी, इसलिए मेडिकल कालिज-मैदान की बिछी दूबों पर वे दोनों बैठ गये और वहीं खोंचेवाले से आइसक्रीम की बोतलें मंगवाकर दोनों ने पी । रंगा उस समय काफी खिन्न दीख रहा था । जाने उसके मस्तिष्क में कैसी उथल-पुथल मच रही थी । शकुन कुछ क्षणों तक उसकी ओर देखती रही; पर उसने रंगा को और वहाँ रहने देना उचित नहीं समझा, इसलिए वह बोल उठी-क्या तुम अभी मिस्टर वर्मा के यहाँ जाओगे ? उन्होंने तुम्हें शाम को बुलाया था न ?

-हाँ, बुलाया तो था; मगर मैं नहीं जाऊँगा ।

-क्यों ? .-शकुन ने उसकी ओर गहरी निगाहों से देखते हुए पूछा ।

-मैंने निश्चय कर लिया है, शकुन, जबतक इनकी मांगे पूरी नहीं हो लेतीं, मैं हड़ताल में भाग लूँगा । मैं अपने स्वार्थ के लिए न्याय का खून नहीं कर सकता । खैर, इस विषय पर फिर और भी बातें होंगी । मैं ठहरूँगा नहीं, बंगले पर जाता हूँ, संभव है, कुछ लोग वहाँ इकट्ठे होंगे । मैंने उन्हें आने को कह दिया है ।

रंगा उठ खड़ा हुआ, शकुन उसके साथ कार तक आई, रंगा कार पर बैठा और उसे बिदा करते हुए बोली-यही मैं तुमसे सनुना चाहती थी, रंगलाल ! मुझे आज बेहद खुशी है कि तुम आज अपने रास्ते पर आ गये हो ।

रंगा मुस्कराया और मुस्कराते हुए ही बोला-तो तुम समझ रही थीं कि मैं मिलवालों का साथ दूँगा ?

शकुन भी मुस्कराई और मुस्कराहट लिये हुए ही बोली-मैं सोच रही थी कि तुम अपनी तरक्की को यों ऊंकरा न सकोगे ।

रंगा की आकृति कुछ ही क्षणों में गंभीर हो गई, कुछ क्षण तक वह चुप रहा, उसके बाद बोल उठा-तुम्हारा खयाल कुछ गलत नहीं है, शकुन !

मगर आदमी होकर, कुछ रूपलियों के लिए, यों मैं पशु नहीं बन सकता! पैसे इज्जत के लिए हैं; मगर जब उनसे उसकी रक्षा नहीं हो सकती, तब उन पैसों पर मेरी फिटकार है। मुझे वैसे पैसे नहीं चाहिए। मैं पहले आदमी बनूँ, फिर और कुछ।

कार रंगा को लेकर चल पड़ी, शकुन कुछ देर तक ज्यों-की-त्यों खड़ी रहकर हास्पिटल की ओर मुड़ चली। पर, वह प्रसन्न थी, उसके कानों में रंगा का अंतिम वाक्य अब भी गूँज रहा था।

### (इकावन)

मिस्टर वर्मा ने जब मिस्टर सक्सेना से सुना कि रंगा ने हड़ताल का नायकत्व स्वीकार कर, मजदूरों के बीच रुपए बाँटे हैं और उन्हें अपने बंगले पर बुलाकर, उनसे रात-दिन सलाह-परामर्श होते रहते हैं, तब वह कुछ क्षण के लिए सन्नाटे में आ गये। उनकी आकृति गंभीर हो चली, और बहुत देर के बाद मुँह से एक सर्द आह काढ़कर वह बोल उठे-जब रंगा-जैसा आदमी धोखा दे सकता है, तब खैर नहीं। मगर रंगा इतना जल्द हमारा साथ छोड़ देगा-मुझे यकीन नहीं होता।

उस दिन मिस्टर वर्मा के पास, सलाह-परामर्श के लिए जितने आदमी बैठे थे, सभी इस सूचना को पाकर दुखी हुए। मगर वे सब ऐसे थे, जो चाहते थे कि चाहे जिस तरह हो, उन मजदूरों को रास्ते पर लाना ही चाहिए। इसलिए उनमें से एक ने परामर्श में कहा-बंगाल-सरकार से मदद ली जा सकती है, कानून हमारा साथ देगी ही, फिर हिम्मत हारकर बैठे रहने से क्या लाम! क्यों, मिस्टर वर्मा, आपको इतना गमगीन न होना चाहिए। एक-एक मुश्किल के सौ-सौ औसान हैं। आप घबरा गये क्यों?

मिस्टर वर्मा कुछ क्षण चुप रहे, उसके बाद बोल उठे घबराने की बात नहीं है। जहाँ तक संभव हो सकेगा, मैं इन हड़तालियों को रास्ते पर लाने का एक भी तरीका उठा न रखूँगा।

— शाबास, मिस्टर वर्मा ! आपसे हमलोग यही सुनना चाहते थे ।

रंगा का नायकत्व-ग्रहण करना था कि हड़ताल पूरे ज़ोश में चल पड़ा। एक ओर रंगा घूम-घूमकर धन इकट्ठे करके उन मजदूरों में बाँटा था, दूसरी ओर वह पूरे दम-खम के साथ, रात-दिन घूमकर संगठन को जारेदार किये फिरता था। इधर बड़ी सख्ती से गिरफतारियाँ चल रही थीं, मजदूरों पर बेतरह मार पड़ रही थी, फिर भी वे मजदूर हड़ताल को जोर से चलाये लिये जा रहे थे। महीने के महीने निकलते चले गये; मगर उन हड़तालियों को मानो इसकी खबर तक न लगी। रंगा बंगले को खाली कर शकुन के बंगले पर आ गया था। शकुन भी रंगा में साहस भरने का काम कर रही थीं; मगर लाली ही एक ऐसी थी, जिसे रंगा का इस रूप में खुले भाग लेना अखर रहा था। वह सोच नहीं पा रही थी कि रंगा को किस तरह अपने वश में किया जाय और रंगा खुद इन दिनों इतना व्यस्त हो पड़ा था कि उसे अपनी भाभी से मिलने और उससे दो बातें करने का अवसर ही हाथ न आता था, लाचार लाली अपने आप घुल-घुलकर रह जाती थी।

अचानक एक दिन लाली ने जब सुना कि आज रंगा गिरफतार कर लिया गया है और उसपर काफी लाठियाँ भी लगी है, तब तो लाली बेचैन होकर रह गई। बेचारी लाली अब क्या करे! वह पागल की तरह दौड़ चली शकुन के पास और उसके पैरों पर गिरकर रोती हुई बोल उठी : शकुन बहन, बचाओ मेरे रंगलाल को। मुझे कुछ न चाहिए। छुड़ा लाओ उसे, चाहे जो भी रूपये खर्च हों। मेरी शकुन बहन, तुम्हारा बहुत-बहुत उपकार मानूँगी, रंगलाल को मेरे पास वापस ला दो।

शकुन ने उसे उठाया, उसके आँसू पोंछे और सहानुभूति के स्वर में बोल उठी - रंगलाल खुद-ब-खुद बाहर आ जायेंगे लाली। उसका गिरफतार होना अच्छा ही हुआ। तुम खुद देख लेना-दो-चार दिनों में मामला साफ है। सरकार की ओर से जाँच कमिटी बैठ गई है, कॉर्ग्रेस के लीडर बड़ी मुस्तैदी से लगे हुए हैं। मैं अभी वहीं से आ रही हूँ। घबराने की कोई बात नहीं। न्याय होकर ही रहेगा।

लाली ने शकुन की बातें समझी या नहीं, मगर वह लौटकर अपने कमरे में आई और आकर गहरी चिन्ता में बिछावन पर गिर पड़ी।

लाली रात-भर जाने क्या-क्या सोचती रही; दूसरे दिन सुबह को जब शकुन बाहर जाने के लिए कपड़े बदल रही थी, तब लाली दौड़ी हुई आई और गंभीर होकर बोली -आज मैं खुद हड़ताल में सामिल हूँगी, शकुन बहन! चलो, मुझे वहाँ पहुँचा दो।

शकुन ने लाली की ओर देखा और उसके मन का भाव-परिवर्तन देखकर मुस्कराहट लिये बोल उठी-सचमुच चलोगी, लाली!

-हाँ, सच नहीं तो झूठ थोड़े ही कह रही हूँ। मैं अब तक गलती पर थी, शकुन बहन। मुझे उस धूर्त सक्सेना ने उलटा-सीधा समझाकर मेरे दिमाग को खराब कर दिया था; मगर मैं अब अच्छी तरह समझ गई हूँ कि ये मजबूर कहाँ तक सताये जा चुके हैं। मुझे वह सक्सेना मिल जाय, तो उस कलमुहे को गिनकर सौ गालियाँ सुना दूँ। हाँ, कब चलती हो, बहन, मुझे लेकर! शकुन मन-ही-मन लाली की बातों से बड़ी खुश हुई। लाली के मन में जो मैल आकर जम चुका था, वह उससे दूर हो चुका था। शकुन को लगा, जैसे लाली कितनी साफ, कितनी त्रिष्णलंक और कितनी स्नेहमयी है! वह स्नेह-सने स्वर में बोल उठी - हड़ताल तो परसों से ही बंद हो गया, लाली! अब तो जांच हो रही है। मैं अभी जाँच-कमिटी में चल रही हूँ। अगर तुम भी चलना चाहती हो, तो चलो।

-हाँ, चलूँगी-लाली ने स्वीकार करते हुए कहा।

-मगर कपड़े तो बदल आते! देखो, तुम्हारी सूरत कैसी बिगड़ गई है! मैं ठहरती हूँ; जाओ, तुम नहा-धोकर कपड़े बदल आओ।

लाली झपटकर बाथरूम की ओर चल पड़ी। वह इतनी चंचल हो उठी थी कि उस दिन वह अच्छी तरह से नहा भी नहीं सकी। जैसे-तैसे वह तैयार होकर शकुन के पास आ पहुंची और बोली-अब देर क्या है, शकुन बहन!

शकुन हैरान थी यह देखकर कि इतनी जल्द लाली तैयार कैसे हो सकी। मुस्कराकर बोल उठी-कुछ तो नहीं, चलो।

वह उसकी ओर देखते लाली कार पर आ बैठी, शकुन सोफर की सीट पर। कार चल पड़ी।

जबतक जाँच-कमिटी चलती रही, शकुन ने बड़ी मुस्तैदी से उसमें भाग लिया। कहना न होगा कि इन दिनों शकुन पर ही उन मजदूरों का सारा बोझ आ पड़ा था, यह बोझ उसने जान-बूझकर उठाया था। अवश्य वह इस बोझ को लेकर काफी परेशान रही; पर उसे संतोष था कि वह उन अभागों की सहायता में अपने-आपको लगा सकी।

और अब उन मजदूरों ने भी जाना कि यह शकुन कौन है-क्या है। जिनके बीच वह शकुन पतिता और व्यभिचारिणी के रूप में समझी जा रही थी, वह आज उनकी मदद में रात-दिन परेशान हो, आखिर वह कितनी महिमामयी नारी है-उन मजदूरों को अब इसका पता चला।

और उस महिमामयी नारी के अविश्रांत परिश्रम का फल तब मालूम पड़ा, जब जाँच कमिटी की रिपोर्ट प्रकाशित हुई और उस रिपोर्ट में कमिटी ने जोरदार शब्दों में, मजदूरों को जितनो माँगें थीं, उनका समर्थन करते हुए, अपनी राय प्रकट की।

बाध्य होकर मिल के अधिकारियों को वे अधिकार देने पड़े। गिरफ्तार व्यक्तियों की रिहाई हुई, मृत व्यक्तियों के परिवारों के भरण-पोषण के लिए कंपनी की ओर से पाँच-पाँच सौ रुपए का एलान किया गया। चोट खाये व्यक्तियों की दवा-दारू के लिए मिल की ओर से सहायता दी गई। काम के घंटे पहले जैसे ही रहे; मगर कट पूरी कर दी गई और साल में पाँच रुपए तरक्की देने की घोषणा सुना दी गई।

उस दिन मजदूर-कालिनी में जलसा था, रंगा को कँलनी की ओर से अभिनंदन करने का प्रबंध मजदूर-संघटन-कमिटी की ओर से किया गया था। शकुन भी उसमें योग देने को आई थी, लाली भी अपनी सखियों के बीच हँस-हँसकर बातें कर रही थी। रंगा को जितना गर्व अपनी तरक्की पाकर न हुआ था, उतना आज उसे उन मजदूरों के बीच हो रहा था, जिन्होंने रंगा को अपना नायक समझा। उसदिन वहाँ के आनंद का क्या कहना! नाच हुआ, गाने हुए, रासलीला हुई, सत्यनारायण की कथा सुनी गई और अंत में सहभोज हुआ। उस दिन किसी ने यह इतराज नहीं किया कि कौन किस जाति का है, किसके साथ बैठकर खाना चाहिए और किसके साथ नहीं। लग रहा था, जैसे मजदूर नाम की एक जात है। मजदूर एक दल है और मजदूर

राष्ट्र की एक बड़ी संपत्ति ।

दूसरे दिन मिल की सीटी बजी । मजदूर ठीक वक्त पर अपने काम पर चल पड़े ।

रंगा के प्रति मिस्टर वर्मा पहले जैसा ही सदय थे । रंगा ने खुद उनसे मिलकर अपनी असमर्थता जतलाते हुए निवेदन किया था कि उसे न्यायोचित राह पर बाध्य होकर झुकना पड़ा । मिस्टर वर्मा ने परिस्थिति को गुरुता समझकर अपनी प्रसन्नता ही प्रकट की ।

रंगा अब से काम पर जाने लगा और इसलिए कि उसकी दृष्टि उन मजदूरों पर लगी रहे, ताकि विश्रृंखलता की सृष्टि न होने पाये । मगर रंगा अपने-आपमें प्रसन्न न था; फिर भी उसका मिल जाना रुका नहीं, नियमित रूप में वह जाता ही रहा ।

### (बावन)

कुछ दिनों के बाद एक दिन रंगा ज्योंही मिल से आकर नाश्ता-पानी कर चुकने के बाद बाहर जाने को तैयार हो रहा था, त्योंही एक पत्र वाहक उसके पास आया और उसे सलाम कर पत्र उसके सामने रख दिया । रंगा ने पत्र उठाया । पत्र शकुन ने भेजा था, लिखा था कि कई आवश्यक कार्य हैं, पत्र देखते ही वह उससे तुरत आकर मिले । रंगा ने पत्र को मोड़ते हुए पत्रवाहक से कहा चलो, मैं अभी तुरत चलता हूँ । पत्र-वाहक सलाम कर चलता बना और रंगा अपने कमरे में कपड़े बदलने को चला गया ।

रंगा ज्योंही शकुन के बंगले पर पाया, उसने देखा कि शकुन टेबिल के पास एक कुर्सी पर बैठकर कुछ लिखने में व्यस्त है । टेबिल पर कुछ लिखे कागज छितराये पड़े हैं । रंगा ने उस कमरे में घुसते ही पूछा-आज तुमने कैसे याद किया, शकुन !

शकुन ने उसको ओर गर्दन घुमाई और मुस्कराती हुई कहा-आओ रंगलाल, यहाँ आओ । मैं तुम्हारी जरूरत अभी-अभी महसूस ही कर रही थी! तुम आ गये, यह अच्छा रहा ।

-बात क्या है !-रंगा बोलकर टेबिल के पास की रखी दूसरी कुर्सी पर बैठ गया ।

-क्या बात है !.-शकुन ने रंगा की बात को दुहराते हुए, टेबिल की दराज से एक पत्र निकाला और उसे रंगा की ओर बढ़ाते हुए कहा-तबतक इसे पढ़ो, रंगलाल, इतने में, मैं थोड़ा और काम किये लेती हूँ ।

रंगा उसे पढ़ने लगा और शकुन कुछ लिखने लगी ।

रंगा उसे पढ़ते ही खिल उठा और उत्फुल्ल होकर उसने कहा-यह तो अच्छा रहा, शकुन ! मामला यों ही सुलझ गया । खैर, अब तो मेरी जरूरत न रह गई ।

शकुन ने कलम टेबिल पर रखी और कुर्सी की पीठ की ओर थोड़ा झुककर आराम करती-सी बोल उठी-जरूरत कैसे नहीं है, रंगलाल ? अभी तो तुम्हारी खास जरूरत है ।

- खैर, देखी जायगी जरूरत-रंगा ने उत्सुक होकर पूछा-मगर यह तो कहो, इतनी आसानी से तुम्हरे ससुर राजी कैसे हो गये तुम्हें बुलाकर काम सौंपने के लिए ?

रंगा बोलकर उत्सुकता लिये हुए शकुन की ओर देखने लगा । शकुन ने उसकी ओर दृष्टि डाली, फिर वह हंसकर बोल उठी - सो तो उसी खत में लिखा हुआ है, रंगलाल ! आखिर पढ़ा क्या तुमने !

शकुन कुछ क्षण रुकी रही, रंगा उस पत्रको फिर से उठाकर पढ़ने को तैयार हुआ, इसी समय शकुन बोल उठी-खैर, अब जबानी ही सुन लो, रंगलाल !

-बात यह है कि-शकुन गंभीर होकर कहने लगी-बंबई से आने के बाद, जिन दिनों मैं जांच-कमिटी के कामों में लगी हुई थी, एक दिन जाने मन में क्या ख्याल आया, मैंने अपने ससुर के पास बहुत लंबा-चौड़ा एक खत लिखा, जिसमें मैंने लिखा था कि अब तक मैं तकलीफें काटती रहीं, नगर कभी आपको इसके लिए तकलीफ न दी । मैं यहाँ यह नहीं पेश करना चाहती कि मैंने इन दिनों, जब कि मैं निरपराध लुटी गई, अपने को कैसे रखा । यह तो मैं जानती हूँ या मेरे अंतर्यामी भगवान जानते हैं । मेरा तो केवल आपसे

यह निवेदन है कि मैं अच्छी या बुरी-जैसी हूँ, आपकी हूँ। आप मेरे पिता हैं, मैं आपकी धर्म को संतान ! संतान चाहे जैसी हो, पिता के स्नेह पाने का अधिकारी होता है। और उसी अधिकार के नाते आज मैं अपने को आपके सामने उपस्थित करने जा रही हूँ। मैं अपने को अब भी सौभाग्यवती समझूँगी, जब मैं आपके श्रीचरणों की सेवा करने का आदेश पा सकूँगी! .-शकुन इतना कहकर चुप हो गई, इसके बाद बोली-मुझे तो ठीक याद नहीं है, रंगलाल, जाने और क्या-क्या लिख मारा था। जहाँ तक याद था, शब्द-शब्द तो नहीं, मतलब तुम्हारे सामने रख दिया और उसका परिणाम तुम्हारे सामने है। यह तो भगवान की कृपा ही समझो कि आज मुझे यह सौभाग्य प्राप्त हुआ।

शकुन बोलकर क्षणभर रुकी, जाने वह क्या सोच रही थी। उसके बाद वह आप-ही-आप बोल उठी-मगर अब जिस काम का भार मैं अपने उपर ले रही हूँ, रंगलाल, यह कुछ साधारण नहीं है ! केवल भार की ही बात नहीं है। मैं जानती हूँ कि ससुरजी ने मेरे साथ जो स्नेह-सहानुभूति दिखलाई है और जिस तरह मुझे सम्मान के साथ अपने घर में उन्होंने स्थान देने की कृपा की है, वे चाहे जैसे रहे हों, इतना मैं अवश्य कहूँगी कि यह कुछ कम महत्ता की बात नहीं। एक दिन वह भी था, जब कि मैं लुटी जाकर उनकी नजरों से सदा के लिए उतर गई थी! शायद उन्होंने संकल्प कर लिया था कि अब मुझे वे कभी स्थान न देंगे अपने घर में। और मैंने ऐसा ही महसूस कर कभी उनके सामने अपने आपको नहीं रख पाया। सच तो यह कि तब मुझमें इतना भी कहने का साहस न था। किस मँह से कहती ? मगर अब तो वह प्रश्न ही नहीं रह गया प्रश्न दूसरा है और वह यह कि लोकापवाद को मैं कैसे मिटा सकूँगी!

शकुन की आकृति धूमिल हो उठी, रंगा ने उसे लक्ष्य किया, वह भी कुछ क्षण तक सोचता रहा, उसके बाद बोल उठा-देखो, शकुन, तुम यहाँ भूल कर रही हो! लोकापवाद को लेकर सोचना व्यर्थ है। तुमने अपने से उसका साथ न पकड़ा, तुम आप-से-आप घर से निकल न पड़ीं। और बाहर आकर मी, यथासंभव तुमने अपने आपको बचाये रखकर चलते रहने को जी-जान से कोशिश की, और सबसे अधिक जिस दुष्ट ने तुम्हें अपना बनाकर रखने पर जाने कितना खर्च किया, और जाने कितने आराम से तुम्हें

रखना चाहा; पर तुम उससे उसी तरह अलग रहीं, जिस तरह कमल के पत्ते पर जल की बूँद! जब तुम स्वयं अपने-आपमें पवित्र हो, जब तुम्हारा हृदय उन्नत और पवित्र है, तब संसार की परवा करना, मेरे ख्याल से, बेकार है। लोकापवाद तो क्षणिक होता है, शकुन! जब जनता को विश्वास हो जाता है कि अभियुक्त सर्वथा निर्दोष है, तब वह अपवाद आप-से-आप क्षीण से क्षीणतर हो जाता है और एक वह भी दिन आता है, जब उसकी चर्चा तक नहीं रह जाती!

शकुन रंगा की बातें सुनकर कुछ क्षणतक सोचती रही, उसके बाद वह बोली-बात तो ठीक कही, रंगलालय मगर मुझे लगता है कि मैं शायद उसे सहन न कर सकूँ।

शकुन कुछ क्षणतक चुप रही, फिर वह आप-ही-आप बोल उठी-क्या तुम नहीं चल सकते रंगलाल ? तुम्हें भी तो घर छोड़े हुए शायद छः एक साल हो गये।

-मैंने अभी तक तो नहीं सोचा है, शकुन ! -रंगा कुछ उदास होकर बोला - मगर इन दिनों जाने क्यों मेरी तबीयत ही काम पर नहीं जमती। जाने क्यों ऐसा हो रहा है! मुझे खुद नहीं पता चलता कि मुझमें काम करने की जो ताकत थी, वह क्यों धीमी पड़ती जा रही है।

शकुन हँसी और कुछ क्षणतक हँसती रहने के बाद बोली-ताकत को खुराक चाहिए रंगलाल ! और वह खुराक तुमसे मिल नहीं रही है।

रंगा कुछ चिंतित-सा शकुन की ओर देखने लगा; मगर वह खुद नहीं समझ पाया कि शकुन क्यों हँसती हुई ऐसा कह गई। शकुन सिर झुकाये हुए कुछ सोच रही थी, उसके बाद वह आप-ही-आप बोल उठी-हाँ, रंगलाल, याद आया, तुमने एक बार मुझसे कहा था-शायद तुम्हें याद हो या न हो, कहा था कि गाँव के लोग बड़े तबाह और बर्बाद हो रहे हैं; उनको ओर बड़े लोगों की निगाह तक नहीं जाती! क्यों, याद है न?

-हाँ, याद है, शकुन, बात दरअसल ऐसी है हो। अगर शौक-मौज में पलनेवाले बड़े लोग जरा भी उनकी ओर देखना गवारा करें, तो इतने में ही उनकी बहुत-कुछ तकलीफें दूर हो जा सकती हैं। मगर तुम ऐसा पूछ रही हो क्यों, शकुन !

-क्यों पूछ रही हूँ? -शकुन बोल उठी-पूछ रही हूँ इसलिए कि मैं इधर कई दिनों से सोच रही थी कि मैं अपनी जर्मींदारी के कामों में कुछ सुधार लाऊँ। और मैंने इस सुधार के लिए एक योजना भी बनाई है। अभी, कुछ देर पहले तक, उसी पर सोच रही थी। अभी वह पूरी तैयार भो न हो सकी है। ये जो कागज तुम्हारे सामने छितराये पड़े हैं, इन्हें उठाकर देखो-देखोगे कि मैं क्या-क्या सुधार चाहती हूँ और उन सुधारों को किस तरह काम में लाया जा सकता है। इन्हें गौर से देख जाओ और जो भी रद्दो-बदल करना चाहो या और कुछ बढ़ाना चाहो, तो बढ़ा सकते हो। यों जर्मींदारी के कामों को हाथ में लेकर पुराने तरीके से उन्हें किये जाना मुझे पसंद नहीं। न मैं यही चाहती हूँ मेरा खजाना भरा रहे और मेरी रियाया भूखों मरे। मैं अपनी जर्मींदारी को एक आदर्श जर्मींदारी में बदलना चाहती हूँ। यों तो चारों ओर आंदोलन छिड़ा हुआ है कि जमीन रियाया की है, जर्मींदार कोई चीज नहीं। मैं भी इसे मानती हूँ रंगलाल ! आखिर जर्मींदार होता कौन है जमीन का ? खैर, जबतक यह जर्मींदारी - था अपने देश में जीवित है, तबतक जर्मींदार रहेंगे ही; मगर मैं उन जर्मींदारों के रूप में नहीं रहना चाहती। मुझे जर्मींदारी की संपत्ति से मौज नहीं करना है। और आखिर उसपर मौज किया ही जाय क्यों? वह तो रियाया के घर से आई है, उसीके लिए वह सुरक्षित रहनी चाहिए और जब उसकी जरूरत महसूस हो, उस रिआया के कामों में लगा देना चाहिए ।

शकुन बोलकर कुर्सी से उठ पड़ी और उठते हुए मुस्कराकर उसने कहा-खैर, अभी तुम तबतक देखो इस योजना को, मैं जब तक चाय तैयार किये लाती हूँ।

शकुन ऐसा कहकर भीतर की ओर चली गई और रंगा योजना वाले कागजों को देखने में लगा ।

रंगा एक ओर जहाँ योजना को देख रहा था, वहाँ वह और भी कुछ सोच रहा था और जो कुछ वह सोच रहा था, उससे उसके मस्तिष्क में उथल-पुथल मच रही थी; रंगा पा नहीं रहा था कि क्यों उसके मन में इस तरह के भाव आ रहे हैं। फिर भी वह अपने-आपको जब्तकर उन कागजों में

लगा रहा। इस बार उसे लगा कि जिस मस्तिष्क की उपज यह योजना है, अवश्य वह मस्तिष्क राज संचालन की योग्यता रखता है, वह मस्तिष्क अवश्य अपने प्रजाहित से लोकप्रिय बन सकता है। वह शकुन की प्रखर बुद्धि और प्रत्युत्पन्नमतित्व पर इतना अभिभूत हो उठा कि उसे उस योजना में जरा भी न्यूनता न दीख पड़ी! फिर भी उसकी दृष्टि उस योजना-पत्र पर लगी थी और उसका मस्तिष्क कहीं दूसरी जगह काम कर रहा था। कुछ देर के बाद शकुन वहाँ चाय का सामान लेकर आ पहुँची और पहुँचते ही बोल उठी-क्या तुमने देख डाला इसे, रंगलाल !

रंगा ने चौककर सिर उठाया और शीघ्रता में बोल उठा-इतनी अच्छी स्कीम तो खुद मैं नहीं डाफट कर सकता था, शकुन ! मुझे समझ में नहीं आता कि तुम्हें इतनी बुद्धि कहाँ से आई !

-क्यों बनाते हो, रंगलाल ! -शकुन मुस्कराती हुई बोल उठी-इतना न बनाओ। अभी तो मैं इसे पूरा भी नहीं कर पायी हूँ। क्या तुम इसे पसन्द करते हो?

-खूब, क्यों नहीं पसंद करूंगा, शकुन ! -रंगा उत्फुल्ल होकर बोल उठा-इतनी दयामयी हो तुम, शकुन ! आज मैं तुम्हें अच्छी तरह जान सका हूँ।

शकुन चाय तैयार कर रही थी, वह एक प्याला रंगा की ओर बढ़ाते हुए बोल उठी-खैर, मुझे तुम्हारी बातों पर रंज नहीं है, रंगलाल ! कम-से-कम एक आदमी भी तो मुझे ऐसा मिला, जो मुझे दयामयी कह सके! मगर यह काम मेरे बूते का नहीं है, रंगलाल ! क्या तुम अपना हाथ नहीं बटा सकते? तुम्हें साफ-साफ जवाब देना पड़ेगा।

रंगा कुछ क्षणों तक शकुन की बातों पर सोचता रहा, उसके बाद जरा गम्भीर होकर बोला-क्या तुम मुझे सोच लेने का अवसर नहीं दे सकतीं। दे सकती क्यों नहीं! -शकुन बोली-मैं तुम्हें अवसर दे रही हूँ। अभी कुछ जल्दी भी तो नहीं है। मगर तुम्हें वक्त देना ही होगा। और तुम तो मुझसे वचन भी हार चुके हो। खयाल है?

-हाँ, खूब खयाल है शकुन !

रंगा का चाय-पान शेष हो चुका था। वह अपने सम्बन्ध में सोचने में लगा था, वह वहाँ और ठहर न सका। उसने शकुन से छुट्टी माँगी और अपने बँगले की ओर चल पड़ा। मगर वह रास्ते में भी सोचता जा रहा था कि उसे क्या करना चाहिए। कौन-सा रास्ता उसके लिए ठीक होगा।

(तिरपन)

रंगा कुछ दिनों तक निर्विकार भाव से मिल के कामों में लगा रहा। अधिकारियों का ध्यान पूर्ण रूप से इस बात पर लगा रहा कि मिल में किसी तरह की अशांति का उद्भव न हो। जब रंगा ने मिल के कामों को नियमित और सुखलित रूप से चलते हुए पाया और उसने यह भी पाया कि अब मिल-मजदूर पूरे अमन-चैन के साथ रहकर अपने काम करते जा रहे हैं, तब रंगा ने एक दिन मिस्टर वर्मा से अपनी न रहने की असमर्थता प्रकट की! मिस्टर वर्मा को रंगा का ऐसा कहना जँचा नहीं। उन्होंने बड़ी कोशिश की कि रंगा अपनी बात को वापस ले और वह अबतक जिस तरह मिल के कामों में मनोयोग देता आ रहा है, उसी तरह देता रहे। पर, रंगा अपने निश्चय पर अटल रहा। उसने लिखित त्याग-पत्र उनके सामने प्रेश किया और बड़े विनीत शब्दों में निवेदन किया कि उसे अब काम से अवकाश लेने की आज्ञा दी जाय। लाचार होकर मिस्टर वर्मा को उसे आज्ञा देनो पड़ी। मिस्टर वर्मा ने मिल की ओर से उसको सेवा, संलग्नता और तत्परता के लिए उसे वेतन के साथ-साथ पुरस्कार देकर अपने बँगले से बिदा किया!

रंगा इतना जल्द और अनायास ही काम छोड़कर घर के लिए तैयार हो जायगा, किसीने इस बात पर विश्वास न किया। यहाँ तक कि जब उसने लाली से अपने त्याग-पत्र दे आने की बात कह सुनाई, तब वह स्वयं स्तम्भित होकर रह गई ! रंगा इस तरह अपने घर के लिए बेचैन हो उठेगा-उसे स्वयं ही विश्वास न हुआ। लाली बड़ी देर तक रंगा की बातों पर सोचती रही, उसके बाद उसने बड़े गंभीर भाव पूछा-सचमुच घर चलोगे रंगलाल ! किसी ने कुछ कहा तो नहीं?

-नहीं, भाभी, सो बात नहीं है !-रंगा ने अपने मन के भाव को

स्पष्ट रूप में रखते हुए कहा-जब से हड़ताल में मुझे भाग लेना पड़ा, तब से मेरी तबीयत इस काम से ऊब उठी। करने के बहुत-से काम हैं। गाँव पर भी अब मुझे कामों की कमी न रहेगी। मैं जानता हूँ, गाँव की इन दिनों कैसी बुरी हालत हो रही है! गाँववाले किस बुरी तरह अपना जीवन निर्वाह कर रहे हैं! रात-दिन खट्टे हैं, मगर खाने के वहाँ उन्हें भरपेट खाना तक नहीं मिलता कुछ तो यह कारण है कि गाँव को जमीन पुश्त-दर-पुश्त से अनाज उपजाती आ रही है, उसकी जीवनी शक्ति इतनी क्षीण हो गई है कि वह अधिक-से-अधिक अनाज दे सके! गाँववाले पुराने तरीके पर खेती करते आ रहे हैं। इधर खेती में नई-नई खोज की गई है, नये-नये खाद तैयार हुए हैं; मगर गाँववाले उन्हें जानते नहीं-न जानना चाहते हैं। ऐसी हालत में यह जरूरी है कि उन्हें नई-नई बातें बताई जाय। दूसरी बात यह है कि उनमें शिक्षा की इतनी कमी है कि वे खुद नहीं जानते, किस काम से उन्हें घाटा हो सकता है और किस काम से लाभ! तुम्हीं कहो, जिन्हें इन मोटी बातों का भी ज्ञान न हो, उनकी तकलीफें कब दूर हो सकती हैं। और यही कारण है कि जमींदार और महाजन जिस तरह से चाहते हैं, उन्हें लूट लेते हैं। उनकी जबान तक नहीं हिलती, वे आहें मारकर रह जाते हैं य मगर उनसे बचने का कोई इन्तजाम तक वे नहीं कर पाते! तुम खुद इन बातों को जानती हो, तुम्हें खुद तजरबा है, तुम्हीं कहो-मेरा कहना कुछ गलत है?

लाली बड़े ध्यान से रंगा को बातें सुन रही थी, वह बोल उठी-बात तो सही है रंगलाल! मगर तुम उन्हीं के बचाव के लिए काम भी करो और तुम पर ही उनकी शिकायत-शिकवा रहे! तुम्हें क्या गरज पड़ी है कि तुम उनके चलते उन जमींदार-महाजनों से दुश्मनी मोल लो?

लाली बोलकर रंगा की ओर देखने लगी। रंगा सिर झुकाये कुछ सोच रहा था, उसने गर्दन उठाई और पाया कि उसको भाभी उसकी ओर टकटकी बाँधे देख रही है। रंगा बोल उठा-दुश्मनी मोल लेनी होगी, तो वह भी करूँगा भाभी! मगर यह कैसे हो सकता है कि अन्याय से उन्हें लुटने को छोड़ दिया जाय! यह मुझसे कैसे हो सकेगा कि मेरे पड़ोसी लूटे जाय और मैं आँखें पसारकर देखता रहूँ! मुझे तो उनकी धरातल को उठाना ही पड़ेगा। मुझे विश्वास है कि लोग अब इतना जरूर समझते होंगे कि मैंने उस समय

भी न्याय का ही पक्ष लिया था, जिसे उन लोगों ने नहीं समझ पाया। उलटा मुझपर ही बरस पड़े। मेरा खयाल है और सही खयाल है कि आदमी की कदर उसकी पीठ पीछे ही होती है! जब वे सताये जाते होंगे, उस समय जरूर उन्हें मेरी याद आती होगी, जरूर वे कहते होंगे-था एक रंगा, जो ऐसे मौके पर काम आ सकता था। मैंने इस बार एक स्कीम तैयार की है, भाभी, किस तरह गाँव की तरक्की हो सकती है, किस तरह गाँववाले सुखी हो सकते हैं, उन्हें मैं जान गया हूँ। अब चलकर मुझे वे प्रयोग करने हैं। मुझे यकीन है कि मैं उसमें कामयाब हूँगा। इसके सिवा एक बात और है-और वह ऐसी है, जिसे भुलाया नहीं जा सकता! बात यह है कि जन्म देने के कारण संतान पर माता-पिता का जो ऋण चढ़ा रहता है, वह तब तक चूकता नहीं समझा जाता, जब तक वह अपने माता-पिता को अपनी सेवा से प्रसन्न न कर सके और उनके मृत्यु के बाद उनकी अंत्येष्टि किया संपन्न न हो जाय। उसी तरह मातृ भूमि का भी ऋण हर व्यक्ति पर रहा करता है और वह तब तक उससे उऋण नहीं होता, जबतक मातृभूमि के उथान में उसका भाग न हो ! सच तो यह है कि मैं वही ऋण चुकाने के लिए अपनी जन्मभूमि में जाना चाहता हूँ। चाहे वह जन्मभूमि जैसी रहे, हमारे लिए तो वह स्वर्ग ही समझी जानी चाहिए ।

रंगा बोलकर चुप हो रहा। लाली बड़े ध्यान से उसकी बातों पर सोचने लगी और उसने जहाँ तक उन बातों को समझ पाया, उसे लगा कि रंगा की विवेक-बुद्धि कितनी प्रखर है। रंगा किस तरह गाँववालों का अपमान सहनकर आज उन्हीं के लिए अपने आपको समर्पित करने को व्यग्र हो उठा है ! उसे रंगा के प्रति पहले से कहीं अधिक स्नेह उमड़ पड़ा। उसे लगा कि रंगा अपने - आप में कितना महान है! पर साथ ही लाली के सामने एक समस्या आ खड़ी हो गई, और वह समस्या इस रूप में उसके सामने आई कि वह अपने-आपमें काँप उठी, उसकी पलकें झाँप गई, उसके ललाट पर पसीने की बूँदें झलकने लगी और वह घबराकर बोल उठी-जो कुछ तुमने कह सुनाया, वह अपने अनुरूप ही कहा, रंगलाल ! तुम पुरुष हो, तुम्हारा दिल मजबूत है और तुम्हें पाकर, यह भी मानती हूँ कि गाँववाले खुशी में नाच उठें; मगर तुमने यह भी सोचा है कि मुझे लेकर वहाँ कैसी-कैसी बातें चल पड़ेंगी ।

मैं कैसे मँह दिखलाऊँगी उन गाँववालों को! और यह मुझसे कैसे सहन हो सकेगा, जब कोई मेरी ओर उँगली उठाकर कहेगा कि यह देखो-फलाँ की पत्ती, फलाँ को पतोहू यही है, जो अपने पति और सास को छोड़कर, दूसरे पुरुष के साथ बरसों परदेश काट आई है.....! क्या तुमने सोचा है रंगलाल, इन बातों को लेकर ?

रंगा की आकृति धूमिल हो उठी, वह भी कुछ देर तक चिन्ता में पड़ा रहा। उसने सोच देखा कि उसकी भाभी जो कुछ कह गई है, वह ऐसी नहीं है कि उसपर आँख मूँद ली जाय ! आखिर, वह खुद इन प्रश्नों का क्या उत्तर दे सकता है, जब कोई उससे ही पूछ बैठे कि वह लाली के साथ किस तरह इतने दिनों तक निभता रहा? कौन नहीं विश्वास करेगा कि दोनों का व्यवहार अनुचित रहा है, जो समाज को ग्राह्य नहीं हो सकता! रंगा इन प्रश्नों पर बड़ी देर तक सोचता रहा। उसके बाद अचानक उसके सामने प्रकाश की रेखा खिंच आई, उसकी आकृति में परिवर्तन के लक्षण दीख पड़े और वह बोल उठा -जो कुछ तुम कह रही हो, वह जरूर विचारने के लायक है भाभी, मैं इसे मानता हूँ। गाँववाले यों पीठ पीछे भी निंदा कर ही रहे होंगे और करते भी रहेंगे ! उनके मँह को कौन बन्द कर सकता है; मगर इसी भय से गांव को सदा के लिए छोड़ बैठना-यह तो भारी कायरता है, भाभी! हमलोगों को अपने आपपर विश्वास करना चाहिए, हमलोग यथासंभव अपने-आपको अबतक बचाते रहे हैं, कभी हमलोगों से ऐसा न हो सका, जो हमारे लिए ही लज्जा का कारण होता ! यो जब अपना दिल साफ है, तब दूसरों के कहने-सुनने की कहाँ तक परवा की जाय । कुछ देर के लिए अगर यह भी मान लिया जाय कि हमलोग नैतिक दृष्टि से बहुत नीचे पिर पड़े हैं और यह भी मान लिया जाय कि हमलोग काम-लिप्सा में पशु से भी बदतर हो चुके हैं, तो क्या हमारे किये हुए उन पापों के लिए कोई भी विधान नहीं है ?

बज्र पापी के पाप का भी शमन होता है, भाभी, अगर उसे ज्ञान हो जाय कि उसने पाप किया है, जो उसे नहीं करना चाहिए था; जिस दिन उसे ऐसा ख्याल आ जाय और जिस दिन अपने कुकूत्य के लिए उसके मँह से आह कढ़ जाय, उस दिन समझना चाहिए कि उसका प्रायश्चित हो चुका, वह पापियों की श्रेणी से अलग हो जायगा और उसके नाम के साथ जो कलंक

लग चुका है, समय उसे खुद धुला छोड़ेगा! हम तो ऐसे पापी नहीं हैं, भाभी! हमलोगों ने कभी इस दिशा में, जानबूझकर, कदम तक न बढ़ाया। ऐसी हालत में गाँववाले चाहे जितनी शिकवा करें- क्या हमें उसके लिए दुखी होना चाहिए? हमलोग जिस उद्देश्य से गाँव से निकल पड़े थे, भगवान ने हमारी लाज रख ली है, हमलोगों का उद्देश्य सफल रहा है। आज हमलोग दिखा सकते हैं कि परिश्रम का फल कितना मीठा होता है! तुम्हारा हृदय इतना छोटा न होना चाहिए भाभी! जो काम जितना बड़ा होता है, उसके लिए उतनी ही तपस्या करनी पड़ती है। तुम समझ लो कि अभी तुम्हें घर चलकर और भी तपस्या करनी है!

इस बार लाली कुछ प्रसन्न-सी दीख पड़ी; मगर अबतक उसका हृदय इतना कमज़ोर था कि उसकी आकृति पर क्षण-क्षण परिवर्तन होता रहा। वह सिर झुकाये कुछ क्षण बैठी रही, उसके बाद बोल उठी-तो क्या मुझे तुम्हारे भाई के साथ रहना पड़ेगा?

-क्यों नहीं, वे तुम्हारे पति हैं।

-पति हैं! लाली ने विद्रूप से पति शब्द दुहराया। उसकी आकृति पर विषाद की छाया घिर आई, फिर उसने कहा-ऐसे कायर के साथ मुझे रहने के लिए विवश न करो, जिसने मेरी इज्जत बरबाद करने वालों का साथ दिया, तुम्हारा सिर जिसके चलते नीचा करना पड़ा।

-भूल किससे नहीं होती भाभी.! मैं तो पहले ही कह चुका हूँ गाँववालों को इतना ही विवेक होता, तो रोना किस बात का था! भय के मारे उन्हें ऐसा करना पड़ा था। मगर इतने के लिए ही वह तुम्हारे त्याज्य नहीं हो सकते!

हाँ, वह तुम्हें छोड़ सकते हैं, क्योंकि तुमने सामाजिक मर्यादा का उल्लंघन किया है।

लाली को रंगा की बातें पसंद नहीं आई। उसका मन विद्रोह से भर गया। उसने झुँझलाकर कहा-इसे मैं मानने को तैयार नहीं हूँ, रंगलाल! जिस तरह मैं उनकी नजरों में गिरी हुई समझी जा सकती हूँ, उसी तरह वह भी मेरी नजरों में गिरे हुए हैं। मैंने अपनी इज्जत अपने हाथों रखी है। चाहे कोई विश्वास करे, चाहे न करे। मैं इसकी परवा नहीं करती। खैर, जैसा अवसर

आयगा, कर लूँगी वैसा ही; मगर कब चलने को सोच रहे हो, रंगलाल !

-चलो न शकुन के पास, वहों निश्चय होगा । वह भी तो साथ देने को कह रही थी ।

-क्या शकुन दीदी भी चलेगी? कहाँ? अपने गाँव?

-हाँ, वह भी चलेगी, अपने गाँव ही ।-रंगा उत्सुक होकर बोल उठा ।  
लाली जाने क्या सोचकर रंगा की ओर देखने लगी ।

इसबार रंगा को शकुन का परिचय देना आवश्यक बोध हुआ ।  
इसलिए उसने पूछा-हाँ, भाभी, जानती हो शकुन कौन है ।

-कौन है शकुन ? -विस्मित होकर लाली ने पूछा-मैं तो नहीं जानती  
वह कौन है ।

.-शकुन हमलोगों की जमींदार है! अभी जो जमींदार हैं वहाँ के वे  
उनके ससुर हैं। शकुन ने खुद ही मुझसे ऐसा कहा है ।

-अरे, यह क्या कह रहे हो, रंगलाल ! -लाली अचरज से रंगा की  
ओर देखती रही ।

-सचमुच, शकुन हमारी जमींदार है, रंगलाल !

-हाँ, चलो, तुम खुद पूछ लो न ! मैं इूँ थोड़े ही कह रहा हूँ ।  
इसके बाद दोनों उठे और शकुन के बांगले को ओर चल पड़े ।

हड़ताल खत्म होने के बाद रंगा अपने बांगले पर ही रहने को आ  
गया था ।

जब वे दोनों शकुन के बांगले पर जा पहुँचे, शकुन अपने काम में  
लगी थी । दोनों को लगा, जैसे शकुन उन्हीं लोगों का इंतजार कर रही हो,  
देखते ही वह बोली-आखिर तुमने रिजाइन कर ही दी, रंगलाल !

कर ही नहीं दी-रंगा ने मुस्कराते हुए कहा-बल्कि अब तो चलने की  
तैयारी में भी लग गया हूँ । लाली से ही पूछ लो न, शकुन! वह तो इसीलिए  
तुमसे मिलने आई है-तुमसे नहीं, बल्कि अपनी जमींदार से ।

शकुन हँसी और हँसती हुई लाली की ओर देखकर बोली-लाली  
को आज पता लगा है कि मैं उसकी जमींदार हूँ? क्यों लाली, तुमने अपनी  
जमींदारिन को देख लिया ?

-आज ही क्या, अभी तो इनसे पता लगा है, शकुन दीदी! हमारे ऐसे भाग कि हम अपने जर्मिंदार के साथ इत्ते दिनों के बाद मिले।

और मेरा भी कुछ कम सौभाग्य नहीं है, लाली, कि मैं भी अपनी रिआया में से एक ऐसी देख्यूँ, जो मेरे तहसीलदार पर लात-घुस्से चलाय ! क्यों रंगलाल, तुम क्यों नहीं कुछ कहते? क्यों, लाली, तुमने कैसे लात चलाई उस पर?

लाली सन्न हो उठी और स्तंभित होकर उसकी ओर देखती रही; पर कुछ क्षणों के बाद हिम्मत बाँधकर वह हँसती हुई बोल उठी- लात-घुस्से चलाए ही कहाँ, शकुन दीदी, तब तक तो मेरी सास पहुँच चुकी थीं ! .... और अब उन बातों को सुनकर क्या करोगी, दीदी!

-मगर क्या मुझ पर भी तो कोई सितम बरपा न करोगी, लाली! मुस्कराती हुई शकुन बोली।

-करूँगी क्यों नहीं-लाली खिलखिलाकर हँसती हुई बोल उठी-जब तुम हमें सुख से न रहने दोगी तो क्या करूँगी? लाचार वैसा करना पड़ेगा।

लाली की बातों पर सब के सब हँस पड़े। हँसी का दौर खत्म होते ही लाली पूछ बैठी - मगर जर्मिंदारी संभालोगी कब से, शकुन बहन ?

-अब संभालने में देर ही क्या रह गई है ! ससुर साहब ने लिख दिया है कि मैं अबसे अपने घर में आ रहूँ। वे मृत्यु की घड़ियाँ गिन रहे हैं ! मैं तो कब की न चली गई होती; मगर रंगलाल का इंतजार जो देख रही थी....

